फणीश्वरनाथ रेणु :
चुनी हुई रचनाएँ-1

फणीश्वरनाथ रेणु

चुनी हुई रचनाएँ

संपादक
भारत यायावर

1

क्रम

विज्ञप्ति

किसी भी महत्त्वपूर्ण साहित्यकार के संपूर्ण वाङ्मय से कई खंडों में 'चुनी हुई रचनाओं' के रूप में प्रकाशन की परंपरा हिंदी में सर्वथा नवीन है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' के प्रकाशन के पूर्व मेरे देखने में 'नागार्जुन : चुनी हुई रचनाएँ' (संपादक—शोभाकांत) ही सिर्फ प्रकाशित हुई है, जिसमें बाबा नागार्जुन के वैविध्य-पूर्ण रचना-संसार के दर्शन हुए हैं, जिसके प्रकाशन का श्रेय भी वाणी प्रकाशन को जाता है। 'वाणी' ने इस प्रकार के प्रकाशन की एक स्वस्थ परंपरा की शुरुआत की है। इसके अलावा किसी अन्य प्रकाशन से इस प्रकार का प्रकाशन-आयोजन हिंदी मे शायद अब तक नही है। अपितु, रादुगा प्रकाशन, मास्को ने पुश्किन आदि कई रूसी लेखकों की हिंदी में चुनी हुई रचनाओं को कई खंडों में प्रकाशित अवश्य किया है।

रेणु मूलतः कहानीकार एवं उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके कुल छः उपन्यास एवं पाँच कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। रेणु के उपन्यास बहुपठित और चर्चित हैं। चूंकि ये बड़ी रचनाएँ हैं, इसलिए इन्हें स्वतंत्र रूप से प्राप्त किया जा सकता है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' में इसीलिए उपन्यासों को संकलित नहीं किया गया है। इन दोनों विधाओं के अलावा रेणु ने रिपोर्ताज, कविताएँ, सामयिक राजनीतिक-सामाजिक घटनाओं पर टिप्पणियाँ, नाटक, निबंध, स्केच, संस्मरण, फिल्म-स्क्रिप्ट, गद्य-गीत, पत्रादि भी लिखे हैं। साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे कई छद्म-नामों मे वैविध्यपूर्ण लेखन भी किया है। यहाँ उनके समग्र रचना-संसार से (उपन्यासों को छोड़कर) सभी प्रकार के लेखन से चयन किया गया है। 'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' में पहला खंड कहानियों का है। दूसरे खंड मे आत्म-रेखाचित्र, रेखाचित्र (स्केच), संस्मरण, निबंध, यात्रावृत्तांत, उपन्यास-अंश व अनुवाद हैं। तीसरे खंड में रिपोर्ताज, राजनीतिक व सामाजिक घटनाओं पर लिखी गयी रपटें व टिप्पणियाँ, इंटरव्यू, कविताएँ, गद्य-गीत एवं पत्र संकलित हैं।

रचनाओं का क्रम उनके प्रकाशन-वर्ष के अनुसार रखा गया है। रचनाओं

के अंत में उनका प्रथम प्रकाशन-वर्ष भी दे दिया गया है। रचनाओं को 'चुनने' के क्रम में दो बातों पर विशेष तौर पर ध्यान रखा गया है—रचनाएँ हर दौर की हों एवं विषय-वैविध्य मे परिपूर्ण हों। इससे रेणु के प्रारंभिक दौर से अंतिम दौर तक की महत्त्वपूर्ण रचनाओं मे एक साथ साक्षात्कार के साथ, उनके रचना-सामर्थ्य की सही ऊर्जा के भी दर्शन होंगे।

'रेणु : चुनी हुई रचनाएँ' के प्रकाशन की परिकल्पना 1984 में ही की गयी थी, पर इसका प्रकाशन अब जाकर संभव हो पा रहा है। इसके प्रकाशन की पूरी तत्परता श्री अशोक महेश्वरी ने निभायी है। उनके अथक परिश्रम एवं सूझ-बूझ के कारण ही इतने बेहतर ढंग मे इसका प्रकाशन संभव हो पा रहा है।

—भारत यायावर

कहानीकार रेणु की कहानी

जब रेणु की उम्र छः-सात साल की थी, उन्होंने अपने पिताजी को अपने संबंध में बड़े ही सहज ढंग से एक अद्भुत कहानी गुनायी थी। पिताजी ने माँ को बुलाकर कहा था, 'सुनो जरा, यह क्या कहता है ?' तब रेणु ने माँ से भी स्पष्ट शब्दों में कह दिया था, 'तुम मेरी माँ नहीं। मेरी माँ ने मुझे एक मिट्टी की हुंडी में बंद कर, नदी में डाल दिया था। बहते-बहते हुंडी एक घाट पर जा लगी। और वहीं से तुम मुझे ले आयीं।' रेणु ने आगे बताया, 'मुझे पुनर्जन्म की बात भी याद है।··· मैं स्कूल में पढ़ता था। अहा ! कितना सुंदर था हमारा स्कूल ! चारों ओर रंग-बिरंगे फूलों की क्यारियाँ। पोखरे में पुरइन के फूल। एक दिन मैं फूल 'लोढ़ने' के लिए···।' और तभी उनकी माँ चीख पड़ी थी। और घनघोर आर्यसमाजी पिता ने एक कट्टर सनातनी पंडित को बुलाकर पूजा-पाठ और पुरश्चरण की व्यवस्था करवायी थी।

रेणु ने अपने बचपने के इस प्रसंग का जिक्र अपनी आत्म-रचना 'पांडुलेख' में किया है। दरअसल यह उनकी गढ़ी हुई पहली कहानी थी, जिसका प्रभाव भी पुरजोर हुआ था। रेणु को बचपन से ही कथा-कहानियाँ सुनने का अद्भुत शौक था और अपनी दादी से व गाँव के बड़े-बूढ़ों से पूर्णिया क्षेत्र के जन-जीवन में रची-बसी कहानियों को अपनी स्मृति में बसा चुके थे। अद्भुत स्मृति के धनी रेणु को बचपन तक की एक-एक घटना ब्योरेवार याद थी। बचपन की सुनी हुई कहानियों के अलावा, लोकगीत और लोगों के चेहरे, हाव-भाव—सभी याद थे। उन्होंने अपने कथाकार होने के बारे में लिखा है, 'बचपन से ही मुझे कथा-कहानी सुनने और गुनने का शौक रहा है। बुनने का शौक तो बहुत बाद में चलकर पैदा हुआ, और वह भी शायद इसलिए कि बचपन से ही इतने तरह के लोगों को नजदीक से देखने-समझने का मौका मिला कि बाद में चलकर मैंने महसूस किया—मेरा प्रत्येक परिचित अपने-आप में अनगिनत कहानियों की खान है। बस, फिर क्या था, कलम उठाई और कथा बुनने के धंधे में लग गया।··· इस बीच स्कूल-जीवन और

उसके बाद के मेरे अनगिनत मित्र-परिचित, गाँव-घर की घटनाएँ मेरी कहानियों का ताना-बाना बनी हैं और मैंने उन्हीं से अपनी अच्छी-बुरी कहानियाँ बुनी हैं।

पर यह आश्चर्य की बात है कि रेणु का लेखन कहानी से प्रारंभ न होकर कविता से हुआ। वैसे कविताएँ वे ताउम्र लिखते रहे, पर बहुत कम कविताएँ ही प्रकाशित हो पायीं। जब वे फारबिसगंज के 'ली अकादमी' उच्च विद्यालय के कक्षा नौ के विद्यार्थी थे, अपने जीवन की पहली कहानी 'रिजल्ट' लिखी एवं कक्षा में पढ़कर सुनाई। इसमें एक छात्र के परीक्षा में असफल होने एवं आत्मग्लानि की पीड़ा को न बर्दाश्त कर पाने पर आत्महत्या करने का ऐसा सजीव चित्रण किया गया था कि सभी छात्र-श्रोता करुणा से भर उठे। यह लगभग 1937 की बात है। इसी वर्ष रेणु नेपाल के विराटनगर में कोइराला-परिवार के साथ रहने चले गये एवं आगे का अध्ययन वहीं रहकर किया। पूरे कोइराला-परिवार के साहित्यिक एवं राजनीतिक चेतना से संपन्न होने के कारण रेणु की प्रतिभा तेजी से विकसित होने लगी। हिंदी एवं बंगला के साहित्य से तो वे परिचित थे ही, कोइराला-परिवार के साथ रहकर विदेशी साहित्य से भी उनका परिचय बढ़ा। कोइराला-बंधुओं में स्व० तारिणीप्रसाद कोइराला से इनकी इतनी गहरी दोस्ती थी कि वे साथ खाते-पीते-सोते और आधी रात तक साहित्य-चर्चा करते। तारिणी-प्रसाद कोइराला नेपाली के महत्त्वपूर्ण कवि-कथाकार हुए। वैसे उनसे बड़े विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला की कहानियाँ पहले से ही छप रही थीं, जिनमें से कुछ का अनुवाद रेणु ने आगे चलकर किया। 1939 से '41 तक रेणु वाराणसी में रहकर अध्ययन करते रहे। इसी दौरान उनकी कई कहानियाँ व कविताएँ वाराणसी के दैनिक व साप्ताहिक पत्रों में प्रकाशित हुईं। वाराणसी में वे आचार्य नरेन्द्र देव के संपर्क में आये और उन्हीं से मार्क्सवाद की दीक्षा ली। रेणु स्वभाव से रोमांटिक थे, पर नरेन्द्र देव के सान्निध्य ने उनमें यथार्थवादी चेतना विकसित की। 1942 के आंदोलन में वे गिरफ्तार हुए। जेल में सतीनाथ भादुड़ी भी उनके पास थे। भादुड़ीजी ने नियमित तौर पर लिखने-पढ़ने की उनमें आदत डाली। भादुड़ीजी ने वहीं (भागलपुर जल में) अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'जागरी' की रचना की और रेणु ने कई कहानियों एवं कविताओं की रचना की। श्री वीरेन्द्रनारायण, जो रेणु के साथ जेल में थे, को एक कहानी की स्मृति अब तक है। वे लिखते हैं—"वहीं (जेल में) मालूम हुआ कि रेणु ने कहानियाँ भी लिखी थीं, जो प्रकाशित हो चुकी थीं। जेल में साहित्यिक गतिविधि भी शुरू की गयी, बड़े ही अप्रत्याशित ढंग से। शोलोखोव की किताब हम लोग पढ़ रहे थे और उसके यथार्थवादी चित्रण से बड़े ही प्रभावित थे। बड़े-बूढ़े इसे अश्लील कहते थे और हम लोग कसमसाकर रह जाते थे। इसी की प्रतिक्रियास्वरूप मैंने एक नाटक लिखा और रेणु ने एक कहानी। दोनों कृतियाँ पढ़ी गयीं। सांप्रदायिक दंगे में बलात्कार

के बाद एक लड़की कैंप तक पहुंची। रात में एक वरिष्ठ कांग्रेसी स्वयंसेवक पहुंचे। उस लड़की के सामने प्रस्ताव रखा। उसने सिसकते हुए कहा, 'आमाके माफ कोरुन। बांधन भेंगे गेछे।'···मुझे आज भी वह दिन याद है, जब हम तीन नौजवान एक तरफ थे और दूसरी तरफ बुजुर्ग, जिन्होंने कहानी या नाटक का सिलसिला ही बंद करवा दिया। कह नहीं सकता कि उनका क्रोध किस बात पर अधिक था—कांग्रेसी स्वयंसेवक का ऐसा चरित्र-चित्रण या 'बांधन भेंगे गेछे!' जैसे वाक्य पर! रेणु को ऐसा गहरा धक्का लगा कि उसने लिखना ही बंद कर दिया। उस कहानी का क्या हुआ, पता नहीं।"

पर रेणु अपने प्रौढ़ कहानी-लेखन की शुरुआत 1944 से मानते है, जब जेल से छूटकर वे गांव लौट रहे थे तो उन्हे लगा—न जाने किस गांव में जा रहा हूं। पता नहीं, कहां जा रहा हूं!···किधर है अपना गांव 'औराही-हिंगना'? दिग्भ्रांत होकर किसी अन्य दिशा की पगडंडी तो नहीं पकड़ ली?···अचानक कलेजा धक्! बट बाबा कहां है? गांव के उत्तर, सड़क के किनारे विशाल वट वृक्ष नहीं है! और वट वृक्ष के बिना सारा गांव नंग-धड़ंग···श्रीहीन, छूछा···अजनबी-सा लग रहा था।···गांव पहुंचकर विस्तारपूर्वक बट बाबा के तिरोधान की कहानियां सुनता रहा।···पिछले साल एक रात के दूसरे पहर में बिना किसी आंधी-तूफान अथवा 'हवा-बतास' के ही बटबाबा जड़ से उखड़कर भू-लुंठित हो गये।···गगनभेदी धमाका···हल्का भूकंप, और फिर आर्तनाद, कोलाहल, कलरव! सारा गांव जग पड़ा और सभी एक सुर मे रो पड़े—औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े-जवान, कुत्ते-गाय-बैल-भैंस—सभी रात-भर रोते रहे—दुहाय बाबा! अब हमारा क्या होगा? कौन हमारी रच्छा करेगा···सुख-दुःख मे, सदा कौन पास में खड़ा होगा अब?···दादा-परदादा से भी बड़ा, गांव के हर परिवार का पूज्य, प्रत्येक प्राणी का '**समांग**'—बट बाबा!

···और कुछ सप्ताह बाद बट बाबा से गांव वालो के लगाव, उन पर निवास करने वाले पक्षियो एवं उनके न रहने पर गांव वालो की मनोदशा पर रेणु ने अपनी पहली व्यस्क कहानी '**बट बाबा**' लिखी और साप्ताहिक '**विश्वमित्र**' में प्रकाशनार्थ कलकत्ता भेज दी। रेणु अपनी आत्मरचना '**ईश्वर रे, मेरे बेचारे**···' में यह कहानी कैसे लिखी गयी, इसका पूरा ब्योरा देते हुए लिखते है—कई सप्ताह बाद संपादकजी का प्रोत्साहनपूर्ण पत्र मिला और साथ ही 'विश्वामित्र' का ताजा अंक, जिसमे मेरी पहली कहानी 'बट बाबा' छपी थी। दौड़कर दादी के पास गया। चरण स्पर्श कर बोला, 'दादी! तुमने हमे बचपन से ही न जाने कितनी कहानियां सुनायी होंगी।···इस बार मै तुमको एक कहानी सुनाऊं?' कहानी समाप्त करके देखा, दादी की आंखो मे एक अलौकिक ज्योति-सी कुछ जगमगा रही थी। उनका झुर्रीदार चेहरा अचानक दमकने लगा था। गद्गद कंठ से बोली

थीं, 'बट बाबा की महिमा लिखकर तुमने--समझो कि अपने 'पुरखों' को पानी दिया है।...तुमने सारे गाँव के लोगों की ओर से 'बट बाबा' की समाधि पर पहला फूल चढ़ाया। बाबा की कृपा बरसती रहे सदा...!'

बाद में लगभग एक दर्जन कहानियाँ साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में ही प्रकाशित हुईं—**न मिटनेवाली भूख**, **पार्टी का भूत**, **पहलवान की ढोलक**, **कलाकार**, **प्राणों में घुले हुए रंग** इत्यादि। आजादी मिलने के बाद देश की विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए रेणु ने '**रेखाएँ, वृत्त-चक्र**' कहानी 1947 के दिसंबर में लिखी जो आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा संपादित साप्ताहिक '**समाज**' (वाराणसी) के 1 जनवरी, 1948 के अंक में प्रकाशित हुई। पर इन कहानियों से रेणु की कोई ठोस पहचान कहानीकार के रूप में नहीं बन पायी। उनकी पहचान बनी छठे दशक में प्रकाशित '**तीसरी कसम अर्थात् मारे गये गुलफाम**' (अपरंपरा-1 में प्रकाशित), **निकष**-1 (संपादक—धर्मवीर भारती) में प्रकाशित '**रसप्रिया**', **कहानी** (संपादक—श्रीपतराय, भैरवप्रसाद गुप्त) में प्रकाशित '**लाल पान की बेगम**', **कल्पना** में प्रकाशित '**सिरपंचमी का सगुन**' आदि कहानियों से, जिनका संग्रह '**ठुमरी**' नाम से 1959 में प्रकाशित हुआ। अपने पहले ही कहानी-संग्रह से रेणु की पहचान एक महत्त्वपूर्ण कहानीकार के रूप में हो गयी। जैसे '**मैला आँचल**' एवं '**परती-परिकथा**' के प्रकाशन के साथ ही उन्हें प्रेमचंद की परंपरा का एक श्रेष्ठ उपन्यासकार माना गया, उसी प्रकार अपने पहले ही कहानी-संग्रह से रेणु प्रेमचंद की परंपरा के श्रेष्ठ कहानीकारों के रूप में परिगणित होने लगे। पचास के बाद ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ **भैरवप्रसाद गुप्त**, **मार्कंडेय**, **शिवप्रसाद सिंह**, **शैलेश मटियानी** आदि कई लेखक लिख रहे थे, पर रेणु की कहानियों ने ही ऐसी कहानियों की ओर व्यापक रुचि और पाठकीय माहौल पैदा किया।

1960 से '66 के बीच की लिखी चौदह कहानियों का संग्रह '**आदिम रात्रि की महक**' 1967 ई० में प्रकाशित हुआ और 1970 से 72 तक की लिखी कहानियों का संग्रह '**अगिन खोर**' 1973 में प्रकाशित हुआ। मृत्योपरांत पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, पर लगभग गुमी हुई कहानियों के दो संग्रह '**एक श्रावणी दोपहरी की धूप**' (1984) एवं '**अच्छे आदमी**' (1986)—मेरे वर्षों के खोज-कार्य के फलस्वरूप प्रकाशित हुए। इन पाँचों संग्रहों के अलावा एक संग्रह-भर कहानियाँ और भी गुम है, जिनकी खोज जारी है। इस तरह कुल मिलाकर रेणु की लगभग अस्सी कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इन कहानियों में लगभग पचास कहानियाँ हिंदी की श्रेष्ठ कहानियाँ मानी जा सकती हैं। हिंदी के बहुत कम लेखक हैं जिन्होंने इतना कम लिखा हो, पर गुणात्मक दृष्टि से जिनका साहित्य इतना महत्त्वपूर्ण हो।

रेणु की चुनी हुई कहानियों के अब तक तीन संकलन प्रकाशित हुए हैं। पहला

राजेन्द्र यादव के संपादन में '**रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ**' 1963 में प्रकाशित हुआ था। अब वह संकलन अप्राप्य है। दूसरा खुद रेणु द्वारा चुनी हुई कहानियाँ '**मेरी प्रिय कहानियाँ**' 1973 में राजपाल एंड संस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ एवं तीसरा '**प्रतिनिधि कहानियाँ**' 1984 में मोहन गुप्त के संपादन में राजकमल पेपरबैक्स से प्रकाशित हुआ। ये तीनों संकलन छोटे हैं। रेणु की '**चुनी हुई रचनाएँ**' का पहला खंड '**चुनी हुई कहानियों**' का है जिसमें पहली बार उनके प्रारंभिक दौर की कहानियों से लेकर अंतिम दौर तक की कहानियाँ भी हैं। रेणु के कहानी-लेखन के हर दौर एवं हर प्रकार को इसमें संकलित किया गया है, जिससे पाठकों को उनके विस्तृत कथा-आयाम के दर्शन हो सकेंगे।

—**भारत यायावर**

'अपरूप-रूपों' की पहचान

हिंदी कथा-साहित्य मे रेणु की पहचान एक गहरे लोक-संपृक्त कथाकार के रूप में है । वे साधारण जन की '**आत्मा के सजग और मर्मी शिल्पी**' है । लोक-संस्कृति की जितनी गहरी पकड़ रेणु के कथा-साहित्य में है, अन्यत्र दुर्लभ है। अपने कथा-साहित्य की सुदृढ भित्ति उन्होंने लोक-भाषा की नीव पर खड़ी की है, इसीलिए वह इतनी टिकाऊ और मन को छूने वाली है। जो ग्राम-भाषा पढ़े-लिखे शहराती लोगों को गँवारू और गलीज लगती है, रेणु के कथा-साहित्य मे उसके शब्द आकर मोतियों की तरह चमकते हैं। भाषा का खड़ी बोली का ढाँचा होने पर भी उनकी भाषा का पूरा मिजाज ग्रामीण है, जिसे कभी 'आँचलिक' कहने का पुरजोर चलन था । पर इस 'आँचलिक' शब्द का रेणु ने पुरजोर विरोध भीकिया था । वे 'आँचलिकता' को लेकर चल रहे बहस को बेमानी समझते थे । वे उपन्यास को सिर्फ उपन्यास और कहानी को सिर्फ कहानी मानने के पक्षपाती थे— आँचलिक आदि किसी विशेषण जोड़ने के नहीं। यद्यपि उनके अधिकांश कथा-साहित्य को आँचलिक कहा गया है । रेणु ने 'मैला आँचल' की भी रचना भारत के एक पिछड़े गाँव को प्रतीक मानकर की थी, जैसे प्रेमचद ने 'गोदान' की रचना की थी, पर उनके उपन्यास और कहानियों को 'आँचलिक' कहकर एक क्षेत्र-विशेष की सीमा में बाँध देने का प्रयास किया गया, जैसे अन्य क्षेत्रो के जीवन से, उनकी समस्याओं से उनका कुछ लेना-देना ही न हो। रेणु न इसका विरोध किया था ।

रेणु प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के सबसे प्रमुख कथाकार हैं । इनकी प्रमुखता का सबसे बड़ा कारण है—ग्रामीण जीवन को अपने कथा-क्षेत्र का आधार बनाते हुए भी प्रेमचंद के कथा-शिल्प और रचना-दृष्टि से अपने को बिलगाना। जबकि उनकी पीढ़ी के अन्य कथाकार, जो ग्रामीण जीवन की कहानियाँ लिख रहे थे, प्रेमचंद के हू-ब-हू नक्शे-कदम पर चले । इन्होने प्रेमचंद के कथा-साहित्य की तमाम विशेषताओं को कमजोरियों सहित अपनाया। किसी भी बड़े

लेखक की तर्ज पर रचनाएं लिखना आसान काम है, और उसे आज तक हिंदी में किया जा रहा है। आज भी ढेर सारी कहानियां ऐसी लिखी जा रही हैं, जिन्हें यदि प्रेमचंद की कहानी कहा जाये, तो किसी को अविश्वास नहीं होगा। पर रेणु की कहानियां आज भी अलग-थलग दीखती हैं। इसका कारण क्या है? प्रेमचंद और रेणु दोनों के पात्र निम्नवर्गीय हरिजन, किसान, लोहार, बढ़ई, चर्मकार आदि हैं। दोनों लेखकों ने साधारण पात्रों के जीवन को रेखांकित किया है, पर दोनों के कथा-विन्यास, रचना-दृष्टि और 'ट्रीटमेंट' में बहुत फर्क है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में इन उपेक्षित और पीड़ित पात्रों का आर्थिक शोषण या उनका सामंती व महाजनी व्यवस्था के फंदे में पड़ी हुई दारुण स्थिति का चित्रण है, जबकि रेणु ने इन सताये हुए, शोषित पात्रों की सांस्कृतिक संपन्नता, मन की कोमलता, रागात्मकता और कलाकारोचित प्रतिभा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद रूसी कथाकार गोर्की के करीब पड़ते हैं, जबकि रेणु मिखाइल शोलोखोव के। इस तरह रेणु प्रेमचंद की परंपरा के कथाकार न होकर, एक अलग परंपरा का श्रीगणेश करते है। ये दोनों कथाकार मिलकर उस 'साधारण' आदमी का सपूर्ण चित्र दे पाते है। अन्यथा, एक प्रकार से अपने-आप में दोनों एकांगी हैं। रेणु प्रेमचंद के संपूरक कथाकार है।

इसका मतलब यह नही कि उनका जनता की समस्याओं के प्रति ध्यान नहीं है। वे लिखते हैं, "परती-परिकथा मे मैंने जमीन, भूमिहीनों और खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को लेकर बातें कीं। जातिवाद, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा नही किया था, इसे समूल नष्ट करने की आवश्यकता पर भी बल दिया था। ...'आत्म-साक्षी' के द्वारा राजनीतिक पार्टियों के आपसी कलह और जनता से अलगाव की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था। अपनी अन्य कहानियो मे मैंने निम्न-मध्यवर्ग, पिछड़े लोगों, भूमिहीनों, खेतिहर मजदूरों तथा समाज के ऐसे लोगो का चित्रण किया, जिन्हे 'हरिजन' कहकर गौरवान्वित तो कर दिया गया, किंतु वे आजादी के बाद भी बे-जमीन, पिछड़े और अछूत एवं आक्रांत होते रहे। शोषण तो कभी बंद नही हुआ, बल्कि सारी विकृतियां दिन-दूनी, रात-चौगुनी होकर समाज को ग्रसती गयीं।"

आजादी के बाद के कथा-साहित्य के मूल्यांकन के तहत हिंदी आलोचकों ने प्रेमचद को आदर्श मानकर, उनकी परंपरा को स्वीकार कर, आलोचना का एक सहज तरीका अपना लिया है। नामवरजी सरीखे बहुत कम आलोचक हैं, जो इससे परे हैं, पर अधिकांश की यही हालत है। ये देखते है कि अमुक लेखक प्रेमचंद की तरह की कहानियां लिख रहा है, इसलिए श्रेष्ठ है। उससे जरा भी अलग जो भी पड़ा—उसे नकारने का फैशन-सा हो गया है। इधर अति वामपंथी रुझान के लेखकों का एक खेमा उभरकर आया है, जो हर रचना में वर्ग-संघर्ष या क्रांति

का पक्षधर है । इनकी स्थिति और भी भयावह है । ऐसे आलोचकों-विचारकों के शिकार रेणु जैसे महत्त्वपूर्ण लेखक भी होते रहे है। उन पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते रहे हैं और साहित्य से पूर्णतः खारिज करने की साजिश भी रची जाती रही है। बावजूद इसके, साधारण पाठक प्रेमचंद के बाद जितना रेणु के साहित्य से संतुष्ट रहा है, किसी अन्य के नही । इस संदर्भ मे रेणु अपने आत्म-कथ्य में कहते हैं—"मेरे साधारण पाठक मेरी···स्पष्टवादिता तथा सपाटबयानी से सदा संतुष्ट हुए है। और साहित्य के राजदार पंडित-कथाकार-आलोचकों ने हमेशा नाराज होकर मुझे 'एक जीवनदर्शनहीन-अपदार्थ-अप्रतिबद्ध-व्यर्थ रोमांटिक प्राणी' प्रमाणित किया है ।···सारे तालाब को गंदला करने वाला जीव ! इसके बावजूद कभी मुझसे इससे ज्यादा नहीं बोला गया कि अपनी कहानियों में मैं अपने को ही ढूंढ़ता फिरता हूं : अपने को अर्थात् आदमी को !···" अर्थात् रेणु के कथाकार ने जो इतने पात्रों से, इतनी जीवन-स्थितियों से परिचित कराया है—दरअसल उसकी पूरी कोशिश 'आदमी' की तलाश के तहत है और इसी में उसके कथाकार होने की सार्थकता है। साहित्य के राजदार पंडितों-कथाकारों-आलोचकों के तमाम आरोपों के बावजूद, इसीलिए उनसे इससे ज्यादा कुछ कहते नही बनता । वह **शमशेर बहादुर सिंह** की इन पंक्तियों को प्रस्तुत करते है, 'बात बोलेगी, मैं नहीं···भेद खोलेगी बात ही !' अर्थात् रचना यदि स्वय नही बोलती, तो अलग से कोई स्पष्टीकरण देना आवश्यक नही ।···पर यहां देखना यह है, यह 'आदमी' कौन है, जिसमें रेणु अपने-आपको तलाश करते है या जिसके चित्रण मे अपने जीवन की सार्थकता पाते है ?—**पंचकौड़ी मिरदंगिया**, जो नाच और गाना सिखाकर अपना पेट पालता है, बुढ़ापे मे जिसकी बोली 'फटी भाँथी' की तरह हो गयी है; **हिरामन**—काला-कलूटा चालीस साला गाड़ीवान—प्रेम के लिए तरसता, भोला-भाला; **हीराबाई**—मेले में नाचने वाली पतुरिया; **सिरचन**—खाने-खाने को मुहताज पर अक्खड़, स्वाभिमानी कलाकार; **बिरजू की माँ**—'सर्वे-सेटलमेंट' से प्राप्त थोड़ी-सी धनहर जमीन पर ही 'लाज पान की बेगम' की तरह दीखती; **हरगोबिन संवदिया**—मानवीय संवेदना से ओतप्रोत साधारण भावुक प्राणी; रातभर जागकर मिट्टी की गध से मदमाता—**करमा**, गाँव की संकीर्ण वर्णवादिता व आपसी ईर्ष्या-द्वेष को रोकने के लिए अपने को बलिदान देता, 'एकला चलो रे' के दर्शन को मानने वाला **किशन महराज**, मुस्लिम अध सांप्रदायिकता के खिलाफ सघर्ष करती **फातमादि** !—यही वे 'आदमी' हैं, जिनमें रेणु खुद को ढूंढ़ते है—व्यवस्था के द्वारा सताये हुए, उपेक्षित, दलित, पर बेहद मानवीय, जमीन से जुड़े, सांस्कृतिक सपदा से संपन्न प्रेम और राग में पगे हुए लोग !···जिनके जीवन से 'एकाकार' होकर रेणु ने ये कहानियां लिखी है ।

रेणु मूलतः यथार्थवादी कथाकार है । पर पहले ही कहा जा चुका है कि

उनकी कहानियों का यथार्थ भिन्न प्रकार का है। 'लोक-हृदय' की गहरी पहचान से ये कहानियाँ बुनी गयी हैं। मनुष्य के रागात्मक सौंदर्य के इतने मार्मिक चित्र उन्होंने दिये हैं कि उनकी भाषा कभी-कभी गद्य की सीमा को तोड़कर कविता की सीमा में चली आती है। लोक-गीतों और लोक-ध्वनियों के प्रयोग से कहानियों में एक जादू-सा पैदा होता है। इसीलिए रेणु को 'गाते हुए गद्य का कथाकार' भी कहा गया है। चीजों या स्थितियों के रंगों को और गाढ़ा करने के लिए वे प्रायः कवियों की तरह बिंबों या उपमाओं का प्रयोग करते हैं, पर ये परंपरित न होकर सामान्य जीवन से ही लिये गये होते हैं।

रेणु की कहानियों को पढ़ते हुए कभी-कभी मन 'रामुरा झिं-झिं' करने लगता है और मुंह से स्वर निकलता है—'अपूर्व' ! इन 'अपरूप-रूपों' की पहचान मर्मी पाठक-आलोचक को ही हो सकती है, उनके सौंदर्य की ग्राह्यता कला-सजग नेत्र ही कर सकते हैं, जिनका लोक-जीवन के प्रति भी गहरा राग हो !

—भारत यायावर

फणीश्वरनाथ रेणु

चुनी हुई कहानियाँ

न मिटनेवाली भूख

आठ बज रहे थे। दीदी बिछौने पर पड़ी चुपचाप टुकुर-टुकुर देख रही थी—छत की ओर। उसके बाल तकिये पर बिखरे हुए थे, इधर-उधर लटक रहे थे। एक मोटी किताब, नीचे चप्पल के पास, औंधे मुंह गिरकर न जाने कब से पड़ी हुई थी। बुधनी की मां, दबे पांव कमरे के पास आती थी और झांककर चुपचाप लौट जाती थी। आठ बजे तक बिछौने पर रोगिनी की तरह चुपचाप पड़ा रहना, मौन साधे, दयनीय मुद्रा बनाकर, टकटकी लगाकर देखना आदि बातें कुछ ऐसे वातावरण की सृष्टि कर रही थीं कि बुधनी की मां कुछ पूछने की हिम्मत नहीं कर पाती थी। बेचारी हाथ में झाड़ू लेकर बार-बार लौट आती थी। अंत में छोटी दीदी (मिस फ्लोरा) से जाकर वह बोली, "दीदी के का भैल है, अब ले पड़ल बाड़ी। आखिर···"

"बड़ी मुश्किल है बुधनी की मां। कल से ही उनका यह हाल है। न खाती हैं, न पीती हैं और कुछ बोलती भी तो नहीं। पूछने पर कहती हैं कि कुछ हुआ ही नहीं है। ज्यादे कुछ पूछने की हिम्मत भी तो नहीं होती।" मिस फ्लोरा ने बालों में कंघी चलाते-चलाते ही कहा।

"सुबहे से झाड़ू देबे ले ठाढ़ हई। तनी चलिके···" बुधनी की मां बात पूरी भी नहीं करने पायी थी कि दीदी की प्रिय छात्रा—चंचला किशोरी 'मदालसा' मुंह लटकाये, आकर खड़ी हो गयी और जिज्ञासु दृष्टि से मिस फ्लोरा और बुधनी की मां को देखने लगी। बुधनी की मां खिलकर बोली, "एहे तो लल्ली! चल त रानी! देख, तोहर दीदी के का भैल है!"

मदालसा चुपचाप दीदी के कमरे में दाखिल हुई। दीदी अपलक दृष्टि से उसे देखती रही। बुधनी की मां चौखट के पास ही खड़ी रही।

"दीदी!" मदा ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद पुकारा।

"हूं?"

"कैसा जी है दीदी?"

"हूँ···" दीदी ने बिना हिले-डुले ही उत्तर दिया।

बुधनी की माँ ने पहले बरामदे पर एक-दो बार 'छप-छप झाड़ू चलायी, फिर डरते-डरते कमरे में आकर हल्के हाथों झाड़ू देने लगी। मदालसा दीदी के टेबल पर बिखरी हुई किताबों को सजाकर रखने लगी। कैलेंडर मे तारीख बदलकर, दिन भी बदल डाला उसने—दीदी चुपचाप देख रही थी।

"क्यों, आज सोमवार हो गया न ?" दीदी ने अचकचाकर पूछा। मदालसा डरी, एक बार कैलेंडर की ओर देखकर वह बोली, "जी नहीं।" वह दिन बदल रही थी कि फिर याद कर रुकी और बोली, "जी हाँ, आज सोमवार ही है। कल रविवार, आज सोमवार···"

"सोमवार हो गया ?" दीदी उठकर बैठ गयी, बोली, "तो बारातवाले चले गये ?"

"हूँ, चार बजे भोर चल गैलन सब।" बुधनी की माँ झाड़ू के तिनकों को सजाती हुई बोली।

दीदी डरते-डरते बिछौने के पास वाली खिड़की को, जो स्कूल की ओर खुलती थी—खोलने लगी। खिड़की खोलकर उसने देखा—स्कूल खाली पडा है। दो दिनों से बंद खिडकी जो खुली तो कमरे में एक ताजी हवा आकर खेलने लगी। वह अँगड़ाई लेकर उठी, उसके चेहरे की गंभीरता तत्क्षण ही दूर हो गयी। मदालसा के ओठों पर भी मुस्कान की एक सरल रेखा दौड़ गयी। बुधनी की माँ को कुछ हिम्मत हुई, पूछ बैठी, "कैसन तबियत है दीदी ?"

"अच्छी है,—तू जल्दी से जाकर स्कूल के कमरों को झार-बुहार दे। न हो तो फुलिया को भी बुला लेना। भगेलू से कह दो—गाडी पर आज सरजू जायेगा। भगेलू क्लासों में बेंच सजाकर रखेगा। जाओ!" कहती हुई वह तौलिया और साडी लेकर 'बाथरूम' की ओर चली।

मदालसा ने टोका, "दीदी !"

"क्या है री !" दीदी ने रुककर मुस्कराते हुए पूछा।

"आप नहीं गयी, इंदु बहुत रोती थी, कहती थी—दीदी से भेंट नहीं हो सकी।" पेंसिल-कटर में पेंसिल डालकर घुमाते हुए मदालसा बोली। दीदी ने प्रत्युत्तर में सिर्फ एक लंबी नि:श्वास छोड़ दी।

"आप तो उसे उपहार देने के लिए एक चित्र बना रही थी न ?"

"बना तो रही थी, पर अधूरा ही रह गया। अच्छा, भेज दूंगी···मुझसे बड़ी भारी गलती हो गयी मदा, जाने के दिन उससे मिल नहीं पायी।" कहती हुई दीदी धीरे-धीरे चली गयी।

मदा वहीं बैठकर दीदी का एलबम' देखने लगी।

श्रीमती उषादेवी उपाध्याय—उर्फ दीदीजी। शहर के गर्ल्स मि० ई० स्कूल की प्रधानाध्यापिका। मझोले कद की, दुबली-पतली, सुंदरी विधवा युवती। जिस दिन से स्कूल में प्रधानाध्यापिका होकर आयी, स्कूल की उन्नति में चार-चाँद लग गये। छात्राओं की संख्या चौगुनी हो गयी। परीक्षाफल सुंदर होने लगा। स्कूल को हाई स्कूल बनाने की चर्चा होने लगी। उस दुबली-पतली मृदुभाषिणी 'दीदी' की मीठी चपत जिस बालिका ने एक बार खा ली, वह उसकी चेरी हो गयी। बालिकाओं और किशोरी छात्राओं की बात तो दूर, अध्यापिकाएँ भी उसके स्नेह की भूखी रहतीं। बुधनी की माँ उसकी प्राइवेट सेक्रेटरी थी। सदा प्रसन्न रहनेवाली दीदी के ओठों पर मुस्कुराहट सदा खेलती रहती। वह कभी-कभी सितार बजाकर मीरा की पदावली गा लेती थी, टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ खींचकर कलापूर्ण चित्र भी बना लेती थी। विधवा थी, ओढ़ने-पहनने, खाने-पीने की चीजों में सादगी के कड़े नियमों को मुस्तैदी से पालती थी, लेकिन अन्य अध्यापिकाएँ, जो सधवा थीं, वे भी उनकी सादगी पर फिदा थीं।

स्नान-भोजन करके, दीदी अन्य अध्यापिकाओं के साथ जब स्कूल में दाखिल हुई तो बुधनी की माँ फुलिया को लेकर कमरों में झाड़ू दे रही थी और बड़बड़ा रही थी। भगेलू चुपचाप बेंचों को उठा-उठाकर अंदर कर रहा था। दीदी को देखते ही बुधनी की माँ जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने लगी, "छी-छी ! एक दिन में सुअर के खुहार बना देलन सब···राम-राम···!"

दीदी ने कमरे में जाकर देखा—दीवाल पर स्थान-स्थान पर पान की पीक पड़ी हुई थी। नीचे फर्श पर सिगरेट के अधजले टुकड़े, सिगरेट के खाली डब्बे और माचिस की जली हुई तीलियाँ बिखरी हुई थीं। दीदी ने किंचित् नाक सिकोड़ते हुए कहा, "लो, जल्दी साफ करो।" कहकर वह ऑफिस खोलने चली। वह ऑफिस खोल ही रही थी कि उसकी आँखें दीवाल पर लिखे सुंदर अक्षरों पर अटक गयीं—

'उठ सजनी खोल किवाड़ें तेरे साजन आये दुआरे !'

दूसरी जगह—'खिड़कियाँ तुम्हारी बंद रहीं पर मैंने तुमको देख लिया।'

लाल अक्षरों में—'रानी अब अध्यापन छोड़ो, मेरे दिल का राज सँभालो।'

नीले पेंसिल से—'प्रेम की भाषा सजनि मुझको भी पढ़ा दो।'

पढ़ते-पढ़ते दीदी तिलमिला उठी। ऑफिस खोलकर धम्म से कुर्सी पर जा बैठी। उसके ओठों पर कुछ घंटे पहले जो स्वाभाविक मुस्कुराहट लौट आयी, वह विलीन हो गयी। वह उठी, फिर बैठ गयी। एक कागज पर लिखने लगी—'चेयरमैन की सेवा में', फिर न जाने क्या सोचकर कागज को फाड़कर वह उठ खड़ी हुई।

"फ्लोरा !" दीदी ने पुकारा।

फ्लोरा और उर्दू अध्यापिका मलमा आयीं, दीदी की गंभीर मुद्रा को देखकर अवाक् खड़ी रहीं।

"क्या है दीदी ?" फ्लोरा ने मौन भंग करते हुए पूछा।

दीदी ने, बाहर आकर दोनों को दीवाल की ओर दिखलाया। दोनों ने पढ़कर घृणा से मुँह विकृत कर लिया। मलमा बोली, "यह बारातियों का काम है !"

"हूँ," दीदी ने कहा, "सभ्य बारातियों ने लिखा है।"

लड़कियाँ दल बाँधकर मुस्कुराते हुए आ रही थीं। सरजू भी स्कूल की गाड़ी पर लड़कियों को लेकर आ गया था।

"प्रणाम दीदीजी, दीदीजी प्रणाम, प्रणाम···" कहकर मुस्कुराती हुई लड़कियों की टोली ज्यों ही स्कूल की सीढ़ी पर पाँव रखने लगती, दीदी की गंभीर वाणी सुनकर सब एक साथ रुक पड़तीं।

"तब तक बाहर मैदान में खड़ी रहो।"

दीदी तथा अध्यापिकाओं के चेहरों को देखकर लड़कियाँ आपस में कानाफूसी करने लगतीं, "देखो-देखो ! दीदी की आँखें लाल हैं !"

"ऐसा तो कभी नहीं···"

"समझी, समझी···" मंजू खुश होकर कहती, "कोई बड़े आदमी मर गये हैं, फिर वही पाँच मिनट चुप···"

"फ्लोरा ! रौलकॉल करके छुट्टी दे दो।" कहती हुई दीदी पुनः ऑफिस में जा बैठी।

छुट्टी दे दी गयी। छात्राओं ने बुधनी की माँ से पूछा, मदालसा से दरयाफ्त किया, पर कुछ भी पता नहीं चला।

दीदी अपने कमरे में लौट आयी और बिछौने पर लेट गयी। उसके अंदर एक आग-सी जल रही थी, सिर फटा जा रहा था और रह-रहकर प्यास लग रही थी।

शनिवार को शहर के प्रतिष्ठित रईस श्री आनंदीप्रसादजी के यहाँ बारात आयी थी। उनकी एकमात्र पुत्री 'इंदु' के शुभविवाहोपलक्ष में स्थानीय धर्मशाला में बारातियों के ठहरने का प्रबंध किया गया था। किंतु सभ्य-असभ्य, साधारण-असाधारण और धनी-गरीब के वर्गीकरण की ओर प्रबंधकों का ध्यान ही नहीं गया था। सभ्य और सुसंस्कृत बारातियों ने जब 'जेनरल बारातियों' के साथ रहना अस्वीकार कर दिया तो चेयरमैन साहब से अनुमति लेकर 'गर्ल्स स्कूल' में ही ठहरने का प्रबंध कर दिया गया था—सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत बारातियों के लिए। स्कूल के कंपाउंड में ही अध्यापिकाओं के 'क्वार्टर्स' थे। रविवार की शाम को अन्य अध्यापिकाएँ विवाह-गृह के समारोह में सम्मिलित होने चली गयी थीं,

स्कूल की ओर खुलनेवाली खिड़की को बंद करके दीदी अपने कमरे में बैठी अधूरे चित्र को पूरा कर रही थी। खिड़की के उस पार---स्कूल में सभ्य बारातियों का भोजन-पान शेष हो चुका था। पत्तलों पर कुत्तों की लड़ाई, भिखारी और भिखारिनों की करुण पुकार को सुनकर दीदी का ध्यान भग हुआ। चित्र को अपूर्ण ही छोड़कर—वह न जाने क्या सोचने लगी थी। धीरे-धीरे कुत्तों का भूंकना बंद हुआ तो भिखमंगों ने आपस में लड़ाई शुरू कर दी थी। लड़ाई जब शांत हुई तो एक छोटे शिशु के रोने की आवाज सुनायी पड़ी थी। दीदी ने पहचान लिया था, अभागिन मृणाल के बच्चे के कोमल कंठ-स्वर को। "ओ बाबा, एत झाल ताई तो बोलि छेले आमार कांदछे केन।" मृणाल खाते-खाते बोल उठी थी। 'मृणाल के छोटे-से शिशु ने जूठन का स्वाद लेना शुरू कर दिया।'···दीदी कुछ आश्चर्यित हुई थी। दीदी मृणाल को जानती थी, उसे प्यार करती थी, कभी-कभी बुलाकर भरपेट भोजन कराती थी और उसके प्यारे बच्चे को गोद में लेकर पुचकारती भी थी। बंगाल के भुक्कड़ों की जमात में मृणाल जब इस शहर में आयी थी तब उसकी गोद अथवा देह में यह शिशु नहीं था। रोज शाम को कुछ बासी रोटियां पाकर बदले में मृणाल ने दिया था इस शहर को वही भोला-भाला शिशु, जो कड़वी तरकारी खाकर रो उठा था। मृणाल बंगाल के एक ग्राम के खुशहाल किसान की पुत्री थी। तो, उस शाम को बैठी-बैठी दीदी बहुत-सी बातें सोच रही थी—कुत्ते, मनुष्य, मृणाल और उसके प्यारे बच्चे के संबंध में न जाने क्या-क्या सोचते-सोचते आरामकुर्सी पर थकी-सी लेट गयी थी। स्कूल के बरामदे पर किसी ने, किसी सरोज नामक व्यक्ति को पुकारकर कहा था, "सरोजजी ! ओ सरोजजी ! जरा इधर आइए।"

"क्या है ?" सरोज अथवा किसी दूसरे ने पूछा था।

"देखिए। यहां की भिखारिनों की आंखों में भी एक अजीब जादू है।" पुकारनेवाले व्यक्ति ने दिखलाया था। दीदी की भौंहें जरा तन गयी थीं और कान सतर्क हो गये थे। देखनेवाले व्यक्ति ने देखकर कहा था, "ओहो !···'जादू' मत कहिए, 'मद' कहिए 'मद'।"

"अरे आप कवि ठहरे।" प्रथम व्यक्ति ने संशोधन को स्वीकार कर लिया था। एक तीसरी आवाज सुनायी पड़ी थी, "अच्छा कविजी ! कल्पना कीजिए तो, जहां की सड़कों पर ऐसी 'परियां' मारी फिरती है, खिड़कियां बंद कर बैठनेवाली मलिकाएं कैसी होंगी ?"

इस पर जोरों से कहकहे लगे थे और वह प्रसंग, कहकहे के साथ, खिड़की की लकड़ियों को छेदकर 'दीदी' के अंतःस्तल में घुस गया था।

उसी रात को तीन बजे तक स्कूल के बरामदे पर 'अंगूरीबाई' नाचती रही थी। घुंघरू की छमछमाहट, दर्द-भरी आवाज और 'वाह ! वाह ! क्या

खूब !!' को मुनते-मुनते 'दीदी' तकिये में मुँह छिपाकर रोयी भी थी। दूसरे दिन भी वह यों ही बिछौने पर निश्चेष्ट पड़ी रही थी। बिछौने पर मे उठते ही उमका सिर चक्कर खाने लगता था। एक ही रात में न जाने कितनी दुर्बलता आ गयी थी। रविवार की शाम को ही अंगूरीबाई कूक पड़ी थी, "अँधेरिया है रात सजन···।"

"वाह ! नेकी और पूछ-पूछ···" साजनों में मे एक ने फरमाया था, शेष साजनों ने जबर्दस्त कहकहे लगाये थे।

"चुन-चुन कलियाँ सेज बिछायी···"

"—मजेदार···"

कहकहों के बवंडर में 'दीदी' ज्ञानशून्य हो गयी थी, अंगूरीबाई गाती ही रही थी।···सोमवार को रौलकॉल के बाद छुट्टी देकर जब वह लौटी थी तो उसके अंदर आग-मी लग रही थी, सिर फटा जा रहा था और उमे रह-रहकर प्यास लगती थी।

एक ही दिन में बुखार ने भीषण रूप धारण कर लिया। लेडी डॉक्टर आयी, नुस्खा देकर चली गयी और दवा होने लगी। मंगलवार को सुबह से ही 'प्रलाप' के लक्षण दिखायी पड़ने लगे। वह बिछौने पर अचल हो रही थी और रह-रहकर कुछ बड़बड़ाती भी थी। कभी-कभी चौंककर पास में बैठी मदालसा को उठकर पकड़ लेती थी और रो पड़ती थी, "मदा ! छिप जाओ बिट्टी मेरी··· वह बीड़ीवाला···बीड़ीवाला !!"···कहते-कहते वह बेहोश होकर बिछौने पर लुढ़क पड़ती थी।

हाँ, एक बीड़ीवाले को अक्मर 'मिस्ट्रेस क्वार्टर्स' के पाम आकर दिल में दर्द पैदा हो जाया करता था और वह इलाही से उम दर्द को न मिटाने के लिए आरजू करता हुआ चला जाता था।

दीदी आँखें खोलकर इधर-उधर देखती, मदा, फ्लोरा, सलमा और बुधनी की माँ करुण नेत्रों से बैठी हुई है···नहीं, वह खड़ी है, मृणाल; उसकी गोदी मे नन्हा शिशु है ! वह बीड़ीवाला !! "उँह-हूँ हूँ !"

"दीदी !" सलमा पुकारती।

दीदी आँखें फाड़े दीवाल की ओर देखती ही रहती, "मजेदार···पीली अंगूरी और वह गूँगी पगली···गर्भवनी पगली हँम रही है—हेंह-हेंह उँहू हेंह उएँ···!!"

"हेंह-हेंह उँहू हेंह उएँ"—गूँगी-सी दीदी भी हँम पड़ी।

"दीदी···"प्रायः रोती हुई फ्लोरा ने पुकारा। सलमा ने मिर पर आइसबैग रखा और मदालसा पंखा झलने लगी। दीदी आँखें बंद किये मोचने लगती—वह पगली गर्भवती है। उम पर भी बलात्कार किये गये। छीः-छीः ! वार, वाइन एंड वीमेन—सुरा, युद्ध और नारी···सत्यानाशिनी चीजें है।···'उठ सजनी,

खोल किवाड़ें?'''वह फिर चौंककर उठ बैठती, बड़बड़ा उठती, "खोल दो खिड़कियाँ-याँ-याँ'''।" बुधनी की माँ पकड़कर उसे लिटा देती।

"खिड़कियाँ तो खुली ही हुई हैं।" सलमा कहती।

दीदी चुपचाप आँखें मूंदे रहती'''भरी सभा में द्रौपदी चीरहरण'' उसकी करुण पुकार, उसे नंगी देखने की वासना'''"ओह!" आँखें मूंदे ही अपनी साड़ी के छोर को पकड़ लेती और चिल्ला उठती, "मैं नंगी हो जाऊँगी'''मैं नंगी हो जाऊँगी-गी-गी!!"

"दीदी''''"फ्लोरा, मदा और सलमा तीनो प्रायः एक ही साथ पुकार उठती। दीदी घृणा से मुंह विकृत कर लेती।

भगेलू लेडी डॉक्टर के यहाँ गया था, लौटकर आया तो चुपचाप खड़ा रहा। बहुत पूछने पर भगेलू ने कहा, "डाक्टरनी साहेब राजा रघुवीरसिंह के हिया जाते थे। हम जाकर बोले तो बोलिन कि'''" वह चुप हो रहा।

"क्या बोली?" फ्लोरा ने डाँटकर पूछा।

"बोलिन कि जाकर अपना दीदी को दूसरा विवाह कर दो, सब ठीक हो जायेगा।"

इधर।बिछौने पर पड़ी-पड़ी वह दीवाल की ओर एकटक देख रही थी—स्कूल कंपाउंड में वह मृणाल, नंगी अंगूरी और गूंगी पगली खड़ी है। चहार-दीवारी के चारों ओर शहर-भर के लोग—सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित और गरीब-अमीर, अपनी-अपनी भाषा में हल्ला मचा रहे है:

"तनि हमरो देख द आज सुरतिया पतली कमरिया'''"

"तेरे दर पे खड़ा हूँ कब से'''"

"उठ सजनी खोल किवाड़ें'''"

"तिरछी नजरियावाली रे!'''"

"रे पगलिया'''"

"री बच्चेवाली छोरी'''"

"घूंघट हटाके चाँद-सा मुखड़ा'''"

लोगों की भीड़ क्रमशः उत्तेजित हो रही है। सब फाटक पर धक्का दे रहे है। अंगूरीबाई आँचल से अपने को ढँक लेती है। मृणाल रो पड़ती है, उसकी गोद का बच्चा छाती मे मुँह छिपाकर सिमट गया है। पगली हँस रही है—हेह-ऐं-उं अह-अह हे-हे'''। फाटक टूटने को है। ओह! दीदी चौंककर उठ बैठी। इस बार उसको देखकर मदा, फ्लोरा वगैरह घबड़ा गयी। दीदी अचानक बिछौने पर से उठकर भागी।

"दीदी! दीदी!! दीदी'''अरी रोको, पकड़ो'''" सब पीछे-पीछे दौड़ी। वह 'हेंह उँह ओय अह-अह' करके हँसती और भागती जा रही थी। फाटक के

पोम जाते-जाते दीवाल से टक्कर खाकर गिर पड़ी। जमीन पर रक्त की धारा बह चली।

दीदी अस्पताल में अंतिम घड़ियां गिन रही थी। 'एभरग्रीन रेस्ट्रां' में चाय पीनेवाले नौजवानों को एक नया मसाला मिल गया। चाय की चुस्की लेते हुए एक नौजवान ने कहा, "अरुण ! तुमने कुछ सुना···उसकी हालत बड़ी नाजुक है यार !"

"आखिर ऐसा क्यों हुआ, कुछ पता चला ?'

"भई, आखिर वह भी अपने पहलू में दिल रखती थी, किसी ने छीनकर बेमुरौवती से तोड़ डाला होगा, और क्या ?"

"सुना है कि बारात में उसके कोई पुराने प्रेमी आये थे।"

"तब ठीक है···" एक कहानी-लेखक, जो अब तक चुपचाप बैठे हुए थे, बोल उठे, "मैंने भी ऐसी ही कल्पना की थी।"

"हिं-हिं ऐह हे-हे ओय···" रेस्ट्रां के सामने सड़क पर गूंगी पगली जो बहुत निकट भविष्य में ही माता बननेवाली थी, खड़ी-खड़ी हंस रही थी—"ऐह हेंह हों···" हंसते-हंसते पेट में बल पड़ जाने की मुद्रा बना रही थी।

"अरी भाग, हट शैतान !"

"हेंह एं"···वह प्रत्येक डग से धरती पर एक विशेष जोर डालती हंसती हुई चली गयी।

(अप्रैल, 1945)

पार्टी का भूत

यारों की शक्ल से अजी डरता हूं इसलिए
किस पारटी के आप हैं ? वह पूछ न बैठे।

सूखकर काँटा हो गया हूं। आँखें धँस गयी है, बाल बढ़ गये है। पाजामा फट गया है। चप्पल टूट गयी है। आशिकों की-सी सूरत हो गयी है। दिन में चैन नहीं, रात मे नीद नहीं आती। आती भी है तो बुरे सपने देखकर जग पड़ता हूँ। जी नहीं, आप जो सोचते है—वह बीमारी नही। यदि वह रहती तो कम-से-कम बेकारी और इंतजारी मे मजे तो लूटता। यह तो 'राँची' का टिकट कटानेवाला रोग है। चूंकि यह दिन दूर नही, इसलिए अपनी बीमारी का इतिहास प्रकाशित कर देना, मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। क्योंकि इसके बाद 'न जाने मैं कहाँ और तू कहाँ' की दशा मे यह संभव नही। बात यह है कि मेरे सिर पर 'पार्टी का भूत' सवार है। इसने मु[illegible]हीं का न रखा। बहुत कम उम्र से ही इसने मुझे अपना शिकार बना लिया है।

पाठशाला से ही प्रारंभ करता हूँ।

एक दिन पिताजी के पास बैठकर 'आमोद-पाठ' पढ़ रहा था। गाँव की पाठशाला के गुरुजी आये। बहुत देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद गुरुजी ने नम्रतापूर्वक दाँत निपोरते हुए पिताजी से कहा, "लड़ाई-झगड़ा जो कुछ भी है, आप लोगो में है। मेरा क्या कसूर है ? आप लोग बड़े आदमी ठहरे। जिस प्रकार एक जंगल मे दो सिंह, उसी प्रकार एक गाँव में दो···हें···हें···यह तो भगवान का नियम है। लेकिन पाठशाला तो कुछ उनकी (विरोधी पार्टी के नेता की) नहीं है। पाठशाला में तो मैं हूँ, मेरे लिए जैसे आपके बच्चे···"

"आप नहीं समझते पंडितजी," पिताजी ने बात काटते हुए कहा, "पाठशाला उसी पार्टी की है। अपने लड़के की बात छोड़िए, गाँव के लड़कों को भी मैं उसमें नहीं भेज सका तो इसमें हमारी पार्टी की बेइज्जती है।"

गुरुजी ने पुन: दाँत निपोरते हुए कहा, "सो तो है, सो तो है। मैं तो···आप विश्वास कीजिए···मैं तो आपकी सेवा करना चाहता हूँ।" गुरुजी बलपूर्वक खाँस-कर, इधर-उधर देखकर पिताजी से निम्न स्वर में कुछ तथ्य की बातें करने लगे। फल यह हुआ कि मुझे और मेरे गाँव के लड़कों को पाठशाला में पढ़ने जाने की आज्ञा मिल गयी।

दूसरे दिन मैं अपने साथियों के साथ पाठशाला में दाखिल हुआ। गाँव-समाज, पास-पड़ोस, टोले-मुहल्ले, जाति-बिरादरी में, यहाँ तक कि कचहरी की 'बार लाइब्रेरी' में भी यह खबर बिजली की तरह फैल गयी। तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाने लगे।

"तो क्या अब गाँव में एकता हो गयी?" गाँव के गवाही पेशा करनेवालों ने माथा ठोंक लिया।

"अब खान-पान, शादी-ब्याह भी चलेगा?" बिरादरी के कर्णधारो के पेट में चूहे कूदने लगे।

"यह जो फौजदारी चल रही है, इसको उठा लिया जायेगा क्या?" वकीलों ने लंबी साँस ली।

किंतु हुआ कुछ भी नहीं। पार्टियाँ बनी रहीं और पाठशाला में पार्टी कायम हुई। छुट्टी के बाद ढेलेबाजियाँ, छोटी-मोटी लड़ाइयाँ, मार-पीट होने लगी। गुरुजी की छड़ी, जहाँ तक कर सकती, शांति स्थापित करती। लड़ाई-झगड़े में मैं सक्रिय रूप से न तो भाग ही लेता था और न मुझ पर गुरुजी की छड़ी ही पड़ती थी, पर इसमें संदेह नहीं कि मैं अपनी पार्टी की विजय चाहता था। मंत्रणा दिया करता था। इसलिए मेरे लड़ाके, मुझे अपना 'हीरो' समझते थे।

इन लड़ाई-झगड़ों के बीच, एक दिन पाठशाले में दाखिल हुई 'चंदू', विरोधी पार्टी की एकमात्र कन्या। उस दिन छुट्टी के बाद मैंने अपनी पार्टी के लड़ाकों को समझा दिया कि लड़ाई-झगड़े से कोई फायदा नहीं। उसी दिन से लड़ाई-भिड़ाई बंद हो गयी। उसी पार्टी की ओर से एक-आध बार इसकी चेष्टा हुई भी, पर इस पार्टी की लापरवाही देखकर वे हतोत्साहित होकर चुप रह गये।

आज 'यौन विज्ञान' की कुछ पुस्तकों को पढ़कर अच्छी तरह समझ गया हूँ कि उन दिनों 'चंदू' की ओर मैं इतना आकर्षित क्यों हुआ था। 'लैला-मजनू' की कहानी तो पाठ्य-पुस्तकों में नहीं थी, पर इतिहास कथामाला में 'पृथ्वीराज-संयुक्ता' की कहानी मैंने अवश्य पढ़ी थी। मैं पृथ्वीराज की तरह 'चंदू' को प्राप्त करना चाहता था। एकांत में एक दिन मौका पाकर, मैंने 'चंदू' से कहा, "चंदू!

पृथ्वीराज और संयुक्ता की कहानी···"

"मुझसे मत बोलो ! उस पार्टी के हो। हटो।"—उसने डांट बतायी।

"नहीं, नहीं—मैं उस पार्टी का नहीं हूँ।"—मैंने गिड़गिड़ाकर कहा।

"तब ?"—वह जाते-जाते रुक गयी।

"मैं तुम्हारी पार्टी का हूँ।"—मैंने कह दिया।

"सच ?"—वह मेरे पास चली आयी।

मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा, "सच।"

फूल की झाड़ी में, मेरी पार्टी का हट्टा-कट्टा लड़ाकू रजना छिपा हुआ बैठा था। उसने प्रकट होकर दांत पीसते हुए मेरी ओर देखकर कहा, "धोखेबाज !"

मेरी संयुक्ता और पृथ्वीराज की कहानी अधूरी रह गयी। चंदू हाथ छुड़ाकर चली गयी। पृथ्वीराज के बदले, इतिहास मे सिर्फ रामकथा पढ़नेवाले भी, मुझे जयचंद कहने लगे।

हा० ई० स्कूल।

पाठशाले की पढ़ाई समाप्त करके शहर के हा०ई० स्कूल में पहुंचा। सौभाग्य-वश या दुर्भाग्यवश मेरे पिताजी के वकील एक बंगाली सज्जन थे। अपने मुवक्किल के पुत्र को आपने सहर्ष अपने परिवार मे सम्मिलित कर लिया। बंगालियों से घनिष्ठता तो हुई ही, साथ ही बंगला भाषा और बंगला संगीत की ओर भी मैं झुका। दो-तीन वर्षों के बाद तो स्वयं मुझे संदेह होने लगा कि मैं अ-बंगाली हूँ। कुछ दिन के बाद ही 'बगाली-अबंगाली' की लड़ाई छिड़ी। दोनों ओर से खुलकर गालियाँ दी जाने लगी।

अ-बगाली कहते, "बंगाली जाति डरपोक जाति ! नीच !"

बंगाली प्रत्युत्तर मे कहता, "छातूखोर, खोट्टा।"

क्रोधित अ-बगाली सीमा का उल्लंघन कर जाते। गालियाँ सुनकर मैं सिहर पड़ता। छीः, रवीन्द्र, जगदीश वसु, शरत् और सुभाष भी तो बगाली है !!

बगाली भी ईट का जवाब पत्थर से देता। मेरे अंदर का अ-बंगाली बंगाली को डांट देता।

बगाली मित्रो ने मेरे संबध मे राय दी, "जाइ होक, हिंदुस्तानी शेषे हिंदुस्तानी ई !"

अ-बंगाली दोस्तों ने मेरी पीठ कोचते हुए कहा, "कहो, देख लिया न इनकी दोस्ती ! कमीना कौन···"

"चुप भी रहो।"—झल्लाकर इनका भी मुंह बंद कर दिया।

"यह बात है ?"—कहकर अ-बंगालियों ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास कर ही दिया, "बंगालियों की गाली की हम परवाह नहीं करते, क्योंकि वे जो कुछ कहते या करते हैं, प्रांतीयता के नाम पर। किंतु, अ-बंगाली होकर भी जो बंगालियों का पक्ष लेते हैं, वे दगाबाज हैं, मक्कार है, मीरजाफर है। हमें वैसे व्यक्तियों से कोई संबंध नहीं रखना चाहिए।"

कॉलेज की कहानी जरा लंबी है, मगर है दिलचस्प।

स्कूल से इन विशेषणों से विभूषित होकर कॉलेज मे पदार्पण किया। प्रांतीयता के फेर मे न पड़ने की प्रतिज्ञा मैंने पहले ही कर ली थी।

'फर्स्ट इयर' तो देखते-सुनते बीत गया। सेकेंड इयर में पहुँचकर मैंने चोला बदलने की सोची। विशेष कोई परिवर्तन नहीं, सिर्फ धोती छोड़कर पाजामे मे आ गया और डेढ़ इंच गले की पट्टी वाला लंबा कुर्ता बनवा लिया। एक शुभ दिन को वेष बदलकर सिनेमा हाउस की यात्रा मैंने की। तांगे पर बैठे हुए मेरे सहयात्री सज्जन ने मेरा नाम, इयर, कंबीनेशन, होस्टल और रूम-नंबर पूछने के बाद जब पूछा कि 'आप किस पार्टी को बिलोंग करते हैं ?' तो मैं घबरा गया।

"सी० पी० (कम्युनिस्ट पार्टी) ?" उन्होंने मुस्कुराकर पूछा।

"जी हाँ।" मैंने पांच मिनट का मामला समझकर कह दिया।

"आई सी···" कहकर हँसते हुए उन्होने बेरहमी से एक धौल जमा दिया। मैं चौंक पड़ा।

"वी आर कामरेड्स। डरो मत।"— वे मेरे कंधे पर हाथ रखकर प्यार-भरे शब्दों में बोले।

उस दिन 'काश्मीर केबिन' का बिल तो उन्होने चुकाया, सिनेमा के फर्स्ट क्लास का टिकट भी खरीद दिया।

दूसरे दिन ज्यों ही क्लास पहुँचा, मेरे अंतरंग मित्र विनोद ने आकर मुस्कुराते हुए कहा, "वाह ! पक्के सोशलिस्ट मालूम पड़ते हो।"

मैंने कहा, "जो भी कह डालो।"

विनोद बोला, "जो भी कह डालो नहीं, होना होगा।"

"क्या होना होगा ?"—मैंने आश्चर्यित होकर पूछा।

"मेंबर ! और क्या ? मैं तो समझता था कि तुम किसी पार्टी पॉलिटिक्स से दिलचस्पी नहीं रखते। लेकिन देखता हूँ तुम कोरे नहीं हो।" वह मुस्कुराने लगा।

मैं आज भी नहीं समझ पाया हूँ कि विनोद ने मुझमें किन गुणों को देखकर

पार्टी से दिलचस्पी रखनेवाला पक्का व्यक्ति समझा। जो भी हो, जिस दिन मेरा नाम स्टुडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट ग्रुप) के रजिस्टर में दर्ज हुआ उसी दिन मेरे पास यह भी सूचना आ गयी कि मैं स्टुडेंट फेडरेशन (सोशलिस्ट ग्रुप) की वर्किंग कमेटी में ले लिया गया हूँ।

सिर्फ दो ही पार्टियों की बात रहती तो कोई बात न थी, एक दिन तीसरी पार्टी के चक्कर मे पड़ गया।

'क्यालक्याटा क्याफे' (साइन बोर्ड के अनुसार) में बैठकर चाय पी रहा था। मेरे हाथ में बंगला की एक मासिक पत्रिका थी। मेरी बगल मे मेरी ही उम्र के एक सज्जन चाय पी रहे थे। उन्होंने कई बार मुझे और मेरे हाथ की पत्रिका को घूरकर देखा और अंत में पूछ ही दिया, "आपनी बांगाली ?" छातूखोर की उपाधि से बचने के लिए मैने कह दिया, "आग्ये हाँ।"

"ओ ! एखाने पोड़ेन ? की पोड़ेन ?"

"सेकेंड इयर आर्ट्स।"

'भालो'—कहकर उन्होने काफे के एक कोने मे बैठकर बहस करते हुए युवको को पुकारकर कहा, "उहे ! हाबू, भोला, कालू, नीलू, फेला ! तोमरा से दिन बलले जे सेकेंड इयर आर्ट्स मे कोनो मेंबर नाय। एइजे इनी···"

'ताइना की ताइना की'—कहते हुए ये सब-के-सब बहस छोड़कर दौड़ आये और मुझे घेरकर बैठ गये। फिर चाय का ऑर्डर हुआ, बातें हुई, मिलने-मिलाने के वादे हुए, ऑर्गेनाइज करने पर जोर दिया गया। सबसे मजे की बात तो यह रही कि मै उन लोगो की पार्टी का नाम जाने बिना भी, 'हाँ-हाँ' करता गया। उसमें से एक युवक ने बढ़कर मैनेजर से कुछ कहा फिर मेरे पास आकर धीरे से बोला, "आज थेके कनसेशन। बुझलेन ! पार्टीर काफे तो ! एरा जानतो ना जे आपनी ब्लाकेर मेंबर।"

उस दिन से फारवर्ड ब्लाक के नाम पर 'क्यालक्याटा क्याफे' मे मैं कनसेशन रेट पर 'चाय-कटलेट' पाने लगा।

रविवार को आराम से लेटकर 'गोदान' पढ़ रहा था कि विनोद ने, धड़-धड़ाते हुए, आकर कहा, "अजी ओ वर्किंग कमेटी के मेंबर साहब ! कुछ पता भी है ? कामरेड रामप्रताप आ रहे है। आज कमेटी की अर्जेंट मीटिंग है, चार बजे। समझे ? और कल पार्क मे सभा होगी।···अरे ! यह क्या पढ़ रहे हो, गोदान ? सिली।"

"क्यो ?"—मैंने महान् आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"इट्स ए रिएक्शनरी बुक !···अच्छा, चार बजे आते हो तो ?"—कहकर वह जैसे आया था वैसे ही चला गया और मै डिक्शनरी उठाकर 'रिएक्शनरी' का अर्थ ढूंढ़ने लगा।

ठीक साढ़े तीन बजे मैं सज-धजकर निकला। फाटक पर एक प्रियदर्शिनी 'अप-टु-डेट' युवती माली से पूछताछ कर रही थी। मैंने अपनी चप्पल से लेकर पंजाबी तक पर सरसरी निगाह डाल ली। माली ने मुझे देखते ही मेरी ओर दिखाकर कहा, "वही हैं।" वह मुस्कुराती हुई बढ़ी, मेरे पास आकर एक 'कामरेडी अभिवादन' करके मेरे हाथ में एक पत्र देकर बोली, "अर्जेंट लेटर।" मैंने पत्र खोलकर पढ़ा, '···सोशलिस्ट लीडर रामप्रताप आ रहे हैं। अपनी पार्टी ने उसे चार स्टेशन बढ़कर काला झंडा दिखाने का प्रस्ताव पास किया है। आप मिस रोस्सा के साथ अभी चले जाइये। कल सुबह से ही वहाँ के मेंबरों को लेकर प्लेटफार्म पर तैयार रहियेगा। पंजाब मेल के आते ही 'रामप्रताप मुर्दाबाद' आदि पार्टी के नारों के साथ काला झंडा दिखा दीजियेगा। सेक्रेटरी।' पत्र समाप्त करके मैने प्रतिवाद के लिए, आँखें जो उठायीं तो सारा शरीर पुलकित होकर रह गया। मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि मिस रोस्सा जैसी सुंदरी, मेरी ओर कभी उस मोहक दृष्टि से देखेगी। नेपोलियन एक आला दिमाग का आदमी था, मानना पड़ा। मैंने फिर एक बार आँखें उठायी। वह मुस्कुराती हुई, मिश्री में भी मधुर स्वर में बोली, "चल रहे हैं न?"

"चलिए।" मैंने मस्ती में झूमते हुए कहा।

ताँगे पर बैठकर हम लोग स्टेशन की ओर चल पड़े। कुछ क्षण के लिए मानो मुझे होश हुआ, 'यह मैं क्या करने जा रहा हूँ! जिनके लिए मेरे हृदय में अगाध श्रद्धा है उन्हीं का अपमान···? वह भी बेमतलब का? नहीं-नहीं, यह मुझसे नहीं होने का।'

"आप सिगरेट नहीं पीते?"

"·········"

"आप सिगरेट नहीं पीते?"

"जी?···जी नहीं।"—मेरा ध्यान भंग हुआ।

"क्या सोच रहे थे कामरेड?"—उसने मेरी आँखों में आँखें डाल दी।

"सोच रहा था कि···जी, मैं कुछ नहीं सोच रहा था।"—मेरी आँखें बरबस झुक गयीं।

"जाइये, मैं नहीं विश्वास करती। आप सोच तो कुछ जरूर रहे थे। मुझसे मन की बात क्यों छिपाते है? खैर, आप जो भी सोच रहे हों···क्या आप सिगरेट ···एकदम नहीं पीते?"

"जी, एकदम माने···एकदम नहीं। पीने का आदी यानी 'हैबिच्युएटेड' नहीं हूँ।"

"तो पीजिए न!"—उसने अनुनय-भरे स्वर में कहा।

ताँगेवाले ने उतरकर सिगरेट का टीन ला दिया। टीन काटकर अदा से मेरी

और सिगरेट बढ़ाने और माचिस जलाने तक की क्रिया उन्होंने ही की। सिगरेट सुलगाकर मैंने पूछा, "और आप?"

"मैं नहीं पीती।"—किसी खास सिनेमा स्टार की तरह उसने बड़े अंदाज से गरदन हिलायी। मैं मुंह बाये देखता रहा।

"आपके आश्चर्यित होने का कारण मैं समझ रही हूँ। बात यह है कि कई चीजों के संबध में मेरी खास राय है।"—पूछिए तो कहूँ की मुद्रा बनाकर वह मुस्कुराती रही।

"जैसे?"—मैंने, सिगरेट का धुआं बाहर की ओर फेंकते हुए, पूछा।

"धुआं उधर क्यों फेंक रहे हैं?"—उसने उलाहना दिया।

"तो किधर फेंकूं?"

"नहीं। मेरी ओर फेंकिए।"—बच्चों की भाँति वह मचलकर बोली।

"आपकी ओर?"

"जी हाँ। मैंने अभी कहा न कि कुछ चीजों के संबंध में मैं खास राय रखती हूँ। सिगरेट को ही लीजिए न। मैं तो बिना सिगरेट के धुएँ की सुगंध के, पुरुषों के साथ की आशा भी नहीं कर सकती। सिगरेट पुरुषों के पीने की चीज है और उसकी सुगंध स्त्रियों के उपभोग की चीज है।" अपनी राय नंबर एक को वह बड़ी गभीरतापूर्वक सुना गयी। मैं सिगरेट की फिलॉसफी में डुबकियां लेने लगा। दुनिया को भूल गया। वह फिर बोली, "और दूसरी राय मैं नहीं बताती।"—'मैं रूठ गयी, मनाओ साजन' की मुद्रा उसने बनायी।

"बतलाइए न!" मेरी बोली में भी रंग उतर आया।

"पहले आप बतलाइए कि आप उस समय क्या सोच रहे थे?"

"मैं सोच रहा था···"

"हाँ-हाँ, कहिए।"

"क्या बताऊँ?"—मैंने उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया।

"आप बड़े वो है। ऐसी बातें करते है, मानो नये और कोरे मेंबर हो।"

"मैं सोच रहा था कि मै···आप···"

"बस, मैं समझ गयी।"—वह खिलखिला पड़ी। इतनी देर के बाद मुझे दुनिया, सड़क, राही, दूकान और तांगेवाले की याद आयी। अप्रतिभ होकर इधर-उधर देखने लगा।

"बगल क्या झांक रहे हैं? आप बताना तो खूब जानते है। बड़े आये है दुनिया की ओर इशारा करके मेरी परीक्षा लेने। सुनिए, मेरी दूसरी राय पुरुषों की दाढ़ी के संबध में है। मै 'डेली शेव' (दैनिक हजामत) के पक्ष में नहीं। एक दिन के बाद एक दिन की बनी हुई दाढ़ी···।"

'सिगरेट-धुआं-फिलॉसफी' से यह 'दाढ़ी-फिलॉसफी' जरा कम गहरी थी।

मैं गड़ाप से जमीन तक पहुँच गया। मेरे मुँह से निकल ही पड़ा, "माई गाड···" फिर तुरंत स्मरण हुआ कि हम कम्युनिस्ट हैं और भगवान की लीला देखिए कि आप-ही-आप शब्द पूरा हो गया, '···रेज' पर जाकर।

"माई गाडरेज ! मतलब ?"—वह पूछ बैठी।

"गाडरेज ! गाडरेज नंबर एक, चाबी ट्रेड मार्क, स्वदेशी याने 'गाडरेज शेविंग-स्टिक।"—मैंने अपनी हाजिर-जवाबी के लिए मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया.

"ओ ! दाढ़ी बनाने की बात सुनकर आपको शेविंग-स्टिक की बात याद आ गयी। क्या आप गाडरेज यूज करते हैं ?"

"जी।"—मैंने थककर संक्षिप्त उत्तर दिया।

"लेकिन···"

ताँगा स्टेशन पर पहुँच चुका था। ताँगेवाले ने टोका, "हुजूर, गाड़ी प्लेट-फारम पर लग गयी।"

ट्रेन में बैठकर, कुली को पैसे देने के पहले उन्होंने सिगरेट का टीन मेरी ओर बढ़ाया। गाड़ी ने सीटी दी और मैंने 'भक्क' से खिड़की के बाहर धुआँ फेंका तथा अपनी गलती के लिए आँखों से ही क्षमा माँगकर, लगातार चार-पाँच बार उनके चेहरे पर धुएँ का गुब्बारा फेंक दिया। उनकी आँखें, धुएँ के मीठे अत्याचार सहती हुई, झिप गयीं, पर उनकी लंबी नुकीली नाक, पुलकित होकर सिगरेट-सौरभ का उपभोग करती रही।

दूसरे दिन प्रातःकाल।

गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर लगी। और मैंने, अपनी पार्टी के दो दर्जन मेंबरों (जिनमें अधिकांश किशोर और किशोरियाँ थीं) के साथ नारा लगा ही दिया—"रामप्रताप मुर्दाबाद।" काले झंडों से प्लेटफार्म भर गया।

"रामप्रताप, कांग्रेस का पुछल्ला !"—यह नारा मिस रोस्सा ने लगाया।

"रामप्रताप, कांग्रेस का दुम !" मैंने इसका हिंदुस्तानी अनुवाद कर दिया।

यह तो नारा लगाने और झंडा दिखाने की बात थी, मिस रोस्सा के इशारे पर तो मैं किसी की गर्दन तक मरोड़ सकता था। एक-से-एक वजनी नारे लग रहे थे कि एक कंपार्टमेंट का दरवाजा खुला। भव्य ललाट और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व लिए एक व्यक्ति दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया तथा मंद-मंद मुस्काने लगा। उस मुस्कान को पवित्र मुस्कान कह सकते हैं।

"यही है, यही है।" रोस्सा बोली।

"हूँ···।"

"रामप्रताप मुर्दाबाद।" रोस्मा ने नारा लगाया।

"···।" मैंने क्या दुहराया, यह मेरी समझ में नहीं आया।

गाड़ी चल पड़ी। वह व्यक्ति उसी तरह मुस्कुराता खड़ा रहा।

"लेकिन चेहरे पर जरा भी शिकन···।" मैं कह ही रहा था कि रोस्मा बात काटकर बोली, "अरे गांधी का चेला है न! सब पोपबाजी गांधी से इन लोगों ने सीखी है। जूते खाकर मुस्कुराना। हिम्! रँगे सियार!! बड़े चले हैं समाजवादी बनने! क्रांति करेंगे! ढोंगी!"

होस्टल पहुँचने के बाद मैं दो बातों की आशंका कर रहा था। प्रथम, विनोद से मैत्री-विच्छेद की, दूसरे इस पार्टी की ओर से अपने नाम 'रटी-रटाई', 'छपी-छपाई' गालियों की। कुछ हो जाता तो कम-से-कम पिंड छूटने की उम्मीद थी। पर हुआ कुछ भी नहीं। विनोद ने आकर अनुपस्थिति के लिए उलाहना भर दिया और घंटों सभा की सफलता की बातें करता रहा।

एक-दो महीने तक यही रवैया जारी रहा। कभी-कभी तो पढ़ाई-लिखाई छोड़कर घर भाग जाने की इच्छा होती। एक ही साथ तीन-तीन पार्टियों का मेंबर हो कर आखिर कब तक कोई अपनी इज्जत को सलामत रख सकता है?

'कलकटा काफे' के कनसेशन और क्रेडिट के आगे सभी पार्टियों को कुर्बान करने जाता, तो मिस रोस्मा की रसभरी आँखें राह रोककर खड़ी हो जातीं। एक दिन 'ब्लाक' के एक मेंबर ने मुझे एकांत में ले जाकर एक बंगला 'हैंड बिल' दिया और उसका हिंदी अनुवाद करने का भार सौंप दिया। मैंने अनुवाद कर दिया। रात-भर मे ही उसकी छपाई-सफाई भी हो गयी। दूसरे दिन सुबह-सुबह मैं चौक से वापस आ रहा था। तांगा रोककर 'हैंड बिल' का दो गट्ठर मुझे चुप-चाप सुपुर्द कर दिया गया। बँटवाना भी पड़ेगा। बांटनेवाले न मिलें, तो खुदवा बांटना भी पड़ेगा, यह था पार्टी का आदेश। एक जमाना था, जबकि माता-पिता के आदेश को विशेष महत्त्व दिया जाता था, माता-पिता के आदेश पर लोग जंगल की खाक तक छानते थे। पर इस वैज्ञानिक युग में पार्टी के आदेश को विशेष महत्त्व दिया गया है। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना तो क्रांतिकारियों का धर्म ही है। सो इन परचों में गर्मागर्म बातें हों या 'एटम-बम', बांटना या बँटवाना पड़ेगा ही। तांगा दूसरे चौराहे के पास भी नहीं पहुँचा था कि किसी की मीठी पुकार सुनायी पड़ी, "कामरेड!"

मिस रोस्सा! वह अपने तांगे पर से उतरकर मेरे तांगे पर आ गयी, मानो मेरे ही लिए जोगन-सी वन-वन भटक रही थी। हम लोग सिलसिले से बात करने का पोज बना ही रहे थे कि दस कदम पर फिर तांगा रोका गया। इस बार की रुकावट आखिरी रुकावट थी। सी० आई० डी० इंस्पेक्टर महोदय थे। हम दोनों को साथ पाकर आपने बेहद खुशी जाहिर की। उन्होंने आवश्यकता से अधिक

नम्र होकर फर्माया, "माफ कीजिये, आप लोगों की तलाशी लूंगा।"

पास ही कोतवाली का एक छोटा दफ्तर था। हम लोग वहीं ले जाये गये। बाजाप्ता तलाशी होने लगी। मिस रोस्मा के हैंड बैग से कुछ सुगंधित चिट्ठियाँ मय लिफाफे के निकलीं। मैंने आँखें बचाकर एक पत्र को देखा। शीर्षक था—मेरी रानी। कलेजा तो धड़क रहा था ही, आँखों की रोशनी भी गायब हो गयी।

जब गट्ठरों की बारी आयी तो मैं धम्म से एक टूटी कुर्सी पर बैठ गया। गट्ठर खुलने लगे। पुलिसवालों की बाछें खिल गयीं, "हियर यू आर।"

"कहिये साहब, इन गट्ठरों में शृंगार की सामग्रियाँ और साड़ियाँ थीं न! पर्चे कहाँ से आ गये?" इंस्पेक्टर साहब ने मुस्कुराते हुए चुटकी ली।

मैं चुप रहा। रोस्मा पीली पड़ गयी। उसके मुँह से एक हल्की-सी चीख निकल पड़ी, "मेन्सेविक!!"

हम लोग स्थानीय जेल में पहुँचा दिये गये। 'लेडीज वार्ड' की ओर जाती हुई क्रांति की मूर्ति मिस रोस्मा फूट-फूटकर रो पड़ी। जेल में पहुँचकर मैंने राहत की साँस ली।

दूसरे दिन एक पत्र में निकला, 'स्टुडेंट फेडरेशन (कम्युनिस्ट ग्रुप) के सदस्य कामरेड पी० राय तथा मिस रोस्मा आपत्तिजनक पर्चों के साथ गिरफ्तार!!'

दूसरे पत्र में खबर छपी, 'स्टुडेंट फेडरेशन (सोशलिस्ट ग्रुप) की कार्यकारिणी समिति के सदस्य कामरेड प्रफुल्ल आपत्तिजनक पर्चों के साथ गिरफ्तार।'

तीसरे पत्र ने लिखा, 'अग्रगामी दल के प्रसिद्ध बंगाली कार्यकर्ता मिस्टर राय सरकार के मेहमान बना लिये गये।'

यदि सच पूछा जाय तो प्रथम श्रेणी के राजनैतिक बंदियों को घर से भी बढ़कर जेल में आराम रहता है। खाना-सोना, पढ़ना-लिखना। किसी बात की फिक्र नहीं। सो जिंदगी के दिन चैन से कटने लगे। रोस्मा तो दो दिन के बाद ही छोड़ दी गयी। पर अदालत ने मुझे तीन वर्ष की लंबी सजा दे दी। सोचा था पार्टी के भयंकर भूत से पीछा छूटा। लेकिन 1947 का देशव्यापी आंदोलन छिड़ा। जेल खचाखच भर गयी। देखते-ही-देखते पार्टी की बीमारी भी फैल गयी। मुफ्त का खाना, आराम से सोना और गला फाड़कर बहस करना—बस। जेल में कम्युनिस्टों की संख्या नहीं के बराबर थी। वे अपनी दाल गलाने की चेष्टा करने की भी हिम्मत नहीं करते थे। गांधी बाबा के भक्तगण तो चर्खा चलाने के सिवा अध्ययन, पठन-पाठन को भी पार्टी की ही चीज समझते थे। अतः वे इन झंझटों से कोसों दूर रहते थे। बहस करना तो दूर, जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहारों के खिलाफ आवाज उठाने को भी वे हिंसा करार देते थे। सोशलिस्टों का बहुमत था

और मैंने अपने को सोशलिस्ट कहने में ही अपना कल्याण समझा। कुछ दिनों के बाद मालूम हुआ कि कम्युनिस्ट पार्टी वाले अपने मेंबरों की रिहाई के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। उनके मुकर्मों को देख-सुनकर पूरा भरोसा हुआ कि वे अपने मेंबरों को अवश्य छुड़ा लेंगे। अतः एक दिन छिपकर कम्युनिस्टों को याद दिला आया कि वे मुझे भूल न जायें। यों तो जेल में किसी प्रकार की तकलीफ नहीं थी, फिर भी अपनी मुक्ति के लिए दिन-रात छटपटाया करता था। जेल से मुक्ति का अर्थ था पार्टी के दलदल से मुक्ति। इस दलदल से निकलने के लिए मैं जितनी ही चेष्टा करता था, उतना ही उसमें फँसता जाता था। दिन-भर भौतिकवाद पढ़कर ईश्वर की सत्ता को मिटाया करता था और रात में मसहरी के अंदर भगवान से अपनी मुक्ति के लिए घंटों रो-रोकर प्रार्थना किया करता था। भगवान ने मुझ जैसे अनन्य भक्त की प्रार्थना सुन ली। मैं बीमार पड़ा। बीमारी ने रंग दिखलाया। पत्रों ने बारी-बारी से मेरी मुक्ति की माँग की। सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ और मुझे समुचित चिकित्सा के लिए जनरल हॉस्पिटल भेज दिया गया। चिकित्सा होने लगी। वजन बढ़ने लगा, बुखार घटने लगा और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि पार्टी के भूतों से पिंड छूटा। ए० आर० पी० ट्रेनिंग के लिए आयी हुई सुशिक्षिता प्रियदर्शिनी बंगालिन नर्स मेरी तीमारदारी करती थी। मैंने देखा कि वे सबकी सब मुझसे खिंची रहती हैं। एक दिन बड़ी चतुराई से इस मनमुटाव के कारणों को जानने की चेष्टा की तो—पंचतंत्र की उस चक्रवाली कहानी की तरह—सिर पर पार्टी का चक्र सवार होकर नाचने लगा। मुझे गाँधीवादी समझकर वे मुझसे चिढ़ती थीं। क्योंकि गाँधीवादियों ने सुभाष बोस को धोखा दिया था। मैंने एक अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित होकर गाँधी-वादियों की जरा निंदा कर दी और उन लोगों ने मुझसे सैकड़ों प्रश्न पूछकर पता लगा ही लिया कि मैं फारवर्ड ब्लाकिस्ट हूँ। फिर क्या था, 'क्षण-भर चैन न पाऊँ सजनवाँ तोरे बिना' के सभी लक्षण प्रकट होने लगे। सरकार ने मुझे शीघ्र ही छोड़कर बुद्धिमानी का परिचय दिया वरना मैं एक नयी बीमारी का शिकार हो जाता।

मुक्ति पाकर मैंने प्रतिज्ञा की कि किसी पार्टी की चर्चा छिड़ते ही वहाँ से भाग खड़ा होऊँगा। चेष्टा तो मैंने खूब की पर एक पार्टी के हिमायती से भेंट हो ही गयी। पुरानी जान-पहचान थी, टालना आसान नहीं था। बातें करते-करते आपने पार्टी की पिटारी खोल ही दी। 'बंबई योजना' के विरुद्ध—राय योजना का घोषणा-पत्र मेरे हाथ में देते हुए आपने फर्माया, "देखिए! यह रही कामरेड राय की योजना।" बहस करने से ही फँस जाने की पूरी आशंका थी और अपनी

राय दिये बिना रायिस्ट महोदय से पल्ला छूटने की आशा नहीं। मेरे मुंह से, 'अच्छी है'—सुनकर ही आपने दम लिया।

घर पहुँचते-पहुँचते ही मैंने पत्रों में पढ़ा, 'कामरेड प्रफुल्ल ने रिहा होकर बंबई योजना पर वक्तव्य देते हुए बताया कि यह शोषकों की योजना है। राय योजना से इसकी कोई तुलना हो नहीं सकती। राय योजना सही अर्थों में शोषितों की योजना है।'

पढ़ाई-लिखाई की तो इतिश्री हो गयी थी, घरवालों ने शादी का राग अलापना शुरू कर दिया। जेल जाने के पहले तो कन्या पक्षवालों का तांता लगा रहता था, मैं एक कीमती सौदा समझा जाता था। किंतु अब तो लोग मुझ जैसे बेमतलब जेल चले जानेवाले को लड़की देना और लड़की को कुएँ में डाल देना, बराबर समझते थे। फिर भी एक सौभाग्यवती कन्या के अक्खड़ पिता को मुझ पर भरोसा था। माँ और पिताजी की आरजू-मिन्नतों को मानकर मैंने अपनी राय दे दी। बुलाहट हुई। सज-धजकर पहुँचा एक दिन। भावी जमाना के अनुकूल ही आवभगत हुई। कन्या के पिता आधुनिक विचारों के कायल थे और वर्तमान संसार में कुछ अपनी भी राय रखते थे। कन्या देखने-दिखाने के बाद उन्होंने संसार की राजनीति पर भाषण देना शुरू कर दिया। वे सुना रहे थे, मैं सुन रहा था। कुछ देर के बाद मैंने अनुभव किया कि पर्दे के उस पार खड़ी जनता मेरा प्रवचन सुनने को अधीर हो रही है। मैंने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि मुझे 'हाँ में हाँ' मिलानेवाला समझकर लोग छाँट दें। अपनी भावी पत्नी को देखकर मैंने कल्पना के संसार में, नये डिजायन के कितने बंगले बना डाले थे। मुझे मैदाने-जंग में उतरना ही पड़ा। बातों का सिलसिला 'क्विट इंडिया' तक पहुँच चुका था। मेरे भावी श्वसुर की राय थी कि कांग्रेस ने क्विट इंडिया प्रस्ताव पास करके बच्चों की-सी गलती की। मुझे इसका विरोध करना ही पड़ा। वातावरण गर्म हो गया। पर्दे के उस पार की गर्मी का भी मैंने अनुभव किया। मेरी आवाज चौगुनी हो गयी और मैंने यहाँ तक कह डाला कि, "हमारी मंजिल अब दूर नहीं। 1942 के बाद देश ने····"

"सुनिये !" मेरे एकमात्र भावी साले साहब ने अपनी कोठरी से निकलकर मुझे रोका, मैंने उनकी जवानी पर विश्वास करते हुए कहा, "कहिये मोहन बाबू ! मैं गलत कह रहा हूँ ?"

वे बैठ गये और बड़ी गंभीरतापूर्वक बोलने लगे, "देखिये प्रफुल्ल बाबू ! अब तक मैं चुपचाप आपकी बातें सुनता रहा। जहाँ तक मेरी शक्ति थी, मैंने अपनी आत्मा को धोखा दिया, यानी अपने को रोके रहा। लेकिन बातें यहाँ तक बढ़ गयीं कि चुपचाप रहना मैंने सरासर नमकहरामी समझी।"···

"जरूर ! अवश्य !"—मैंने उत्साहित होकर कहा।

"आपने अंतिम कई बाते ऐसी कही है कि जो सोशलिस्टों की बातें हैं और एकदम भारत रक्षा कानून में आ जाती है। मेरा जहाँ तक अनुमान है कि आप किसी की ड्यूटी की महत्ता को अवश्य महसूस करते होंगे, इस अवस्था में भी मैं अपनी ड्यूटी नही बजा रहा हूँ, यह मेरी नमकहरामी के सिवाय और कुछ नही तो ..."—वे अपने पिता के सिगरेट केस में एक सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे।

वृद्ध ने मुस्कुराते हुए मेरी ओर देखकर कहा, "वास्तव में यह पहला मौका है कि मैंने लल्लू को गम खाते देखा।"

"किस मुंह से बोलते है"—पर्दे के उस पार से आवाज आयी, "लड़के की नयी नौकरी है, तरक्की के लिए कोशिश करना तो दूर, बैठे-बिठाये बमवालों से रिश्ता जोड़कर नौकरी भी ले डूबने की तैयारी कर रहे हैं। मेरी लड़की क्वाँरी रहेगी, नहीं चाहिए मुझे ऐसा रिश्ता।"

सभवत यह मेरी सास साहिबा की क्रुद्ध वाणी थी। मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि माजरा क्या है। मुझे तुरत ही समझा दिया गया कि मोहन बाबू को खुफिया विभाग मे नौकरी मिल गयी है—1943 मे। यह उनके दास-जीवन मे पहला मौका था कि वे अपनी आँख-कान से देख-सुनकर भी भारत रक्षा विधान के मुजरिम को छोड रहे थे। मेरे साथ उन्होने इतनी-सी रियायत अवश्य की कि मुझे दो घंटे का समय दे दिया।

मैंने सिर्फ पन्द्रह मिनट मे ही तैयार होकर उनका घर तो 'क्विट' कर ही दिया, साथ ही शादी की रही-सही आशा को भी 'क्विट' कर दिया। वह सौभाग्य-वती खिड़की पर खड़ी दयनीय मुद्रा बनाकर देखती रही। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों मे आँसू स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे, पर एक लबी साँस छोडकर वापस आने के सिवाय और चारा ही क्या था!

इस छोटे से 'व्यापारिक कस्बे' को पार्टी-पॉलि... से परे समझकर मैंने यहाँ एक छोटी-सी नौकरी कर ली। किंतु अब आटे-दा... का भाव मालूम हो रहा है। यहाँ तो सैकड़ों पार्टियाँ है। अपने को किसी पार्टी से अलग रखकर एक कदम भी चलना मुश्किल है। महाशय 'क' से जरा हँसकर बात कर ली कि मिस्टर 'ख' की आँखों मे चढ जाता है। पंडित 'ग' के यहाँ ट्यूशन करने जाता हूँ तो मुंशी 'घ' मुंह फुला लेते है। श्रीमान् 'त' एक मिल मालिक हैं, एक दिन मैंने उनका निमत्रण स्वीकार कर उनके यहाँ जरा खीर क्या चख ली, कार्ल मार्क्स का सारा 'कैपिटल' कलंकित हो गया। बड़ी-बड़ी दूकानों की बात तो जाने दीजिए, फेरी लगाने वालो की भी पार्टी है। एक दिन बाजार से सिगरेट अचानक गायब हो

गयी। सिगरेट पीनेवाले खोहे की दूकानों में भी सिगरेट तलाश करते पाये जाते थे। मैंने अपने चाय और सिगरेटदाता श्री शिवजी से पूछा कि भाई, तुम कहाँ से सिगरेट ले आते हो? तो उसने दाँत निपोड़कर कहा, "जी, अपनी पार्टी के लोगों के लिए क्या करें···हें···हें ब्लैक मार्केट से···।" समझने में देर नहीं लगी कि पार्टी की बदौलत ही मैं सिगरेट पी रहा हूँ और मैं उसकी पार्टी का ही हूँ।

जब से कांग्रेस ने चुनाव लड़ने की घोषणा की है, यार लोग रंग बदल रहे हैं। जिन्होंने सरकार बहादुर के सामने प्रतिज्ञा की थी कि कभी किसी पार्टी में भाग नहीं लूँगा, उन्होंने भी 1942 की धुली, बक्स में बंद, गांधी टोपी निकालकर पहनना शुरू कर दिया। 'कांग्रेस' शब्द को उच्चारण करने के पहले जो इधर-उधर देख लेते थे, वे ही आज राह रोककर चुनाव की चर्चा करने लग गये हैं। मैं भी अब अपने को किसी पार्टी का घोषित कर सकता हूँ। कम्युनिस्टों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी, क्योंकि मिस रोस्मा ने एक अमेरिकन सैनिक से शादी करके अपने अंतर्राष्ट्रीय सिद्धांत को कार्य में परिणत कर दिया है। सोशलिस्टों को लोग दामन पसारकर दुआएँ दे रहे हैं। ब्लाक और कांग्रेस में मतभेद अब रहा ही नहीं। रास्ता साफ है। लेकिन पार्टी की चर्चा छिड़ते ही हृदय की गति बंद होने को हो जाती है। दिमाग चक्कर खाने लगता है। कुछ स्थिर भी करूँ तो कैसे? दिन-भर में हजार बार प्रश्न पूछे जाते हैं:

"मि० 'ब' और 'ठ' दोनों इस बार कांग्रेस के टिकट पर खड़े होने की सोच रहे हैं। आपकी राय में दोनों में से कौन 'फिट' है?"

"मिस्टर 'म' पर तो अनुशासन की कारवाई हुई थी?"

"सुनते हैं, राजा साहब कांग्रेस के विरोध में खड़े हो रहे हैं!"

"अरे साहब! श्रीयुत 'श' तो हिंदू सभा के टिकट पर खड़े होंगे। वे तो आपके घनिष्ठ मित्र हैं। मदद तो करनी ही पड़ेगी।" आदि।

मैं एकदम चुप्पी साध लेता हूँ। मेरी चुप्पी को इतना महत्त्व दिया जाने लगा है कि प्रत्येक पार्टी के मेंबर मुझे अपनी विरोधी पार्टी का भेद जाननेवाला समझने लगे हैं। नाकों में दम है। मैं सभी पार्टियों का हूँ, मैं किसी भी पार्टी का नहीं हूँ! किसी एक पार्टी को वरण किए बिना गुजर नहीं, पर जब प्रश्न उठता है कि 'किस पार्टी को?' तो सिर चक्कर खाकर रह जाता है।

दिन में चैन नहीं, रात में नींद नहीं आती। आती भी है तो बुरे सपने देखने लगता हूँ। देखता हूँ कि मैं सड़क पर भागा जा रहा हूँ। शहर के आवारे लड़के मेरे पीछे टीन बजा-बजाकर दौड़ रहे हैं। सब चिल्ला रहे हैं, "आप किस पार्टी के? आप किस पार्टी के?" मैं चिढ़कर उन लोगों को मारने दौड़ता हूँ, लड़के ढेले फेंकते हैं, तालियाँ पीटकर हँसते हैं। सड़क पर दौड़ रहा हूँ। दर्जी चिल्लाकर कहता है, "सड़क 'क' पार्टी की है!" सड़क छोड़कर पगडंडी पकड़ लेता हूँ। नाई

आवाज देता है, "पगडंडी 'ख' पार्टी की !" पगडंडी छोड़कर नाले में गिर पड़ता हूँ···चौकी पर से नीचे गिरकर नींद टूट जाती है। उठने की शक्ति शेष नहीं रह जाती है। काला ज्वर से पीड़ित सेवक बुद्धन किसी तरह उठाकर चौकी पर बैठा देता है। सांत्वना देता है कि यह कुछ नहीं है। वह एक दिन गाँव जाकर अपने चचा को बुला लायेगा। वह झाड़-फूंक कर सब ठीक कर देगा। मुझे भूत लगा है। आदि-आदि।

मैं भी मानता हूँ कि मुझे भूत सता रहा है। भूत-प्रेत को नही माननेवालो से मेरी प्रार्थना है कि वे कम-से-कम इस भूत पर अवश्य विश्वास करें।

(अक्तूबर, 1945)

धर्मक्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे

भादो की रात। तुरत बारिस बंद हुई है। मेढक टरटरा रहे हैं। सांप ने बेंग को पकड़ा है, बेंग की दर्दभरी पुकार पर दिल में दया आने के बदले, भय मालूम होता है। आसपास की झाड़ियों में फैला हुआ अंधकार और भी खौफनाक हो जाता है। उसी झाड़ी में एक गज की दूरी पर खड़ा करामत खाँ सिपाही, कमांडर के इशारे की प्रतीक्षा कर रहा है। बाँसों और पाट के खेतों में छर्रों की 'फुरहुरी' जैसे जुगनू चमक रहे हैं। बीच-बीच में बिजली चमकती है। केले के पेड़ों से घिरे हुए झोपड़े सामने से नजर आते हैं। जब-जब झोपड़े दिखायी पड़ते हैं, करामत को अपने गाँव के अपने झोंपड़ों की याद आ जाती है।···कहीं उसके झोंपड़े के आसपास भी, रात में, इसी तरह पुलिस और मिलेटरीवाले बंदूक ताने तो खड़े नहीं होंगे? कौन जाने?···और उसकी प्यारी बीबी अपनी बच्ची को छाती में सटाकर सोयी होगी। माँ शायद जगी हो।···

लेकिन करामत से पचास गज की दूरी पर, पाटों के झुरमुट में खड़ा 'गोरा' सिपाही 'टाम' यह सब कुछ भी नहीं सोचता है। झाड़ियों के छोटे-छोटे बरसाती जोंकों से वह परेशान है। इन जोंकों के खौफ से वह पेशाब भी नहीं कर पाता है। "···फ्···ब्लाडी!" बार-बार पतलून का बटन वह खोलता और बंद करता है। उसकी क्रुद्ध निगाह आसपास की झाड़ियों की फुनगी पर लपलपाते हुए उन 'ब्लडी' हिंदुस्तानी जोंकों पर और कान चौकस—बिगुल सुनने के लिए। बिजली चमकती है, गाँव के झोपड़े नजर आते हैं। टाम को याद आती है 'जैक' की बात। कल 'जैक' रेड पार्टी में गया था। 'जशन' मनाया था जैक ने भी जी-भर। टाम के अंदर का पशु भी धीरे-धीरे जागता है।···वह और पेशाब की हाजत को रोक नहीं पाता है।

टार्चसिगनल!—रेड करो!! नींद में विभोर गाँव में घुसता है—आगे-आगे करामत का जत्था और पीछे-पीछे 'टाम' की टुकड़ी।

···कुत्ते भूँकने लगे। सैकड़ों 'टार्च' की रोशनी जीभ लपलपाने लगी। खूँट

से बंधे हुए जानवर रस्सी तुड़ाकर भागे। "भागो मट, गोली मार डेगा"—दहल उठा गाँव। कुहराम शुरू हुआ। हजारों इंसान एक साथ रो पड़े। कुत्ते, इंसान, उनकी औरतें, उनके बच्चे!···

"बायनट—फिक्स!"

"चार्ज!"

"आह-ह!"···

कुहराम और बढ़ता है। आवाजें और भी दर्दीली होती जाती हैं। कुत्ते और भी तेजी से भूंकने लगते हैं।

"कौन भागटा है?"

"फायर!"

"ट्ठाँय!···।"

बाँसों के झुरमुट में, पास के पेड़ों पर सोये हुए परिंदे फड़फड़ाकर उड़ भागे। रात अँधेरी होने पर भी आसमान मुक्त है, वे पाँखें फैलाकर उड़ सकते हैं। जहाँ जी चाहे जा सकते हैं। मगर, धरती पर, गाँवों में, झोंपड़ों के इंसान? वे तो घिरे हैं!

"बाबा हो, अरे बाप मरि गेल्हाँ रे बाप!"

"चडन कुमार कहाँ है, बटाव?"

"हुजूर, हमरा कुच्छू नं मालूम।"

"गाँडी का बच्चा, काला कुट्टा।"

"घरों में घुसकर खोजा जाय।"

भूखे कुत्तों की तरह टामियों की टुकड़ी टूट पड़ती है। पूर्वी मोर्चे पर मरने से पहले इन्हें खुलकर 'मौज' करने का हुक्म है। हिंदुस्तानी सिपाही के जत्थे में करामत के सिवा सभी हँसते हुए बढ़े। इस बार औरतों और बच्चों की चीख-पुकार से आसमान भी रो पड़ता है। मूसलाधार बरसा में टार्च की रोशनी अजीब-सी मालूम होती है।···घर-घर में गोरे और काले सिपाही!

"हे सरकार···" एक घर के कोनों में से किसी के लंबे बालों को पकड़कर बाहर घसीट लाता है। एक गोरा। लंबा बाल! औरत। गोरा उन्मत्त हो जाता है।

"आह···"

"सिस्—सटअप!"

"आँयग गि-गि-गि···" मुंह में कुछ ठूंस दिया गया शायद।

गोरा अँधेरे में उसकी छाती टटोलता है फिर तुरंत उठ खड़ा होता है। बूट की एक ठोकर देकर बड़बड़ाता है, "फ्···ओल्ड दिस।"

फर्श पर पड़ी बुढ़िया बूट की ठोकर खाकर चिल्लाने की चेष्टा करती है,

"आय गि-गि···।"

"माय री···"

टाम के हाथ एक चौदह वर्ष की बालिका पड़ती है। बरसा की रफ्तार और तेज हो जाती है। बिजलियाँ और जल्दी-जल्दी चमकने लगती हैं और फूल जैसी बालिका के सीने पर बैठा इंसान और भी जानवर बनता जाता है। बिजली चमकती है···उसके सुंदर मुखड़े को गोरा काट खाता है। बिजली चमकती है, मुखड़े से लहू की बूँदें टपकती है। बिजली चमकती है—बच्ची की निष्कलंक आँखें पथराती जाती हैं।···जमीन पर उसका शरीर निस्पंद पड़ा रहता है। 'टाम' खड़ा होकर पतलून का बटन लगाता है। फिर बिजली चमकती है—बच्ची की पलकें झिपती नहीं, खुली की खुली ही रह जाती है···

घर-घर से दबोचे हुए मुंह से घिघियाने की आवाज आती है। बलिदान के समय पशु जिस तरह घिघियाते है। बच्चों के गले से खून निकल रहा होगा, उनकी रोने की आवाज से ऐसा ही मालूम होता है।···

करामत खाँ आर्म्ड फोर्स का सिपाही नं० 285 एक अँधेरी गली में चुपचाप खड़ा, नमकहरामी और नमकहलाली की सीमा पर झूलता है। वह गिनता है—उसके पास सिर्फ पंद्रह गोलियाँ है। सिर्फ पंद्रह?···उसकी बीवी, उसकी बच्ची, माँ···सामने कोई छाया उसे देखकर छिप जाती है, 'जाने भी दो, कोई बेचारा जान बचाकर भाग रहा है।'—करामत ने पहली नमकहरामी की।

गाँव मे कुहराम जारी है। मर्दों पर लाठियाँ, संगीन और कोड़े बरसते है। गाँव-भर की बूढ़ियाँ बूट की ठोकरें खा रही है, जवान औरतें घर-घर में, झोपड़े-झोपड़े में जमीन पर बेहोश, दम तोड़ती कराह रही है। और श्री पारस चौधरी, पास के गाँव के ही प्रमुख जमींदार, जो आदतन खद्दरधारी थे और जिन्होंने सिर्फ ता० 10 अगस्त से मिल का कपड़ा पहनना शुरू किया था। इन्हें पारस चौधरीजी, एस० पी० साहब से कहते हैं, बार-बार कहते है, "घर घुमकर खोजा जाय, हुजूर, इस घर में देखा जाय, हुजूर, उसको पीटा जाय, वह भारी कांग्रेसी बदमाश है," उसी पारस चौधरी के कहने पर एक घर मे आग लगा दी जाती है। छप्पर भीगा हुआ है, इसलिए आग धीरे-धीरे सुलगती है। किंतु उस मुर्दार रोशनी से भी अँधेरा दूर हो रहा है। रोशनी मे करामत कुछ देखता है और उसका झूलना मानो शेष हो जाता है।···खुले आसमान के नीचे, कीचड़ मे एक औरत हाथ-पाँव मार रही है···गोरा नहीं, काला सिपाही···? रामपरीक्षा सिंह?···और बगल मे वह दो बरस की बच्ची गला फाड़कर रो रही है···रामपरीक्षा सिंह···उसकी बीवी···उसकी बच्ची···माँ···नमकहरामी···। वह निशाना लेता है, 'ठाँय!'

करामत ने दूसरी नमकहरामी की। वह और चौदह बार नमकहरामी तो कर ही सकता है।···नमकहलालों मे इस अकेले नमकहराम की अब मुठभेड़

होती है···ठाँय, ठाँय, ठाँय···!!

अंत में वह नमकहराम ठीक-ठीक सोलह बार नमकहरामी करने का मजा पाता है। आ···अल्लाह···!

भादों की अंधेरी रात। जिस समय गाँव मे लूट मची हुई थी, दो माइल दूर एक जंगल में 'आजाद दस्ते' की बैठक मे हिंसा व अहिंसा के सवाल पर मतभेद हो चुका था। इलाके के पुराने और प्रतिष्ठित कांग्रेसी नेता श्री चंदनकुमारजी, जिन्हे खोजने के लिए एक सारे गाँव का सत्यानाश कर दिया जाता है, अपने साथियो के साथ पूरे अहिंसक हो गये है और बाकी लोग अ० भा० कां० क० के 8 अगस्त के फैसले और ऐलान के मुताबिक अपने को अपना नेता मानकर, अपनी आत्मा की आज्ञा को मानकर रायफलों, बमो, रिवॉल्वरो और रुपयो का हिसाब-किताब कर रहे थे। वे हिंसक हो चुके थे···।

करामत की पहली नमकहरामी के कारण, छिपकर भाग आनेवाला 'आजाद दस्ता' का दूत सतना दौड़ता हुआ खबर देता है, "गाँव पर फौजी हमला हो गया है।"

"मगर हम तो दूर है, सुरक्षित है।" चंदनकुमारजी जवाब देते है। क्योंकि वे उस समय अपने को सारे दल का नेता मानते थे।

"वे लूट रहे है!"

"वे तो करेंगे ही।"—चंदनकुमारजी कहते है।

"वे औरतों को बेइज्जत कर रहे है!"

"क्या किया जा सकता है?"—लाचारी जाहिर करते है चंदनकुमारजी।

"गाँव-भर मे एक औरत नही बची।"

"तैयार!" हिंसको मे से एक उठकर कहता है। सभी हिंसक उठ खड़े होते है। एक बढ़ता है, उसके पीछे सभी बढते है। वे चले जाते है और चंदनकुमारजी अपने दल के लोगो से कहते हैं, "गाँधीजी की अहिंसा का मखौल उड़ानेवाले थे, इन मूर्खों को कौन समझावे। जाने दो ···।" जंगल से बाहर निकलकर, नया कमांडर चार-पाँच शब्दों का एक भाषण दे डालता है, "यदि इन्हें छोड़ दिया गया तो हजारों-हजार गाँवों की ऐसी ही दुर्दशा करेंगे ये। हमने यदि आज डटकर मुकाबला किया तो फिर समझ लीजिये कि ऐसी घटना फिर नहीं घट सकती।"

"और मिलिटरी वालो को बुला लाये थे पारस चौधरीजी।"—दूत 'सतना' कहता है।

"पारस चौधरी?"

डेढ़ दर्जन हिंसकों ने दाँत पीसा, मानो बिजली चमक उठी। आसमान में

नये बादल उमड़-घुमड़ रहे थे।

गाँव में कुहराम थम गया था। कुछ औरतें धीरे-धीरे रो रही थीं और एकाध बच्चे रो रहे थे। जिस घर में आग लगायी गयी थी, वह जलकर खाक हो चुका था, मगर आग लहलहा रही थी।

"मिलेटरीवाले घाट पार कर रहे हैं।"

"चलो।"

आसमान में जोरों से बादल गरज उठता है। मिलेटरी और मिलेटरी अफसरों को लेकर दसों नाव किनारा छोड़ रही थीं। नदी के किनारे ऊँचे कगार पर एक मेंड़ के बगल में लेटकर डेढ़ दर्जन 'हिंसक' हिंसा के लिए तैयार हैं।

"उन्होंने लूटा है!"

'ट् ठाँय, ट् ठाँय'''

"उन्होंने मारपीट की है, जुल्म किया है!"

'ट् ठाँय, ट् ठाँय'''

"उन्होंने औरतों को बेइज्जत किया है।"

'ट् ठाँय, ट् ठाँय'''

'फड़ फड़ फड़र र र र'' '

फौजी अफसर का मशीनगन फड़फड़ा उठा।'''घबराओ मत दोस्त! देबेन की लाश हटा दो, उसका रायफल ले लो।'''वंशी की थैली में देखो कारतूस है!'''वंशी को एक चुल्लू पानी पिलाओ! लेट जाओ, दाहिनी नाव पर निशाना करो'''

'धड़ धड़ाम! धड़ धड़ाम!!'—आजाद दोस्त की ओर से 'हैंडग्रेनेड' फेंके जाते हैं। बिजली गिरने जैसी आवाज होती है, नदी का पानी बाँसों उछलता है।'''

'''सब शांत!'

शांत नहीं, पारस चौधरी को देखना होगा। चलो! चार कम डेढ़ दर्जन हिंसकों ने अपने साथियों की लाशों को कंधे पर टाँग लिया और चले।

बाद में खबर फैली, 'बिसनपुर मिलिटरी रेड में एक मुसलमान सिपाही को बलात्कार करते देखकर एक हिंदू सिपाही ने रोका। इस पर मुसलमान सिपाही ने उसे गोली दाग दी। इसके बाद तेरह हिंदू और एक गोरा को उसने मार दिया। आखिर में वह भी मारा गया। इस पर गोरे और हिंदू सिपाहियों में फिर घाट पर लड़ाई हो गयी। करीब-करीब चालीस गोरा मिलेटरी, दस हिंदू और पाँच अफसर मारे गये।'

जनता ने, इस खबर को सुनकर, मन-ही-मन उन हिंदू सिपाहियों की धीरता को सराहा और कराँची के नाम पर थूका, "साला!"

यह भी खबर फैली, 'राघोपुर के पारस चौधरी के घर में क्रांतिकारियों ने सशस्त्र डकैती की। रुपये, गहना-जेवर लूट लेने के बाद पारस चौधरी को गोली से उड़ा दिया।'

जनता ने इस खबर को सुनकर क्रांतिकारियों के प्रति घृणा प्रकट की।

अभी हाल में ही, एक सभा में श्री चंदनकुमारजी एम० एल० ए० का समाजवाद-विरोधी भाषण हो रहा था क्योंकि समाजवादियों ने यहाँ के किसानों को न जाने कैसे समझा दिया कि अब जमींदारी प्रथा नहीं रह सकती और जमीन पर जोतने-वालों का हक होना चाहिए और किसान मजदूरों के राज का मतलब ही है असली सुराज। एम० एल० ए० साहब के फायल और बिस्तर ढोनेवाले, स्थानीय कांग्रेस कमिटी के एक पदाधिकारी और भावी एम० एल० ए० साहब ने कहा, "वे गाँव की शांति भंग करते हैं।'

चंदनकुमारजी एम० एल० ए० साहब कह रहे थे, "भाइयो ! याद रखिए। ये वही लोग हैं, जिन्होंने पारस चौधरी जैसे प्रमुख कांग्रेस भक्त को गोली मार दी थी। ये डकैत है, देश के दुश्मन हैं···"

उनके फायल ढोनेवाले शांति के अग्रदूत जी ने जोरों से ताली पीटकर नारा लगा दिया, "देशद्रोही ! मुर्दाबाद !"

(अगस्त, 1949)

वंडरफुल स्टूडियो

फोटो तो अपने दर्जनों पोज मे उतारे हुए अलबम में पड़े है, फ्रेम में मढ़े हुए अपने तथा दोस्तों के कमरे मे लटक रहे है और एक जमाने में, यानी दो-तीन साल पहले, उन तस्वीरों को देखकर मुझे पहचाना भी जा सकता था। लेकिन 'स्वास्थ्य-संशोधन' के बाद वजन मे परिवर्तन और चेहरे में परिवर्तन होकर जो मेरी सूरत का नया संस्करण निकला, उसे पहचानने में मैं खुद कई बार भटक गया हूँ। कहाँ वह 95 पाउंडवाला चेहरा और कहाँ यह 154 पाउंड की सूरत !

दोस्तों ने कई बार सलाह दी कि एक नया फोटो उतरवाकर पिछली सभी तस्वीरो के 'कैंसिल' होने की घोषणा कर दूं, और अपने मन मे भी कई बार सोचकर देखा कि यह 'गुलगुली' न जाने कब गायब हो जाय ! चुनाँचे एक नया फोटो खिचवाने का फैसला कर लिया गया। वरना, मैं तो अपने को ऐसा परिपक्व पॉलिटिशियन समझे बैठा था जिसकी तस्वीर के लिए सैकड़ों नहीं, तो कम-से-कम दस कैमरेवाले नौजवान ज़रूर चक्कर काटते है। असल मे अपना फोटो उतरवाना 'बचकाना' शौक-सा मालूम होता था।

फोटो उतरवाने की बात तो तय हो गयी, लेकिन उस शाम को यह फैसला नही हो सका कि फोटो कहाँ उतरवाया जाय। हमारे एक मुँहबोले भाईजान हैं, जिन्हे हम इनसायक्लोपडिया की तरह काम मे लाते है। असली जाफरान किस दूकान मे मिलती है, मुर्ग-मुसल्लम किस होटल पर बेहतरीन होता है, कॉफी किस 'काफे' की सही जायकेवाली होती है, असली गबरडीन कपड़ा किस दूकान में है, बड़े सर्जन और फिजिशियन कौन-कौन है और किस 'टेलरिंग' की क्या विशेषता है, वगैरह बातो के अलावा पारिवारिक उलझनों को सुलझाने में उनसे बराबर मदद मिलती है।

भाईजान ने कहा, "एक जमाना था जब राजू चौधरी अच्छी तस्वीरें बनाया करता था। गवर्नमेंट हाउस से लेकर 'शहादत आश्रम' तक उसकी पूछ थी। अव्वल दर्जे के फोटोग्राफर के साथ ही वह पक्का मेहनती भी था। उस बार इमशान

घाट में पूरे तीन घंटे तक मेहनत करके डॉ० अग्रवाल की लाश की ऐसी तस्वीर उसने ली कि जिसे देखकर हर आदमी की ख्वाहिश···"

मनमोहनजी की आदत है कि हमेशा भाईजान की बात को बीच में ही काट देते हैं। बोले, "किस मुर्दे की बात कर रहे हैं आप? आजकल चतुर्वेदी स्टुडियो है जिसके बारे में दो रायें नहीं हो सकती!"

भाईजान ऐसे मौके पर कभी झुंझलाते नहीं है। उन्होंने फिर शुरू किया, "इसके बाद घोषाल अपने नये कैमरों के साथ मैदान में उतरा। उसके बारे में यह मशहूर है कि बगैर 'रिटच' किये ही बेहतरीन तस्वीरें बनाया करता था। फिर 'आलोछाया' वालों का युग आया, जो 'लाइट और शेड' की कला में निपुण था। प्रोफेसर किरण की एक ऐसी तस्वीर उसने उतारी थी, जिसे इंटरनेशनल फोटोग्राफी प्रदर्शनी में प्रदर्शित करने की चर्चा जोरों पर चल पड़ी थी। सिर्फ नाक पर लाइट दिया गया था। जरा कल्पना कीजिए, काले कार्ड पर सिर्फ नाक और चश्मे के फ्रेम के एक कोने पर हल्की रोशनी डाली गयी है और आप उस काले कार्ड पर प्रोफेसर किरण की सूरत को स्पष्ट देख रहे है। अब तो चतुर्वेदी का मार्केट है, मगर···"

"मगर क्या?" रमाकिशुनजी ने पूछा।

"मतलब यह कि चतुर्वेदी के यहाँ जानेवालों को अपने पॉकेट पर पूरा भरोसा होना चाहिए।" भाईजान ने फरमाया।

बीरेन को न जाने क्यों यह बात लग गयी। वह बोला, "भाईजी! आपका यह इल्जाम सरासर गलत और गैरवाजिब है। बेचारा पैसा लेता है तो काम भी करता है। फिल्मों और प्लेटो की बढ़ती हुई कीमतों का भी पता है आपको?"

मजलिस को बहस के लिए काफी मसाला मिल गया था और मुझे याद आयी कि 'चाय' के पैकेट खत्म होने की सूचना मुझे सुबह ही दे दी गयी थी। सरकारी ट्रेजरी से चेक का रुपया निकाल करना आसान है, लेकिन 'चूल्हे-चौके' की सरकार से पैसे मजूर करवाकर निकलवाना कितना कठिन है, यह लिखने की बात नहीं। पैसे निकलते है जरूर, मगर हड्डी में घुस जानेवाले रिमार्कों के साथ।

"हजार बार कहा कि अपने लिए 'हैपी वैली' लाते हो तो उसके साथ ही ब्रुकबाड के 'होटल ब्लेंड' वाले डस्ट का भी एक पैकेट ले आया करो। लेकिन इन ··र तो 'चाय का शौकीन' कहाने का भूत सवार है। दोस्तो ने कह दिया—यार, चाय के असल शौकीन तो तुम्ही हो—बस, बन गये उल्लू। पूरे छः रुपये बारह आने पाउंडवाली चाय पिलाये जा रहे है। दुनिया में आग लगी हुई है और यहाँ 'व्हाइट प्रिंस' पीने के मंसूबे बाँधे जा रहे है·····—यह मेरी सरकार की, सलाह कहें या फटकार कहें, नसीहत है।

'व्हाइट प्रिंस' नहीं, 'व्हाइट जेसमिन'! एक दिन हमारी मजलिस में इस

बात की चर्चा हो रही थी कि हिंदुस्तान की कौन-सी शख्सियत कौन-सी चाय और सिगरेट पीती है। मौलाना आजाद के बारे में कहा गया कि वे व्हाइट जेसमिन चाय पीते हैं। मौलाना ने अपनी किताब 'गोबारे खातिर' में कबूल की है। और इसी सिलसिले में हममें से किसी की सरस और चंचल रसना से यह पुरहौसला उद्गार जरा जोरसे निकल पड़ा था, "जिंदगी कायम रही तो हम भी कभी चख लेंगे भाई!" पर्दे के उस पार यही बात पहुँच गयी थी और उसी दिन से मुझ पर व्हाइट प्रिंस का व्यंग्यबाण छोड़ा जा रहा था। यहाँ तक कि ससुराल से यह बात यों 'रिडायरेक्ट' होकर पहुँची थी, "व्हाइट ऐलिफेंट साहब व्हाइट प्रिंस पीने के मंसूबे बाँध रहे हैं।"

चुन्नीलाल को चाय और सिगरेट के लिए बाजार दौड़ाकर जब मैं वापस आया तब बात एकोनामिक्स के डिप्रेसन के दायरे को पार कर पॉलिटिक्स के सोशलिज्म, कम्युनिज्म और प्रजा-सोशलिज्म के भँवर में चक्कर काट रही थी। रोज यही होता है। बात कोई भी हो और कहीं से प्रारंभ किया जाय, उपसंहार यही होता है।

इसलिए उस शाम की मजलिस में यह तय नहीं हो पाया कि फोटो कहाँ उतरवाया जाय।

दूसरे दिन शाम को जब मैं चौक से गुजर रहा था, 'वंडरफुल स्टुडियो' के वंडरफुल साइनबोर्ड की जलने-बुझनेवाली रोशनी ने फोटो की याद दिला दी। यह भी याद आयी कि राजन यही काम करता है। राजन, हमारा कलाकार मित्र, जो शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्स का डिप्लोमा प्राप्तकर साल-भर तक यहाँ फाके करता रहा। अब इसी स्टुडियो में उसे नौकरी मिल गयी है। आखिर 'वंडरफुल' में ही फोटो उतरवाने का इरादा मैंने पक्का कर लिया।

दूकान में दाखिलहोते ही एक खास ढंग के आदमी से सामना हुआ, "फर्माइये जी। मैं ही वंडरफुल का डिरेक्टर हूँ।"

"फोटो लेना है।"

"बेहतर जी। चलिए, अंदर सटुडियो मे।"

सामने मोटे अक्षरों मे लिखा हुआ था, 'यह दुनिया एक वंडरफुल स्टुडियो है।'

"राजनजी कहाँ है?" मैंने पूछा।

"कौन राजन? म्हारा आरटिस्ट! बो तो आज बिथ-बाइफ रेडियो सटेशन गया हुआ है। कमरसल आरट पर आज उनका टाक है।" वह आदमी लुढ़कता हुआ आगे-आगे चल रहा था।

अंदर के एक कमरे में पहुँचकर वह हमारी ओर मुड़ा, "अच्छा जो म्हाई सा'ब, पोज आपका अपना होगा या हमारे सेट्स के मुताबिक?"

"क्या मतलब ?"

"मतलब समझा देता हूँ"—उसने अपने गले से लटकते हुए मेगनीफाइंग ग्लास की रेशमी डोरी को उँगलियों में लपेटते हुए कहा, "सा'ब, बात यह है कि हमने अपने कस्टमरों की इच्छा के मुताबिक, बड़े-बड़े आरटिस्टों को एम्पलाय करके तरह-तरह के सेट्स बनवाये हैं ।···इधर आइए । (पर्दा हटाकर) यह है हमारा फिल्मी सेट, और ये रहीं तस्वीरें इस सेट की !" उसने एक बड़ा एलबम खोला ।

तस्वीरों में देखा, फिल्म की मशहूर अभिनेत्रियों के अभिनय के दृश्य थे । बात कुछ समझ में नहीं आयी । बोला, "ये तो फिल्मी तस्वीरें हैं ?"

"जी सा'ब, देखने से तो यही मालूम होती हैं"—अपनी काया के अनुपात से एक भारी-भरकम हँसी हँसते हुए उसने कहा, "यही तो म्हारी खसूसियत है। जरा गौर से देखना जी—हमने अपने कस्टमरों की ख्वाहिश के मुताबिक उन्हें सुरैया, नरगिस, नलिनी, निम्मी वगैरह के साथ एक्टंग के पोज में खड़ा कर फोटो लिया है !"

अब सभी तस्वीरें मेरी निगाह में एक साथ नाच गयीं । राजकपूर, दिलीप-कुमार तथा देवानंद की तरह बालों को सँवारे हुए नौजवान (और किशोर भी) अभिनय की मुद्रा बनाये हुए हैं । कोई सुरैया की ठुड्डी पकड़कर कुछ कह रहा है। कोई घुटनों तक नेकर और नेवी गंजी पहने हुए, नरगिस के हाथ-में-हाथ डाले, 'आवारा' के एक पोज में है और कोई निम्मी के कंधे पर हाथ डाले, दिलीप-कुमार के अंदाज मे कुछ कहना चाहता है !

"यह सब ? ये अभिनेत्रियाँ ?" मैं सिलसिले से कुछ पूछ भी न सका ।

"ये एक्टरेसस ! हँजी, वो 'डमी' हैं । हमने बड़े-बड़े फनकारों को अपने यहाँ एम्पलाय किया है, वो हमें हर नये पोज के लिए मिट्टी की मूर्तियाँ गढ़ देता है ।"

"क्या लड़कियाँ भी इस तरह के पोज में तस्वीरें उतरवाती हैं ?" मैंने जरा साहस से काम लिया ।

"जी मोत ! उनके लिए हमने एक्टरों की 'डम्मियें' बनवा रक्खी हैं । ज्यादे-तर लड़कियाँ अशोककुमार, दिलीप और राजकपूर के साथ 'अपियर' होना चाहती है । वैसे तो उस दिन एक कालिजगर्ल ने कामेडियन मिर्जा मुशर्रफ के साथ उतरवाने की ख्वाहिश जाहिर की, मगर एक कस्टमर के लिए कौन डम्मी बनाता है ? पिछले महीनें पचीस कस्टमरों के आर्डर पर हमने एक 'शेर' की 'डमी' बनवायी, लोग 'मेमसन' की तरह शेर से तरह लड़ते हुए तस्वीर उतरवाना चाहते है ।"

"लेकिन फोटो मे तो ये डम्मी जानदार मालूम होते हैं ।" मैंने अपनी मुस्कुराहट को होंठो में ही रोकते हुए कहा ।

"जी सा'ब ! वो हमारे लाइट शेड, मेकअप और रिटेच मे ठीक हो जाते हैं ।"

लड़के ने आकर कहा, "सा'ब ! फिलम सेट का कस्टमर आया हुआ है ।"

"ले आओ"—फिर मुझसे बोला, "चलिए, हम आपको अपना दूसरा सेट दिखावें । आपको मेरा पॉलिटिकल सेट जरूर पसंद होगा ।"

हॉल के दूसरे पार्टीशन में हम गये । बड़े उत्साह से वंडरफुल डिरेक्टर साहब ने मुझे अलबम दिखाना शुरू किया, "देखो जी भाई सा'ब ! ये है आइना पोजेज !"

एक तस्वीर में देखा, मिलिटरी पोशाक में कुछ लड़कियाँ कवायद कर रही हैं।

"आइना पोज क्या ?"

"आप आइना नहीं समझे ? अरे ! आइना ? इंडियन नेशनल आर्मी ! ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज और काप्टन लक्ष्मी···!"

"ओ ! आइ० एन० ए० ?"

"उस समय तो सा'ब, सब लड़कियों को बस यही शौक था, लिहाजा हमने मिलेटरी वर्दियाँ और 'डम्मी' रायफल बनवाये !"

मैं एक तस्वीर को गौर से देखने लगा—एक दुबली-पतली, लंबी लड़की, जिसके गालों में गड्ढे थे, आँखें छोटी और अंदर घुमी हुई, ठीक कैप्टेन लक्ष्मी के पोज में सेल्यूट···नहीं···जयहिंद कह रही है । उसके दुबले हाथ में रायफल का कुंदा हाथी के पाँव-जैसा मालूम हो रहा है ।

"और इधर देखिये । हजारों का मजमा है । नेताजी भाषण दे रहे है । सामने 'माइक' है ।"

फोटो में भीड़ को देखकर कांग्रेस के महाधिवेशन की याद आ रही थी। मैंने ताज्जुब से कहा, "हजारों का मजमा नहीं, लाखों का कहिए । लेकिन···इतने लोगों को, यानी इतनी 'डम्मियाँ' आपने कैसे बनवायीं ?"

वह हँस पड़ा, शायद मेरी बेवकूफी पर । फिर बोला, "सा'ब, ये फोटोग्राफक टिरीक हैं । हमने इस तरह के पर्दे बनवा लिये हैं ।"

"देखो जी ! ये मजदूरो का लीडर है । हजारों मजदूरो के जलूस की रहनुमाई कर रहा है ।"

देखा—हजारों मजदूरो की लंबी कतार के आगे हाथ में झंडा (सही रंग नहीं कह सकता, क्योंकि फोटो में काला ही था, और झंडे के निशान के बारे में जानकर क्या कीजियेगा ?) लिए हुए, बाल बिखराये हुए, मुँह फाड़े हुए, मजदूरों के लीडर कदम आगे बढ़ा रहे है । वाह !

"इस पोज में राजनैतिक कार्यकर्ता या लीडर क्यों अपनी तस्वीर उतरवायेंगे ! इसे तो बैठे-ठाले लोग ही पसंद करते होंगे । फोटो देखकर भी तो यही जाहिर होता है ?" मैंने कहा ।

"आप ठीक कहते हैं सा'ब । ज्यादेतर ऐसे-वैसे लोग ही—खासकर व्योपारी, सेठ-साहूकारों के लड़के इसे पसंद करते हैं । हमने कुछ जवाहर जैकेट, कुछ सुफेद और रंगीन टोपियाँ बनवा ली हैं । लेकिन अभी उस दिन···माफ करना जी··· प्राइवट बात है···आप किसी से बोलना मत । अभी उस रात को मनिस्टर कृपा बाबू का प्राइवट सिकरटरी चौबे आके हाजिर । बोला— देखो जी पापडा, पुरानी दोस्ती है तुमसे, भोत प्राइवट बात है । मनिस्टर सा'ब रायपुर में ब्रच्छ-रोपण में गये थे । वेदर अच्छा नहीं था, तस्वीर साफ नहीं आयीं । कोई उपाय करो । कल ही अखबारों में देना है । मैं बोला—मगर मनिस्टर सा'ब को स्टुडियो में आना होगा जी ! ग्यारह बजे रात को मनिस्टर सा'ब आये । हमने झंडोत्तोलनवाला पर्दा लगा दिया, हमारे आरटिस्ट ने झंडे की जगह ब्लॅक कर दिया, वहीं मनिस्टर सा'ब ने ब्रच्छ-रोपण किया । झंडोत्तोलन के बदले ब्रच्छ-रोपण ही सही ।"

उसने तस्वीर देखने को दी । अरे ! यह तस्वीर तो हाल ही पत्रों में छपी है । मुझे तो इसके ऊपर की सुर्खी और नीचे का चित्र-परिचय भी याद है ।

बगल के पार्टीशन से (फिल्म सेट से) आवाज आ रही थी, "कमर को और झुकाइए···जरा···हाँ···और उँगलियों को बिखराइये फूलों की पँखुड़ियों की तरह···इस तरह···हाँ···"

वंडरफुल साहब मुस्कुराकर बोले, "वो डानस का पोज ठीक हो रहा है । नरत्य-निकेतन है न वहाँ···मोड़ पर, उसी का डिरेक्टर हमारा डानस पोज बनाता है !"

"वाह साहब ! वास्तव में वंडरफुल है आपका स्टुडियो ! युनिक है ।" मैंने कहा ।

"सा'ब, हम इसे और डेवलप करेंगे । इधर हमने फिर दो सेट बनवाये है । कौमी सेट···और···फरेंच सेट !"

"कौमी सेट ? जरा वह भी दिखाइए ।"

इस बार वंडरफुल साहब कुछ हिचकिचाये । फिर बोले, "देखिए जी बाबू सा'ब ! आप जब राजन के मित्तर हैं तो हमारे भी मित्तर ही ठहरे ; वरना, हम औरों को नहीं दिखाते । आइए ।"

तीसरे पार्टीशन में ले जाकर वंडरफुल ने मुझे दो-तीन तस्वीरें दिखायीं । एक में एक नौजवान को एक लुंगीधारी बूढ़े के पेट में छुरा घुसेड़ते देखा । दूसरे में एक बहादुर युवक शिवाजी की तरह घोड़े को उछालता और तलवार चलाता हुआ दिखायी पड़ा । तीसरे में भारतमाता आसमान से पुष्प-वृष्टि कर रही है और एक वीर राष्ट्रीय झंडे को फाड़कर चिन्थी-चिन्थी कर रहा है···हजारों की भीड़ है ।···

"और इधर फरेंच सेट है···हालीउड फिलम सेट !"

मेरा सिर चकरा रहा था। मैं पास की पड़ी हुई तिपाई पर बैठते हुए बोला, "वंडरफुल सा'ब ! आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूं। आपने कितना बड़ा कल्याण किया है समाज का—यह कहने की बात नहीं। आपने यदि यह स्टूडियो नहीं खोला होता तो दुनिया के लोग पागल हो गये होते।···आप इंसान के मन में सोयी हुई अतृप्त इच्छाओं की तस्वीर लेते हैं। यह तो बेजोड़ है। सही तस्वीर तो आप ही लेते हैं इंसान की। वाह !"

वंडरफुल अब बकने लगा, "बाबूजी ! यहां बिजनेस का तो कोई मजा ही नहीं। लाहौर में जब हम थे तो ऐसे एक-एक पोज के लिए एक-एक सौ रुपये लोग देते थे। यहां तो लोग 'आरट' को समझते ही नहीं।···अच्छा जी ! अब फर्माइए, आपके लिए कौन-सा सेट लगवाऊं ?"

"मेरे लिए ?···मेरे लिए सेट लगवाने की जरूरत नहीं। मैं अपने मन का पोज देना चाहता हूं।" मैंने गंभीरतापूर्वक कहा।

"बेहतर जी ! फर्माइए।"

"मेरे गले में रस्सी का फंदा डालकर एक पेड़ से लटका दो। फोटो ऐसा उतरे, जिसमें मेरी आंखें और जीभ बाहर निकली हुई हो और हाथ में एक कागज का टुकड़ा हो जिस पर लिखा हो, 'खुश रहो वंडरफुल वतन, हम तो सफर करते हैं'।"

(जुलाई, 1953)

टौंटी नैन का खेल

"लड़की मिडिल पास है।"

"मिडिल पास ?"

"मिडिल पास ही नहीं, दोहा-कवित्त जोड़ती है।"

"देखने में भी, सुनते हैं कि गोरी है।"

"सीप्रसाद बाबू की बेटी काली कैसे होगी ?"

"[illegible] नहीं होना है।"

"सुमरचन्ना नहीं आया है। आ जाय तो सही बात का पता चले।"

"यदि बात सच है तो समझो कि पानी में आग लग गयी !"

"सुमरचन्ना का भाग तेज है।"

"चिड़िया का गुलाम किसका है ? रंग ओट करो।" चिड़िया का गुलाम, लाल पान की बीबी से कट गया और खेल खत्म। खेल में अब किसी का जी नहीं लग रहा है, सुमरचन्ना का भाग तेज हो गया, खेल में जी कैसे लगे ?

"लेकिन—सुमरचन्ना तो अपर पास भी नहीं ?"—रमचनरा कहता है।

"अब पास कर जायगा।"—दुलरिया बात बनाना जानता है।

सभी हँस पड़ते हैं। गाँव-भर के निठल्ले नौजवानों के इस ताश के अड्डे को बड़े-बूढ़े बड़ी बुरी निगाह से देखते हैं। देखा करें, उनकी बुद्धि सठिया गयी है। सेमापुरिया 'मेला' की तरह माथा मुड़ाकर रहो तो ये बहुत खुश रहेंगे। जरा-सा थोबड़ा केश बढ़ाकर, थोड़ी-सी बगली छँटाकर सिर में तेल डालते ही इनकी आँखों में लाल मिर्च की बुकनी पड़ जाती है।···लुच्चा हो गया, आवारा है वगैरह। ···सुमरचन्ना बाबड़ी नहीं रखता है, डोमन लौआ से जब वह केश छंटाता है तो गाँव के नौजवानों को एक सप्ताह के लिए हँसने का मसाला मिल जाता है।···हल जोत दिया है। अब खेसाड़ी बोना बाकी है। और उसी सुमरचन्ना का हल जोता हुआ कपाल इतना उपजाऊ साबित हुआ। रमचनरा आधा मोछ कटाता है लेकिन। मिडिल पास स्त्री, दोहा-कवित्त जोड़नेवाली और गोरी ! भगवान भी

कैसे हैं ?

सुमरचन्ना—श्री सुमरचंद विश्वास वल्द अमीरचंद विश्वास जाति··· मौजा लोरिकगंज थाना फारबिसगंज जिला पुरेनियाँ।

रामपुर के सीप्रसाद मंडल को कौन नहीं जानता ? जाति-बिरादरी में उनका स्थान ऊँचा है। नयी मातबरी हुई है। सरसों और तंबाकू से दो हजार रुपये की आमदनी होती है। बंदूक का लैसन मिलनेवाला है। कंगरेसी हैं। उन्हे कौन नही जानता ?

यह बड़े अचरज की बात है कि सीप्रसाद बाबू ने सुमरचन्ना को ही क्यो अपनी मिडिल पास, दोहा-कवित्त जोड़नेवाली और गोरी लड़की के लिए वर चुना ? सुमरचन्ना की माँ ऐसी झगड़ालू है कि दीवाल से भी झगड़ा करती है। बाप बहरा है। धन मे धन दो भैंस हैं। और सुमरचन्ना की सूरत ?···अचरज की बात है। गाँव के निठुल्ले नौजवानो के कलेजे पर साँप लोट रहे हैं ! भगवान भी कैसे हैं ?

"रे सुमरचन्ना ! इधर आओ इधर ! कहाँ से आ रहे हो ? बीड़ी पिलाते जाओ !"

"हरगोबिन भाय ! रामपुर गये थे।"

"शादी का दिन ठीक हो गया ?"

"हाँ। यही फागुन एकादशी है।"—सुमरचन्ना 'मोटर मार सिगरेट' सुलगाते हुए कहता है।

"तुम्हारी किस्मत बड़ी तेज है। रुपैया-पैसा भी दिया है ?"

सुमरचन्ना को घेरकर सभी बैठे हुए है। बीच में मोटर मार सिगरेट का पाकिट खुला हुआ है। ताश की गड्डी पड़ी हुई है। सभी सिगरेट पी रहे हैं। सुमरचंद विश्वासजी सुना रहे है, "अर हरगोबिन भाय ! यह तो भोग-भाग की बात है। विधविधाना जिसकी जोड़ी जहाँ मिला दे। रमैन में कहा है—सुनहू भरथ भावी प्रबलऽ बिलख कहे मुनि नाथ···अर्थात् हे भरथजी !···"

इस 'अर्थात्' मे हानि-लाभ के साथ शादी-विवाह और जोड़ी मिलाने की चर्चा कहाँ की गयी है, इस पर ध्यान देने का होश किसको है ?

सुमरचन्ना मिडिल पास भी नहीं लेकिन 'रमैन' और 'महभारथ' और कीरतन में उससे कोई पार नही पा सकता है। जब कीर्तन में 'झाँखी' गाने के समय पैर मे झुनकी बाँधकर 'झाँखी जुगल मोहनियाँ हो राम' गाता है तो सुननेवालो की आँखों से प्रेम के आँसू झरने लगते हैं।

बात यह हुई कि···सीप्रसाद बाबू के बूढ़े बाबू लाम्लरैन बाबू बड़े धार्मिक आदमी हैं। गाँव में ठाकुरबाड़ी बनवा दिया है। राम लछमन सीताजी की मूर्ति बनारस से लाये है। घर में भी मूर्ति है—सीताराम की जुगल जोड़ी। कीर्तन के

बड़े प्रेमी हैं। उस बार ढालगंज के नवकुंज में सुमरचन के गीत पर मोहित हो गये। मीप्रसाद बाबू की छोटी बेटी (जिससे सुमरचन की बातचीत पक्की हो गयी है) लामलरैन बाबू की बड़ी दुलारी है। बड़ी प्यारी ! दादा के सभी गुण उसमें आ गये हैं। बचपन से ही दादा के साथ में रहकर 'भगवान' और कीर्तन उसके रोम-रोम में रम गया है। इसीलिए दादा ने उसका नाम रखा है—आरती। माँ कहती है—अर्ती ! बूढ़े लामलरैन बाबू ने आरती की शादी किसी भगवान भक्त से ही करने की प्रतिज्ञा की थी।···पूरा भक्त, कंठीधारी वैष्णव हो, भले ही गरीब हो, अपढ़ हो, लेकिन अपनी ही जाति का हो। आरती सतरहवाँ पार कर चुकी लेकिन उसके जोग वर मिल नहीं रहा था। कोई मिलता भी तो स्वजाति का नहीं। पढ़ाई-लिखाई की बात रहती तो आजकल एम० बीए० की भी कमी नहीं होती··· लेकिन वैष्णव, भगवान का असली भक्त, कंठीधारी कहाँ मिले ? मुर्गी के अंडे खानेवालों की बात रहती तो एक बात भी थी। बस, ढालगंज नवकुंज में लामलरैन बाबू को आरती के जोग वर मिल गया।···स्वजाति का, भक्त, वैष्णव और कंठीधारी सुमरचन्ना !

"एह ! यह तो राजा रानी का खिस्सा हो गया कि एक राजा था और उसकी एक लड़की थी"—दुलरिया बहुत देर तक रुके हुए साँस को एक ही बार छोड़ते हुए कहता है, "एकदम खिस्सा माड़े नार यार।"

सभी हँस पड़ते हैं लेकिन यह बात तो सवसम्मति से स्वीकार हो जाती है कि सुमरचन्ना का भाग बड़ा तेज है। भगवान की महिमा अगम अपार है।

"लड़की मिडिल पास, गोरी, धनी ससुराल, बूढ़े मालिक का दुलारा जमाई ···और क्या चाहिए ?"—हरगोबिन गंभीर होकर कहता है।

सभी गंभीर हो जाते हैं। भाग की बात है। इससे बढ़कर और क्या चाहिए ?

"लेकिन सुमरचन्न भाय ! कीरतन दल को भूल मत जाना हरमुनियाँ का भाथी एकदम खराब हो गया है। ढोलक भी कठसुरहा हो गया है। गरुआ पोशाक एक दर्जन बनवा देते तो फिर क्या है ?"

"और एक 'कौरनोट' और एक 'बिहला' बाजा यदि खरीद दो तो समझ लो कि 'होल इंडिया' में हम लोगों के दल का नाम हो जाय।"

"अरे भगवान ने चाहा तो सब कुछ हो जायेगा। पंगु होहिं वाचाल मूक चढ़हिं···नहीं-नहीं···मूक होहिं वाचाल···।"—सुमरचंद विश्वास, विश्वास दिलाते हुए कहते हैं, "और हम यदि कीरतन दल को भूल जायें तो भगवान हमारे गरव को कितनी देर तक रखेंगे ?···रावन गरव कियो लंका में···।"

फागुन एकादशी ! लामलरैन बाबू ने खबर भिजवा दी है—बर-बरात एकदम नहीं। जो आये वह कीर्तनियाँ हो। ढोल-ढाक, बाजा-गाजा, नाच-तमाशा, रंग-रवायश कुछ नहीं। सिर्फ कीर्तन।

दुलरिया बड़ा मस्त जानवर है, हरदम हँसते-हँसाते रहता है। सुनते ही कहता है, "तब तो लड़की के लिए भी कोई गहना बनाने की जरूरत नहीं। कंठी-माला ही ले चलो सुमरचन्न भाय।"

सुमरचन आजकल दिन-रात सपना ही देखता रहता है। उसे कुबेर का भंडार मिल गया है। हँसते हुए कहता है, "असल गहना तो कंठीमाला ही है दुलारे। पूरब मुलुक बंगाला मे जाओ तो? जब तक माला-बदल नहीं होगा, शादी पक्की नहीं समझी जायेगी। पहले जमाने में राजा-महाराजा की राजकुमारी माला डालकर ही सुयेंबर करती थी। जयमाला!"

'कुमारी आरतीदेवी मीरा' श्रीमान सुमरचद विश्वासजी के गले मे जयमाला डालेगी।

आरतीदेवी मिडिल पास है। घर बैठे ही गीता और रमैन की परीक्षा देकर पास कर चुकी है। मासिक मानव कल्याण पत्रिका की स्थायी ग्राहिका और पाठिका है। कभी-कभी खुद गीतों की रचना कर लेती है—दोहा-कवित्त! इसलिए अपने नाम के साथ 'मीरा' लिखती है। अठारहवें मे पाँव रख रही है। पिछले दो साल से गाते-गाते भगवान के आगे कभी-कभी बेहोश हो जाती है। घंटों बेहोश रहती है और जब आँखें खुलती हैं तो···'सपने में तुम पास रहे प्रभु, जगी हो गये दूर'···। प्रेमविह्वल हृदय की वाणी कोकिल कंठ से फूटकर निकल पड़ती है। बूढ़े लामलरैन बाबू प्रसन्न होकर करताल बजाते रहते हैं—'हुई बोयो, हुई बोयो! छन, छन, छन, छन।' गेरुआ रंग को छोड़कर और किसी रंग का कपड़ा नहीं पहनती है आरतीदेवी। एक बार सोशलिस्ट पार्टी के 'लाल पताका' के संपादक या 'चिनगारी' जी आये थे। एकदम नास्तिक। हरदम मुंह में सिगरेट, आँख पर चश्मा। खाँसते रहते थे और हवा में डोलते रहते थे। डॉक्टर के कहने से मुर्गी का अंडा खाते थे। जाति-धरम को एकदम नहीं मानते थे। उस बार सीप्रसाद बाबू के साथ आये। शाम को जब उन्होंने आरतीदेवी का भजन-कीर्तन सुना तो उनकी आँखें एकदम खुल गयीं। प्रेमविह्वल नारी, गोरा शरीर, सुडौल मुख-मंडल और गेरुआ वस्त्र में लिपटी हुई पवित्र जवानी! बस, उसी क्षण से भगवान भक्त हो गये।···लेकिन लोग जो कहते हैं कि आरतीदेवी से उनका···हो गया था सो झूठी बात है। सुनी हुई बात झूठी होती है। बात यह हुई थी कि सीप्रसाद बाबू ठहरे कगरेसी आदमी! उनके यहाँ यदि कोई सोशलिस्ट पार्टी वाला तीसरे दिन पड़ा रहेगा तो उनकी बदनामी नहीं होगी? इसलिए उन्होंने मना कर दिया था। बाद में 'चिनगारी' जी ने सोशलिस्ट पार्टी को भी छोड़ दिया। आजकल एकदम भक्त हो गये हैं, अपना कीर्तन पार्टी खोले हैं। वह भी अपने से गीत बनाते है और गाते हैं।

लामलरैन बाबू ने आरतीदेवी की शादी के दिन 'अष्टजाम' कीर्तन कराने

का निश्चय किया है। दम ममाजी को उन्होंने निमंत्रण भेज दिया है। जाति-बिरादरी वाले तो सभी शादी-ब्याह और श्राद्ध में खाते ही हैं। पर आरतीदेवी की शादी है। भगवान की गायिका की शादी है, इसमें तो सिर्फ कीर्तनियाँ लोगों को ही भाग लेना चाहिए।

शाम मे ही कीर्तनियो का दल एक-एक कर आ रहा है। गाते-बजाते और नाचते।

'अरे सोचे सिया जी के मंया हो धेनु कैसे टुटे।'

'धाके धिन्ना ताक धिन्ना।'

छनन छनन छुम्म छन्नन।

"हाँ, यह शायद लखनपुर का दल है। देखना। हरेक समाजी के मभापति से पहले ही पूछ लेना कि कितने लोग है? लखनपुर वालो को नही जानते? तीन बुलावे तेरह आवे।"

'गौरी के माई डराओल हो बमभोला के देखिके।'

धाक धिना ताक धिना।

"हाँ, यह परबत्ता का दल है। देखना रे! गंगातीर वाली खड़ाऊँ की जोड़ियाँ कहाँ है? उस पार परबत्ता दल वालो ने खड़ाऊँ ही पार कर दिया।"

कातपुर के दल के साथ आये है 'चिनगारी' जी। आजकल नाम बदल लिया है—'चदन'। चदनजी। उनके दल को निमंत्रण नही मिला था लेकिन कातपुर मे उनका 'ममहर' है। चिनगारीजी···यानी चदनजी ने अब बाल बढ़ा लिया है। लबे-लबे घुघराले बाल, दाढ़ी-मूँछे मुड़ा हुई और आँखो पर चश्मा। अब सिगरेट कम पीते है—पान खाते है।

सभी समाजी आ गये है। रात को आठ बजे से अष्टजाम शुरू होगा। तब तक बाराती, कीर्तनियाँ समाज भी आ जायगा। इसके पहले बैठकी कीर्तन हो रहा है। एक-एक दल बारी-बारी से गाता है। ऐमा लगता है कि कातपुर दल का ढोलकिया आज ढोलक को तोड़ ही देगा! चिनगारीजी उर्फ चदनजी गा रहे है। खेल बात है। इसीलिए ढोलक बजाते-बजाते जोश मे ढोलक पर चढ़ जाता है। चिनगारीजी जब गर्म बात अखबार मे लिखते थे तो सरकार बहादुर थर-थर काँपने लगता था। चदनजी ऐसा कीर्तन गाते है कि सुननेवालो पर आग का भी कोई असर नही हो। आँख मूँदकर गा रहे है, विभोर होकर गा रहे है। चेहरे पर पेट्रोमेक्स की पूरी रोशनी पड़ रही है, इसलिए चेहरे पर करुण भाव की छोटी-से-छोटी लहरे भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

अरे नैनो को दरशन सुख दे दो नैनो का···

अरे नैनो को दरशन सुख दे दो।

मिटे हृदय की साध···दरशन बिनु नैना है बेकार। आज मेरे आँगन मे चदन

चर्चित वधू आरती चुपचाप बैठी हुई है, बूढ़े लामलरैन बाबू का हुक्म है—औरतें कोई गीत नहीं गा सकतीं। भगवान का ही गीत मंगल गाये। रुकमुनी जाइछे··· नहीं-नहीं···यह गीत नहीं चलेगा। ओ! रुक्मिणी का नाम है? तब तो भगवान का गीत है। यह चलेगा :

अरे अच्छा-अच्छा चूड़ियां बनावे रे भइया लहेरिक।

रुकमिनी जाइछे ससुराल!

अरे ऐसना चोलिया बनावे रे दरजिया कि

छतिया पर जाड़ो रे अनार!

आरतीदेवी 'मीरा'।···आरती पुर्जे पर अपना नाम देखकर चमक उठती है। अक्षर तो पहचानती है वह। चरवाहा ने लाकर दिया है। चिट्ठी है। वह उठकर ठाकुरजी के घर में चली जाती है। हाँ, चिट्ठी ही है। चंदनजी उर्फ चिनगारीजी ने लिखा है :

'मेरे मानस की मीरा!

तुम जिसके गले में जयमाला डालनेवाली हो, वह एकदम निपट गँवार है। बात करने का ढंग नहीं। कीर्तन गाता है मगर पुराने जमाने का। पढ़ा-लिखा बहुत कम है। शायद लोअर पास भी नहीं। सिर्फ गला सुरीला है। समझ में नहीं आता कि बूढ़े बाबू ने क्यों तुम्हारा सत्यानाश कर दिया। सीप्रसाद बाबू भी कैसे हैं, उन्होंने क्यों नहीं खुद जाकर देखा। लड़का तो एकदम चिडिया का गुलाम है···'

चिड़िया का गुलाम? भगवान ने निपट गँवार ही उसके भाग में लिख दिया है तो वह क्या कर सकती है? भगवान की मर्जी! लेकिन चंदनजी? उस बार कितनी अच्छी कविता बनाकर चिट्ठी लिखे थे :

तुम मीरा गिरधर की दासी

चदन तेरा दास,

करो मत मुझको प्रिये निराश!

दास के सुन लीजै छोटी अरजिया हो रघुवर सुन लीजै मोरी अरजिया!

ताक धिन्ना ताक धिन्ना।

लोरिकगंज बाराती, कीर्तनियां समाज आ गया। वर श्री सुमरचंद विश्वास गा रहे हैं—दास के सुन लीजै···

शादी चाहे किसी भी नियम से हो, शादी आखिर शादी ही है। वर को देखने के लिए औरतें झुंड बांधकर दौड़ पड़ती हैं। कौन? यही जो बीच में नाच रहा है?···माई गे!···माई गे क्या? वह तुम्हारी-उसकी शादी नहीं, आरती की शादी है! भगवान!

बूढ़े लामलरैन बाबू आरतीदेवी की माँ को समझा रहे हैं, डांट रहे हैं और

बिगड़कर लेक्चर झाड़ रहे है । गुस्से मे उनकी पोपले मुंह की बोली ठीक अग्रेजी की तरह सुनायी पड़ती है, "छिवई की छार्जा में भी गोई की मार्इ इक्षी लयह ओची छी ! किछी अम्मयमी, मुगीखाय छे छाजी होची चो बहुत अच्छा। छे ? भगवाय का भकच कभी छुजय नही होगा। छुजय छईय किछ काम का ? हउमाय जी ।"

अर्थात्—वर अधरमी और मुरगीखोर नही। भगवान का भक्त सुदर नही होता । हनुमानजी सुदर थे ? सुदर शरीर किस काम का ?

आरती भी सोचती है—सुदर शरीर किस काम का ?

अष्टयोग शुरू हो गया । वर मंडप पर पहुँच गया है । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण······

आरतीदेवी आंखों को बार-बार रोकती है मगर आंखों ने चोरी से देख ही लिया, 'सुमरचन्नजी, भक्तजी ' चिडिया का गुलाम !' शादी आखिर शादी है । सुमरचन्नजी वधू निरीक्षणी करके अपनी वधू को मडप पर ले चले । आरती का सारा शरीर सिहर उठता है । उसका सुदर शरीर किस काम का ?···पग घुघरू बाँधी मीरा नाची री।

'हरे राम हरे राम !'

वर-वधू के मडप पर पहुँचते ही गानेवालों का जोश और भी बढ़ जाता है । ढोल पर और भी तेजी से ताल बोलने लगता है । करताल और भी तेजी से खनकने लगते है । छुम छुम छन्न छन्न ! प्रेम मे विभोर होकर बूढ़े लामलरैन बाबू भी करताल बजाकर नाचने लगते है, "हये आम हये आम !"

आरती के पांवों मे गुदगुदी लगने लगती है । उसका सारा शरीर सिहरने लगता है । ऐसा लगता है कि वह भी अब नाचने लगेगी । वह बेहोश हो रही है । बेहोश···छुम छुम छन्न जन्न···। छनाक् !

"ऐ सम्हालो ! सम्हालो !!"

"गिर गयी ।"

"पानी लाओ ।"

ढोल रुक जाता है, करताल बद हो जाते है । लामलरैन बाबू करताल बजाते हुए और नाचते हुए कहते है, "कीचन बज यही हो। जाई यहे···हये आम हये आम ! छुम छुम छन्न छन्न !

धिक धिन्ना धिक धिन्ना !"

"पानी लाओ ।"

"पखा दो ।"

आरतीदेवी आंखे खोलती है । उसके मुंह से एक हल्की-सी चीख निकल पड़ती है, "चिड़िया का गुलाम !"

सुमरचंद के बहरे बाप ने हल्ला मचाना शुरू किया, "हम जानते थे, लड़की को मिरगी की बीमारी है। हम लोगों को गरीब जान खूब उल्लू बना रहे थे। अरे बापू ! हमारे खानदान में कभी मिरगी नहीं हुई।···चल रे सुमरचन्ना !"

लेकिन जब सुमरचन्ना टस से मस नहीं हुआ तो वह गाली-गलौज करते हुए अपने गाँव की ओर चल पड़ते हैं।

रात-भर आरतीदेवी बेहोश रही। सुबह को ठाकुर साहब ने देखकर कहा, दिमाग पर चोट लगी है। कीर्तन समाजियों को सूचना दे दी गयी—हालत बहुत खराब है। शादी नहीं हो सकेगी। सभी अपने-अपने घर चले जायें।

"जलपान भी नहीं देगा क्या ?"— दुलारे की बात सुनकर रात-भर के भूखे लोगों को भी हँसी आ जाती है।

"चलो खेल-तमाशा खतम।"

गाँव के निठल्लों का ताश का अड्डा गुलजार है। मिडिल पास, दोहा-कवित्त जोड़नेवाली लड़की, धनी ससुराल पाना खेल नहीं। सुनो ! कांतपुर दल का चंदन जी गवैया चक्का पार कर दिया। अरे, वह तो उसी रात को लेकर पार हो गया। अभी तक कहीं पता नहीं चला है।

सुमरचन्ना को सभी चिड़िया का गुलाम कहकर चिढ़ाते है। बहरा अमीरचंद की दोनों भैंस बिक गयी है, इसलिए सुमरचन्ना को दिन-रात गाली-गलौच करता रहता है। सुमरचन्ना ने कीर्तन भी छोड़ दिया है।

"छोड़ दिया है तो छोड़े। उसके कपार पर तो चिड़िया का गुलाम सवार है।···"

"रंग ओट करो रे।"

लाल पान की बीबी से चिड़िया का गुलाम काट लिया जाता है। जोतनेवाले खुशी से ताली पीटते है।—टोटी नैन का खेल जारी रहता है।

(अगस्त, 1953)

रसप्रिया

धूल मे पड़े कीमती पत्थर को देखकर जौहरी की आँखो मे एक नयी झलक झिल-मिला गयी—अपरूप-रूप !

चरवाहा मोहना छौड़ा को देखते ही पंचकौडी मिरदंगिया के मुह मे निकल पड़ा—अपरूप-रूप !

···खेतों, मैदानो, बाग-बगीचो और गाय-बैलो के बीच चरवाहा मोहना की सुदरता !

मिरदंगिया की क्षीण-ज्योति आँखे सजल हो गयी।

मोहना ने मुस्कुराकर पूछा, "तुम्हारी उँगली तो रसपिरिया बजाते टेढ़ी हुई है, है न ?"

"ऐ !"—बूढ़े मिरदंगिया ने चौंकते हुए कहा, "रसपिरिया ?···हाँ··· नही। तुमने कैसे ··तुमने कहाँ सुना बे···?"

'बेटा' कहते-कहते वह रुक गया।···परमानपुर मे उस बार एक ब्राह्मण के लड़के को उसने प्यार से 'बेटा' कह दिया था। सारे गाँव के लड़कों ने उसे घेर-कर मारपीट की तैयारी की थी, 'बहरदार होकर ब्राह्मण के बच्चे को बेटा कहेगा ? मारो साले बुड्ढे को घेरकर !···मृदंग फोड़ दो।'

मिरदंगिया ने हँसकर कहा था, 'अच्छा, इस बार माफ कर दो सरकार ! अब मे आप लोगो को बाप ही कहूँगा।'

बच्चे खुश हो गये थे। एक दो-ढाई साल के नंगे बालक की ठुड्डी पकड़कर वह बोला था, 'क्यो, ठीक है न बापजी ?'

बच्चे ठठाकर हँस पड़े थे।

लेकिन, इस घटना के बाद फिर कभी उसने किसी बच्चे को बेटा कहने की हिम्मत नही की थी। मोहना को देखकर बार-बार बेटा कहने की इच्छा होती है।

"रसपिरिया की बात किसने बतायी तुमसे ?···बोलो बेटा !"

दस-बारह साल का मोहना भी जानता है, पँचकौड़ी अधपगला है।··· कौन इसमें पार पाये! उसने दूर मैदान में चरते हुए अपने बैलों की ओर देखा।

मिरदंगिया कमलपुर के बाबू लोगों के यहाँ जा रहा था। कमलपुर के नंदूबाबू के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बातें सुनने को मिल जाती है। एक-दो जून भोजन तो बँधा हुआ है ही; कभी-कभी रसचरचा भी यहीं आकर सुनता है वह। दो साल के बाद वह इस इलाके में आया है। दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है।···आज सुबह शोभा मिसर के छोटे लड़के ने तो साफ-साफ कह दिया, "तुम जी रहे हो या थेथरई कर रहे हो मिरदंगिया?"

हाँ, यह जीना भी कोई जीना है? निर्लज्जता है, और थेथरई की भी सीमा होती है।···पंद्रह साल से वह गले में मृदंग लटकाकर गाँव-गाँव घूमता है, भीख माँगता है।···दाहिने हाथ की टेढ़ी उँगली मृदंग पर बैठती ही नहीं है, मृदंग क्या बजायेगा! अब तो, 'धा तिंग धा तिंग' भी बड़ी मुश्किल से बजाता है।··· अतिरिक्त गाँजा-भाँग सेवन से गले की आवाज विकृत हो गयी है। किंतु मृदंग बजाते समय विद्यापति की पदावली गाने की वह चेष्टा अवश्य करेगा।···फूटी भाथी से जैसी आवाज निकलती है, वैसी ही आवाज—सों-य, सों-य!

पंद्रह-बीस साल पहले तक विद्यापति नाम की थोड़ी पूछ हो जाती थी। शादी-ब्याह, यज्ञ-उपनैन, मुंडन-छेदन आदि शुभ कार्यों में विदपतिया मंडली की बुलाहट होती थी। पंचकौड़ी मिरदंगिया की मंडली ने, सहरसा और पूर्णिया जिले में काफी यश कमाया है। पंचकौड़ी मिरदंगिया को कौन नहीं जानता! सभी जानते हैं, वह अधपगला है!···गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं, "अरे, पँचकौड़ी मिरदंगिया का भी एक जमाना था!"

इस जमाने में मोहना जैसा लड़का भी है—सुंदर, सलोना और सुरीला!··· रसप्रिया गाने का आग्रह करता है, "एक रसपिरिया गाओ न मिरदंगिया!"

"रसपिरिया सुनोगे?···अच्छा, सुनाऊँगा। पहले बताओ, किसने···"

"हे-ए-ए हे-ए···मोहना, बैल भागे···!" एक चरवाहा चिल्लाया, "रे मोहना, पीठ की चमड़ी उधेड़ेगा करमू!"

"अरे बाप!" मोहना भागा।

कल ही करमू ने उसे बुरी तरह पीटा है। दोनों बैलों को हरे-हरे पाट के पौधों की महक खींच ले जाती है बार-बार।···खटमिट्ठा पाट!

पँचकौड़ी ने पुकारकर कहा, "मैं यहीं पेड़ की छाया में बैठता हूँ। तुम बैल हाँककर लौटो। रसपिरिया नहीं सुनोगे?"

मोहना जा रहा था। उसने उलटकर देखा भी नहीं।

रसप्रिया!

विदापत नाचवाले रसप्रिया गाते थे। सहरसा के जोगेंदर झा ने एक बार

विद्यापति के बारह पदों की एक पुस्तिका छपायी थी। मेले में खूब बिक्री हुई थी रसप्रिया पोथी की। विदापत नाचवालों ने गा-गाकर जनप्रिया बना दिया था रसप्रिया को।

खेत के 'आल' पर झरजामुन की छाया में पँचकौड़ी मिरदंगिया बैठा हुआ है; मोहना की राह देख रहा है।···जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते है।···कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूकना भूल जायेगी क्या? ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है! पांच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था।···पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे-भरे पौधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है। तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती थी—रस की डाली। वे गाने लगते थे बिरहा, चांचर, लगनी। खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का ख्याल करके गाये जाते है। रिमझिम वर्षा में बारहमासा, चिलचिलाती धूप में बिरहा, चांचर और लगनी :

"हां···रे, हल जोते हलवाहा भैया रे···
खुरपी रे चलावे···म-ज-दू-र!
एहि···रे, धनी मोरा हे रूसलि···।"

खेतों में काम करते हलवाहों और मजदूरों से कोई बिरही पूछ रहा है, कातर स्वर में—उसकी रूठी हुई धनी को इस राह में जाते देखा है किसी ने···

अब तो दोपहरी नीरस कटती है, मानो किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है।

आसमान में चक्कर काटते हुए चील ने टिहकारी भरी, "टि···ई···टि-हि-क!"

मिरदंगिया ने गाली दी, "शैतान!"

उसको छोड़कर मोहना दूर भाग गया है। वह आतुर होकर प्रतीक्षा कर रहा है। जी करता है, दौड़कर उसके पास चला जाये। दूर चरते हुए मवेशियों के झुंडों की ओर बार-बार वह बेकार देखने की चेष्टा करता। सब धुंधला!

उसने अपनी झोली टटोलकर देखा—आम है, मूढ़ी है।···उसे भूख लगी। मोहना के सूखे मुंह की याद आयी और भूख मिट गयी।

मोहना जैसे सुंदर, सुशील लड़कों की खोज में ही उसकी जिंदगी के अधिकांश दिन बीते है।··· विदापत नाच में नाचनेवाले 'नटुआ' का अनुसंधान खेल नहीं। ···सवर्णों के घर में नहीं, छोटी जाति के लोगों के यहां मोहना जैसे लड़की-मुंहा लड़के हमेशा पैदा नहीं होते। ये अवतार लेते है समय-समय पर जदा-जदा ही···

मैथिल ब्राह्मणों, कायस्थों और राजपूतों के यहां विदापतवालों की बड़ी इज्जत होती थी।···अपनी बोली—मिथिलाम—में नटुआ के मुंह से 'जनम

अवधि हम रूप निहारत सुनकर वे निहाल हो जाते थे। इसलिए हर मंडली का 'मूलगैन' नटुआ की खोज में गाँव-गाँव भटकता फिरता था—ऐसा लड़का, जिसे सजा-धजाकर नाच में उतारते ही दर्शकों में एक फुसफुसाहट फैल जाये।

"ठीक ब्राह्मणी की तरह लगता है। है न?"

"मधुकांत ठाकुर की बेटी की तरह···।"

"न: ! छोटी चंपा जैसी सूरत है !"

पँचकौड़ी गुनी आदमी है। दूसरी-दूसरी मंडली मे मूलगैन और मिरदंगिया की अपनी-अपनी जगह होनी। पँचकौड़ी मूलगैन भी था और मिरदंगिया भी। गले में मृदंग लटकाकर बजाते हुए वह गाता था, नाचता था। एक सप्ताह में ही नया लड़का भाँवरी देकर परवेश में उतरने योग्य नाच सीख लेता था।

नाच और गाना सिखाने में कभी उसे कठिनाई नहीं हुई; मृदंग के स्पष्ट 'बोल' पर लड़कों के पाँव स्वयं ही थिरकने लगते थे। लड़कों के जिद्दी माँ-बाप मे निबटना मुश्किल व्यापार होता था। विशुद्ध मैथिली में और भी शहद लपेटकर वह फुसलाता···

"किसन कन्हैया भी नाचते थे। नाच तो एक गुण है।—अरे, जाचक कहो या दसदुआरी। चोरी-डकैती और आवारागर्दी मे अच्छा है अपना-अपना 'गुन' दिखाकर लोगों को रिझाकर गुजारा करना।"

एक बार उसे लड़के की चोरी भी करनी पड़ी थी।···बहुत पुरानी बात है! इतनी मार लगी थी कि···बहुत पुरानी बात है।

पुरानी ही सही, बात तो ठीक है।

"रमपिरिया बजाते समय तुम्हारी उँगली टेढ़ी हुई थी। ठीक है न?"

मोहन न जाने कब लौट आया।

मिरदंगिया के चेहरे पर चमक लौट आयी। वह मोहन की ओर एक टक-टकी लगाकर देखने लगा···यह गुणवान मर रहा है। धीरे-धीरे, तिल-तिल कर वह खो रहा है। लाल-लाल होंठों पर बीड़ी की कालिख लग गयी है। पेट में तिल्ली है जरूर !···

मिरदंगिया वैद्य भी है। एक झुंड बच्चों का बाप धीरे-धीरे एक पारिवारिक डॉक्टर की योग्यता हासिल कर लेता है।···उत्सवों के बासी-टटका भोज्यान्नों की प्रतिक्रिया कभी-कभी बहुत बुरी होती। मिरदंगिया अपने साथ नमक-सुलेमानी, चानमार-पाचन और कुनैन की गोली हमेशा रखता था।···लड़कों को सदा गरम पानी के साथ हल्दी की बुकनी खिलाता। पीपल, काली मिर्च, अदरक वगैरह को घी में भूनकर शहद के साथ सुबह-शाम चटाता।···गरम पानी!

पोटली से मूढ़ी और आम निकालते हुए मिरदंगिया बोला, "हाँ, गरम पानी। तेरी तिल्ली बढ़ गयी है, गरम पानी पियो।"

"यह तुमने कैसे जान लिया ? फारबिसगंज के डागडर बाबू भी कह रहे थे, तिल्ली बढ़ गयी है। दवा···।"

आगे कहने की जरूरत नहीं। मिरदंगिया जानता है, मोहना जैसे लड़कों के पेट की तिल्ली चिता पर ही गलती है। क्या होगा पूछकर कि दवा क्यों नहीं करवाते !

"माँ भी कहती है, हल्दी की बुकनी के साथ रोज गरम पानी। तिल्ली गल जायेगी।"

मिरदंगिया ने मुस्कुराकर कहा, "बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ !"

केले के सूखे पत्तल पर मूढ़ी और आम रखकर उसने बड़े प्यार से कहा, "आओ, एक मुट्ठी खा लो।"

"नहीं, मुझे भूख नहीं।"

किंतु मोहना की आँखों मे रह-रहकर कोई झाँकता था, मूढ़ी और आम को एक साथ निगल जाना चाहता था।···भूखा, बीमार, भगवान !

"आओ, खा लो बेटा !···रसपिरिया नही सुनोगे ?"

माँ के सिवा, आज तक किसी अन्य व्यक्ति ने मोहना को इस तरह प्यार से कभी परोसे भोजन पर नही बुलाया।···लेकिन, दूसरे चरवाहे देख ले तो माँ से कह देंगे।·· भीख का अन्न !

"नहीं, मुझे भूख नही।"

मिरदंगिया अप्रतिभ हो जाता है। उसकी आँखे फिर सजल हो जाती है।

मिरदंगिया ने मोहना जैसे दर्जनों सुकुमार बालको की सेवा की है। अपने बच्चों को भी शायद वह इतना प्यार नही दे सकता।···और अपना बच्चा ! हुं !···अपना-पराया ? अब तो सब अपने, सब पराये।···

"मोहन !"

"कोई देख लेगा तो ?"

"तो क्या होगा ?"

"माँ से कह देगा। तुम भीख माँगते हो न ?"

"कौन भीख माँगता है ?" मिरदंगिया के आत्मसम्मान को इस भोले लड़के ने बेवजह ठेस लगा दी। उसके मन की झाँपी मे कुंडलीकार सोया हुआ साँप फन फैलाकर फुफकार उठा, "ए-स्साला ! मारेंगे वह तमाचा कि···"

"ए ! गाली क्यो देते हो !" मोहना ने डरते-डरते प्रतिवाद किया।

वह उठ खड़ा हुआ, पागलो का क्या विश्वास ?

आसमान मे उड़ती हुई चील ने फिर टिंहकारी भरी—"टि-ही···ई···टि-टि-ग !"

"मोहना !" मिरदंगिया की आवाज गंभीर हो गयी।

मोहना जरा दूर जाकर खड़ा हो गया।

"किसने कहा तुमसे कि मैं भीख माँगता हूँ? मिरदंग बजाकर, पदावली गाकर, लोगों को रिझाकर पेट पालता हूँ।···तुम ठीक कहते हो, भीख का ही अन है यह। भीख का ही फल है यह।···मैं नहीं दूंगा।···तुम बैठो, मैं रसपिरिया सुना दूं।"

मिरदंगिया का चेहरा धीरे-धीरे विकृत हो रहा है।···आसमान में उड़नेवाली चील अब पेड़ की डाली पर आ बैठी है।···टिं-टिं-हिं टिंटिक!

मोहना डर गया। एक डग, दो डग···दे दौड़। वह भागा।

एक बीघा दूर जाकर उसने चिल्लाकर कहा, "डायन ने बान मारकर तुम्हारी उँगली टेढ़ी कर दी है। झूठ क्यों कहते हो कि रसपिरिया बजाते समय···"

'ऐ! कौन है यह लड़का? कौन है यह मोहना!···रमपतिया भी कहती थी, डायन ने बान मार दिया है।'

"मोहना!"

मोहना ने जाते-जाते चिल्लाकर कहा, "करैला!" 'अच्छा, तो मोहना यह भी जानता है कि मिरदंगिया 'करैला' कहने से चिढ़ता है!···कौन है यह मोहना?'

मिरदंगिया आतंकित हो गया। उसके मन में एक अज्ञात भय समा गया। वह थर-थर काँपने लगा। उसमें कमलपुर के बाबुओं के यहाँ जाने का उत्साह भी नहीं रहा।···सुबह शोभा मिसर के लड़के ने ठीक ही कहा था।

उसकी आँखों से आँसू झरने लगे।

जाते-जाते मोहना डंक मार गया। उसके अधिकांश शिष्यों ने ऐसा ही व्यवहार किया है उसके साथ। नाच सीखकर फुर्र से उड़ जाने का बहाना खोजने वाले एक-एक लड़के की बातें उसे याद हैं।

सोनमा ने तो गाली ही दी थी, 'गुरुगिरी करता है, चोट्टा!'

रमपतिया आकाश की ओर हाथ उठाकर बोली थी, 'हे दिनकर! साच्छी रहना। मिरदंगिया ने फुसलाकर मेरा सर्वनाश किया है। मेरे मन में कभी चोर नहीं था। हे सुरुज भगवान! इस दसदुआरी कुत्ते का अंग-अंग फूटकर···।'

मिरदंगिया ने अपनी टेढ़ी उँगली को हिलाते हुए एक लंबी साँस ली।··· रमपतिया? जोधन गुरुजी की बेटी रमपतिया? जिस दिन वह पहले-पहल जोधन की मंडली में शामिल हुआ था—रमपतिया बारहवें में पाँव रख रही थी।··· बाल-विधवा रमपतिया पदों का अर्थ समझने लगी थी। काम करते-करते वह गुनगुनाती, 'नव अनुरागिनी राधा, किछु नहिं मानय बाधा।'···मिरदंगिया मूलगैनी सीखने गया था और गुरुजी ने उसे मृदंग धरा दिया था···आठ वर्ष तक तालीम पाने के बाद जब गुरुजी ने स्वजात पँचकौड़ी से रमपतिया के चुमौना की

बात बतायी तो मिरदंगिया सभी ताल-मात्रा भूल गया। जोधन गुरुजी से उसने अपनी जात छिपा रखी थी। रमपतिया से उसने झूठा परेम किया था। गुरुजी की मंडली छोड़कर वह रातोंरात भाग गया। उसने गाँव आकर अपनी मंडली बनायी, लड़कों को सिखाया-पढ़ाया और कमाने-खाने लगा।···लेकिन, वह मूलगैन नहीं हो सका कभी। मिरदंगिया ही रहा सब दिन।···जोधन गुरुजी की मृत्यु के बाद, एक बार गुलाबबाग मेले में रमपतिया से उसकी भेंट हुई थी। रमपतिया उसी से मिलने आयी थी। पँचकौड़ी ने साफ जवाब दे दिया था, 'क्या झूठ-फरेब जोड़ने आयी है? कमलपुर के नंदूबाबू के पास क्यों नहीं जाती, मुझे उल्लू बनाने आयी है। नंदूबाबू का घोड़ा बारह बजे रात को···।' चीख उठी थी रमपतिया, 'पाँचू!···चुप रहो!'

उसी रात रसपिरिया बजाते समय उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी थी। मृदंग पर जमनिका देकर वह परबेस का ताल बजाने लगा। नटुआ ने डेढ़ मात्रा बेताल होकर प्रवेश किया तो उसका माथा ठनका। परबेस के बाद उसने नटुआ को झिड़की दी, 'ए स्साला! थप्पड़ों से गाल लाल कर दूँगा।'···और रसपिरिया की पहली कड़ी ही टूट गयी। मिरदंगिया ने ताल को सँभालने की बहुत चेष्टा की। मृदंग की सूखी चमड़ी जी उठी, दाहिने पूरे पर लावा-फरही फूटने लगे और ताल कटते-कटते उसकी उँगली टेढ़ी हो गयी। झूठी टेढ़ी उँगली।···हमेशा के लिए पँचकौड़ी की मंडली टूट गयी। धीरे-धीरे इलाके से विद्यापति-नाच ही उठ गया। अब तो कोई विद्यापति की चर्चा भी नहीं करते हैं।···धूप-पानी से परे, पँचकौड़ी का शरीर ठंडी महफिलों में ही पनपा था।···बेकार जिंदगी में मृदंग ने बड़ा काम दिया। बेकारी का एकमात्र सहारा—मृदंग!

एक युग से वह गले में मृदंग लटकाकर भीख माँग रहा है—धा-तिंग, धा-तिंग!

वह एक आम उठाकर चूसने लगा—लेकिन, लेकिन,·· लेकिन···मोहना को डायन की बात कैसे मालूम हुई?

उँगली टेढ़ी होने की खबर सुनकर रमपतिया दौड़ी आयी थी, घंटों उँगली को पकड़कर रोती रही थी, 'हे दिनकर, किसने इतनी बड़ी दुश्मनी की? उसका बुरा हो।···मेरी बात लौटा दो भगवान! गुस्से में कही हुई बातें। नहीं, नहीं। पाँचू, मैंने कुछ भी नहीं किया। जरूर किसी डायन ने बान मार दिया है।'

मिरदंगिया ने आँखें पोछते हुए ढलते हुए सूरज की ओर देखा।···इस मृदंग को कलेजे से सटाकर रमपतिया ने कितनी रातें काटी हैं!···मिरदंग को उसने अपनी छाती से लगा लिया।

पेड़ की डाली पर बैठी हुई चील ने उड़ते हुए जोड़े से कुछ कहा—टिं-टिं-हिक्!

"ए स्पाल्ला !" उसने चील को गाली दी। तंबाकू चुनियाकर मुंह में डाल ली और मृदंग के पूरे पर उँगलियाँ नचाने लगा—धिरिनागि, धिरिनागि, धिरिनागि-धिनता !

पूरी जमनिका वह नहीं बजा सका। बीच में ही ताल टूट गया।

—अ्-कि-हे-ए-ए-हा-आआ-ह-हा !

सामने झरबेरी के जंगल के उस पार किसी ने सुरीली आवाज में, बड़े समारोह के साथ रसप्रिया की पदावली उठायी :

"न-व-वृंदा-वन, न-व-न-व-तरु-ग-न, न-व-नव विकसित फूल···"

मिरदंगिया के सारे शरीर में एक लहर दौड़ गयी। उसकी उँगलियाँ स्वयं ही मृदंग के पूरे पर थिरकने लगी। गाय-बैलों के झुंड दोपहर की उतरती छाया में आकर जमा होने लगे।

खेतों में काम करनेवालों ने कहा, "पागल है। जहाँ जी चाहा, बैठकर बजाने लगता है।"

"बहुत दिन के बाद लौटा है।"

"हम तो समझते थे कि कहीं मर-खप गया।"

रसप्रिया की सुरीली रागिनी ताल पर आकर कट गयी। मिरदंगिया का पागलपन अचानक बढ़ गया। वह उठकर दौड़ा। झरबेरी की झाड़ी के उस पार कौन है? कौन है यह शुद्ध रसप्रिया गानेवाला ?···इस जमाने में रसप्रिया का रसिक··? झाड़ी में छिपकर मिरदंगिया ने देखा, मोहना तन्मय होकर दूसरे पद की तैयारी कर रहा है। गुनगुनाहट बंद करके उसने गले को साफ किया। मोहना के गले में राधा आकर बैठ गयी है !···क्या बंदिश है !

"न-दी-बह नयनक नी···र !

आहो···पललि बहए ताहि नी···र !"

मोहन बेसुध होकर गा रहा था। मृदंग के बोल पर वह झूम-झूमकर गा रहा था। मिरदंगिया की आँखें उसे एकटक निहार रही थी और उसकी उँगलियाँ फिरकी की तरह नाचने को व्याकुल हो रही थीं !···चालीस वर्ष का अधपागल युगों के बाद भावावेश में नाचने लगा।···रह-रहकर वह अपनी विकृत आवाज में पदों की कड़ी धरता—फोंय-फोंय, सोंय-सोंय !

धिरनागि-धिनता !

"दुहु रस···म·· य तनु-गुने नहीं ओर।

लागल दुहुक न भाँगय जो-र।"

मोहना के आधे काले और आधे लाल होंठों पर नयी मुस्कुराहट दौड़ गयी। पद समाप्त करते हुए वह बोला, "इस्स ! टेढ़ी उँगली पर भी इतनी तेजी !"

मोहना हाँफने लगा। उसकी छाती की हड्डियाँ !

···उफ ! मिरदंगिया धम्म से जमीन पर बैठ गया, "कमाल ! कमाल !··· किससे सीखे ? कहाँ सीखी तुमने पदावली ? कौन है तुम्हारा गुरु ?"

मोहना ने हँसकर जवाब दिया, "सीखूंगा कहाँ ? माँ तो रोज गाती है।··· प्रातकी मुझे बहुत याद है, लेकिन अभी तो उसका समय नहीं।"

"हाँ बेटा ! वेताले के साथ कभी मत गाना-बजाना। जो कुछ भी है, सब चला जायेगा।···समय-कुसमय का भी ख्याल रखना। लो, अब आम खा लो।"

मोहना बेझिझक आम लेकर चूसने लगा।

"एक और लो।"

मोहना ने तीन आम खाये और मिरदंगिया के विशेष आग्रह पर दो मुट्ठी मूढ़ी भी फाँक गया।

"अच्छा, अब एक बात बताओगे मोहना ! तुम्हारे माँ-बाप क्या करते हैं ?"

"बाप नहीं है, अकेली माँ है। बाबू लोगों के घर कुटाई-पिसाई करती है।"

"और तुम नौकरी करते हो ! किसके यहाँ ?"

"कमलपुर के नंदूबाबू के यहाँ।"

"नंदूबाबू के यहाँ ?"

मोहना ने बताया, उसका घर सहरसा में है। तीसरे साल सारा गाँव कोसी मैया के पेट मे चला गया। उसकी माँ उसे लेकर अपने ममहर आयी है···कमलपुर।

"कमलपुर में तुम्हारी माँ के मामू रहते हैं ?"

मिरदंगिया कुछ देर तक चुपचाप सूर्य की ओर देखता रहा।···नंदूबाबू—मोहना—मोहना की माँ !

"डायनवाली बात तुम्हारी माँ कह रही थी ?"

"हाँ।"

"और एक बार सामदेव झा के यहाँ जनेऊ में तुमने गिरधर-पट्टी मंडलीवालों का मिरदंग छीन लिया था।···बेताला बजा रहा था। ठीक है न ?"

मिरदंगिया की खिचड़ी दाढ़ी मानो अचानक सफेद हो गयी। उसने अपने को सम्हालकर पूछा, "तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?"

"अजोधादास।"

"अजोधादास ?"

बूढ़ा अजोधादास, जिसके मुंह में न बोल, न आँख में लोर।···मंडली मे गठरी ढोना था। बिना पैसे का नौकर बेचारा अजोधादास !

"बड़ी सयानी है तुम्हारी माँ।" एक लंबी साँस लेकर मिरदंगिया ने अपनी झोली से एक छोटा बटुआ निकाला। लाल-पीले कपड़ों के टुकड़ो को खोलकर कागज की एक पुड़िया निकाली उसने।

मोहना ने पहचान लिया, "लोट ? क्या है, लोट ?"

"हाँ, नोट है ।"

"कितने रुपयेवाला है ? पँचटकिया। ऐं···दसटकिया ? जरा छूने दोगे ? कहाँ से लाये ?" मोहना एक ही साँस में सब-कुछ पूछ गया, "सब दसटकिया हैं ?"

"हाँ, सब मिलाकर चालीस रुपये हैं ।" मिरदंगिया ने एक बार इधर-उधर निगाहें दौड़ायीं; फिर फुसफुसाकर बोला, "मोहना बेटा! फारबिसगंज के डागडर बाबू को देकर बढ़िया दवा लिखा लेना ।···खट्टा-मिट्ठा परहेज करना ।···गरम पानी जरूर पीना ।"

"रुपये मुझे क्यों देते हो ?"

"जल्दी रख ले, कोई देख लेगा ।"

मोहना ने भी एक बार चारो ओर नजर दौड़ायी । उसके होंठों की कालिख और गहरी हो गयी ।

मिरदंगिया बोला, "बीड़ी-तंबाकू भी पीते हो ? खबरदार !"

वह उठ खड़ा हुआ ।

मोहना ने रुपये ले लिये ।

"अच्छी तरह गाँठ मे बाँध ले । माँ से कुछ मत कहना ।

"और हाँ, यह भीख का पैसा नहीं । बेटा, यह मेरी कमाई के पैसे हैं । अपनी कमाई के···।"

मिरदंगिया ने जाने के लिए पाँव बढ़ाया ।

"मेरी माँ खेत मे घास काट रही है । चलो न !" मोहना ने आग्रह किया ।

मिरदंगिया रुक गया । कुछ सोचकर बोला, "नहीं मोहना ! तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ 'महारानी' है, मैं महाभिखारी दसदुआरी हूँ । जाचक, फकीर···! दवा से जो पैसे बचें, उनका दूध पीना ।"

मोहना की बड़ी-बड़ी आँखें कमलपुर के नंदूबाबू की आँखों जैसी हैं···।

"रे मो-ह-ना-रे-हे ! बैल कहाँ हैं रे ?"

"तुम्हारी माँ पुकार रही है शायद ।"

"हाँ । तुमने कैसे जान लिया ?"

"रे मो-ह-ना-रे-हे !"

एक गाय ने सुर-में-सुर मिलाकर अपने बछड़े को बुलाया ।

गाय-बैलों के घर लौटने का समय हो गया । मोहना जानता है, माँ बैल हाँककर ला रही होगी । झूठ-मूठ उसे बुला रही है । वह चुप रहा ।

"जाओ ।" मिरदंगिया ने कहा, "माँ बुला रही है । जाओ ।···अब से मैं पदावली नहीं, रसपिरिया नहीं, निरगुन गाऊँगा । देखो, मेरी उँगली शायद सीधी हो रही है । शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल ?···"

"अरे, चलू मन, चलू मन—ससुरार जइवे हो रामा,

कि आहो रामा,

नैहिरा में अगिया लगायब रे-की···।"

खेतों की पगडंडी झरबेरी के जंगल के बीच होकर जाती है। निरगुन गाता हुआ मिरदंगिया झरबेरी की झाड़ियों में छिप गया।

"ले। यहाँ अकेला खड़ा होकर क्या करता है? कौन बजा रहा था मृदंग रे?" घास का बोझा सिर पर लेकर मोहना की माँ खड़ी है।

"पँचकौड़ी मिरदंगिया।"

"ऐं, वह आया है? आया है वह?" उसकी माँ ने बोझ जमीन पर पटकते हुए पूछा।

"मैंने उसके ताल पर रसपिरिया गाया है। कहता था, इतना शुद्ध रसपिरिया कौन गा सकता है आजकल!···उसकी उँगली अब ठीक हो जायेगी।"

माँ ने बीमार मोहना को आह्लाद से अपनी छाती से सटा लिया।

"लेकिन तू तो हमेशा उसकी टोकरी-भर शिकायत करती थी—बेईमान है, गुरु-दरोही है, झूठा है!"

"है ···! वैसे लोगों की संगत ठीक नहीं। खबरदार, जो उसके साथ फिर कभी गया! दसदुआरी जाचकों से हेलमेल करके अपना ही नुकसान होता है।··· चल, उठा बोझ!"

मोहना ने बोझ उठाते समय कहा, "जो भी हो, गुनी आदमी के साथ रसपिरिया···।"

"चोप! रसपिरिया का नाम मत ले।"

अजीब है माँ! जब गुस्सायेगी तो बाघिन की तरह और जब खुश होती है तो गाय की तरह हुँकारती आयेगी और छाती से लगा लेगी। तुरत खुश, तुरत नाराज।···

दूर से मृदंग की आवाज आयी—धा-तिंग, धा-तिंग!

मोहना की माँ खेत की ऊबड़-खाबड़ मेड़ पर चल रही थी। ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची। घास का बोझ गिरकर खुल गया। मोहना पीछे-पीछे मुँह लटकाकर जा रहा था। बोला, "क्या हुआ, माँ?"

"कुछ नहीं।"

—धा-तिंग, धा-तिंग!

मोहना की माँ खेत की मेड़ पर बैठ गयी। जेठ की शाम से पहले जो पुरवैया चलती है, धीरे-धीरे तेज हो गयी।···मिट्टी की सोंधी सुगंध हवा में धीरे-धीरे घुलने लगी।

—धा-तिंग, धा-तिंग!

"मिरदंगिया और कुछ बोलता था, बेटा ?" मोहना की माँ आगे कुछ न बोल सकी।

"कहता था, तुम्हारे जैसा गुणवान बेटा पाकर तुम्हारी माँ महारानी है, मैं तो दसदुआरी हूँ···।"

"झूठा, बेईमान !" मोहना की माँ आँसू पोंछकर बोली, "ऐसे लोगों की संगत कभी मत करना।"

मोहन चुपचाप खड़ा रहा।

(1955)

तीसरी कसम, अर्थात् मारे गये गुलफाम

हिरामन गाड़ीवान की पीठ में गुदगुदी लगती है।···

पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हिरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार मोरंग, राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कंट्रोल के जमाने में चोर-बाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है। लेकिन कभी तो ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में !···

कंट्रोल का जमाना ! हिरामन कभी भूल सकता है उस जमाने को ! एक बार चार खेप सीमेंट और कपड़े की गाँठों से भरी गाड़ी, जोगबनी से बिराटनगर पहुँचाने के बाद हिरामन का कलेजा पोख्ता हो गया था। फारबिसगंज का हर चोर-व्यापारी उसको पक्का गाड़ीवान मानता। उसके बैलों की बड़ाई बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी खुद करते, अपनी भाषा में···।

गाड़ी पकड़ी गई पाँचवीं बार, सीमा के इस पार तराई में।

महाजन का मुनीम उसी की गाड़ी पर गाँठों के बीच चुक्की-मुक्की लगाकर छिपा हुआ था। दारोगा साहब की डेढ़ हाथ लंबी चोरबत्ती की रोशनी कितनी तेज होती है, हिरामन जानता है। एक घंटे के लिए आदमी अंधा हो जाता है, एक छटक भी पड़ जाये आँखों पर ! रोशनी के साथ कड़कती हुई आवाज—ऐ-य ! गाड़ी रोको ! भाग्ने, गोली मार देंगे !···

बीसो गाड़ियाँ एक साथ अचानक रुक गयीं। हिरामन ने पहले ही कहा था—यह बीस विषावेगा ! दारोगा साहब उसकी गाड़ी में दुबके हुए मुनीम पर रोशनी डालकर पिशाची हँसी हँसे—हा-हा-हा ! मुड़ीमजी-ई-ई-ई ! ही-ही-ही !···ऐ-य, साला गाड़ीवान, मुँह क्या देखता है रे-ए-ए ! कंबल हटाओ इस बोरे के मुँह पर से ! हाथ की छोटी लाठी से मुनीमजी के पेट में खोंचा मारते हुए कहा था—इस बोरे को ! स-स्साला !··

बहुत पुरानी अखज-अदावत होगी दारोगा साहब और मुनीमजी में। नहीं तो उतना रुपया कबूलने पर भी पुलिस-दारोगा का मन न डोले भला ! चार हजार

तो गाड़ी पर बैठा-बैठा ही दे रहा था। लाठी से दूसरी बार खोंचा मारा दारोगा ने। पाँच हजार ! फिर खोंचा—उतरो पहले।···

मुनीम को गाड़ी से नीचे उतारकर दारोगा ने उसकी आँखों पर रोशनी डाल दी। फिर दो सिपाहियों के साथ सड़क के बीस-पच्चीस रस्सी दूर झाड़ी के पास ले गये। गाड़ीवान और गाड़ियों पर पाँच-पाँच बंदूक वाले सिपाहियों का पहरा !··· हिरामन समझ गया, इस बार निस्तार नहीं···जेल ? हिरामन को जेल का डर नहीं। लेकिन उसके बैल ? न जाने कितने दिनों तक बिना चारा-पानी के सरकारी फाटक में पड़े रहेंगे—भूखे-प्यासे। फिर नीलाम हो जायेंगे। भैया-भौजी को वह मुँह नहीं दिखा सकेगा कभी।···नीलाम की बोली उसके कानों के पास गूंज गयी—एक-दो-तीन ! दारोगा और मुनीम में बात पट नहीं रही थी शायद।

हिरामन की गाड़ी के पास तैनात सिपाही ने अपनी भाषा में दूसरे सिपाही से धीमी आवाज में पूछा—का हो ? मामला गोल होखी का ?—फिर खैनी-तंबाकू देने के बहाने उस सिपाही के पास चला गया।···

एक-दो-तीन ! तीन-चार गाड़ियों की आड़। हिरामन ने फैसला कर लिया। उसने धीरे से अपने बैलो के गले की रस्सियाँ खोल ली। गाड़ी पर बैठे-बैठे दोनों को जुड़वाँ बाँध दिया। बैल समझ गये, उन्हें क्या करना है। हिरामन उतरा, जुती हुई गाड़ी में बाँस की टिकटी लगाकर बैलों के कंधों को बेलाग किया। दोनों के कानों के पास गुदगुदी लगा दी और मन-ही-मन बोला—चलो भैयन, जान बचेगी तो ऐसी-ऐसी सग्गड़ गाड़ी बहुत मिलेंगी।···एक-दो-तीन ! नौ-दो-ग्यारह !···

गाड़ी की आड़ मे सड़क के किनारे दूर तक घनी झाड़ी फैली हुई थी। दम साधकर तीनो प्राणियों ने झाड़ी को पार किया—बेखटके, बेआहट ! फिर एक ले, दो ले—दुलकी चाल ! दोनो बैल सीना तानकर फिर तराई के घने जंगलों में घुस गये। राह सूंघते, नदी-नाला पार करते हुए भागे पूंछ उठाकर। पीछे-पीछे हिरामन। रात-भर भागते रहे थे तीनो जन।···

घर पहुँचकर दो दिन तक बेसुध पड़ा रहा हिरामन। होश में आते ही उसने कान पकड़कर कसम खाई थी—अब कभी ऐसी चीजों की लदनी नही लादेंगे। चोरबाजारी का माल ? तोबा-तोबा !···पता नहीं, मुनीमजी का क्या हुआ ! भगवान जाने, उसकी सग्गड़ गाड़ी का क्या हुआ ! असली इस्पाती लोहे की धुरी थी। दोनो पहिये तो नही, एक पहिया एकदम नया था। गाड़ी में रंगीन डोरियों के फुंदने बड़े जतन से गूंथ गए थे।···

दो कसमें खाई है उसने। एक—चोरबाजारी का माल नहीं लादेंगे। दूसरी—बाँस। अपने हर भाड़ेदार से वह पहले ही पूछ लेता है—चोरी-चकारी वाली चीज तो नहीं ? और, बाँस ? बाँस लादने के लिए पचास रुपये भी दे कोई, हिरामन की

गाड़ी नहीं मिलेगी। दूसरे की गाड़ी देखे।···

बाँस लदी हुई गाड़ी! गाड़ी के चार हाथ आगे बाँस का अगुआ निकला रहता है और पीछे की ओर चार हाथ पिछुआ! काबू के बाहर रहती है गाड़ी हमेशा। सो बेकाबू वाली लदनी और खरैहिया। शहर वाली बात! तिस पर बाँस का अगुआ पकड़कर चलने वाला भाड़ेदार का महा भकुआ नौकर, लड़की-स्कूल की ओर देखने लगा। बस, मोड़ पर घोड़ागाड़ी से टक्कर हो गयी। जब तक हिरामन बैलों की रस्सी खींचे, तब तक घोड़ागाड़ी की छतरी बाँस के अगुआ में फँस गयी। घोड़ागाड़ी वाले ने तड़ातड़ चाबुक मारते हुए गाली दी थी!···

बाँस की लदनी ही नहीं, हिरामन ने खरैहिया शहर की लदनी भी छोड़ दी। और जब फारबिसगंज से मोरंग का भाड़ा ढोना शुरू किया तो गाड़ी ही पार!··· कई वर्षों तक हिरामन ने बैलों को आधेदारी पर जोता। आधा भाड़ा गाड़ीवाले का और आधा बैलवाले का। हिस्स! गाड़ीवानी करो मुफ्त! आधेदारी की कमाई से बैलों के ही पेट नहीं भरते। पिछले साल ही उसने अपनी गाड़ी बनवाई है।

देवी मैया भला करे उस सरकस कंपनी के बाघ का। पिछले साल इसी मेले में बाघगाड़ी को ढोने वाले दोनों घोड़े मर गए। चंपानगर से फारबिसगंज मेला आने के समय सरकस कंपनी के मैनेजर ने गाड़ीवान पट्टी में ऐलान करके कहा—सौ रुपया भाड़ा मिलेगा!—एक-दो गाड़ीवान राजी हुए। लेकिन, उसके बैल बाघगाड़ी से दस हाथ दूर ही डर से डिकरने लगे—बाँ-आँ! फिर रस्सी तुड़ाकर भागे। हिरामन ने अपने बैलों की पीठ सहलाते हुए कहा—देखो भैयन, ऐसा मौका फिर हाथ नहीं आएगा। यही मौका है अपनी गाड़ी बनवाने का। नहीं तो फिर आधेदारी···। अरे, पिंजड़े में बंद बाघ का क्या डर? मोरंग की तराई में दहाड़ते हुए बाघों को देख चुके हो। फिर पीठ पर मैं तो हूँ।···

गाड़ीवानों के दल में तालियाँ पटपटा उठी थीं एक साथ। सभी की लाज रख ली हिरामन के बैलों ने। हुमककर आगे बढ़ गये और बाघगाड़ी में जुट गये—एक-एक करके। सिर्फ दाहिने बैल ने जुतने के बाद ढेर-सा पेशाब किया। हिरामन ने दो दिन तक नाक से कपड़े की पट्टी नहीं खोली थी। बड़ी गद्दी के बड़े सेठजी की तरह नकबंधन लगाये बिना बघाइन गंध बर्दाश्त नहीं कर सकता कोई।

···बाघगाड़ी की गाड़ीवानी की है हिरामन ने। कभी ऐसी गुदगुदी नहीं लगी पीठ में। आज रह-रहकर उसकी गाड़ी में चंपा का फूल महक उठता है। पीठ में गुदगुदी लगने पर वह अँगोछे से पीठ झाड़ लेता है।

हिरामन को लगता है, दो वर्ष से चंपानगर मेले की भगवती मैया उस पर प्रसन्न हैं। पिछले साल बाघगाड़ी जुट गयी। नकद एक सौ रुपये भाड़े के अलावा बुताद, चाह-बिस्कुट और रास्ते-भर बंदर-भालू और जोकर का तमाशा देखा सो

फोकट में !

और, इस बार यह जनानी सवारी। औरत है या चंपा का फूल ! जब से गाड़ी में बैठी है, गाड़ी मह-मह महक रही है।

कच्ची सड़क के एक छोटे-से खड्डु में गाड़ी का दाहिना पहिया बेमौके हिच-कोला खा गया। हिरामन की गाड़ी से एक हल्की 'सिस' की आवाज आयी। हिरामन ने दाहिने बैल को दुआली से पीटते हुए कहा—साला ! क्या समझता है, बोरे की लदनी है क्या ?

—अहा ! मारो मत !

अनदेखी औरत की आवाज ने हिरामन को अचरज में डाल दिया। बच्चों की बोली जैसी महीन, फेनूगिलासी बोली !

मथुरामोहन नौटंकी कंपनी में लैला बनने वाली हीराबाई का नाम किसने नहीं सुना होगा भला ! लेकिन हिरामन की बात ही निराली है। उसने सात साल तक लगातार मेलों की लदनी लादी है, कभी नौटंकी थियेटर या बायस्कोप-सिनेमा नहीं देखा। लैला या हीराबाई का नाम भी उसने नहीं सुना कभी। देखने की क्या बात ! सो मेला टूटने के पंद्रह दिन पहले आधी रात की बेला में काली ओढ़नी में लिपटी औरत को देखकर उसके मन में खटका अवश्य लगा था। बक्स ढोने वाले नौकर ने गाड़ीभाड़ा में मोल-मोलाई करने की कोशिश की तो ओढ़नीवाली ने सिर हिलाकर मना कर दिया। हिरामन ने गाड़ी जोतते हुए नौकर से पूछा—क्यों भैया, कोई चोरी-चकारी का माल-वाल तो नहीं ?—हिरामन को फिर अचरज हुआ। बक्स ढोने वाले आदमी ने हाथ के इशारे से गाड़ी हाँकने को कहा और अँधेरे में गायब हो गया। हिरामन को मेले में तंबाकू बेचने वाली बूढ़ी की काली साड़ी की याद आयी थी।···

ऐसे में कोई क्या गाड़ी हाँके !

एक तो पीठ में गुदगुदी लग रही है। दूसरे, रह-रहकर चंपा का फूल खिल जाता है उसकी गाड़ी में। बैलों को डाँटो तो इस-बिस करने लगती है उसकी सवारी।···उसकी सवारी ! औरत अकेली, तंबाकू बेचने वाली बूढ़ी नहीं ! आवाज सुनने के बाद वह बार-बार मुड़कर टप्पर में एक नजर डाल देता है; अँगोछे से पीठ झाड़ता है।···भगवान ही जाने, क्या लिखा है इस बार उसकी किस्मत में ! गाड़ी जब पूरब की ओर मुड़ी, एक टुकड़ा चाँदनी उसकी गाड़ी में समा गया। सवारी की नाक पर एक जुगनू जगमगा उठा। हिरामन को सब-कुछ रहस्यमय अजगुत-अजगुत लग रहा है। सामने चंपानगर से सिंधिया गाँव तक फैला हुआ मैदान !···कहीं डाकिन-पिशाचिन तो नहीं ?

हिरामन की सवारी ने करवट ली। चाँदनी पूरे मुखड़े पर पड़ी तो हिरामन चीखते-चीखते रुक गया—अरे बाप ! ई तो परी है !

परी की आँखें खुल गयीं। हिरामन ने सामने सड़क की ओर मुंह कर लिया और बैलों को टिटकारी दी। वह जीभ को तालू से सटाकर टि-टि-टि-टि आवाज निकालता है। हिरामन की जीभ न जाने कब से सूखकर लकड़ी जैसी हो गयी थी।

—भैया, तुम्हारा नाम क्या है?

हू-ब-हू फेनूगिलास!···हिरामन के रोम-रोम बज उठे। मुंह से बोली नहीं निकली। उसके दोनों बैल भी कान खड़े करके इस बोली को परखते हैं।

—मेरा नाम?···नाम मेरा है, हिरामन!

उसकी सवारी मुस्कुराती है···मुस्कुराहट में खुशबू है।

—तब तो मीता कहूँगी, भैया नहीं—मेरा नाम भी हीरा है।

—इस्स! हिरामन को परतीत नहीं, मर्द और औरत के नाम में फर्क होता है।

—हाँ जी, मेरा नाम भी हीराबाई है।

कहाँ हिरामन और कहाँ हीराबाई, बहुत फर्क है!

हिरामन ने अपने बैलों को झिड़की दी—कान चुनियाकर गप सुनने से ही तीस कोस मंजिल कटेगी क्या? इस बायें नाटे के पेट में शैतानी भरी है।—हिरामन ने बायें बैल को दुआली की हल्की झड़प दी।

—मारो मत; धीरे-धीरे चलने दो। जल्दी क्या है?

हिरामन के सामने सवाल उपस्थित हुआ, वह क्या कहकर 'गप' करे हीराबाई से? 'तोहे' कहे या 'अहाँ'? उसकी भाषा में बड़ों को 'अहाँ' अर्थात् 'आप' कहकर संबोधित किया जाता है। कचराही बोली में दो-चार सवाल-जवाब चल सकता है, दिलखोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है किसी से।

आसिन-कातिक को भोर में छा जाने वाले कुहासे से हिरामन को पुरानी चिढ़ है। बहुत बार वह सड़क भूलकर भटक चुका है। किंतु आज की भोर के इस घने कुहासे में भी वह मगन। नदी के किनारे घने खेतों से फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गंध आती है। पर्व-पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है। उसकी गाड़ी में फिर चंपा का फूल खिला। उस फूल में एक परी बैठी है।··· जै भगवती!

हिरामन ने आँख की कनखियों से देखा, उसकी सवारी···मीता···हीराबाई की आँखें गुजुर-गुजुर उसको हेर रही है। हिरामन के मन में कोई अजानी रागिनी बज उठी। सारी देह सिरसिरा रही है। वह बोला—बैल को मारते हैं तो आपको बहुत बुरा लगता है?

हीराबाई ने परख लिया, हिरामन सचमुच हीरा है।

चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा, देहाती नौजवान अपनी गाड़ी और अपने बैलों के सिवाय दुनिया की किसी और बात में विशेष दिलचस्पी नहीं लेता। घर में बड़ा भाई है, खेती करता है। बाल-बच्चेवाला आदमी है। हिरामन भाई से बढ़कर भाभी की इज्जत करता है। भाभी से डरता भी है। हिरामन की भी शादी हुई थी। बचपन में ही गौने के पहले ही दुलहिन मर गई। हिरामन को अपनी दुलहिन का चेहरा अब याद नहीं···दूसरी शादी? दूसरी शादी न करने के अनेक कारण हैं। भाभी की जिद्द : कुमारी लड़की से ही हिरामन की शादी करवायेगी। कुमारी का मतलब हुआ, पाँच-सात साल की लड़की। कौन मानता है सरधा-कानून ? कोई लड़की वाला दोब्याहू को अपनी लड़की गरज में पड़ने पर ही दे सकता है। भाभी उसकी तीन-सत्त करके बैठी है, सो बैठी है। भाभी के आगे भैया की भी नहीं चलती !···अब हिरामन ने तय कर लिया है, शादी नहीं करेगा। कौन बलाय मोल लेने जाये, ब्याह करके फिर गाड़ीवानी क्या करेगा कोई ! और सब-कुछ चाहे छूट जाये, गाड़ीवानी नहीं छोड़ सकता हिरामन।

हीराबाई ने हिरामन के जैसा निश्छल आदमी बहुत कम देखा है। पूछा—आपका घर कौन जिला में पड़ता है ?—कानपुर नाम सुनते ही जो उसकी हँसी छूटी, तो बैल भड़क उठे। हिरामन हँसते समय सिर नीचा कर लेता है। हँसी बंद होने पर उसने कहा—वाह रे कानपुर ! तब तो नाकपुर भी होगा ?—और जब हीराबाई ने कहा कि नाकपुर भी है, तो वह हंसते-हँसते दुहरा हो गया।

—वाह रे दुनिया ! क्या-क्या नाम होता है ! कानपुर, नाकपुर !—हिरामन ने हीराबाई के कान के फूल को गौर से देखा। नाक की नकछवि का नग देखकर सिहर उठा—लहू की बूँद !

हिरामन ने हीराबाई का नाम नहीं सुना कभी । नौटंकी कंपनी की औरत को वह बाईजी नहीं समझता है।···कंपनी में काम करनेवाली औरतों को वह देख चुका है। सरकस कंपनी की मालकिन अपनी दोनों जवान बेटियों के साथ बाघगाड़ी के पास आती थी, बाघ को चारा-पानी देती थी, प्यार भी करती थी खूब। हिरामन के बैलों को भी डबलरोटी-बिस्कुट खिलाया था बड़ी बेटी ने।

हिरामन होशियार है। कुहासा छँटते ही अपनी चादर से टप्पर मे परद कर दिया—बस, दो घंटा ! उसके बाद रास्ता चलना मुश्किल है। कातिक की सुबह की धूप आप बर्दाश्त न कर सकियेगा। कजरी नदी के किनारे तेगछिया के पास गाड़ी लगा देंगे। दोपहरिया काटकर···।

सामने से आती हुई गाड़ी को दूर से ही देखकर वह सतर्क हो गया। लीक और बैलों पर ध्यान लगाकर बैठ गया। राह काटते हुए गाड़ीवान ने पूछा—मेला टूट रहा है क्या भाई !

हिरामन ने जवाब दिया, वह मेले की बात नहीं जानता। उसकी गाड़ी पर 'बिदागी' (नैहर या ससुराल जाती हुई लड़की) है। न जाने किस गाँव का नाम बता दिया हिरामन ने।

—छतापुर पचीरा कहाँ है?

—कहीं हो, यह लेकर आप क्या करियेगा?—हिरामन अपनी चतुराई पर हँसा। परदा डाल देने पर भी पीठ में गुदगुदी लगती है।

हिरामन परदे के छेद से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दाँत देख रही है।...मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्ही-चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी हिरामन ने। छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही कौड़ियों की पाँत।

तेगछिया के तीनों पेड़ दूर से ही दिखाई पड़ते हैं। हिरामन ने परदे को जरा सरकाते हुए कहा—देखिए, यही है तेगछिया। दो पेड़ जटामासी बड़ हैं और एक...उस फूल का क्या नाम है? आपके कुरते पर जैसा फूल छपा हुआ है, वैसा ही। खूब महकता है। दो कोस दूर तक गंध जाती है। उस फूल को खमीरा तंबाकू में डालकर पीते भी हैं लोग।

—और उस अमराई की आड़ से कई मकान दिखाई पड़ते हैं, वहाँ कोई गाँव है या मंदिर?

हिरामन ने बीड़ी सुलगाने के पहले पूछा—बीड़ी पीयें? आपको गंध तो नहीं लगेगी?—वही है नामलगर ड्योढ़ी। जिस राजा के मेले से हम लोग आ रहे हैं, उसी का दियाद-गोतिया है।...जा रे जमाना!

हिरामन ने 'जा रे जमाना' कहकर बात को चाशनी में डाल दिया। हीराबाई ने टप्पर के परदे को तिरछे खोंस दिया।...हीराबाई की दंत-पंक्ति!

—कौन जमाना?—ठुड्डी पर हाथ रखकर साग्रह बोली।

—नामलगर ड्योढ़ी का जमाना! क्या था, और क्या से क्या हो गया?

हिरामन गप रसाने का भेद जानता है। हीराबाई बोली—तुमने देखा था वह जमाना?

—देखा नहीं, सुना है।...राज कैसे गया, बड़ी हैफवाली कहानी है। सुनते हैं, घर में देवता ने जन्म ले लिया। कहिए भला, देवता आखिर देवता हैं! हैं या नहीं? इंद्रासन छोड़कर मिरतुभुवन में जन्म ले ले तो उसका तेज कैसे सम्हाल सकता है कोई। सूरजमुखी फूल की तरह माथे के पास तेज खिला रहता। लेकिन नजर का फेर, किसी ने नहीं पहचाना। एक बार उपलैन में लाट साहब मय लाटनी के, हवागाड़ी से आये थे। लाट ने भी नहीं, पहचाना आखिर लाटनी ने। सूरजमुखी तेज देखते ही बोल उठी—ए मैन राजा साहब, सुनो, यह आदमी का बच्चा नहीं है, देवता है।

हिरामन ने नाटनी की बोली की नकल उतारते समय खूब डैम-फैट-लैट किया। हीराबाई दिल खोलकर हँसी।···हँसते समय उसकी सारी देह दुलकती है।

हीराबाई ने अपनी ओढ़नी ठीक कर ली। तब हिरामन को लगा कि···लगा कि···

—तब ? उसके बाद क्या हुआ मीता ?

—इस्स ! कत्था सुनने का बड़ा सौक है आपको ?···लेकिन, काला आदमी राजा क्या महाराजा भी हो जाये, रहेगा काला ही। साहेब के जैसा अक्किल कहाँ से पायेगा ! हँसकर बात उड़ा दी सभी ने। तब रानी को बार-बार सपना देने लगा देवता ! सेवा नहीं कर सकते तो जाने दो, नहीं रहेंगे तुम्हारे यहाँ। इसके बाद देवता का खेल सुरू हुआ। सबसे पहले दोनों दंतार हाथी मरे, फिर घोड़ा, फिर पटपटांग···।

—पटपटांग क्या ?

हिरामन का मन पल-पल में बदल रहा है। मन में सतरंगा छाता धीरे-धीरे खुल रहा है। उसको लगता है···उसकी गाड़ी पर देवकुल की औरत सवार है। देवता आखिर देवता है।

—पटपटांग ! धन-दौलत, माल-मवेशी सब साफ ! देवता इंद्रासन चला गया।

हीराबाई ने ओझल होते हुए मंदिर के कंगूरे की ओर देखकर लंबी साँस ली।

—लेकिन देवता ने जाते-जाते कहा—इस राज्य में कभी एक छोड़कर दो बेटा नहीं होगा। धन हम अपने साथ ले जा रहे है, गुन छोड़ जाते हैं।—देवता के साथ सभी देव-देवी चले गये, सिर्फ सरोसती मैया रह गयी। उसी का मंदिर है।

देशी घोड़ों पर पाट के बोझ लादे हुए बनियों को आते देखकर हिरामन ने टप्पर के परदे को गिरा दिया। बैलों को ललकारकर बिदेशिया नाच का बंदना गीत गाने लगा—जै मैया सरोसती, अरजी करत बानी; हमरा पर होखू सहाई हे मैया; हमरा पर होखू सहाई !

घोड़लद्दू बनियों से हिरामन ने हुलसकर पूछा—क्या भाव पटुआ खरीदते हैं महाजन ?

लंगड़े घोड़े वाले बनिये ने बटगमनी जवाब दिया—नीचे सत्ताइस-अट्ठाइस, ऊपर तीस। जैसा माल वैसा भाव !

जवान बनिये ने पूछा—मेले का क्या हाल-चाल है, भाई ? कौन नौटंकी कंपनी का खेल हो रहा है, रौता कंपनी या मथुरामोहन ?

—मेले का हाल मेलेवाले जानें ! हिरामन ने फिर छत्तापुर पचीरा का नाम लिया।

सूरज दो बाँस ऊपर आ गया था। हिरामन अपने बैलों से बात करने लगा—एक कोस जमीन ! जरा दम बाँधकर चलो। प्यास की बेला हो गयी न ! याद है, उस बार तेगछिया के पास सरकस कंपनी के जोकड़ और बंदर नचाने वाले साहब में झगड़ा हो गया था ! जोकड़वा ठीक बंदर की तरह दाँत किटकिटाकर किकियाने लगा था।···न जाने किस-किस देस-मुलुक के आदमी आते है।

हिरामन ने फिर परदे के छेद से देखा, हीराबाई एक कागज के टुकड़े पर आँख गड़ाकर बैठी है। हिरामन का मन आज हलके सुर में बँधा है। उसको तरह-तरह के गीतों की याद आती है। बीस-पचीस साल पहले, बिदेसिया, बलवाही, छोकरा नाच वाले एक से एक गजल-खेमटा गाते थे। अब तो, भोंपा में भोंपू-भोंपू करके कौन गीत गाते है लोग ? जा रे जमाना ! छोकरा नाच के गीत की याद आई हिरामन को :

"सजनवा बैरी हो ग'य हमार ! सजनवा···!
अरे, चिठिया हो तो सब कोई बाँचे; चिठिया हो तो···
हाय ! करमवा, हाय करमवा···
कोई न बाँचे हमारो, सजनवा···हो करमवा···"

गाड़ी की बल्ली पर उँगलियों से ताल देकर गीत को काट दिया हिरामन ने। छोकरा नाच के मनुआँ-नटुवा का मुँह हीराबाई जैसा ही था।···कहाँ चला गया वह जमाना ? हर महीने गाँव मे नाचने वाले आते थे। हिरामन ने छोकरा नाच के चलते अपनी भाभी की न जाने कितनी बोली-ठोली सुनी थी। भाई ने घर से निकल जाने को कहा था।

आज हिरामन पर माँ सरस्वती सहाय है, लगता है। हीराबाई बोली—वाह, कितना बढ़िया गाते हो तुम !

हिरामन का मुँह लाल हो गया। वह सिर नीचा करके हँसने लगा।

आज तेगछिया पर रहने वाले महावीर स्वामी भी सहाय है हिरामन पर। तेगछिया के नीचे एक भी गाड़ी नही। हमेशा गाड़ी और गाड़ीवानों की भीड़ लगी रहती है यहाँ। सिर्फ एक साइकिलवाला बैठकर सुस्ता रहा है। महावीर स्वामी को सुमरकर हिरामन ने गाडी रोकी। हीराबाई परदा हटाने लगी। हिरामन ने पहली बार आँखो से बात की हीराबाई से—साइकिलवाला इधर ही टकटकी लगाकर देख रहा है।

बैलो को खोलने के पहले बाँस की टिकटी लगाकर गाड़ी को टिका दिया। फिर साइकिलवाले की ओर बार-बार घूरते हुए पूछा—कहाँ जाना है ? मेला ? कहाँ से आना हो रहा है ? बिसनपुर से ? बस, इतनी ही दूर में थसथसाकर थक

गये ?···आ रे जवानी !

साइकिलवाला दुबला-पतला नौजवान मिनमिनाकर कुछ बोला और बीड़ी सुलगाकर उठ खड़ा हुआ।

हिरामन दुनिया-भर की निगाह से बचाकर रखना चाहता है हीराबाई को। उसने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देख लिया—कहीं कोई गाड़ी या घोड़ा नहीं।

कजरी नदी की दुबली-पतली धारा तेगछिया के पास आकर पूरब की ओर मुड़ गयी है। हीराबाई पानी में बैठी हुई भैंसों और उनकी पीठ पर बैठे हुए बगुलों को देखती रही।

हिरामन बोला—जाइये, घाट पर मुंह-हाथ धो आइये।

हीराबाई गाड़ी से नीचे उतरी। हिरामन का कलेजा धड़क उठा।·· नहीं, नहीं ! पाँव सीधे हैं, टेढ़े नहीं। लेकिन, तलुआ इतना लाल क्यों है ? हीराबाई घाट की ओर चली गयी : गाँव की बहू-बेटी की तरह सिर नीचा करके, धीरे-धीरे। कौन कहेगा कि कंपनी की औरत है ?···औरत नहीं, लड़की। शायद कुमारी ही है।

हिरामन टिकटी पर टिकी गाड़ी पर बैठ गया। उसने टप्पर में झाँककर देखा। एक बार इधर-उधर देखकर हीराबाई के तकिये पर हाथ रख दिया। फिर तकिये पर केहुनी डालकर झुक गया, झुकता गया। खुशबू उसकी देह में समा गयी। तकिये के गिलाफ पर कढ़े फूलों को उँगलियों से छूकर उसने सूंघा, हाय रे हाय ! इतनी सुगंध ! हिरामन को लगा, एक साथ पाँच चिलम गाँजा फूंककर वह उठा है। हीराबाई के आईने में उसने अपना मुंह देखा। आँखें उसकी इतनी लाल क्यों हैं ?

हीराबाई लौटकर आयी तो उसने हँसकर कहा—अब आप गाड़ी का पहरा दीजिए, मैं आता हूँ तुरंत।

हिरामन ने अपनी सफरी झोली से सहेजी हुई गंजी निकाली। गमछा झाड़कर कंधे पर लिया और हाथ में बालटी लटकाकर चला। उसके बैलों ने बारी-बारी से 'हुँक-हुँक' करके कुछ कहा। हिरामन ने जाते-जाते उलटकर कहा—हाँ, हाँ, प्यास सभी को लगी है। लौटकर आता हूँ तो घास दूंगा, बदमासी मत करो !

बैलों ने कान हिलाया।

नहा-धोकर कब लौटा हिरामन, हीराबाई को नहीं मालूम। कजरी की धारा को देखते-देखते उसकी आँखों में रात की उचटी हुई नींद लौट आयी थी। हिरामन पास के गाँव से जलपान के लिए दही-चूड़ा-चीनी ले आया है।

—उठिये, नींद तोड़िए ! दो मुट्ठी जलपान कर लीजिए !

हीराबाई आँख खोलकर अचरज में पड़ गयी। एक हाथ में मिट्टी के नये

बरतन में दही, केले के पत्ते। दूसरे हाथ में बालटी-भर पानी। आँखों में आत्मीयतापूर्ण अनुरोध।

—इतनी चीजें कहाँ से ले आये?

—इस गाँव की दही नामी है।...चाहे तो फारबिसगंज जाकर ही पाइयेगा।

हिरामन की देह की गुदगुदी मिट गयी। हीराबाई ने कहा—तुम भी पत्तल बिछाओ।...क्यों? तुम नहीं खाओगे तो समेटकर रख लो अपनी झोली में। मैं भी नहीं खाऊँगी।

—इस्स!—हिरामन लजाकर बोला, अच्छी बात! आप खा लीजिए पहले।

—पहले-पीछे क्या? तुम भी बैठो।

हिरामन का जी जुड़ा गया। हीराबाई ने अपने हाथ से उसका पत्तल बिछा दिया, पानी छींट दिया, चूड़ा निकालकर दिया।—इस्स! धन्न है, धन्न है!—हिरामन ने देखा—भगवती मैया भोग लगा रही है। लाल होंठों पर गोरस का परस!...पहाड़ी तोते को दूध-भात खाते देखा है?

दिन ढल गया।

टप्पर में सोयी हीराबाई और जमीन पर दरी बिछाकर सोए हिरामन की नींद एक ही साथ खुली। मेले की ओर जाने वाली गाड़ियाँ तेगछिया के पास रुकी हैं। बच्चे कचर-पचर कर रहे हैं।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। टप्पर के अंदर झाँककर इशारे से कहा—दिन ढल गया।—गाड़ी में बैलों को जोतते समय उसने गाड़ीवानों के सवालों का कोई जवाब नहीं दिया। गाड़ी हाँकते हुए बोला—सिरपुर बाजार के इसपिताल की डागदरनी है। रोगी देखने जा रही है। पास ही कुड़मागाम।

हीराबाई छत्तापुर पचीरा का नाम भूल गयी। गाड़ी जब कुछ दूर आगे बढ़ आयी तो उसने हँसकर पूछा—पत्तापुर छपीरा!

हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये हिरामन के—पत्तापुर छपीरा! हाँ-हाँ! वे लोग छत्तापुर पचीरा के ही गाड़ीवान थे, उनसे कैसे कहता! ही-ही!

हीराबाई मुस्कुराती हुई गाँव की ओर देखने लगी।

सड़क तेगछिया गाँव के बीच से निकलती है। गाँव के बच्चों ने परदेवाली गाड़ी देखी और तालियाँ बजा-बजाकर रटी हुई पंक्तियाँ दुहराने लगे:

"लाली-लाली डोलिया में
लाली रे दुलहिनिया
पान खाये...!"

हिरामन हँसा।···दुलहिनिया···लाली-लाली डोलिया! दुलहिनिया पान खाती है; दुलहा की पगड़ी में मुँह पोंछती है। "ओ दुलहिनिया, तेगछिया गाँव के बच्चों को याद रखना। लौटती बेर गुड़ का लड्डू लेती अइयो। लाख बरिस तेरा दुलहा जीये!" कितने दिनों का हौसला पूरा हुआ है हिरामन का! ऐसे कितने सपने देखे हैं उसने!···वह अपनी दुलहिन को लेकर लौट रहा है। हर गाँव के बच्चे तालियाँ बजाकर गा रहे हैं। हर आँगन से झाँककर देख रही हैं औरतें। मर्द लोग पूछते हैं, कहाँ की गाड़ी है, कहाँ जायेगी? उसकी दुलहिन डोली का परदा सरकाकर देखती है। और भी कितने सपने···

गाँव से बाहर निकलकर उसने कनखियों से टप्पर के अंदर देखा, हीराबाई कुछ सोच रही है। हिरामन भी किसी सोच में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद वह गुनगुनाने लगा :

"सजन रे झूठ मति बोलो, खुदा के पास जाना है!
नहीं हाथी, नहीं घोड़ा, नहीं गाड़ी—
वहाँ पैदल ही जाना है। सजन रे!···"

हीराबाई ने पूछा—क्यों मीता? तुम्हारी अपनी बोली में कोई गीत नहीं क्या?

हिरामन अब बेखटक हीराबाई की आँखों में आँखें डालकर बात करता है। कंपनी की औरत भी ऐसी होती हैं? सरकस की मालकिन मेम थी। लेकिन हीराबाई? गाँव की बोली में गीत सुनना चाहती है! वह खुलकर मुस्कुराया—गाँव की बोली आप समझियेगा?

—हूँ-ऊँ-ऊँ!—हीराबाई ने गर्दन हिलायी। कान के झुमके हिल गये।

हिरामन कुछ देर तक बैलों को हाँकता रहा चुपचाप। फिर बोला—गीत जरूर ही सुनिएगा? नहीं मानिएगा?···इस्स! इतना सौख गाँव का गीत सुनने का है आपको!—तब लीक छोड़नी होगी। चालू रास्ते में कैसे गीत गा सकता है कोई!—हिरामन ने बायें बैल की रस्सी खींचकर दाहिने को लीक से बाहर किया और बोला—हरिपुर होकर नहीं जाएँगे तब।

चालू लीक को काटते देखकर हिरामन की गाड़ी के पीछे वाले गाड़ीवान ने चिल्लाकर पूछा—काहे हो गाड़ीवान, लीक छोड़कर बेलीक कहाँ उधर?

हिरामन ने हवा में दुआली घुमाते हुए जवाब दिया—कहाँ है बेलीक? वह सड़क ननपुर तो नहीं जायेगी।···फिर अपने-आप बड़बड़ाया—इस मुलुक के लोगों की यही आदत बुरी है। राह चलते एक सौ जिरह करेंगे। अरे भाई, तुमको जाना है, जाओ।···देहाती भुच्च सब!

ननपुर की सड़क पर गाड़ी लाकर हिरामन ने बैलों की रस्सी ढीली कर दी। बैलों ने दुलकी चाल छोड़कर कदम चाल पकड़ी।

हीराबाई ने देखा, सचमुच ननपुर की सड़क बड़ी सूनी है। हिरामन उसकी आँखों की बोली समझता है—घबड़ाने की बात नहीं। यह सड़क भी फारबिसगंज जायेगी, राह-घाट के लोग बहुत अच्छे हैं। एक घड़ी रात तक हम लोग पहुँच जाएँगे।

हीराबाई को फारबिसगंज पहुँचने की जल्दी नहीं। हिरामन पर उसको इतना भरोसा हो गया है कि डर-भय की कोई बात ही नहीं उठती है मन में। हिरामन ने पहले जी-भर मुस्कुरा लिया। कौन गीत गाए वह? हीराबाई को गीत और कथा दोनों का शौक है···इस्स! महुआ घटवारिन? वह बोला—अच्छा, जब आपको इतना शौक है तो सुनिये महुआ घटवारिन का गीत। इसमें गीत भी है, कथा भी है।

···कितने दिनों के बाद भगवती ने यह हौसला भी पूरा कर दिया। जै भगवती!

आज हिरामन अपने मन को खलास कर लेगा। वह हीराबाई की थमी हुई मुस्कुराहट को देखता रहा।

—सुनिये! आज भी परमान नदी में महुआ घटवारिन के कई पुराने घर हैं। इसी मुलुक की थी महुआ। थी तो घटवारिन, लेकिन सौ सतवती में एक थी। उसका बाप दारू-ताड़ी पीकर दिन-रात बेहोश पड़ा रहता। उसकी सौतेली माँ साच्छात राकसनी! बहुत बड़ी नजर-चालाक। रात में गाजा-दारू-अफीम चुराकर बेचने वाले से लेकर तरह-तरह के लोगों से उसकी जान-पहचान थी। सबसे घुट्टी-भर हेल-मेल। महुआ कुमारी थी। लेकिन काम कराते-कराते उसकी हड्डी निकाल दी थी राकसनी ने। जवान हो गयी। कहीं सादी-ब्याह की बात भी नहीं चलायी। एक रात की बात सुनिये।

हिरामन ने धीरे-धीरे गुनगुनाकर गला साफ किया :

"हे-अ-अ-अ सावना-भादवा के-र उमड़ल नदिया गे-मैं-यो-ओ-ओ मैयो गे रैनि भयावनि हे-ए-ए-ए; तड़का-तड़के धड़के करेज-आ-आ मोरा कि हमहुँ जे बारी नान्ही रे-ए-ए···!

ओ माँ! सावन-भादों की उमड़ी हुई नदी, भयावनी रात, बिजली कड़कती है, मैं बारी-क्वारी नन्ही बच्ची, मेरा कलेजा धड़कता है। अकेली कैसे जाऊँ घाट पर? सो भी एक परदेसी राही-बटोही के पैर में तेल लगाने के लिए। सत माँ ने अपनी बज्जर-किवाड़ी बंद कर ली। आसमान में मेघ हड़बड़ा उठे और हर-हराकर बरसा होने लगी। महुआ रोने लगी अपनी मरी माँ की याद करके। आज उसकी माँ रहती तो ऐसे दुरदिन में कलेजे में सटाकर रखती अपनी महुआ बेटी को। गे मइया, इसी दिन के लिए, यही दिखाने के लिए, तुमने कोख में रखा था? महुआ अपनी माँ पर गुस्साई—क्यों वह अकेली मर गयी?—जी-भर

कोसती हुई बोली।"

हिरामन ने लक्ष्य किया, हीराबाई तकिये पर केहुनी गड़ाकर, गीत में मगन एकटक उसकी ओर देख रही है।···खोई हुई सूरत कैसी भोली लगती है!

हिरामन ने गले में कँपकँपी पैदा की :

"हूँ-ऊँ-ऊँ रे डाइनियाँ मैयो मोरी-ई-ई, नोनवा चटाई काहे नाहिं
मारलि सौरी घर-अ-अ। एहि दिनवाँ खातिर छिनरो धिया
तेंहु पोसलि कि नेनू-दूध उटगन···"

हिरामन ने दम लेते हुए पूछा—भाखा भी समझती हैं कुछ या खाली गीत ही सुनती हैं?

हीरा बोली—समझती हूँ। उटगन माने उबटन·· जो देह में लगाते हैं।

हिरामन ने विस्मित होकर कहा—इस्स!···सो रोने-धोने से क्या होय! सौदागर ने पूरा दाम चुका दिया था महुआ का। बाल पकड़कर घसीटता हुआ नाव पर चढ़ा और माँझी को हुकुम दिया, नाव खोलो, पाल बाँधो! पालवाली नाव परवाली चिड़िया की तरह उड़ चली। रात-भर महुआ रोती-छटपटाती रही। सौदागर के नौकरों ने बहुत डराया-धमकाया—चुप रहो, नहीं तो उठाकर पानी में फेंक देंगे। बस, महुआ को बात सूझ गयी। भोर का तारा मेघ की आड़ से जरा बाहर आया, फिर छिप गया। इधर महुआ भी छपाक् कूद पड़ी पानी में।···सौदागर का एक नौकर महुआ को देखते ही मोहित हो गया था। महुआ की पीठ पर वह भी कूदा। उलटी धारा में तैरना खेल नहीं, सो भी भरी भादों की नदी में। महुआ असल में घटवारिन की बेटी थी। मछली भी भला थकती है पानी में! सफरी मछली जैसी फरफराती, पानी चीरती भागी चली जा रही है और उसके पीछे सौदागर का नौकर पुकार-पुकारकर कहता है—महुआ, जरा थमो, तुमको पकड़ने नहीं आ रहा, तुम्हारा साथी हूँ। जिंदगी-भर साथ रहेंगे हम लोग। लेकिन···"

हिरामन का बहुत प्रिय गीत है यह। महुआ घटवारिन गाते समय उसके सामने सावन-भादों की नदी उमड़ने लगती है।—अमावस्या की रात, और घने बादलों में रह-रहकर बिजली चमक उठती है। उसी चमक में लहरों से लड़ती हुई बारी-कुमारी महुआ की झलक उसे मिल जाती है। सफरी मछली की चाल और तेज हो जाती है। उसको लगता है, वह खुद सौदागर का नौकर है। महुआ कोई बात नहीं सुनती। परतीत करती नहीं। उलटकर देखती भी नहीं। और वह थक गया है तैरते-तैरते।···

इस बार लगता है महुआ ने अपने को पकड़ा दिया। खुद ही पकड़ में आ गयी। उसने महुआ को छू लिया है, पा लिया है, उसकी थकन दूर हो गयी है। पंद्रह-बीस साल तक उमड़ी हुई नदी की उलटी धारा में तैरते हुए उसके मन को

किनारा मिल गया है। आनंद के आँसू कोई रोक नहीं मानते।···

उसने हीराबाई से अपनी गीली आँखें चुराने की कोशिश की। किंतु हीरा तो उसके मन में बैठी न जाने कब से सब-कुछ देख रही थी। हिरामन ने अपनी काँपती हुई बोली को काबू में लाकर बैलों को झिड़की दी—इस गीत में न जाने क्या है कि सुनते ही दोनों थसथसा जाते हैं। लगता है, सौ मन बोझ लाद दिया किसी ने।

हीराबाई लंबी साँस लेती है। हिरामन के अंग-अंग में उमंग समा जाती है।

—तुम तो उस्ताद हो, मीता !

—इस्स !

आसिन-कातिक का सूरज दो बाँस दिन रहते ही कुम्हला जाता है। सूरज डूबने से पहले ही ननपुर पहुँचना है। हिरामन अपने बैलों को समझा रहा है—कदम खोलकर और कलेजा बाँधकर चलो।···ए···छि:-छि: ! बढ़ के भैयन ! ले-ले-ले-ए-हे-य !

ननपुर तक वह अपने बैलों को ललकारता रहा। हर ललकार के पहले वह अपने बैलों को बीती हुई बातों की याद दिलाता—याद नहीं, चौधरी की बेटी की बरात में कितनी गाड़ियाँ थीं, सबको कैसे मात किया था ! हाँ, वही कदम निकालो। ले-ले-ले ! ननपुर से फारबिसगंज तीन कोस ! दो घंटे और !

ननपुर के हाट पर आजकल चाय भी बिकने लगी है। हिरामन अपने लोटे में चाय भरकर ले आया।···कंपनी की औरत को जानता है। वह सारा दिन, घड़ी-घड़ी भर में चाय पीती रहती है। चाय है या जान !

हीरा हँसते-हँसते लोट-पोट हो रही है—अरे, तुमसे किसने कह दिया कि क्वारे आदमी को चाय नहीं पीनी चाहिए ?

हिरामन लजा गया। क्या बोले वह !···लाज की बात। लेकिन वह भोग चुका है एक बार। सरकस कंपनी की मेम के हाथ की चाय पीकर उसने देख लिया है। बड़ी गरम तासीर !

—पीजिए गुरुजी !—हीरा हँसी।

—इस्स !

ननपुर हाट पर दीया-बाती जल चुकी थी। हिरामन ने अपना सफरी लालटेन जलाकर पिछवा में लटका दिया।···आजकल शहर से पाँच कोस दूर गाँववाले भी अपने को शहरू समझने लगे हैं। बिना रोशनी की गाड़ी को पकड़कर चालान कर देते हैं। बारह बखेड़ा !

—आप मुझे गुरुजी मत कहिये।

—तुम मेरे उस्ताद हो। हमारे शास्तर में लिखा हुआ है : एक अच्छर

सिखानेवाला भी गुरु और एक राग सिखानेवाला भी उस्ताद !

—इस्स ! सास्तर-पुरान भी जानती है ?···मैंने क्या सिखाया ? मैं क्या···?

हीरा हँसकर गुनगुनाने लगी—हे-अ-अ-अ सावना-भादवा के-र···!

हिरामन अचरज के मारे गूँगा हो गया।···इस्स ! इतना तेज जेहन ! हू-ब-हू महुआ घटवारिन !

गाड़ी सीताधार की एक सूखी धारा की उतराई पर गड़गड़ाकर नीचे की ओर उतरी। हीराबाई ने हिरामन का कंधा धर लिया एक हाथ से। बहुत देर तक हिरामन के कंधे पर उसकी उँगलियाँ पड़ी रहीं। हिरामन ने नजर फिराकर कंधे पर केंद्रित करने की कोशिश की कई बार। गाड़ी चढ़ाई पर पहुँची तो हीरा की ढीली उँगलियाँ फिर तन गईं।

सामने फारबिसगंज शहर की रोशनी झिलमिला रही है। शहर से कुछ दूर हटकर मेले की रोशनी।···टप्पर में लटके लालटेन की रोशनी में छाया नाचती है आसपास।···डबडबाई आँखों से हर रोशनी सूरजमुखी फूल की तरह दिखाई पड़ती है।

फारबिसगंज तो हिरामन का घर-दुआर है।

न जाने कितनी बार वह फारबिसगंज आया है। मेले की लदनी लादी है। किसी औरत के साथ ? हाँ, एक बार। उसकी भाभी जिस साल आयी थी गौने में। इसी तरह तिरपाल से गाड़ी को चारों ओर से घेरकर बासा बनाया गया था।···

हिरामन अपनी गाड़ी को तिरपाल से घेर रहा है, गाड़ीवान पट्टी में। सुबह होते ही रौता नौटंकी कंपनी के मैनेजर से बात करके भरती हो जायेगी हीराबाई। परसों मेला खुल रहा है। इस बार मेले में पालचट्टी खूब जमी है।···बस, एक रात। आज रात-भर हिरामन की गाड़ी में रहेगी वह।···हिरामन की गाड़ी में नहीं, घर में !

—कहाँ की गाड़ी है ?···कौन, हिरामन ? किस मेले से ? किस चीज की लदनी है ?

गाँव-समाज के गाड़ीवान, एक-दूसरे को खोजकर, आसपास गाड़ी लगाकर बासा डालते हैं। अपने गाँव के लालमोहर, धुन्नीराम और पलटदास वगैरह गाड़ीवानों के दल को देखकर हिरामन अचकचा गया। उधर पलटदास टप्पर में झाँककर भड़का। मानो बाघ पर नजर पड़ गयी। हिरामन ने इशारे से सभी को चुप किया। फिर गाड़ी की ओर कनखी मारकर फुसफुसाया—चुप ! कंपनी की

औरत हूं, नौटंकी कंपनी की।

—कंपनी की-ई-ई-ई ?

एक नहीं, अब चार हिरामन ! चारों ने अचरज से एक-दूसरे को देखा।···'कंपनी' नाम में कितना असर है ! हिरामन ने लक्ष्य किया, तीनों एक साथ सट-कदम हो गये। लालमोहर ने जरा दूर हटकर बतियाने की इच्छा प्रकट की, इशारे से ही। हिरामन ने टप्पर की ओर मुंह करके कहा—होटिल तो नहीं खुला होगा कोई, हलवाई के यहां से पक्की ले आवें ?

—हिरामन, जरा इधर सुनो।···मैं कुछ नहीं खाऊंगी अभी। लो, तुम खा आओ।

—क्या है, पैसा ? इस्स !···पैसा देकर हिरामन ने कभी फारबिसगंज में कच्ची-पक्की नही खायी। उसके गांव के इतने गाड़ीवान हैं किस दिन के लिए ? वह छू नही सकता पैसा। उसने हीराबाई से कहा—बेकार, मेला-बाजार में हुज्जत मत कीजिये। पैसा रखिये।—मौका पाकर लालमोहर भी टप्पर के करीब आ गया। उसने सलाम करते हुए कहा—चार आदमी के भात में दो आदमी खुशी से खा सकते हैं। बासा पर भात चढ़ा हुआ है। हे-हें-हें ! हम लोग एकहि गांव के है। गौवां-गरामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहां खाएगा हिरामन ?

हिरामन ने लालमोहर का हाथ टीप दिया—बेसी भचर-भचर मत बको !

गाड़ी से चार रस्सी दूर जाते-जाते धुन्नीराम ने अपने कुलबुलाते हुए दिल की बात खोल दी—इस्स ! तुम भी खूब हो हिरामन ! उस साल कंपनी का बाघ, इस बार कंपनी की जनाना !

हिरामन ने दबी आवाज मे कहा—भाई रे, यह हम लोगों के मुलुक की जनाना नही कि लटपट बोली सुनकर भी चुप रह जाय। एक तो पच्छिम की औरत, तिस पर कंपनी की !

धुन्नीराम ने अपनी शंका प्रकट की—लेकिन कंपनी मे तो सुनते है पतुरिया रहती है।

—धत् !—सभी ने एक साथ उसको दुरदुरा दिया—कैसा आदमी है ! पतुरिया रहेगी कंपनी मे भला ? देखो इसकी बुद्धि !···सुना है, देखा तो नहीं है कभी ?

धुन्नीराम ने अपनी गलती मान ली। पलटदास को बात सूझी—हिरामन भाई, जनाना जात अकेली रहेगी गाड़ी पर ? कुछ भी हो, जनाना आखिर जनाना ही है। कोई जरूरत ही पड़ जाय !

यह बात सभी को अच्छी लगी। हिरामन ने कहा—बात ठीक है। पलट, तुम लौट जाओ, गाड़ी के पास ही रहना। और देखो, गपशप जरा होशियारी से करना। हां !

हिरामन की देह से अतर-गुलाब की खुशबू निकलती है। हिरामन करमसांड है। उस बार महीनों तक उसकी देह से बघाइन गंध नहीं गयी। लालमोहर ने हिरामन की गमछी सूँघ ली—ए-ह !

हिरामन चलते-चलते रुक गया—क्या करें लालमोहर भाई, जरा कहो तो ! बड़ी जिद्द करती है, कहती है नौटंकी देखना ही होगा।

—फोकट में ही ?···और गांव नहीं पहुँचेगी यह बात ?

हिरामन बोला—नहीं जी ! एक रात नौटंकी देखकर जिंदगी-भर बोली-ठोली कौन सुने ?···देसी मुर्गी, बिलायती चाल !

धुन्नीराम ने पूछा—फोकट में देखने पर भी तुम्हारी भौजाई बात सुनाएगी ?

लालमोहर के बासा के बगल में लकड़ी की दुकान लादकर आये हुए गाड़ीवानों का बासा है। बासा के मीर-गाड़ीवान मियाँजान बूढ़े ने सफरी गुड़गुड़ी पीते हुए पूछा—क्यों भाई, मीनाबाजार की लदनी लादकर कौन आया है ?

मीनाबाजार ! मीनाबाजार तो पतुरिया पट्टी को कहते है।···क्या बोलता है यह बूढ़ा मियाँ ?···लालमोहर ने हिरामन के कान में फुसफुसाकर कहा—तुम्हारी देह मह-मह महकती है। सच !

लहसनवाँ लालमोहर का नौकर गाड़ीवान है। उम्र में सबसे छोटा है। पहली बार आया है तो क्या ? बाबू-बबुआइनों के यहाँ बचपन से नौकरी कर चुका है। वह रह-रहकर वातावरण में कुछ सूँघता है, नाक सिकोड़कर। हिरामन ने देखा, लहसनवाँ का चेहरा तमतमा गया है।···कौन आ रहा है धड़धड़ाता हुआ ? कौन, पलटदास ? क्या है ?

पलटदास आकर खड़ा हो गया चुपचाप। उसका मुंह भी तमतमाया हुआ था।

हिरामन ने पूछा—क्या हुआ ? बोलते क्यों नही ?

क्या जवाब दे पलटदास ! हिरामन ने उसको चेतावनी दे दी थी, गपशप होशियारी से करना। वह चुपचाप गाड़ी की आसनी पर जाकर बैठ गया, हिरामन की जगह पर। हीराबाई ने पूछा—तुम भी हिरामन के साथ हो ?—पलटदास ने गरदन हिलाकर हामी भरी। हीराबाई फिर लेट गयी। चेहरा-मोहरा और बोली-बानी देख-सुनकर पलटदास का कलेजा काँपने लगा; न जाने क्यों। हाँ ! रामलीला में सिया सुकुमारी इसी तरह थकी लेटी हुई थी। जै ! सियावर रामचंद्र की जै !···पलटदास के मन में जै-जैकार होने लगा। वह दास-वैस्नव है, कीर्तनिया है। थकी हुई सीता महारानी के चरण टीपने की इच्छा प्रकट की उसने हाथ की उँगलियों के इशारे से; मानो हारमोनियम की पटरियों पर नचा रहा हो। हीराबाई तमककर बैठ गयी—अरे, पागल है क्या ? जाओ, भागो !···

पलटदास को लगा, गुस्साई हुई कंपनी की औरत की आँखों से चिनगारी

निकल रही है—छटक्-छटक् ! वह भागा !···

पलटदास क्या जवाब दे ! वह मेले से भी भागने का उपाय सोच रहा है। बोला—कुछ नहीं। हमको व्यापारी मिल गया। अभी ही टीशन जाकर माल लादना है। भात में तो अभी देर है। मैं लौट आता हूँ तब तक।

खाते समय धुन्नीराम और लहसनवाँ ने पलटदास की टोकरी-भर की—छोटा आदमी है। कमीना है। पैसे-पैसे का हिसाब जोड़ता है।—खाने-पीने के बाद लालमोहर के दल ने अपना बासा तोड़ दिया। धुन्नी और लहसनवाँ गाड़ी जोतकर हिरामन के बासा पर चले, गाड़ी की लीक धरकर। हिरामन ने चलते-चलते रुककर, लालमोहर से कहा—जरा मेरे इस कंधे को सूंघो तो। सूंघकर देखो न ?

लालमोहर ने कंधा सूंघकर आँखें मूंद लीं। मुंह से अस्फुट शब्द निकला—ए-ह !

हिरामन ने कहा—जरा-सा हाथ रखने पर इतनी खुसबू !···समझे !

लालमोहर ने हिरामन का हाथ पकड़ लिया—कंधे पर हाथ रखा था ? सच ?··सुनो हिरामन, नौटंकी देखने का ऐसा मौका फिर कभी हाथ नही लगेगा। हाँ !

—तुम भी देखोगे ?

लालमोहर की बत्तीसी चौराहे की रोशनी में झिलमिला उठी।

बासा पर पहुँचकर हिरामन ने देखा, टप्पर के पास खड़ा बतिया रहा है कोई हीराबाई से। धुन्नी और लहसनवाँ ने एक ही साथ कहा—कहाँ रह गये पीछे ? बहुत देर से खोज रही है कंपनी···!

हिरामन ने टप्पर के पास जाकर देखा—अरे, यह तो वही बक्सा ढोने वाला नौकर है, जो चंपानगर मेले में हीराबाई को गाड़ी पर बिठाकर अंधेरे में गायब हो गया था।

—आ गये, हिरामन ! अच्छी बात, इधर आओ।···यह लो अपना भाड़ा और यह लो अपनी दच्छिना। पच्चीस-पच्चीस, पचास !

हिरामन को लगा किसी ने आसमान से धकेलकर धरती पर गिरा दिया। किसी ने क्यों, इस बक्सा ढोनेवाले आदमी ने ! कहाँ से आ गया ! उसकी जीभ पर आई हुई बात जीभ पर ही रह गई—इस्स ! दच्छिना !···वह चुपचाप खड़ा रहा।

हीराबाई बोली— लो, पकड़ो। और सुनो, कल सुबह रौता कंपनी में आकर मुझसे भेंट करना। पास बनवा दूंगी।···बोलते क्यों नहीं ?

लालमोहर ने कहा—इलाम-बकसीस दे रही है मालकिन, ले लो हिरामन !

हिरामन ने कटकर लालमोहर की ओर देखा।···बोलने का जरा भी ढंग

नहीं इस लालमोहर को ?

धुन्नीराम की स्वगतोक्ति सभी ने सुनी, हीराबाई ने भी—गाड़ी-बैल छोड़कर नौटंकी कैसे देख सकता है कोई गाड़ीवान, मेले में।

हिरामन ने रुपया लेते हुए कहा—क्या बोलेंगे !—उसने हँसने की चेष्टा की।—कंपनी की औरत कंपनी में जा रही है। हिरामन का क्या !

बक्सा ढोनेवाला रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ा—इधर से।···हीराबाई जाते-जाते रुक गयी। हिरामन के बैलों को संबोधित करके बोली—अच्छा, मैं चली भैयन !

बैलों ने 'भैयन' शब्द पर कान हिलाये।

—भा-इ-यो, आज रात ! दि रौता संगीत नौटंकी कंपनी के स्टेज पर ! गुलबदन देखिये, गुलबदन ! आपको यह जानकर खुशी होगी कि मथुरामोहन कंपनी की मशहूर एक्ट्रेस मिस हीरादेवी, जिसकी एक-एक अदा पर हजार जान फिदा हैं, इस बार कंपनी में आ गयी हैं। याद रखिये ! आज की रात ! मिस हीरादेवी गुलबदन···

नौटंकी वालों के इस ऐलान से मेले की हर पट्टी में सरगर्मी फैल रही है।—"हीराबाई ! मिस हीरादेवी ! लैला, गुलबदन !···फिलिम एक्ट्रेस को मात करती है।···तेरी बाँकी अदा पर मैं खुद हूँ फिदा, तेरी चाहत को दिलबर बयाँ क्या करूँ ! यही ख्वाहिश है कि-इ-इ-इ तू मुझको देखा करे, और दिलोजान, मैं तुमको देखा करूँ ! किर्र-र्र-र्र-र्र···कड़ड़ड़ड़र्र-र्र-घन-घन-घन-धड़ाम !"

हर आदमी का दिल नगाड़ा हो गया है।

लालमोहर दौड़ता-हाँफता बासा पर आया—ऐ, ऐ हिरामन, यहाँ क्या बैठे हो, चलकर देखो कैसा जै-जैकार हो रहा है। मैं बाजा-गाजा, छापी-फाहरम के साथ हीराबाई की जै-जै कर रहा है।

हिरामन हड़बड़ाकर उठा। लहसनवाँ ने कहा—धुन्नी काका, तुम बासा पर रहो, मैं भी देख आऊँ।

धुन्नी की बात कौन सुनता है ! तीनों जन नौटंकी कंपनी की ऐलानिया पार्टी के पीछे-पीछे चलने लगे। हर नुक्कड़ पर रुककर, बाजा बंद करके ऐलान किया जाता है ! ऐलान के हर शब्द पर हिरामन पुलक उठता है। हीराबाई का नाम, नाम के साथ अदा-फिदा वगैरा सुनकर उसने लालमोहर की पीठ थपथपा दी—धन्न है, धन्न ! है या नही ?

लालमोहर ने कहा—अब बोलो ! अब भी नौटंकी नही देखोगे ? सुबह से ही धुन्नीराम और लालमोहर समझा रहे थे, समझाकर हार चुके थे·· कंपनी मे जाकर भेंट कर आओ। जाते-जाते पुरसिस कर गयी है। लेकिन हिरामन की बस एक बात—धत्, कौन भेंट करने जाए ! कंपनी की औरत कंपनी में गई। अब

उससे क्या लेना-देना ! चीन्हेगी भी नहीं !

वह मन ही मन रूठा हुआ था। ऐलान सुनने के बाद उसने लालमोहर से कहा—जरूर देखना चाहिए, क्यों लालमोहर ?

दोनों आपस में सलाह करके रौता कंपनी की ओर चले। खेमे के पास पहुँचकर हिरामन ने लालमोहर को इशारा किया, पूछताछ करने का भार लालमोहर के सिर। लालमोहर कचराही बोलना जानता है। लालमोहर ने एक काले कोट वाले से कहा—बाबू साहेब, जरा सुनिए तो।

काले कोट वाले ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—क्या है ? इधर क्यों ?

लालमोहर की कचराही बोली गड़बड़ा गयी। तेवर देखकर बोला—गुल-गुल ···नहीं-नहीं···बुल-बुल···नहीं···।

हिरामन ने झट से सम्हाल दिया—हीरादेवी किधर रहती हैं, बता सकते हैं ?

उस आदमी की आँखें हठात् लाल हो गयीं। सामने खड़े नेपाली सिपाही को पुकारकर कहा—इन लोगों को क्यों आने दिया इधर ?

··हिरामन !··· वही फेनूगिलासी आवाज किधर से आयी ? खेमे के परदे को हटाकर हीराबाई ने बुलाया—यहाँ आ जाओ, अंदर।···देखो, बहादुर ! इसको पहचान लो। यह मेरा हिरामन है। समझे ?

नेपाली दरबान हिरामन की ओर देखकर जरा मुस्कुराया और चला गया। काले कोट वाले से जाकर कहा—हीराबाई का आदमी है। नहीं रोकने बोला !

लालमोहर पान ले आया नेपाली दरबान के लिए—खाया जाये !

—इस्स ! एक नहीं, पाँच पास। चारो अठनियाँ ! बोली कि जब तक मेले में हो, रोज रात मे आकर देख जाना। सबका खयाल रखती है ! बोली कि तुम्हारे और साथी है, सभी के लिए पास ले जाओ। कंपनी की औरतों की बात ही निराली होती है ! है या नहीं ?

लालमोहर ने लाल कागज के टुकड़ों को छूकर देखा—पास ! वाह रे हिरामन भाई !···लेकिन पाँच पास लेकर क्या होगा ? पलटदास तो फिर पलटकर आया ही नहीं है अभी तक।

हिरामन ने कहा—जाने दो अभागे को। तकदीर में लिखा नहीं।···हाँ, पहले गुरुकसम खानी होगी सभी को, कि गाँव-घर में यह बात एक पंछी भी न जान पाये।

लालमोहर ने उत्तेजित होकर कहा—कौन साला बोलेगा गाँव मे जाकर ? पलटा ने अगर बदमाशी की तो दूसरी बार से फिर साथ नहीं लाऊँगा।

हिरामन ने अपनी थैली आज हीराबाई के जिम्मे रख दी है। मेले का क्या ठिकाना ! किस्म-किस्म के पाकिटकाट लोग हर साल आते है। अपने साथी-

संगियों का भी क्या भरोसा ! हीराबाई मान गयी। हिरामन की कपड़े की काली थैली को उसने अपने चमड़े के बक्स में बंद कर दिया। बक्से के ऊपर भी कपड़े का खोल और अंदर भी झलमल रेशमी अस्तर ! मन का मान-अभिमान दूर हो गया।

लालमोहर और धुन्नीराम ने मिलकर हिरामन की बुद्धि की तारीफ की; उसके भाग्य को सराहा बार-बार। उसके भाई और भाभी की निंदा की, दबी जबान से। हिरामन के जैसा हीरा भाई मिला है, इसीलिए ! कोई दूसरा भाई होता तो···

लहसनवाँ का मुंह लटका हुआ है। ऐलान सुनते-सुनते न जाने कहाँ चला गया कि घड़ी-भर साँझ होने के बाद लौटा है। लालमोहर ने एक मालिकाना झिड़की दी है, गाली के साथ—सोहदा कहीं का !

धुन्नीराम ने चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाते हुए कहा—पहले यह फैसला कर लो कि गाड़ी के पास कौन रहेगा ?

—रहेगा कौन, यह लहसनवाँ कहाँ जायेगा ?

लहसनवाँ रो पड़ा—हे-ए-ए मालिक, हाथ जोड़ते हैं। एक्को झलक ! बस एक झलक !

हिरामन ने उदारतापूर्वक कहा—अच्छा-अच्छा, एक झलक क्यों, एक घंटा देखना। मैं आ जाऊँगा।

नौटंकी शुरू होने के दो घंटे पहले से ही नगाड़ा बजना शुरू हो जाता है। और नगाड़ा शुरू होते ही लोग पतंगों की तरह टूटने लगते है। टिकटघर के पास भीड़ देखकर हिरामन को बड़ी हँसी आई।—लालमोहर, उधर देख, कैसी धक्कम-धुक्की कर रहे हैं लोग।

—हिरामन भाय !

—कौन, पलटदास ? कहाँ की लदनी लाद आये ?—लालमोहर ने पराये गाँव के आदमी की तरह पूछा।

पलटदास ने हाथ मलते हुए माफी माँगी—कसूरवार हैं; जो सजा दो तुम लोग, सब मजूर है। लेकिन सच्ची बात कहें कि सुकुमारी···

हिरामन के मन का पुरइन नगाड़े के ताल पर विकसित हो चुका है। बोला—देख पलटा, यह मत समझना कि गाँव-घर की जनाना है। देखो, तुम्हारे लिए भी पास दिया है ! पास ले लो अपना, तमाशा देखो।

लालमोहर ने कहा—लेकिन एक शर्त पर पास मिलेगा। बीच-बीच में लहसनवाँ को भी···

पलटदास को कुछ बताने की जरूरत नहीं। वह लहसनवाँ से बातचीत कर आया है अभी।

लालमोहर ने दूसरी शर्त सामने रखी—गाँव में अगर यह बात मालूम हुई किसी तरह···

—राम-राम !—दाँत से जीभ को काटते हुए कहा पलटदास ने। पलटदास ने बताया—अठनियाँ फाटक इधर है। फाटक पर खड़े दरबान ने हाथ से पास लेकर उनके चेहरे को बारी-बारी से देखा। बोला—यह तो पास है। कहाँ से मिला ?

अब लालमोहर की कचराही बोली सुने कोई। उसके तेवर देखकर दरबान घबरा गया—मिलेगा कहाँ से ? अपनी कंपनी से पूछ लीजिए जाकर। चार ही नहीं, देखिये, एक और है—जेब से पाँचवाँ पास निकालकर दिखाया लालमोहर ने।

एक रुपया वाले फाटक पर नेपाली दरबान खड़ा था। हिरामन ने पुकारकर कहा—ए सिपाही दाजू, सुबह को पहचनवा दिया, और अभी भूल गये !

नेपाली दरबान बोला—हीराबाई का आदमी है सब। जाने दो। पास है तो फिर काहे को रोकना है ?

अठनियाँ दर्जा !

तीनों ने कपड़घर को अंदर से पहली बार देखा। सामने कुर्सी-बेंच वाले दर्जे हैं। परदे पर राम-बन-गमन की तस्वीर है। पलटदास पहचान गया। उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया—परदे पर अंकित राम, सिया सुकुमारी और लखन लाल की जै हो, जै हो ! पलटदास की आँखें भर आयीं।

हिरामन ने कहा—लालमोहर, छापी सभी खड़े हैं या चल रहे हैं ?

लालमोहर अपने बगल में बैठे दर्शकों से जान-पहचान कर चुका है। उसने कहा—खेला अभी परदे के भीतर है। अभी जमिनका दे रहा है, लोग जमाने के लिए।

पलटदास ढोलक बजाना जानता है, इसलिए नगाड़े के ताल पर गरदन हिलाता है और दियासलाई पर ताल काटता है। बीड़ी आदान-प्रदान करके हिरामन ने भी एकाध जान-पहचान कर ली। लालमोहर के परिचित आदमी ने चादर से देह ढकते हुए कहा—नाच शुरू होने में अभी देर है, तब तक एक नींद ले ले।···सब दर्जा से अच्छा अठनियाँ दर्जा। सबसे पीछे, सबसे ऊँची जगह पर है। जमीन पर गरम पुआल ! हे-हे ! कुर्सी-बेंच पर बैठकर इस सर्दी के मौसम में तमाशा देखने वाले अभी घुच-घुच कर उठेंगे चाह पीने।

उस आदमी ने अपने संगी से कहा—खेला शुरू होने पर जगा देना। नहीं-नहीं, खेला शुरू होने पर नहीं; हिरिया जब स्टेज पर उतरे, हमको जगा देना।

हिरामन के कलेजे पर जरा आँच लगी—हिरिया ! लटपटिया आदमी मालूम पड़ता है। उसने लालमोहर को आँख के इशारे से कहा—इस आदमी से बतियाने की जरूरत नहीं।

···घन-घन-घन-धड़ाम ! परदा उठ गया। हे-ए, हे-ए, हीराबाई शुरू में ही

उतर गयी स्टेज पर ! कपड़घर खचमखच भर गया है । हिरामन का मुँह अचरज मे खुल गया । लालमोहर को न जाने क्यों ऐसी हँसी आ रही है । हीराबाई के गीत के हर पद पर वह हँसता है, बेवजह ।

गुलबदन दरबार लगाकर बैठी है । ऐलान कर रही है : "जो आदमी तख्त हजारा बनाकर ला देगा, मुँहमाँगी चीज इनाम में दी जायेगी—अजी, है कोई ऐसा फनकार, तो हो जाये तैयार, बनाकर लाये तख्त हजारा-आ ! किड़ किड़-किर्रि···!" अलबत्त नाचती है ! क्या गला है ! मालूम है; यह आदमी कहता है कि हीराबाई पान-बीड़ी, सिगरेट-जर्दा कुछ नहीं खाती !···ठीक कहता है । बड़ी नेमवाली रंडी है···कौन कहता है कि रंडी है ! दाँत में मिस्सी कहाँ है ? पौडर से दाँत धो लेती होगी । हरगिज नहीं ।···कौन आदमी है, बात की बेबात करता है ! कंपनी की औरत को पतुरिया कहता है । तुमको बात क्यों लगी ? कौन है रंडी का भड़वा ? मारो साले को ! मारो ! तेरी···

हो-हल्ले के बीच, हिरामन की आवाज कपड़घर को फाड़ रही है—आओ, एक-एक की गरदन उतार लेंगे !

लालमोहर दुआली से पटापट पीटता जा रहा है सामने के लोगों को । पलट-दास एक आदमी की छाती पर सवार है—साला, सिया सुकुमारी को गाली देता है, सो भी मुसलमान होकर !

धुन्नीराम शुरू से ही चुप था । मारपीट शुरू होते ही वह कपड़घर से निकल-कर बाहर भागा ।

काले कोट वाले नौटंकी के मैनेजर नेपाली सिपाही के साथ दौड़े आये । दारोगा साहब ने हंटर से पीट-पाट शुरू की । हंटर खाकर लालमोहर तिलमिला उठा । कचराही बोली में भाषण देने लगा—दारोगा साहब, मारते हैं, मारिये । कोई हर्ज नहीं । लेकिन यह पास देख लीजिए, एक पास पाकिट में भी है । देख सकते हैं हुजूर । टिकट नहीं, पास ! ··तब हम लोगों के सामने कंपनी की औरत को कोई बुरी बात कहे तो कैसे छोड़ देंगे ?

कंपनी के मैनेजर की समझ में आ गई सारी बात । उसने दारोगा को समझाया ।

—हुजूर, मैं समझ गया । यह सारी बदमाशी मथुरामोहन कंपनी वालों की है । तमाशे में झगड़ा खड़ा करके कंपनी को बदनाम···नहीं हुजूर, इन लोगों को छोड़ दीजिये, हीराबाई के आदमी हैं । बेचारी की जान खतरे में है । हुजूर से कहा था न !

हीराबाई का नाम सुनते ही दारोगा ने तीनों को छोड़ दिया । लेकिन तीनों की दुआली छीन ली गयी । मैनेजर ने तीनों को एक रुपये वाले दरजे में कुर्सी पर बिठाया—आप लोग यहीं बैठिए । पान भिजवा देता हूँ ।

कपड़घर शांत हुआ और हीराबाई स्टेज पर लौट आई ।

नगाड़ा फिर घनघना उठा।

थोड़ी देर बाद तीनों को एक ही साथ धुन्नीराम का ख्याल हुआ—अरे, धुन्नीराम कहाँ गया ?

—मालिक, ओ मालिक !—लहसनवाँ कपड़घर के बाहर चिल्लाकर पुकार रहा है—ओ लालमोहर मा-लि-क !

लालमोहर ने तार स्वर में जवाब दिया—इधर से, इधर से ! एकटकिया फाटक से।···सभी दर्शकों ने लालमोहर की ओर मुड़कर देखा। लहसनवाँ को नेपाली सिपाही लालमोहर के पास ले आया। लालमोहर ने जेब से पास निकालकर दिखा दिया। लहसनवाँ ने आते ही पूछा—मालिक, कौन आदमी क्या बोल रहा था ? बोलिए तो जरा ! चेहरा दिखला दीजिए उसकी एक झलक !

लोगों ने लहसनवाँ की चौड़ी और सपाट छाती देखी। जाड़े के मौसम में भी खाली देह !—चेले-चाटी के साथ हैं ये लोग !

लालमोहर ने लहसनवाँ को शांत किया।

तीनों-चारो से मत पूछे कोई नौटंकी में क्या देखा ! किस्सा कैसे याद रहे ! हिरामन को लगता था, हीराबाई शुरू से ही उसकी ओर टकटकी लगाकर देख रही है, गा रही है, नाच रही है। लालमोहर को लगता था, हीराबाई उसी की ओर देखती है। वह समझ गयी है, हिरामन से भी ज्यादा पावर वाला आदमी है लालमोहर। पलटदास किस्सा समझता है।···किस्सा और क्या होगा, रमैन की ही बात। वही राम, वही सीता, वही लखन लला और वही रावन। सिया सुकुमारी को रामजी से छीनने के लिए रावन तरह-तरह के रूप धरकर आता है। राम और सीता भी रूप बदल लेते हैं। वहाँ भी तख्त-हजारा बनाने वाला माली का बेटा राम है। गुलबदन सिया सुकुमारी है। माली के लड़के का दोस्त लखन लला है और सुलतान है रावन।···धुन्नीराम को बुखार है, तेज ! लहसनवाँ को सबसे अच्छा जोकर का पार्ट लगा है—"चिरैया तोंहके लेके ना, जइबै नरहट के बजरिया !" वह उस जोकर से दोस्ती लगाना चाहता है।—नहीं लगावेगा दोस्ती, जोकर साहब !

हिरामन को एक गीत की आधी कड़ी हाथ लगी है—मारे गये गुलफाम ! कौन था यह गुलफाम ? हीराबाई रोती हुई गा रही थी—अजी हाँ, मारे गये गुलफाम ! टिडिडि···बेचारा गुलफाम !

तीनों की दुआली वापस देते हुए पुलिस के सिपाही ने कहा—लाठी-दुआली लेकर नाच देखने आते हो।

दूसरे दिन मेले-भर में यह बात फैल गयी—मथुरामोहन कंपनी से भागकर आई है हीराबाई, इसलिए इस बार मथुरामोहन कंपनी नहीं आई है···उसके गुंडे आये हैं।···हीराबाई भी कम नहीं। बड़ी खेलाड़ औरत है। तेरह-तेरह देहाती

लठैत पाल रही है।···'वाह मेरी जान' भी कहे तो कोई ! मजाल है !

दस दिन। दिन-रात !···

दिन-भर भाड़ा ढोता हिरामन। शाम होते ही नौटंकी का नगाड़ा बजने लगता। नगाड़े की आवाज सुनते ही हीराबाई की पुकार कानों के पास मँडराने लगती—भैया···मीता···हिरामन···उस्ताद···गुरुजी ! हमेशा कोई-न-कोई बाजा उसके मन के कोने में बजता रहता, दिन-भर। कभी हारमोनियम, कभी नगाड़ा, कभी ढोलक और कभी हीराबाई की पैंजनी। उन्ही साजो की गत पर हिरामन उठता-बैठता, चलता-फिरता। नौटंकी कंपनी के मैनेजर से लेकर परदा खींचने वाले तक उसको पहचानते है—हीराबाई का आदमी है।

पलटदास हर रात नौटंकी शुरू होने के समय श्रद्धापूर्वक स्टेज को नमस्कार करता है, हाथ जोड़कर। लालमोहर एक दिन अपनी कचराही बोली सुनाने गया था हीराबाई को। हीराबाई ने पहचाना ही नही। तब से उसका दिल छोटा हो गया है। उसका नौकर लहसनवाँ उसके हाथ से निकल गया है। नौटंकी कंपनी में भर्ती हो गया है। जोकर से उसकी दोस्ती हो गई। दिन-भर पानी भरता है, कपड़े धोता है। कहता है कि गाँव में क्या है जो जाएँगे। लालमोहर उदास रहता है। धुन्नीराम घर चला गया है, बीमार होकर।

हिरामन आज सुबह से तीन बार लदनी लादकर स्टेशन आ चुका है। आज न जाने क्यों उसको अपनी भौजाई की याद आ रही है।···धुन्नीराम ने कुछ कह तो नही दिया है बुखार की झोंक में। यही कितना अटर-पटर बक रहा था—गुलबदन, तख्त-हजारा !···लहसनवाँ मौज में है। दिनभर हीराबाई को देखता होगा। कल कह रहा था ··हिरामन मालिक, तुम्हारे अकबाल से खूब मौज में हूँ। हीराबाई की साड़ी धोने के बाद कठौत का पानी अतरगुलाब हो जाता है। उसमें अपनी गमछी डुबाकर छोड़ देता हूँ। लो, सूँघोगे ?···हर रात, किसी न किसी के मुँह से सुनता है वह—हीराबाई रंडी है। कितने लोगो से लड़े वह ! बिना देखे ही लोग कैसे कोई बात बोलते है ! राजा को भी लोग पीठ-पीछे गाली देते हैं।··· आज वह हीराबाई से मिलकर कहेगा—नौटंकी कंपनी में रहने से बहुत बदनाम करते है लोग। सरकस कंपनी में क्यो नही काम करती ?···सबके सामने नाचती है। हिरामन का कलेजा दप-दप जलता रहता है, उस समय। सरकस कंपनी में बाघ को नचायेगी।···बाघ के पास जाने की हिम्मत कौन करेगा ! सुरक्षित रहेगी हीराबाई !···किधर की गाड़ी आ रही है ?

—हिरामन, ए हिरामन भाय !—लालमोहर की बोली सुनकर हिरामन ने गरदन मोड़कर देखा—क्या लादकर लाया है, लालमोहर ?

—तुमको ढूँढ़ रही है हीराबाई, इशटीशन पर। जा रही है।—एक ही साँस में सुना गया।—लालमोहर की गाड़ी पर ही आयी है मेले से।

—जा रही है? कहाँ? लालमोहर, रेलगाड़ी में जा रही है?

हिरामन ने गाड़ी खोल दी। मालगुदाम के चौकीदार से कहा—भैया, जरा गाड़ी-बैल देखते रहिये। आ रहे हैं।

—उस्ताद!···जनाना मुसाफिरखाने के फाटक के पास हीराबाई ओढ़नी से मुँह-हाथ ढककर खड़ी थी। थैली बढ़ाती हुई बोली—लो! हे भगवान! भेंट हो गयी, चलो, मैं तो उम्मीद खो चुकी थी। तुमसे अब भेंट नहीं हो सकेगी···मैं जा रही हूँ गुरुजी!···

बक्सा ढोनेवाला आदमी आज कोट-पतलून पहनकर बाबू साहब बन गया है। मालिकों की तरह कुलियों को हुक्म दे रहा है।—जनाना दर्जा में चढ़ाना। अच्छा?

हिरामन हाथ में थैली लेकर चुपचाप खड़ा रहा। कुरते के अंदर से थैली निकालकर दी है हीराबाई ने। चिड़िया की देह की तरह गर्म है थैली!

—गाड़ी आ रही है! बक्सा ढोनेवाले ने मुँह बनाते हुए हीराबाई की ओर देखा। उसके चेहरे का भाव स्पष्ट है—इतना ज्यादा क्या है···?

हीराबाई चंचल हो गयी। बोली—हिरामन, इधर आओ, अंदर। मैं फिर लौटकर जा रही हूँ मथुरामोहन कंपनी में, अपने देश की कंपनी है।···बनैली मेला आओगे न?

हीराबाई ने हिरामन के कंधे पर हाथ रखा···इस बार दाहिने कंधे पर। फिर अपनी थैली में रुपया निकालते हुए बोली—एक गरम चादर खरीद लेना।···

हिरामन की बोली फूटी, इतनी देर के बाद—इस्स! हरदम रुपैया-पैसा! रखिए रुपैया!···क्या करेंगे चादर?

हीराबाई का हाथ रुक गया। उसने हिरामन के चेहरे को गौर से देखा। फिर बोली—तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया है। क्यों मीता?···महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है गुरुजी।

गला भर आया हीराबाई का। बक्सा ढोनेवाले ने बाहर से आवाज दी—गाड़ी आ गयी। हिरामन कमरे से बाहर निकल आया। बक्सा ढोनेवाले ने नौटंकी के जोकर जैसा मुँह बनाकर कहा—लाटफारम से बाहर भागो। बिना टिकट के पकड़ेगा तो तीन महीने की हवा···

हिरामन चुपचाप फाटक से बाहर जाकर खड़ा हो गया।···टीशन की बात, रेलवे का राज! नहीं तो इस बक्सा ढोनेवाले का मुँह सीधा कर देता हिरामन।···

हीराबाई ठीक सामने वाली कोठरी में चढ़ी। इस्स! इतना टान! गाड़ी में बैठकर भी हिरामन की ओर देख रही है, टुकुर-टुकुर।···लालमोहर को देखकर

जी जल उठता है, हमेशा पीछे-पीछे, हरदम हिस्सादारी सूझती है।···

गाड़ी ने सीटी दी। हिरामन को लगा, उसके अंदर से कोई आवाज निकलकर सीटी के साथ ऊपर की ओर चली गयी—कू-ऊ-ऊ! इस्स···!

···छि-ई-ई-छक्क! गाड़ी हिली। हिरामन ने अपने दाहिने पैर के अंगूठे को बायें पैर की एड़ी से कुचल दिया। कलेजे की धड़कन ठीक हो गयी।···हीराबाई हाथ की बैंगनी साफी से चेहरा पोंछती है। साफी हिलाकर इशारा करती है—अब जाओ।···आखिरी डब्बा गुजरा, प्लेटफार्म खाली···सब खाली···खोखले···मालगाड़ी के डब्बे! दुनिया ही खाली हो गयी मानो! हिरामन अपनी गाड़ी के पास लौट आया।

हिरामन ने लालमोहर से पूछा—तुम कब तक लौट रहे हो गाँव?

लालमोहर बोला—अभी गाँव जाकर क्या करेंगे? यही तो भाड़ा कमाने का मौका है! हीराबाई चली गयी, मेला अब टूटेगा।

—अच्छी बात। कोई सवाद देना है घर?

लालमोहर ने हिरामन को समझाने की कोशिश की। लेकिन हिरामन ने अपनी गाड़ी गाँव की ओर जाने वाली सड़क की ओर मोड़ दी।···अब मेले में क्या धरा है? खोखला मेला!

रेलवे लाइन की बगल से बैलगाड़ी की कच्ची सड़क गयी है दूर तक। हिरामन कभी रेल पर नहीं चढ़ा है। उसके मन में फिर पुरानी लालसा झाँकी, रेलगाड़ी पर सवार होकर, गीत गाते हुए जगरनाथ धाम जाने की लालसा···उलटकर अपने खाली टप्पर की ओर देखने की हिम्मत नहीं होती है। पीठ में आज भी गुदगुदी लगती है। आज भी रह-रहकर चंपा का फूल खिल उठता है उसकी गाड़ी में। एक गीत की टूटी कड़ी पर नगाड़े का ताल कट जाता है बार-बार!···

उसने उलटकर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं···परी···देवी···मीता···हीरादेवी···महुआ घटवारिन—कोई नहीं। मरे हुए मुहूर्तों की गूँगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कंपनी की औरत की लदनी···!

हिरामन ने हठात् अपने दोनों बैलों को झिड़की दी, दुआली से मारते हुए बोला—रेलवे लाइन की ओर उलट-उलटकर क्या देखते हो? दोनों बैलों ने कदम खोलकर चाल पकड़ी। हिरामन गुनगुनाने लगा—अजी हाँ, मारे गये गुलफाम···!

(1956)

लाल पान की बेगम

क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?

बिरजू की माँ शकरकंद उबालकर बैठी मन-ही-मन कुढ़ रही थी अपने आँगन में। सात साल का लड़का बिरजू शकरकंद के बदले तमाचे खाकर आँगन में लोट-लोटकर सारी देह में मिट्टी मल रहा था। चम्पिया के सिर भी चुड़ैल मँडरा रही है···आधा आँगन धूप रहते जो गयी है महुआइन की दुकान छोवा-गुड़ लाने, सो अभी तक नहीं लौटी, दीया-बाती की बेला हो गयी। आये आज लौट के जरा ! बागड़ बकरे की देह में कुकुरमाछी लगी थी, इसलिए बेचारा बागड़ रह-रहकर कूद-फाँद कर रहा था। बिरजू की माँ बागड़ पर मन का गुस्सा उतारने का बहाना ढूंढ़कर निकाल चुकी थी।···पिछवाड़े की मिर्च की फूली गाछ ! बागड़ के सिवा और किसने कलेवा किया होगा ! बागड़ को मारने के लिए वह मिट्टी का एक छोटा ढेला उठा चुकी थी कि पड़ोसिन मखनी फुआ की पुकार सुनायी पड़ी—क्यों बिरजू की माँ, नाच देखने नहीं जायेगी क्या ?

—बिरजू की माँ के आगे नाथ और पीछे पगहिया न हो तब न, फुआ ?

गरम गुस्से में बुझी नुकीली बात फुआ की देह में धँस गयी और बिरजू की माँ ने हाथ के ढेले को पास ही फेंक दिया···बेचारे बागड़ को कुकुरमाछी परेशान कर रही है ! आ हा, आय···आय ! हर्र-र्-र्-र् ! आय-आय !

बिरजू ने लेटे ही लेटे बागड़ को एक डंडा लगा दिया। बिरजू की माँ की इच्छा हुई कि जाकर उसी डंडे से बिरजू का भूत भगा दे, किंतु नीम के पास खड़ी पनभरनियों की खिलखिलाहट सुनकर रुक गयी। बोली—ठहर, तेरे बप्पा ने बड़ा हथछुट्टा बना दिया है तुझे ! बड़ा हाथ चलता है लोगों पर। ठहर !

मखनी फुआ नीम के पास झुकी कमर से घड़ा उतारकर पानी भरकर लौटती पनभरनियों से बिरजू की माँ की बहकी हुई बात का इंसाफ करा रही थी—जरा देखो तो इस बिरजू की माँ को ! चार मन पाट (जूट) का पैसा क्या हुआ है, धरती पर पाँव ही नहीं पड़ते ! निसाफ करो ! खुद अपने मुँह से आठ दिन पहले

मे ही गाँव की अली-गली मे बोलती फिरी है, हाँ, इस बार बिरजू के बप्पा ने कहा है, बैलगाडी पर बिठाकर बलरामपुर का नाच दिखा लाऊंगा। बैल जब अपने घर है तो हजार गाड़ी मँगनी मिल जायेगी। सो मैंने अभी टोक दिया, नाच देखने वाली सब तो औन-पौन कर तैयार हो रही है, रसोई-पानी कर रही है। मेरे मुंह में आग लगे, क्यों मैं टोकने गयी! सुनती हो, क्या जवाब दिया बिरजू की माँ ने!

मखनी फुआ ने अपने पोपले मुंह के ओठों को एक ओर मोडकर ऐंठती हुई बोली निकाली—अर्-रे-हाँ-हाँ! बि-र्-र्-ज्जू की मैं···या के आगे नाथ औ-रं पीछे पगहिया न हो, तब्ब-ना-आ-जा!

जंगी की पुतोहू बिरजू की माँ से नही डरती। वह जरा गला खोलकर कहती है—फुआ-आ! सरबे सित्तलमिटी (सर्वे सेटलमेंट) के हाकिम के बासा पर फूलछाप किनारी वाली साड़ी पहन के यदि तू भी भेंटी की भेट चढ़ाती तो तुम्हारे नाम से भी दू-तीन बीघा धनहर जमीन का पर्चा कट जाता! फिर तुम्हारे घर भी आज दस मन सोना बग पाट होता, जोड़ा बैल खरीदती। फिर आगे नाथ और पीछे सैकडो पगहियाँ झूलती!

जंगी की पुतोहू मुंहजोर है। रेलवे स्टेशन के पास की लड़की है। तीन ही महीने हुए गौने की नयी बहू होकर आयी है और सारे कुर्मा टोली की सभी झगड़ालू सासों से एकाध मोर्चा ले चुकी है। उसका ससुर जंगी दागी चोर है, सी किलासी है। उसका खसम रंगी कुर्मा टोली का नामी लठैत। इसीलिए हमेशा सींग खुजाती फिरती है जंगी की पुतोहू!

बिरजू की माँ के आँगन मे जंगी की पुतोहू की गला-खोल बोली गुलेल की गोलियों की तरह दनदनाती हुई आयी। बिरजू की माँ ने एक तीखा जवाब खोजकर निकाला, लेकिन मन मसोसकर रह गयी।···गोबर की ढेरी में कौन ढेला फेंके!

जीभ की झाल को गले मे उतारकर बिरजू की माँ ने अपनी बेटी चम्पिया को आवाज दी—अरी चम्पिया-या-या, आज लौटे तो तेरी मूड़ी मरोड़कर चूल्हे में झोंकती हूं! दिन-दिन बेचाल होती जाती है!···गाँव में भी तो अब ठेठर-बैसकोप का गीत गाने वाली पतुरिया पुतोहू सब आने लगी हैं। कहीं बैठके 'बाजे न मुरलिया' सीख रही होगी ह-र-जा-ई-ई। अरी चम्पि-या-या-या!

जंगी की पुतोहू ने बिरजू की माँ की बोली का स्वाद लेकर कमर पर घड़े को सँभाला और मटककर बोली—चल दिदिया, चल! इस मुहल्ले में लाल पान की बेगम बसती है! नही जानती, दोपहर-दिन और चौपहर-रात बिजली की बत्ती भक्-भक् कर जलती है!

भक्-भक् बिजली-बत्ती की बात सुनकर न जाने क्यों सभी खिलखिलाकर

हँस पड़ीं। फुआ की टूटी हुई दंत-पंक्तियों के बीच से एक मीठी गाली निकली—शैतान की नानी !

बिरजू की माँ की आँखों पर मानो किसी ने तेज टार्च की रोशनी डालकर चौंधिया दिया।···भक्-भक् बिजली-बत्ती ! तीस साल पहले सर्वे कैंप के बाद गाँव की जलन-डाही औरतों ने एक कहानी गढ़ के फैलाई थी, चम्पिया की माँ आँगन में रात-रात-भर बिजली-बत्ती भुकभुकाती थी ! चम्पिया की माँ के आँगन में, नाकवाले जूते की छाप घोड़े की टाप की तरह !···जलो, जलो ! और जलो ! चम्पिया की माँ के आँगन में चाँदी जैसे पाट सूखते देखकर जलने वाली सब औरतें खलिहान पर सोनोली धान के बोझों को देखकर बैंगन का भुर्ता हो जायेंगी।

मिट्टी के बरतन से टपकते हुए छोवा-गुड़ को उँगलियों से चाटती हुई चम्पिया आयी और माँ के तमाचे खाकर चीख पड़ी—मुझे क्यों मारती है-ए-ए-ए ? महुआइन जल्दी में सौदा नहीं देती हैं-एँ-एँ-एँ-एँ।

—सहुआइन जल्दी सौदा नहीं देती की नानी ! एक सहुआइन की ही दुकान पर मोती झरते है, जो जड़ गाड़कर बैठी हुई थी ! बोल, गले पर लात देकर कल्ला तोड़ दूंगी हरजाई, जो फिर कभी 'बाजे न मुरलिया' गाते सुना ! चाल सीखने जाती है टीशन की छोकरियों से !

बिरजू की माँ ने चुप होकर अपनी आवाज अंदाजी कि उसकी बात जंगी के झोपड़े तक साफ-साफ पहुँच गयी होगी।

बिरजू बीती हुई बातों को भूलकर उठ खड़ा हुआ था और धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचाई निगाह से देखने लगा था।···दीदी के साथ वह भी दूकान जाता तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती, जरूर वह शकरकंद के लोभ में रहा और माँगने पर माँ ने शकरकंद के बदले···

—ए मैया, एक अंगुली गुड़ दे दे ! बिरजू ने तलहथी फैलायी—दे ना मैया, एक रत्ती-भर !

—एक रत्ती क्यों, उठा के बरतन को फेंक आती हूँ पिछवाड़े में; जाके चाटना ! नहीं बनेगी मीठी रोटी !···मीठी रोटी खाने का मुँह होता है !—बिरजू की माँ ने उबले शकरकंद का सूप रोती हुई चम्पिया के सामने रखते हुए कहा—बैठ के छिलके उतार, नहीं तो अभी···

दस साल की चम्पिया जानती है, शकरकंद छीलते समय कम से कम बारह बार माँ उसे बाल पकड़कर झकझोरेगी, छोटी-छोटी खोट निकालकर गालियाँ देगी।···पाँव फैला के क्यों बैठी है इस तरह, बेलज्जी ! चम्पिया माँ के गुस्से को जानती है।

बिरजू ने इस मौके पर थोड़ी-सी खुशामद करके देखा—मैया, मैं भी बैठकर शकरकंद छीलूँ ?

—नहीं !—माँ ने झिड़की दी—एक शकरकंद छीलेगा, और तीन पेट में! जाके सिद्दू की बहू से कहो, एक घंटे के लिए कड़ाही माँगकर ले गयी तो फिर लौटाने का नाम नहीं। जा जल्दी !

मुँह लटकाकर आँगन से निकलते-निकलते बिरजू ने शकरकंद और गुड़ पर निगाह दौड़ायी। चम्पिया ने अपने झबरे केश की ओट से माँ की ओर देखा और नजर बचाकर चुपके से बिरजू की ओर एक शकरकंद फेंक दिया।···बिरजू भागा।

—सूरज भगवान डूब गए। दीया-बत्ती की बेला हो गयी। अभी तक गाड़ी···

चम्पिया बीच में ही बोल उठी—कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी नहीं दी मैया ! बप्पा बोले, माँ से कहना, ठीक-ठीक करके तैयार रहे।···मलदहिया टोली के मियाँजान की गाड़ी लाने जा रहा हूँ।

सुनते ही बिरजू की माँ का चेहरा उतर गया। लगा, छाते की कमानी उतर गयी घोड़े से अचानक। कोयरी टोले में किसी ने गाड़ी मँगनी नहीं दी ! तब मिल चुकी गाड़ी ! जब अपने गाँव के लोगों की आँख में पानी नहीं तो मलदहिया टोली के मियाँजान की गाड़ी का क्या भरोसा ! न तीन में, न तेरह मे ! क्या होगा शकरकंद छीलकर ! रख दे उठा के !···यह मर्द नाच दिखायेगा ! बैलगाड़ी पर चढ़ाकर नाच दिखाने ले जायेगा ! चढ़ चुकी बैलगाड़ी पर, देख चुकी जी-भर नाच ···पैदल जाने वाली सब पहुँचकर पुरानी हो चुकी होंगी।

बिरजू छोटी कड़ाही सिर पर औंधाकर वापस आया—देख दिदिया, मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नहीं होता।

चम्पिया चुपचाप बैठी रही, कुछ बोली नहीं; जरा-सी मुस्करायी भी नहीं। बिरजू ने समझ लिया, मैया का गुस्सा अभी उतरा नहीं है पूरी तौर से।

मड़ैया के अंदर से बागड़ को बाहर भगाती हुई बिरजू की माँ बड़बड़ाई—कल ही पँचकौड़ी कसाई के हवाले करती हूँ राकस तुझे ! हर चीज में मुँह लगायेगा ! चम्पिया, बाँध दे बगड़ा को। खोल दे गले की घंटी। हमेशा टुनुर-टुनुर ! मुझे जरा नहीं सुहाता है !

टुनुर-टुनुर सुनते ही बिरजू को सड़क से जाती हुई बैलगाड़ियों की याद हो आई। अभी बबुआन टोले की गाड़ियाँ नाच देखने जा रही थी—झुनुर-झुनुर बैलों की झुनकी, तुमने सु···

—बेसी बक-बक मत करो ! बागड़ के गले से झुनकी खोलती बोली चम्पिया।

—चम्पिया, डाल दे चूल्हे में पानी ! बप्पा आवे तो कहना कि अपने उड़न जहाज पर चढ़कर नाच देख आवे ! मुझे नाच देखने का सौख नहीं···मुझे जगइयो

मत कोई ! मेरा माथा दुख रहा है।

मढ़ैया के ओसारे पर बिरजू ने फिसफिसा के पूछा—क्योंकर दिदिया, नाच मे उड़न जहाज भी उड़ेगा ?

चटाई पर कथरी ओढ़कर बैठती हुई चम्पिया ने बिरजू को चुपचाप अपने पास बैठने का इशारा किया, मुफ्त में मार खायेगा बेचारा !

बिरजू ने बहन की कथरी में हिस्सा बाँटते हुए चुक्की-मुक्की लगायी। जाड़े के समय इस तरह घुटने पर ठुड्डी रखकर चुक्की-मुक्की लगाना सीख चुका है वह। उसने चम्पिया के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—हम लोग नाच देखने नही जायेंगे ?···गाँव में एक पंछी भी नहीं है। सब चले गये।

चम्पिया को अब तिल-भर भी भरोसा नहीं। संझा तारा डूब रहा है। बप्पा अभी तक गाड़ी लेकर नहीं लौटे।···एक महीना पहले ही मैया कहती थी, बलरामपुर के नाच के दिन मीठी रोटी बनेगी; चम्पिया छींट की साड़ी पहनेगी; बिरजू पैंट पहनेगा, बैलगाड़ी पर चढ़कर···

चम्पिया की भीगी पलकों पर एक बूंद आँसू आ गया।

बिरजू का भी दिल भर आया। उसने मन-ही-मन इमली पर रहने वाले जिन बाबा को एक बैंगन कबूला, गाछ का सबसे पहला बैंगन, उसने खुद जिस पौधे को रोपा है !···जल्दी से गाड़ी लेकर बप्पा को भेज दो, जिन बाबा !

मढ़ैया के अंदर बिरजू की माँ चटाई पर पड़ी करवटें ले रही थी। उँह, पहले मे किसी बात का मनसूबा नहीं बाँधना चाहिए किसी को ! भगवान ने मनसूबा तोड़ दिया। उसको सबसे पहले भगवान से पूछना है, यह किस चूक का फल दे रहे हो, भोला बाबा ! अपने जानते उसने किसी देवता-पित्तर की मान-मनौती बाकी नही रखी। सर्वे के समय जमीन के लिए जितनी मनौतियाँ की थीं···ठीक ही तो ! महाबीरजी का रोट तो बाकी ही है। हाय रे दैव !···भूल-चूक माफ करो महाबीर बाबा ! मनौती दूनी करके चढ़ायेगी बिरजू की माँ।···

बिरजू की माँ के मन मे रह-रहकर जंगी की पुतोहू की बातें चुभती है, भक्-भक् बिजली-बत्ती !···चोरी-चकारी करने वाले की बेटी-पुतोहू जलेगी नही ! पाँच बीघा जमीन क्या हासिल की है बिरजू के बप्पा ने, गाँव की भाई-खौकियों की आँखो मे किरकिरी पड़ गयी है। खेत मे पाट लगा देखकर गाँव के लोगो की छाती फटने लगी, धरती फोड़कर पाट लगा है; बैशाखी बादलो की तरह उमड़ते आ रहे है पाट के पौधे ! तो अलान तो फलान ! इतनी आँखो की धार भला फसल सहे ! जहाँ पंद्रह मन पाट होना चाहिए, सिर्फ दस मन पाट कँटा पर तौल के ओजन हुआ रब्बी भगत के यहाँ।···

इसमें जलने की क्या बात है भला !···बिरजू के बप्पा ने तो पहले ही कुर्मा टोली के एक-एक आदमी को समझा के कहा था—जिंदगी-भर मजदूरी करते रह

जाओगे। सर्वे का समय आ रहा है। लाठी कड़ी करो तो दो-चार बीघे जमीन हासिल कर सकते हो।—सो गांव की किसी पुतखौकी का भतार सर्वे के समय बाबू साहेब के खिलाफ खांसा भी नहीं।···बिरजू के बप्पा को कम सहना पड़ा है। बाबू साहेब गुस्से से सरकस नाच के बाघ की तरह हुमड़ते रह गये। उनका बड़ा बेटा घर में आग लगाने की धमकी देकर गया।···आखिर बाबू साहेब ने अपने सबसे छोटे लड़के को भेजा। बिरजू की मां को 'मौसी' कहके पुकारा—यह जमीन बाबूजी ने मेरे नाम से खरीदी थी। मेरी पढ़ाई-लिखाई इसी जमीन की उपज से चलती है।—और भी कितनी बातें। खूब मोहना जानता है, उत्ता जरा-सा लड़का है। जमींदार का बेटा है कि···

—चम्पिया, बिरजू सो गया क्या? आ जा बिरजू, अंदर। तू भी आ जा, चम्पिया! भला आदमी आये तो एक बार आज!

बिरजू के साथ चम्पिया अंदर चली गयी।

—ढिबरी बुझा दे।···बप्पा बुलाएं तो जवाब मत देना। खपच्ची गिरा दे।

भला आदमी रे, भला आदमी! मुंह देखो जरा इस मर्द का!···बिरजू की मां दिन-रात मंझा न देती रहती तो ले चुके थे जमीन! रोज आकर माथा पकड़ के बैठ जायें—मुझे जमीन नही लेनी है बिरजू की मां, मजूरी ही अच्छी।—जवाब देती थी बिरजू की मां खूब सोच-समझ के—छोड़ दो, जब तुम्हारा कलेजा ही थिर नहीं होता है तो क्या होगा? ओरू-जमीन जोर के, नही तो किसी और के।···

बिरजू के बाप पर बहुत तेजी से गुस्सा चढ़ता है। चढ़ता ही जाता है।···बिरजू की मां का भाग ही खराब है, जो ऐसा गोबरगनेश घरवाला उसे मिला। कौन-सा सौख-मौज दिया है उसके मर्द ने! कोल्हू के बैल की तरह खटकर सारी उम्र काट दी इसके यहां, कभी एक पैसे की जलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने!···पाट का दाम भगत के यहां से लेकर बाहर-ही-बाहर बैल-हट्टा चले गये। बिरजू की मां को एक बार नमरी लोट देखने भी नही दिया आंख से।···बैल खरीद लाये। उसी दिन से गांव मे ढिंढोरा पीटने लगे—बिरजू की मां इस बार बैलगाड़ी पर चढ़कर जायेगी नाच देखने!···दूसरे की गाड़ी के भरोसे दिखायेगा!···

अंत में उसे अपने-आप पर क्रोध हो आया। वह खुद भी कुछ कम नही! उसकी जीभ में आग लगे। बैलगाड़ी पर चढ़कर नाच देखने की लालसा किस कुसमय में उसके मुंह से निकली थी, भगवान जाने! फिर आज सुबह से दोपहर तक, किसी न किसी बहाने उसने अठारह बार बैलगाड़ी पर नाच देखने जाने की चर्चा छेड़ी है!···लो, खूब देखो नाच! वाह रे नाच! कथरी के नीचे

बुलाले का सपना !···कल भोरे पानी भरने के लिए जब जायेगी, पतली जीभ वाली पतुरिया सब हँसती आयेंगी, हँसती जायेंगी ।···सभी जलते हैं उससे; हाँ, भगवान दाढ़ीजार भी !···दो बच्चों की माँ होकर भी वह जस-की-तस है। उसका घरवाला उसकी बात में रहता है। वह बालों में गरी का तेल डालती है। उसकी अपनी जमीन है। है किसी के पास एक घूर जमीन भी अपनी इस गाँव में ! जलेंगे नहीं, तीन बीघे में धान लगा हुआ है, अगहनी। लोगों की बिखदीठ से बचे तब तो !

बाहर बैलों की घंटियाँ सुनायी पड़ी। तीनों सतर्क हो गये। उत्कर्ण होकर सुनते रहे।

—अपने ही बैलों की घंटी है, क्यों री, चम्पिया ?

चम्पिया और बिरजू ने प्रायः एक ही साथ कहा—हूँ-ऊँ-ऊँ !

—चुप !—बिरजू की माँ ने फिसफिसाकर कहा—शायद गाड़ी भी है धड़धड़ाती है न ?

—हूँ-ऊँ-ऊँ !—दोनों ने फिर हुँकारी भरी।

—चुप ! गाड़ी नहीं है। तू चुपके से टट्टी में छेद करके देख तो आ चम्पी ! भाग के जा, चुपके-चुपके।

चम्पिया बिल्ली की तरह होले-होले पाँव से टट्टी के छेद से झांक आयी—हाँ मैया, गाड़ी भी है !

बिरजू हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसकी माँ ने उसके हाथ पकड़कर सुला दिया —बोले मत !

चम्पिया भी गुदड़ी के नीचे घुस गयी।

बाहर बैलगाड़ी खोलने की आवाज हुई। बिरजू के बाप ने बैलों को जोर से डाँटा—हाँ-हाँ ! आ गये घर ! घर आने के लिए छाती फटी जाती थी !

बिरजू की माँ ताड़ गयी, जरूर मलदहिया टोली में गाँजे की चिलम चढ़ रही थी, आवाज तो बड़ी खनखनाती हुई निकल रही है।

—चम्पिया-ह !—बाहर से ही पुकारकर कहा उसके बाप ने—बैलों को घास दे दे, चम्पिया-ह !

अंदर से कोई जवाब नहीं आया। चम्पिया के बाप ने आँगन में आकर देखा तो न रोशनी, न चिराग, न चूल्हे में आग।···बात क्या है ! नाच देखने उतावली होकर, पैदल ही चली गयी क्या···!

बिरजू के गले में खसखसाहट हुई और उसने रोकने की पूरी कोशिश भी की, लेकिन खाँसी जब शुरू हुई तो पूरे पाँच मिनट तक वह खाँसता रहा।

—बिरजू ! बेटा बिरजमोहन !—बिरजू के बाप ने पुचकारकर बुलाया—मैया गुस्से के मारे सो गयी क्या ?···अरे, अभी तो लोग जा ही रहे हैं।

बिरजू की माँ के मन में आया कि कसकर जवाब दे, नहीं देखना है नाच ! लौटा दो गाड़ी ।

—चम्पिया-ह ! उठती क्यों नहीं ? ले, धान की पंचसीस रख दे । धान की बालियों का छोटा झौआ झोंपड़े के ओसारे पर रखकर उसने कहा—दीया बालो !

बिरजू की माँ उठकर ओसारे पर आयी—डेढ़ पहर रात को गाड़ी लाने की क्या जरूरत थी ? नाच तो अब खत्म हो रहा होगा ।

ढिबरी की रोशनी में धान की बालियों का रंग देखते ही बिरजू की माँ के मन का सब मैल दूर हो गया ।···धानी रंग उसकी आँखों से उतरकर रोम-रोम में घुल गया ।

—नाच अभी शुरू भी नहीं हुआ होगा । अभी-अभी बलरामपुर के बाबू की कंपनी-गाड़ी मोहन होटिल बंगला से हाकिम साहब को लाने गयी है । इस साल आखिरी नाच है ।···पंचसीस टट्टी में खोंस दे, अपने खेत का है ।

—अपने खेत का ?—हुलसती हुई बिरजू की माँ ने पूछा—पक गए धान ?

—नहीं, दस दिन में अगहन चढ़ते-चढ़ते लाल होकर झुक जायेंगी सारे खेत की बालियाँ ।···मलदहिया टोली जा रहा था, अपने खेत में धान देखकर आँखें जुड़ा गयीं । सच कहता हूँ, पंचसीस तोड़ते समय उँगलियाँ काँप रही थीं मेरी !

बिरजू ने धान की एक बाली से एक धान लेकर मुँह में डाल लिया और उसकी माँ ने एक हल्की डाँट दी—कैसा लुक्कड़ है तू रे !···इन दुश्मनों के मारे कोई नेम-धरम जो बचे ।

—क्या हुआ, डाँटती क्यों है ?

—नवान्न के पहले ही नया धान जुठा दिया, देखते नहीं ?

—अरे, इन लोगों का सब-कुछ माफ है । चिरई-चुरमुन है ये लोग ! इन दोनों के मुँह में नवान्न के पहले नया अन्न न पड़े !

इसके बाद चम्पिया ने भी धान की बाली से दो धान लेकर दाँतों तले दबाया —ओ मैया ! इतना मीठा चावल ?

—और गमकता भी है न, दिदिया ?—बिरजू ने फिर मुँह में धान लिया ।

—रोटी-पोटी तैयार कर चुकी क्या ?—बिरजू के बाप ने मुस्कराकर पूछा ।

—नहीं !—मानभरे सुर में बोली बिरजू की माँ—जाने का ठीक-ठिकाना नहीं···और रोटी बनती है !

—वाह ! खूब हो तुम लोग !···जिसके पास बैल हैं, उसे गाड़ी मँगनी नही मिलेगी भला ? गाड़ीवालों को भी बैल की कभी जरूरत होगी·· पूछूँगा तब कोयरी टोला वालों से !—ले, जल्दी से रोटी बना ले ।

—देर नहीं होगी ?

—अरे, टोकरी-भर रोटी तो तू पलक मारते बना लेती है, पाँच रोटियाँ बनाने में कितनी देर लगेगी !

अब बिरजू की माँ के ओठों पर मुस्कराहट खुलकर खेलने लगी। उसने नजर बचाकर देखा, बिरजू का बप्पा उसकी ओर एकटक निहार रहा है।···चम्पिया और बिरजू न होते तो मन की बात हँसकर खोलते देर न लगती। चम्पिया और बिरजू ने एक-दूसरे को देखा और खुशी से उनके चेहरे जगमगा उठे—मैया, बेकार गुस्सा हो रही थी न !

—चम्पी ! जरा घैलसार में खड़ी होकर मखनी फुआ को आवाज दे तो !

—ऐ फु-आ-आ !—सुनती हो फुआ-आ ! मैया बुला रही है।

फुआ ने कोई जवाब सीधे नहीं दिया, किंतु उसकी बड़बड़ाहट स्पष्ट सुनायी पड़ी—हाँ ! अब फुआ को क्यों गुहारती है। सारे टोले में बस एक फुआ ही तो बिना नाथ-पगहिया वाली है।

—अरी फुआ !—बिरजू की माँ ने हँसकर जवाब दिया—उस समय बुरा मान गयी थीं क्या ? नाथ-पगहिया वाले को आकर देखो, दो पहर रात में गाड़ी लेकर आया है ! आ जाओ फुआ, मैं मीठी रोटी पकाना नहीं जानती।

फुआ काँखती-खाँसती आयी—इसी से घड़ी-पहर दिन रहते ही पूछ रही थी कि नाच देखने जायेगी क्या ? कहती, तो मैं पहले से ही अपनी अँगीठी यहाँ सुलगा जाती।

बिरजू की माँ ने फुआ को अँगीठी दिखला दी और कहा—घर में अनाज-दाना वगैरह तो कुछ है नहीं। एक बागड़ है और कुछ बरतन-बासन। सो रात-भर के लिए यहाँ तंबाकू रख जाती हूँ। अपना हुक्का ले आयी हो न, फुआ ?

फुआ को तंबाकू मिल जाये, तो रात-भर क्या, पाँच रात बैठकर जाग सकती है। फुआ ने अंधेरे में टटोलकर तंबाकू का अंदाज किया।···ओ हो ! हाथ खोल-कर तंबाकू रखा है बिरजू की माँ ने ! और एक वह है सहुआइन ! राम कहो ! उस रात को अफीम की गोली की तरह मटर-भर तंबाकू रखकर चली गयी गुलाब-बाग मेले और कह गयी कि डिब्बी-भर तंबाकू है।

बिरजू की माँ चूल्हा सुलगाने लगी। चम्पिया ने शकरकंद को मसलकर गोले बनाये और बिरजू सिर पर कड़ाही औंधाकर अपने बाप को दिखलाने लगा—मलेटरी टोपी ! इस पर दस लाठी मारने से भी कुछ नही होगा।

सभी ठठाकर हँस पड़े।

बिरजू की माँ हँसकर बोली—ताखे पर तीन-चार मोटे शकरकंद हैं, दे दे बिरजू को चम्पिया, बेचारा शाम से ही···

—बेचारा मत कहो मैया, खूब सचारा है !—अब चम्पिया चहकने लगी—तुम क्या जानो, कथरी के नीचे मुंह क्यों चल रहा था बाबू साहिब का !

—ही-ही-ही !

बिरजू के टूटे दूध के दाँतों की फाँक से बोली निकली—बिलैक मारटिन में पाँच शकरकंद खा लिया ! हा-हा-हा !

सभी फिर ठठाकर हँस पड़े। बिरजू की माँ ने फुआ का मन रखने के लिए पूछा—एक कनवाँ गुड़ है। आधा डाल दूँ, फुआ ?

फुआ ने गद्‌गद होकर कहा—अरी, शकरकंद तो खुद मीठा होता है, उतना क्यों डालेगी !

जब तक दोनों बैल दाना-घास खाकर एक-दूसरे की देह को जीभ से चाटें, बिरजू की माँ तैयार हो गयी। चम्पिया ने छींट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पैंट पर पटमन की डोरी बँधवाने लगा।

बिरजू की माँ ने आँगन से निकल गाँव की ओर कान लगाकर सुनने की चेष्टा की—उहूँ, इतनी देर तक भला जाने वाले रुके रहेंगे !

पूर्णिमा का चाँद सिर पर आ गया है।···बिरजू की माँ ने असली रूपा का मँगटिक्का पहना है आज, पहली बार। बिरजू के बप्पा को हो क्या गया है, गाड़ी जोतता क्यों नहीं, मुँह की ओर एकटक देख रहा है, मानो नाच की लाल पान की···

गाड़ी पर बैठते ही बिरजू की माँ की देह में एक अजीब गुदगुदी लगने लगी। उसने बाँस की बल्ली को पकड़कर कहा—गाड़ी पर अभी बहुत जगह है।···जरा दाहिनी सड़क से गाड़ी हाँकना।

बैल जब दौड़ने लगे और पहिया जब चूँ-चूँ करके घरघराने लगा तो बिरजू से नहीं रहा गया—उड़न जहाज की तरह उड़ाओ, बप्पा !

गाड़ी जंगी के पिछवाड़े पहुँची।

बिरजू की माँ ने कहा—जरा जंगी से पूछो न, उसकी पुतोहू नाच देखने चली गयी क्या ?

गाड़ी रुकते ही जंगी के झोंपड़े से आती हुई रोने की आवाज स्पष्ट हो गयी। बिरजू के बप्पा ने पूछा—अरे जंगी भाई, काहे कन्ना-रोहट हो रहा है आँगन में ?

जंगी घूर ताप रहा था, बोला—क्या पूछते हो, रंगी बलरामपुर से लौटा नहीं, पुनोहिया नाच देखने कैसे जायें ! आसरा देखते-देखते उधर गाँव की सभी औरतें चली गईं।

—अरी टीशन वाली, तो रोती काहे है !—बिरजू की माँ ने पुकारकर कहा—आ जा झट से कपड़ा पहनकर। सारी गाड़ी पड़ी हुई है ! बेचारी !—आ जा जल्दी !

बगल के झोंपड़े से राधे की बेटी सुनरी ने कहा—काकी, गाड़ी में जगह है ?

मैं भी जाऊँगी।

बाँस की झाड़ी के उस पार लरेना खवास का घर है। उसकी बहू भी नहीं गयी है। गिलट का झुनकी-कड़ा पहनकर झमकती आ रही है।

—आ जा ! जो बाकी रह गयी हैं, सब आ जायँ जल्दी !

जंगी की पुतोहू, लरेना की बीवी और राधे की बेटी सुनरी, तीनों गाड़ी के पास आयीं।

बैल ने पिछला पैर फेंका। बिरजू के बप्पा ने एक भद्दी गाली दी—साला ! लताड़ मारकर लँगडा बनायेगा पुतोहू को !

सभी ठठाकर हँस पड़े। बिरजू के बाप ने घूँघट में झुकी दोनों पुतोहुओं को देखा। उसे अपने खेत की झुकी हुई बालियों की याद आ गयी।

जंगी की पुतोहू का गौना तीन ही मास पहले हुआ है। गौने की रंगीन साड़ी से कड़वे तेल और लठवा-सिंदूर की गंध आ रही है। बिरजू की माँ को अपने गौने की याद आयी। उसने कपड़े की गठरी से तीन मीठी रोटियाँ निकालकर कहा—खा ले एक-एक कर। सिमराहा के सरकारी कूप में पानी पी लेना।

गाड़ी गाँव से बाहर होकर धान के खेतों के बगल से जाने लगी। चाँदनी, कातिक की !···खेतों से धान के झरते फूलों की गंध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है। जंगी की पुतोहू ने एक बीड़ी सुलगाकर बिरजू की माँ की ओर बढ़ायी। बिरजू की माँ को अचानक याद आई, चम्पिया, सुनरी, लरेना की बीवी और जंगी की पुतोहू, ये चारों ही तो गाँव में बैसकोप का गीत गाना जानती हैं।···खूब !

गाड़ी की लीक धनखेतों के बीच होकर गयी है। चारों ओर गौने की साड़ी की खसखसाहट जैसी आवाज होती है।···बिरजू की माँ के माथे पर मँगटिक्के पर चाँदनी छिटकती है।

···अच्छा, अब एक बैसकोप का गीत गा तो चम्पिया !···डरती है काहे ? जहाँ भूल जाओगी, बगल में मास्टरनी बैठी ही है !

दोनों पुतोहुओं ने तो नहीं, किंतु चम्पिया और सुनरी ने खखारकर गला साफ किया।

बिरजू के बाप ने बैलों को ललकारा—चल भैया ! और जरा जोर से !···गा रे चम्पिया, नहीं तो मैं बैलों को धीरे-धीरे चलने को कहूँगा।

जंगी की पुतोहू ने चम्पिया के कान के पास घूँघट ले जाकर कुछ कहा और चम्पिया ने धीमे से शुरू किया—चंदा की चाँदनी···

बिरजू को गोद में लेकर बैठी उसकी माँ की इच्छा हुई कि वह भी साथ-साथ गीत गाये।

बिरजू की माँ ने जंगी की पुतोहू की ओर देखा, धीरे-धीरे गुनगुना रही

है वह भी। कितनी प्यारी पुतोहू है। गौने की साड़ी से एक खास किस्म की गंध निकलती है। ठीक ही तो कहा है उसने ! बिरजू की माँ बेगम है, लाल पान की बेगम है ! यह तो कोई बुरी बात नहीं। हाँ, वह सचमुच लाल पान की बेगम है !

बिरजू की माँ ने अपनी नाक पर दोनों आँखों को केंद्रित करने की चेष्टा करके अपने रूप की झाँकी ली, लाल साड़ी की झिलमिल किनारी, मँगटिक्का पर चाँद।···बिरजू की माँ के मन में अब और कोई लालसा नहीं। उसे नींद आ रही है।

(जनवरी, 1957)

नेपथ्य का अभिनेता

यद्यपि उसे पहले भी पचासों बार देख चुका हूँ, किंतु उस दिन देखकर चिहुँक-सा उठा। चकित हो गया। लगा, जैसे बिना मौसम के कोई फूल या फल देख रहा होऊँ। सावन-भादों के किचकिच में, लगातार बारिश में ई कहाँ से आ गया ? क्यों ?

मैं ही नहीं, उसे देख सभी परिचित-अपरिचित अकचकाकर रुक जाते हैं। कोई-कोई उसके टेबुल के निकट जाकर कुछ पूछ भी लेता है और मैं यह भी देखता हूँ कि वह घोर अनाटकीय ढंग से छोटा-सा उत्तर दे देता है। मुझे यह समझने में कोई गलती नहीं हुई कि लोग उसे फारबिसगंज की इस छोटी-सी चाय की दुकान की एक बाँहवाली कुरसी पर बैठा देखकर क्यों कुछ देर के लिए अकचकाकर रह जाते हैं।

मैंने मन-ही-मन अटकल लगायी—प्रायः तीस-इकतीस वर्ष पहले, इस व्यक्ति को पहले-पहल देखा था—सन् उन्नीस सौ उनतीस में। उसी साल पहले-पहल गुलाबबाग मेला मे इतना सटकर हवाई जहाज देखा था कि वह सन्-ईस्वी अभी तक झक-झक मन मे याद है। सन् उन्नीस सौ उनतीस में मैं आठ-नौ वर्ष का था। उसी वर्ष गुलाबबाग मेला में कलकत्ता की मशहूर थियेटर कंपनी आयी थी और लोगों की अपार भीड़ जमा हुई थी—तिल धरने की भी जगह नहीं थी। मंच पर ही गाड़ी आती-जाती थी—इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुआँ उगलती हुई और लाल-पीली रोशनी में अनेक परियाँ नाचती हुई···एह !

जीवन में पहले-पहल थियेटर देखकर कितना उत्तेजित हो गया था—आज भी वह दिन अभी तक मन में है। कितना आश्चर्यजनक !

किंतु जब स्कूल खुला, तो सहपाठी बकुल बनर्जी ने मेरे मन को छोटा कर दिया था। यद्यपि वह भी उन दिनों आठ-नौ वर्ष का ही था, किंतु बहुत ही तेज, जन्मजात आर्ट क्रिटिक। उसके कथनानुसार, इस नकली कंपनी में पिछले साल नागेसरबाग मेला में आयी असली कंपनी के निकाले हुए सब लोग थे। किंतु बकुल मुझे उदास देखकर बोला था—'तब भी एक बात है इस कंपनी में—जिस मानुष

मे रेलवे पोर्टर का पार्ट किया हाई, वह नागेमरबाग मेला में आया हुआ कंपनी में भी वही पार्ट करता था, यानी वेटिंग रूम में सोये हुए लड़िका को मारता था, छूरा से···उसको तो नकली नेही कहने सोकते।'

आज भी मेरे मन में उस समय की सभी बातें हैं···गुलाबबाग मेला···पंजाब मेल का रेलवे पोर्टर···लड़के का खून···बकुल की बातें···

करीब चार या पाँच वर्ष उपरांत सिंहेश्वर मेला में आयी हुई उमाकांत झा कंपनी में इस व्यक्ति को पुनः देखा था। बिल्वमंगल नाटक मे चिंतावायी की मजलिस में भोबिया के बाबाजी के भेष में—'काया का पिंजरा डोले रे, साँस का पंछी बोले' गाता हुआ बड़ा ही सुरगर कंठ था। गुलाबबागवाली कंपनी मे लड़के की हत्या करनेवाला, माने हत्यारे का पार्ट करनेवाला, बाबाजी के गेरुआ वस्त्र में। अपनी बोली वह अधिक देर तक नहीं छुपा सका—मै झट से तुरत पहचान गया। किंतु जब वह पारसी नौटंकी के एक दृश्य में कवित्त पढ़ रहा था—मृदंग कहे धिक है, धिक है···मँजीर कहे किनको-किनको !···तब हाथ नचाय के गणिका कहती—इनको-इनको-इनको-इनको !···उस समय मुझे तनिक भी शंका नहीं रह गयी। खूब फरिछा कर पहचान गया था बाबाजी को—वही था, जो गुलाबबाग मेला कंपनी में, वेटिंग रूम में सूतल लड़के के छुरा भोंकने के पहले काँपते हाथ और थरथराते छुरे को देख, पागल जैसा बड़बड़ा उठा था—'क्यों मेरे हाथ ! तू क्यो थरथरा रहा है ! तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है। मत काँप मेरे खंजर···वक्त बरबाद मत कर ! शिकार·· सोया है चादर तानकर ! ले, तू भी अपना काम कर !' बस कि डुग्गी पर बड़ी जोर से चोट पड़ी थी, सभी हड़बड़ा गये थे—यह सब-कुछ मेरे मन में है।

उसके बाद फिर तीसरी बार—आद्याप्रसाद की नाटक कंपनी के 'श्रीमती मंजरी' खेल में अँगरेज जज का भेष बनाकर टेबुल पर हथौड़ा ठोंककर शांति स्थापित करता हुआ यह व्यक्ति बोला था—'वेल मोंजरीबाई ! हाम टुमको सिड़ी-मटी मोंजरी का खेटाब डेटा हाइ। आज से टुमको सिड़ीमटी मोंजरी बोलेगा। हम बोलेगा, साब बोलेगा, समझा ?' और इस दृश्य के उपरांत कुछेक क्षणों में वही गीत गाता हुआ स्टेज पर आया था—'काया का पिंजड़ा डोले रे' – अपनी उसी पुरानी तर्ज में।

मुझे इसे पहचानने में कहीं गलती नहीं हुई। सब जगह उसे चीन्ह गया।

वह दुकान की कुरसी पर बैठा था अवश्य, पर था अन्यमनस्क, उदास, उखड़ा

हुआ, अपने में खोया हुआ। बादलों की झड़ी वह बहुत देर से एकटक देख रहा था। वह···वह···हत्यारा पोर्टर, बाबाजी···अँगरेज जज···उपदेशक···सिपाही···डाकू···अंधा···फकीर···तथा आदि, आदि, आदि—सब एक ही व्यक्ति···एक ही व्यक्ति !

इतने समय के बाद मेरी नजर उसकी पहनी हुई बुश्शर्ट पर पड़ी। कार्टून की छाप मिट रही थी, मैल जम रही थी। नयी डिजाइन की टूटी चप्पल। वह उचक-कर गंभीर दृष्टि से चायवाले की ओर ताकते हुए बोला, "एक इधर भी···" उसकी बोली सुनकर यह समझने में रत्ती-भर भी भ्रम नहीं रहा कि जो हत्यारा पोर्टर, या दहलानेवाला भयंकर डाकू, या रोबीला अँगरेज जज, या शांत उपदेशक आदि का पार्ट करता था, अब बूढ़ा हो गया है।

याद आया—फारबिसगंज मेले की एक थियेटर कंपनी के कुछ ऐक्टरों के पीछे बहुत देर से घूम रहा था। एक पान की दुकान पर सब खड़े हुए, पीछे मैं भी खड़ा हुआ। उन लोगों में काफी लोग थे। लैला, मजनू और फरहाद, राजा, डकैत के हाथ से राजकुमारी को छुडानेवाला राजकुमार और प्रयोजन पड़ने पर जल्लाद बननेवाला और सबके साथ यह 'काया का पिंजड़ा' गानेवाला। मुझे पीछे खड़ा देखकर यह बोला था, 'क्यों बे छोकरे, इस तरह क्यों घूम रहा है पीछे-पीछे? पाकेट मारेगा क्या ?'

उस छोटी अवस्था में भी मेरा मन समझ गया था कि आत्मसम्मान पर आघात पड़ा है। अहं जाग गया। कड़ाका उत्तर दिया, 'आपके पाकेट में है ही क्या, जो कोई मारेगा ?'

'क्यों ?' वह अप्रतिभ होकर बोला था, 'तू यह कैसे जानता है कि मेरा पाकेट खाली है ?'

यद्यपि उन दिनों मैं अपने स्कूल की सबसे ऊपर की क्लास में पढ़ता था और मास्टर साहब के आदेशानुसार प्रत्येक अपरिचित से अँगरेजी में ही बात करने का अभ्यासी हो चुका था, किंतु फिर भी मैंने खड़ी बोली में ही उत्तर दिया, 'क्यों रात जो भीख माँग रहे थे—दाता तेरा भला हो !'

सब ठठाकर हँस उठे थे और बोले थे, 'छोकरा तेज है।'

अब मुझे अँगरेजी झाड़नी पड़ी थी, 'यू सी मिस्टर—रेलवे पोर्टर-ऐक्टर-डोंट से मी छोकरा, आई एम मैट्रिक स्टूडेंट, यू नो ?'

इतनी पुरानी बात याद आने से मेरे होंठों पर हँसी फैल गयी। प्रश्न उठा मन में कि अभी यह किस कंपनी में काम करता है ? क्या अब भी यह उसी तरह रोबीला डायलाग बोलता है ? वैसे ही वेटिंगरूम में लड़के पर खंजर चलाता है,

वैसा ही···वैसा ही···

मेरा ध्यान भंग हुआ। उसकी चाय खत्म हो गयी थी। वह मेरी टेबुल से सटकर खड़ा हो गया था। पूछा, "आप मुझे पहचानते हो सेठ?"

उसकी बाँह पकड़कर बैठाते हुए बोला, "मैं सेठ नहीं हूँ। खालिस आदमी हूँ। कहिए, आजकल किस कंपनी में हैं? इस बेमौसम में आपको इस इलाके में देखकर मुझे काफी आश्चर्य हो रहा है।"

"साहेब, अब कहाँ की कंपनी और कैसा थियेटर! सबको फिलम खा गया।" उसने हँसने की निरर्थक चेष्टा की।

"आपने कितनी कंपनियों में काम किया है?"

"साहेब, पंद्रा।" लगा, जैसे उसके मन में सब-कुछ सँजोकर रखा हुआ हो। निमिष मात्र के उपरांत मेरी ओर शून्य दृष्टि से ताकता हुआ बोला, "नौ साल की उम्र मे पहली बार स्टेज पर उतरा था—किशन के रोल में।"

मुझे अनुभव हुआ कि मेरे सामने बीते युग का एक शेषांक बैठा है, पारसी थियेटर का एक टूटा हुआ अभिनेता। सिगरेट बढ़ाते हुए पूछा, "तो आजकल क्या करते हैं आप?"

वह एक क्षण चुपचाप मेरी ओर ताकता रहा, फिर सिगरेट सुलगाता हुआ बोला, "क्या करूँगा साहब! वह जो किसी शायर ने कहा है कि इश्क ने कर दिया निकम्मा···" उसने हँसने का असफल अभिनय किया, "दस साल बाद इस इलाके में आया हूँ। क्या नाम बताया लोगों ने—मिथिला देश। साहेब, इस इलाके में नाटक के काफी शौकीन लोग हैं···जाने को तो फिलम में भी गया। पर जी नहीं लगा।" इतना कहकर कनखी मे एक बार इधर-उधर ताककर, फिर दयनीय दृष्टि से मेरी ओर देखता हुआ धीमे स्वर में बोला, "साहेब, एक्सक्यूज मी, फॉर लास्ट टू डेज आई एम हंगरी, वेरी हंगरी। माँगने को हिम्मत नहीं होती किसी से···"

उसका यह अँगरेजी डायलॉग घोर अनाटकीय था। मैं कुछ कहने को ही था कि चेहरे पर आज्ञा मानने का भाव प्रदर्शित करता हुआ गिड़गिड़ाने के स्वर में बोल उठा. "हुकुम हो तो कुछ पेश करूँ···अब तो यही एक सहारा बचा है, ड्रामे के पुराने शौकीन मिलते हैं, सुना देता हूँ, जी हलका हो जाता है और कुछ···।" वह अपने अपूर्ण वाक्य को छोड़, कोने में रखी अपनी अटैची कूदकर ले आया। एक काली लुंगी बाहर कर मुंह झांप लिया। फिर लुंगी का परदा उठाया, तलवार कट मुँहवाला एक विचित्र चेहरा बाहर आया। मद्धिम स्वर में वह बोला, "यह एक उदास-निराश नौजवान प्रेमी का डायलॉग है।" एक बार वह खखसा, पुनः

बोलना शुरू किया, "जालिम चपला ! यह क्या किया ! तुमने मेरे दिल के हजार टुकड़े कर दिए ! जालिम ! तूने यह क्या कर डाला, क्या कर डाला, चपला··· चपला···चली गयी तूं चपला । चली गयी तूं मुझे तड़पता छोड़कर···।" इसके बाद हिचकियाँ लेते हुए उसने जो संवाद बोला, वह मैं नहीं कह सकूंगा ।

दुकान में लोगों की भीड़ लग गयी थी। चारों किनारों से लोग झुक-झुककर देख रहे थे । सबके चेहरों पर एक विचित्रता और कुतूहल का भाव था । किंतु सभी चुप्प, स्तब्ध ! बाहर बादल रह-रहकर गरज उठता था। उसने पुनः अपने चेहरे पर लुंगी का परदा गिरा लिया, मानो अपने को ग्रीनरूम में ले गया हो । इस बार बड़ी-बड़ी मूंछवाला सरदार बनकर बाहर आया। परदा उठा, वह गरजा, "क्यों बे बदकार ! बता, कहाँ है राजकुमार ? कहाँ है, मक्कार की औलाद···।"

हठात् इस जोशीले संवाद की उठा-पटक में नकली दाँत का सेट छिटककर मुंह से बाहर आ गया।

इसी क्रम में उसने दर्जनों मुखड़े बनाये, कितने ही प्रकार के रास-संवाद सुनाये और अंत में टोपी को भिक्षा-पात्र बनाकर लोगों की ओर ताककर बोला, "दाता, तेरा लाख-लाख भला हो, आना-दो आना···दो पैसे ही सही···।"

मेरा पैर धरती से स्पर्श कर गया । जैसे कहीं थोड़ी चोट लगी हो, एक झटका लगा हो । व्यक्ति अपनी कला के जादू से कितने वर्ष पीछे धकेल दिया गया था । मैं पुनः वर्तमान में लौट आया । देखा, बकुल बनर्जी मेरी ओर एकटक ताक रहा है—थोड़ा-थोड़ा किनारे से मुसकराता हुआ ।

बकुल उसे जोर से पूछ बैठा, "क्यों ऐक्टर मोशाय, काल इतना मेहनोत से चोन्दा कर दिया, सो सब एक ही रात में भट्ठी में फूंक दिया ? बाह रे मोशाय !"

जन्मजात आर्ट-क्रिटिक मेरा सहपाठी बकुल बनर्जी आज भी कला और कलाकार को पहचानने का धंधा उसी प्रकार करता है । सब दिन एक जैसा ही रहा वह ! मेरी ओर ताकता हुआ बकुल बोला, "तू भी इसका बात में फँस गये मुझसे काल यह कह रहा था—फॉर टू डेज आई एम हंगरी···।"

नहीं जानता क्यों, मुझे उस वक्त बकुल की यह बात अच्छी नहीं लगी । उसे चुप रहने का इशारा किया और फुसफुसाकर पूछा, "बकुल, इसकी डोलती हुई काया के पिंजड़े में जो पंछी बोल रहा है, उसकी बोली को सुनकर तुमको कुछ नहीं लगा ? ठीक-ठाक बताना !"

बकुल जैसे अवाक् रह गया हो । निमिष-मात्र स्तब्ध रहा, फिर धीरे से बोला, "कुछ नहीं लागता, तो काल्ह ठो सारा दिन क्यों इसके साथ भीख माँगता, चोन्दा तो भीख ही हुई।" उसने एक निःश्वास छोड़ा, फिर कहने लगा, "क्या बतायें,

कैसा लगा ? लगा···तुम्हारे अथवा अन्य मित्रगणों के साथ भागकर रात-भर थियेटर देखने गया हूँ, होस्टल से।'

मैंने कहा, "हाँ बकुल, मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा।"

इसी बीच वृद्ध ऐक्टर ने अपने दूसरे, पुराने प्रसिद्ध गीत की पहली पंक्ति आरंभ कर दी थी :

"सुबह हो गयी निकल गये तारे—
मुझे छोड़ो चलो मेरे प्यारे !"

हठात् पुनः हम लोगों के मन में मेला का मौसम जगमग करने लगा।

[मैथिली से अनुवाद : भारत यायावर]

टेबुल

मिस दुर्बा दास !

अब सिर्फ मिस दुर्बा दास नही। मिस दुर्बा दास, असिस्टेंट ब्राच मैनेजर; कांटिनेंटल कॉस्मेटिक्स एंड ड्रग्स लि० कलकत्ता-बंबई-दिल्ली-पटना। ब्राच पटना।

ब्राच ऑफिस के हर सेक्शन में पिछले सात दिनों से बस एक ही चर्चा; चर्चा का एक ही विषय—दुर्बा दास का भाग्य। डिस्पैच क्लर्क होकर कंपनी में आयी। फिर, हेडक्लर्क और आठ वर्षों के बाद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर का यह नया पद !

कैंटीन की सीढ़ी के पास बैठा जमादार अभिलाखराम सुना रहा है नये बैरा मिरामदास को, "मिस साहेब को हम देखा है, जब मिस साहेब फिराक पहनती थी। बहुत बड़े हिसाबी बंगाली बाबू की बेटी है मिस साहेब। एक दिन झाड़ू देने नही जाओ, बस एक दिन की मजूरी तुम्हारी जरूर कटेगी। कहते, हराम का पैसा खाकर हड्डी क्यों गलाना चाहते हो ?"

माली बोला, "तो, खानदानी कजूस कहो मिस साहेब को। कल मेजर बाग से गुलाब खरीदकर, दुहरा गुलदस्ता बनाया बड़े जतन से। घर पर दे आया—खुशी-खुशी। सो, गुलदस्ता हाथ में लेकर चुटकी-भर हँसके छुट्टी।...सबके सब बिलेकप्रिंस गुलाब थे।"

सिंगमरराम जनरल सेक्शन का पियन दूर से ही मुस्कराता आ रहा है। उसने समझ लिया है, गप मिस साहेब के बारे में ही हो रही है। आते ही बोला, "आज आफिसो कंपलेट हो गइल, अगले। आज तखतीओ लटक जायी—नेम पिलेट।"

"तब तो आज से तुम्हारे डिपाट में नही बैठेगी ?"

"यहाँ बैठेवाला भी आ गइलन।...बंबई से, बाड़ा बाबू।"

सिंगसर कैंटीन की ओर बढ़ा तो पियन यूनियन का चदा उगाहनेवाले पियन जगवतीप्रसाद ने रोककर कहा, "ए नेम पिलेट-कंपलेट ! किधर ?...डिपाट में

चाह्-चू भी देगी मिस साहेब या जै-जै सियाराम ?"

सिंगेसर हँसकर बोला, "ऊ गुड़ नहीं जो मक्खी खाये। न केकरो खात देखलीं—ना केकरो के खिलावत देखलीं—आज ले।"

सचमुच, मिस दुर्वा को किसी ने खाते-खिलाते नहीं देखा कभी।

जनरल सेक्शन—जहाँ दुर्वा दास बैठती थी—आज सूना-सूना लगता है। कोने में बैठती थी मिस दुर्वा, हेडक्लर्क। लगता था, एक बड़ा सजा-धजा टेबुल-लैंप जल रहा हो।···आठ साल तक वह टेबुल-लैंप—दुर्वा दास का रूपदीप—समान रोशनी लेकर हॉल के कोने में जलता रहा—दस से पाँच तक। कभी-कभी सात बजे शाम तक।

दिन-भर मे सिर्फ दो-तीन बार उसका कॉलिंग बेल बजता, दो बार पानी पीती। लंच के समय पाउडर की डिबिया जैसे टिफिन-बक्स से एक लीली बिस्कुट निकालकर कुतर लेती। बोलती बहुत कम। मुस्कराती रहती, हर घड़ी। कहते है, इसी अद्भुत मुस्कराहट के पीछे दुर्वा की सफलताओं का रहस्य छिपा हुआ है। सेक्शन में देश के कोने-कोने से—एक-से-एक घाघ बाबू आये। जिसने दुर्वा की इस मुस्कराहट का गलत अर्थ लगाया—वह गया। त्रिपाठी, सिन्हा, लंगड़ा मुखर्जी—सभी ने एक ही गलती की, क्रमशः।

नगीनाप्रसाद को बेवजह बात करते समय लेजर के पन्ने उलटने की आदत है और बगैर जीभ से उँगलियों को गीली किये दो पेज से अधिक नही उलट सकता। मिस दुर्वा ने लिखकर गंदी आदत को छोड़ने की चेतावनी दी थी।

आज नगीनाप्रसाद अतिरिक्त उत्साह के साथ अनर्गल बाते कर रहा है और उसकी उँगलियाँ—मशीन की तरह—हर दो पन्ने के बाद जीभ से जा चिपकती हैं, "चपाक्! चट-चट!! चपाक्··· क्यों भाई, बड़ा बाबू बड़े साहेब के कमरे में है, क्यों ?"

ट्रांसपोर्ट क्लर्क सेन बोला, "अच्छा भाई। हम तो हिंदी का लिंगऊंग नही जानता कुछ···बताव तो ई मिस दास को···आ:मिन·· छोटा साहेब को क्या बोलेगा ? बड़ा साहब···छोटा मेम तो नही बोलने सकता।"

सभी हँसे।

मिस दुर्वा दास, हेडक्लर्क ने एक ट्रांसपोर्ट के सेन का हिसाब चेक कर कहा, "हिसाब गलत है।" सेन ने सारा दिन बैठकर हिसाब किया—करवाया। पेट्रोल के कूपनों से लेकर आटोमोबाइल-गैराज के बिलों को दुहराकर देखा। साढ़े चार बजे जो हिसाब पेश किया सेन ने—उस पर सरसरी निगाह डालकर ही मिस दुर्वा दास ने—विशुद्ध बंकिमचंद्रीय बँगला मे कहा था, "आपनि दया कॅरिया आपनार ब्रह्म तालुते छागघृत अनुलेपन करुन—प्रत्यह !"[1]

1. कृपा करके आप अपनी खोपड़ी मे रोज बकरी के घी की मालिश करें।

पर्चेज सेक्शन के झा ने अधजली सिगरेट को सुलगाकर कहा, "ई जुल्में है कि ?"

"क्या जुल्म है ?"

"यही कि जनाना जात राज करे और मरद जात···हमारे यहाँ एक कहनी है कि—जे घर मोगी कंल घरबार—से घर बूझू बंटाढार।"

मेन बोला, "झा बेटा, भानुसिंघ का पदावली बोलता है। एँ ?"

सभी बाबू जी खोलकर हँसे। आज नये बड़े बाबू के ज्वायन करने का दिन है। स्वागत के मूड में है।

"बड़े बाबू अभी तक बड़े साहब के चेंबर में है या छोटे ?"

चापलूस गुलमन मेहता की व्रण-जर्जर साँवली सूरत पर लाली दौड़ी। अवसर पर बोलने के लिए वह कोई अप्रचलित अंग्रेजी शब्द ढूंढ़ रहा था, शायद। किंतु कुछ बोल नही सका। बड़े बाबू—नये बड़े बाबू अनुरंजन गुप्ता दफ्तर में आ गये—बड़े साहब के चेंबर से।

मेहता ने आगे बढ़कर स्वागत-नमस्कार किया। सहकर्मियों से उनकी सिनियोरिटी के क्रम से परिचय-पात करवाया।

सदा देर से दफ्तर आनेवाले, किंतु सदा-सर्वदा सभी के काम आनेवाले बिंदा महाराज आज भी देरी से आये। मिस दास ने भी कभी जवाब-तलब नहीं किया बिंदा महाराज से। ब्राह्मण, बूढ़ा···। बिंदा महाराज के घर आज ही सौभाग्य से पूजा थी—तिलकुट ले आये हैं। बड़े बाबू ने श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया। बिंदा महाराज धन्य हो गये।

बिंदा महाराज अब अपनी पुरानी मँझली दीदी, नयी असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर—मिस दुर्बा दास के नये कमरे में गये।

दुर्बा को तिलकुट बहुत पसंद है। गया जोन मे रिप्रेजेंटेटिव मानस कुमारजी हर साल तीन बार तिलकुट की टोकरी ले आते हैं।

गुलमन मेहता मिस दुर्बा दास के चेंबर मे आया। सबसे पहले हिंदी में नेम प्लेट बनाने के लिए धन्यवाद दिया। मानो हिंदी का एकमात्र रक्षक इस सीसीएंडी (कांटिनेंटल कॉस्मेटिक्स एंड ड्रग्स) मे अकेला वही है। दुर्बा ने झुकी नजरों से मेहता को देखा।

मेहता ने अब नेम प्लेट की तारीफ की, "बहुत बढ़िया बना है।"

"क्या बढ़िया है ? नाम ही गलत लिखा है।"

"ऐं ?" मेहता ने चेंबर से बाहर निकलकर नेम प्लेट को फिर पढ़ा, "कहाँ, क्या गलती है—गलती तो कोई नही दिखलाई पड़ रही।"

"दुर्वा नही, मेरा नाम है—दुर्बा।"

मेहता ने इस गलती पर अपना मुँह सकुचित करके कोट के बटनहोल जैसा

बना लिया, "ओ-ओ-ओ !···खैर, पेट काट देने से काम चल जायगा।"

मेहता ने अब मिस दुर्बा के नये और विशाल टेबुल की प्रशंसा की, "ग्रैंड है।"

दुर्बा को हठात् कुछ स्मरण हुआ।·· टेबुल ? "नया हेडक्लर्क आ गया दफ्तर ? कहाँ बैठा है ?"

मेहता बोला, "और कहाँ बैठेंगे ? जहाँ आप बैठती थी।"

दुर्बा अचानक इस तरह गंभीर हो गयी तो मेहता कान खुजलाने लगा। फिर शनैः-शनैः चेंबर से बाहर निकल गया···राम जाने क्या बात हुई।

'क्रिंग-क्रिंग-क्रिंग···'

"हूँ। जी-जी। हाँ। येस्सर। अभी आ रही हूँ।"

"ट्रिं !···बिसनूसिंघ ?···तुम्हीं को मेरे मत्थे मढ़ा गया है ? सुनो—पर्चेज सेक्शन के झा से बोलो—बड़ा साहब बुलाता···।"

दुर्बा दास भी बड़े साहब के चेंबर में गयी। फिर तुरंत वापस हुई। अभ्यास-वश उसके पैर जनरल सेक्शन की ओर बढ़े। किंतु, बिसनूसिंघ की विस्फारित दंतपंक्ति को देखकर मुड़ी—अपने चेंबर की ओर।

दुर्बा दास की इस असामयिक और अभावनीय उन्नति से बिसनूसिंघ अत्यधिक प्रसन्न है। रूप कहते हैं इसको कि देखिए तो देखते रह जाइए, मुदा न रूप घटे, न आँख हटे। इसको कहते हैं जनाना का खपसूरती। भगवान ने बिसनूसिंघ की प्रार्थना सुन ली है—मनोकामना ! अब सेवा करने का औसर मिला है—इतने दिनों के बाद।

दुर्बा अपने चेंबर में आयी।

···'उँहु ! कुछ अच्छा नहीं लगता। नये फर्नीचरों की गंध, वार्निश की गंध दुर्बा को अच्छी लगती है। किंतु आज क्यों नहीं अच्छी लग रही ? उबकायी क्यों आ रही है? उसके दोनों हाथ रह-रहकर भटक जाते हैं, मानो। ड्राअर नये ढंग का है, इस मेज का ? नया टेबुल ? ठीक है। यही···यह टेबुल नहीं पसंद है दुर्बा को।

अपने दोनों हाथों को दोनों ओर टेबुल पर पसारती है, दुर्बा। मानो आलिंगन कर रही हो, टेबुल का। उसने धीरे से टेबुल के कांच पर—टाप ग्लास पर—अपना दाहिना गाल रखा। तड़प उठी, मानो बिजली छू गयी।—नहीं, नहीं ! नहीं चलेगा। लेकिन ?···

···आठ साल से जिस टेबुल पर काम करती आयी है, उसके सिवा और किसी टेबुल के पास बैठने की इच्छा नहीं होती। लगता है, पराये के सामने बैठी हूँ।···असंभव !

'ट्रिं !'

"हुजोर ?"

"बिसनूसिंघ, मेहता बाबू को···।"

मेहता कान खुजलाता हुआ फुर्ती से आया, "जी ?"

"मिस्टर मेहता ! बड़ा बाबू···नये बाबू···हेडक्लर्क आ गया दफ्तर ?··· काम कर रहा है टेबुल पर ?"

"टेबुल पर काम ? जी हाँ।···जी नहीं। अभी तो सिगेमर को बुलाकर हथौड़े मे टेबुल की कोई कांटी ठोकवा···?"

"क्या-या-या ? कांटी ?"

मेहता का व्रण-खचित मुखमंडल कंटकित हो गया लगा, अचरज से बोला, "जी हाँ। कांटी माने···कील।"

दुर्बा सिहर उठी दाँत पर दाँत रखकर—"सि-ई-ई !" किंतु उसने तुरंत अपने को संभाल लिया, "ठीक है, आप जाइए !"

···जाइए ? मेहता मानो किसी अन्य दुर्बा दास को देख रहा है। ऐसी चंचल, इतनी उतावली तो आज तक कभी नही दिखी दुर्बा दास ? कील ! कांटी ! !··· गुलसन मेहता के मन में रह-रहकर कांटी गड़ने लगी—ऐसा क्यों ?

मेहता चला गया।

···क्या किया जाये ? वह टेबुल दुर्बा को चाहिए, आज चाहिए, अभी चाहिए, उसके सिवा वह एक क्षण चैन से नहीं बैठ सकती।···नहीं, नही, नही ! कुछ नही हो सकेगा उसके द्वारा। मेमो पर दस्तखत तक नहीं। और, उधर वह गुप्ता— आते ही आते कील क्यों ठोंकना शुरू किया टेबुल मे ? पता नहीं किधर कील ठोंक रहा था ? सी-ई-ई ! शायद जिस कांटी को उसने जानबूझकर आधा ही ठोकवाया था—चिटों की नत्थी टांगने के लिए—उसे तो नही ? भगवान जाने ! किंतु यह अन्याय ही नहीं, अपराध है।···क्राइम। उसने क्यों ऐसा किया ?

'ट्रिं !'

"हुजोर ?"

बिसनूसिंघ ने नये बड़े बाबू को मिस दास साहब का सलाम दिया।

लगा, इसी क्षण की प्रतीक्षा मे—इस प्रकार की राह देख रहे थे सभी। बड़ा बाबू अनुरंजन गुप्ता भी। सभी ने एक-दूसरे को देखा।

मेहता धीरे से उठकर बड़े बाबू के पास गया। धीरे से गुनगुनाकर बोला, "ई टेबुल बड़-सुगनिया है, बड़ा बाबू !"

मेहता जब आत्मीयता-भरी बोली बोलता है, तो पहली पंक्ति मगही मे अवश्य बोलेगा। उसने पूछा, "सर ! मकान तो मिल गया। या···? ठीक है, किसी

तरह की कोई भी असुविधा हो—मेहता को याद कीजिए। हमारा फर्ज है, सर। हमारा जन्म इसी शहर में—सिटी-एरिया में हुआ है। जी ही-ही-ही!!"

बड़ा बाबू, अर्थात् अनुरंजन गुप्ता हॉल से बाहर चला गया तो सेन ने पूछा, "अच्छा भाय मेटा! तुम भी खूब है भाय। कभी बोलता है, हियाँ पर जन्म हुआ है हमारा। उस दिन बड़ा साब को बोला—हुआ पांजाब में चांदनी-ना-चानी चौक में हुआ। तुम्हारा जन्म केतना जाग्गा में हुआ भाय मेटा?"

हाल में एक सम्मिलित हँसी गूँजी। किंतु मेहता ने सदा की भाँति सेन की चोट का ही रुख मोड़ दिया, "समझे र माई डियर फ्रेंड्स—कहीं न कहीं कोई कील जरूर गड़ रही है।...मालूम तो सभी को है कि पिछले साल कलकत्ता में—एक ही साथ ट्रेनिंग में थे, दोनों। मिस्टर ए० गुप्ता एंड मिस दुर्बा दास। एक सफलीभूत होकर 'एबीएम' हो गयी—दूसरा बड़ा का बड़ा बाबू ही रहा—पोर हाइलैंडर नौजवान, आवर न्यू हेडक्लर्क!"

मेहता के इस लेक्चर के बाद दफ्तर के कामकाज में लोगों ने अपने को डुबाने की चेष्टा शुरू की। नये बड़े बाबू की निगाह में आज ही न पड़ जाये कोई—इसलिए कृत्रिम मनोयोगपूर्वक काम चालू हुआ।

टाइपराइटरों की गति, कॉलिंग-बेल की पुकार, दराजों को खोलने और बंद करने की आवाजें—सारे वातावरण में एक बनावट, एक मिलावट, कपट!

"सिंगेसर!...कहाँ भाई? जरा पानी पिलाओ।"

सिंगेसर सब समझता है। बहुत-बहुत बाबुओं को उसने पानी पिलाया है, आज तक। असल प्यास, नकल प्यास और नजर प्यास—सभी प्यास को वह पहचानता है। जहाँ एक बाबू ने पानी माँगा, सभी बाबुओं की आत्मा मानो प्यास से ऐंठने लगती है।

"सिंगेसर! कहाँ चला जाता है? किसी ने कहीं भेजा है?"

सिंगेसर बड़बड़ाता हुआ आया, "हजुर। पानी छूके फैलवा हम ना छूएब। भींगल हाथे कौनो कागज ना धरब।...मिस साहब बहुत बिगड़ेली...!"

महीने के अंतिम सप्ताह में कई बाबुओं को सिंगेसर से कर्ज लेने की जरूरत पड़ जाती है, दस-पाँच। इसलिए सिंगेसर की झल्लाहट पर कोई ध्यान नही देते, शायद। उसके विरुद्ध वक्तव्य अंग्रेजी में हो या किसी अन्य भारतीय भाषा में—वह समझ लेता है। अपनी भाषा ठेठ भोजपुरी के अलावा कोई भाषा सीखने-बोलने की उसकी इच्छा ही नहीं हुई। चाहे बंगाल के बनर्जी बाबू बोलें अथवा मराठा भोंसले साहब से बातचीत करे, सिंगेसर 'जातानी-खातानी' ही बोलता है।

मेहता के मन में काँटी खुच-खुच चुभती है—क्या बात है? वह और बैठा नहीं रह सकता।...एक रेलवे रसीद के बारे में पूछने योग्य प्रश्न गढ़ रहा है

वह।···मिल गया मवाल उमको। वह फायल लेकर 'एबीएम' के चेंबर में पूछते हुए घुस गया, "मे आई कमिनमा···।"

किंतु मिस दुर्बा दास ने पदोचित गंभीरतापूर्वक कहा, "बाद में आइए।"

···मेहता ने देखा—नये बड़े बाबू के ओंठों पर एक अद्भुत मुस्कराहट अंकित है। और दुर्बा दाम के चेहरे पर एक अभूतपूर्व हलचल।···मन में कील दो-तीन बार लगातार गड़ी, मेहता के ! ! वह फिर अनिच्छापूर्वक चेंबर से बाहर निकल आया।

तब, मिस दास ने पुनः वार्तालाप प्रारंभ किया।

"आपको घर मिल गया ? अच्छा। गुड लक, यह बहुत बड़ा प्राब्लेम है पटना का···"

"हर जगह यही हालत है। मेरे एक परिचित यहाँ रेलवे में है—उन्हीं की कृपा से एक अच्छा घर मिल गया है।···चिरैयाटाँड़ पुल के पार।" अनुरंजन ने बताया।

मिस दास के अंदर बहुत देर तक सघर्ष छिड़ा रहा। सामने बैठे युवक से यह उसकी पहली मुलाकात नहीं। एक ही साथ ट्रेनिंग में थी पिछले साल।···अनुरंजन के नोट्स आज भी उसके पास है।···फिर, वह पचीस पृष्ठ का व्यक्तिगत निबंध—ट्रेनिंग से मैंने क्या प्राप्त किया—सरस रोचक साहित्यिक ढंग से लिखने की शर्त थी। उसने अनुरंजन से अनुनय किया था।···टी सेंटर में बैठकर चाय पी है। आमने-सामने बैठकर।—स्टार में शंभूमित्रा का 'रक्त करबी' देख चुकी है, अगल-बगल बैठकर। दक्षिणेश्वर, बेलुड—। नहीं, उन स्मृतियों को पोंछ देना होगा। चॉक से अंकित भूत क्षणों को 'परिष्कार' कर देना होगा—मन-पटल से। मन, एक काला बोर्ड !

अनुरंजन गुप्ता ने बहुत पहले ही अपने को संयत कर लिया है। यहाँ आने से पूर्व ही वह आँधी-तूफान झेल चुका है। उसने समझौता कर लिया है। बोर्ड ने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के काबिल नहीं समझा, उसका दुर्भाग्य ! वह क्या करे ? किंतु तुरंत पटना ट्रांसफर-आर्डर पाकर वह उद्विग्न अवश्य हुआ था। मन-प्राण से काम करने की अच्छी सजा उसे मिली···उसने ग्रहण किया। वह दृढ़ होकर अपना कर्तव्य करेगा।···

किंतु, अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व उसका मन फिर डगमगा गया था···नमस्कार का झिझकता हुआ प्रतिनमस्कार, हाथ उठाने का ढंग, आँखों की असाधारण नमनीयता—सब-कुछ देख-सुनकर उसने समझ लिया था, मिस दास के मन में कुछ हो रहा है। उसने कुर्सी से उठने का उपक्रम किया।

दुर्गा बोली, "सुनिए ! मैंने बुलाया था···।"

अनुरंजन फिर कुर्सी पर स्थिर होकर बैठ गया। कुछ क्षण चुप रहने के बाद अनुरंजन ने पूछा, "जी ! कहिए ?"

"वह टेबुल···आइ मिन···वह टेबुल जिस पर फिलहाल आप बैठे हैं···वहाँ कल तक मैं बैठती थी···वह···वह···।"

"जी। वह ? क्या है उस टेबुल में ?"

"वह मेरा टेबुल है···"

"आपका पर्सनल ?"

"जी नहीं। मैंने उस पर आठ साल तक बैठकर काम किया है।"

अनुरंजन ने कहा, "जी, मालूम है। किंतु मुझे कुर्सी नयी दी गयी है।"

दुर्गा गंभीर हो गयी। अनुरंजन का यह कथन अश्लील-सा लगा।···कुर्सी बदलने की बात क्यों बोला ? उसने अब मन के सारे संकोच को दूर कर दिया। बोली, "वह टेबुल मुझे···यहाँ···मेरे चेंबर में भेज दीजिए।"

"यहाँ भेज दूँगा ?···और यह टेबुल वहाँ जायगा ? लेकिन, यहाँ इतनी जगह कहाँ है ?"

"नहीं। यह टेबुल भी यहीं रहेगा। वह भी।"

"तो, मैं वहाँ किस टेबुल पर···?"

अधीरतापूर्वक दुर्गा दास बोली, "मैं स्टोर बाबू को बुलाती हूँ। आपको नया टेबुल मिलेगा।"

अनुरंजन ने बिना कुछ सोचे-समझे जवाब दिया, "ठीक है। नया टेबुल आ जाये पहले···"

"पहले-पीछे क्या ? अभी भेज दीजिए।"

दुर्गा दास फिर सोच में डूब गयी। अनुरंजन ने उसके गालों पर रंगों को इतनी शीघ्रता से चढ़ते-उतरते नहीं देखा था। न स्टोर में, न ट्राम में, न बेलुड़ में—कहीं नहीं !

अनुरंजन उठा। दुर्गा दास का ध्यान भंग हुआ। मानो, अपने-आप से तर्क करती हुई बड़बड़ाई, "उसके बिना मुझसे कोई काम नहीं होगा···किच्छुई हॅबे ना आमार द्वारा।"

अनुरंजन अपने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के चेंबर से बाहर निकल आया।

अपने जेनरल सेक्शन में घुसते ही उसे लगा—सेक्शन के हर टेबुल के पास, मानव काया में जड़ित अभिभौलकों में कौतूहल, जिज्ञासा और अचरज, मिलजुल-कर झिलमिला रहे हैं। छोटी-छोटी बल्ब जैसी दस जोड़ी जलती हुई आँखें !

ट्रांसपोर्ट विभाग का दुलाल सेन—जिसे दफ्तर के सहकर्मी ट्रांसपोर्टेसन कहते हैं—'मुराद' सिगरेट पीता है। बड़े बाबू को ऑफर करता हुआ बोला सेन, "सार! डिविजन ऑफ वर्क का फैसला हो गया क्या?"

अनुरंजन 'मुराद' सिगरेट का स्वाद लेने लगा, कोई जवाब नहीं मिला सेन को।

सभी जलती आँखों ने बड़े बाबू के चेहरे पर आने-जाने वाले भावों को परखने की चेष्टा की—अपने-अपने कोण से।

बिंदा महाराज ने पनडब्बा बढ़ाया···बड़ा बाबू पान खाते वक्त सिगरेट नहीं पीते।

गुलसन मेहता ने तुरंत ताईद की, "बहुत अच्छा करते हैं, सर! पान खाते वक्त सिगरेट पीनेवाले की सिगरेट की थूथनी अजीब···लाल-सी···अजीब···।"

"···कि—हजोर!"

"क्या नाम है तुम्हारा?"

सिंगेसर के साथ सभी बाबुओं ने दुहराया, "सिंगेसरराम।"

"देखो, सिंगेसरराम! यह टेबुल जायगा—एबीएम—माने मिस दास साहब के चेंबर में :"

बाबुओं की मंडली एक स्वर में बोली, "मिस दास साहेब के चेंबर में? क्यों-यों-यों?"

सबसे बाद में सिंगेसर ने पूछा, "से काहे हजूर?"

"वह कहती है···।"

"क्या कहती है सर?" मेहता अब अपनी कुर्सी पर चुपचाप बैठा कैसे रह सकता है? "क्यों सर? आप वहीं बैठियेगा?"

अनुरंजन की भृकुटी तनिक बंकिम हुई। मेहता ने समझ लिया। वह बोला, "ओ! मैं समझ गया सर!"

अनुरंजन ने समझाया, "इसमें समझने-बूझने की कोई बड़ी बात नहीं। वह किसी दूसरे टेबुल पर काम नहीं कर सकती।"

"तो, दे दें न अपना बड़ा टेबुल?"

"वह भी नहीं देगी। दोनों टेबुल रखेगी।"

"स्टोर में नया टेबुल कहाँ से आवेगा?"

"जरा स्टोर डायल करो, झा।"

मेहता स्टोर-क्लर्क से पूछता है, "हाँ, बनर्जी दादा, सुनिए। स्टोर में कोई सेक्रेटेरिएट टेबुल···टेबुल नया कोई है? ऐं? है?···दिल्लगी छोड़िए दादा! बड़ा बाबू के लिए। नहीं?"

मेहता के चेहरे पर खुजलाहट हुई—किसी व्रण में।

मेम ने हंसकर पूछा, "क्या बोला बनर्जी दादा ?'

"पगलू हैं यह बनर्जी दादा भी। कह रहे थे कि अभी शीशम का पेड़ कटाबेगा, चिरायी-फड़ायी होगी, तब जाकर टेबुल होता है। गाछ में फलता नहीं। हुं !"

'क्रिग-क्रिग-क्रिग···!'

"यः, गुप्ता बोल रहा हूं। जी ? फिर मैं किस टेबुल पर ? स्टोर में नहीं है। अजीब बात है। काम तो मुझे भी करना है। जी ? लेकिन, मैं बड़े साहब से क्यों कहूं ? आप ही कहें।···आइ डोंट···थि···खट् !"

टेलीफोन वार्ता-काल सभी बाबुओं के मुखड़े पर उत्तेजना और प्रसन्नता की लहरें दौड़ती रहीं। इसके बाद प्रत्येक बाबू ने अपने मन और मुंह के उपयुक्त मुद्रा बनायी।

बिंदा महाराज कहते हैं, "टेबुल में क्या है ऐसा ?"

मेहता ने ऐसा मुंह बनाया मानो दुर्बा दास ने उसे छड़ी से पीटा है, अभी-अभी। सेन बोला, "साला काठ का चीज का वास्ते इतना दरद और मानुस का वास्ते कुछ नेंही—भीतर में ?"

अनुरंजन चुप रहा। नगीनाप्रसाद की आदत पर उसकी दृष्टि गयी। पृष्ठ उलटते-उलटते जीभ से उँगलियाँ चिपकीं। नगीनाप्रसाद पन्नों को उलटते हुए बोला, "बहुत-बहुत स्वार्थी जीव देखा है। लेकिन ऐसा नहीं···चपाक् चट।"

बनर्जी दादा—स्टोर बाबू ने आकर नये बड़े बाबू से परिचय किया। बोला, "देखिए, आप हमारे बड़े बाबू हैं। मगर उमेर में हम आपसे बड़ा है। टेबुल आप हरगिज मत दीजिए साहब।"

"बहुत छोटे हृदय की है।"

"दिल में दया-माया का नाम नहीं।"

"किसी की नौकरी खाते समय भी ऐसी ही हँसी उसके चेहरे पर रहती है।"

"आखिर, आदमियत भी कोई चीज है।"

"भगवान ने औरत बना के क्यों भेजा इसे ?"

"जुल्मैं है कि ! एतना रूप मुफ्ते चला गया।"

अनुरंजन सुन रहा है, एक-एक मंतव्य। किंतु कोई दुर्बा के चरित्र पर उँगली नहीं उठाता। निष्ठुर, हृदयहीन, स्वार्थी सब-कुछ कह रहे हैं लोग। लेकिन किसी ने यह नहीं कहा कि रूप-यौवन देकर उसने उन्नति खरीदी है। उँहूँ ! कोई नहीं कह सकता।

मेहता बोला, "ऐसी जिद तो नहीं करनी चाहिए। अच्छा, मेट मि सी···।"

मेहता दफ्तर से बाहर निकला। झा ने सेन के कान में कहा, "साला चला अब 'गो-बिटविनी' करने।"

सेन ने आँख टीपकर संकेत किया, "बेटा, देखना खेला। खेला तो अभी आरंभ हुआ।"

मेहता लौट आया। दुर्बा दास को इतना उत्तेजित कभी नहीं देखा मेहता ने। किसी ने भी नहीं। रूप-पूजक बिसनूसिंघ पियन ने भी नहीं।

बिसनूसिंघ पिछले सात साल से मिस दास की बिना पैसे की गुलामी करने का अवसर ढूंढ़ रहा था। भगवान ने इतने दिनों के बाद नजर फेरी। आज ही वह निवेदन करना चाहता था कि घर पर भी उससे काम लिया जाये। बिल्कुल काम करेगा बिसनूसिंघ। पैर में जूती भी पहना देगा। लेकिन, आज तो ऐसा मन उचाट है मिस साहेब का कि एक पल चैन से बैठती ही नहीं।

बिंदा महाराज बड़े साहब से पूछने गये कि इस पूर्णिमा की रात में भी पूजा कराने के लिए कोई पुरोहित चाहिए क्या? बड़े साहब मिस दास से कह रहे थे, "नहीं। यह कैसी लड़कपन-भरी बातें करती हैं, आप? आप दो-दो टेबुल रखें और···आखिर, वह कहाँ काम करेगा? आखिर उस टेबुल में क्या है?"

मिस दुर्बा अनुनय-भरे स्वर मे बोली, "सर, वह टेबुल तो मुझे चाहिए ही। चाहे जैसे भी मिले। मैं नया टेबुल दे रही हूं अपना।"

तब बड़े साहब ने बात बदल दी, "उँहूं! वह टेबुल एबीएम के लिए है। हेडक्लर्क को नहीं दिया जा सकता। और आप देने-लेने वाली कौन होती हैं?"

बड़े साहब ने जानबूझकर रुख कड़ा किया।

"सर, तब मैं कोई काम नही कर सकूंगी।"

बड़े साहब के चेहरे पर अब झुंझलाहट स्पष्ट हो गयी।

इसके पहले कभी दुर्बा दास ने ऐसी झिड़की नहीं सुनी थी—किसी भी बड़े साहब की। और न देखी थी ऐसी झुंझलाहट। वह बोली, "सर, सेंटिमेंटल कहिए या पागलपन। मैं किसी को उस टेबुल पर नहीं बैठने दूंगी। नही···"

बड़े साहब 'घर बैठे मनोविज्ञान का पीड़ित बनिए' सीरीज के स्थायी ग्राहक हैं। मिस दास की बातों मे कोई मनोवैज्ञानिक उलझन है—जरूर। बोले, "मिस दास, मेरी बुद्धि में कोई बात नही आ रही। मान लो, तुम्हारा ट्रांसफर हो गया कलकत्ता। तो क्या कलकत्ता ले जाओगी ढोकर···?"

"जी? चाहूंगी अवश्य।"

"और मान लो··"

"नौकरी नही रहे? तब कपनी से अनुरोध करूंगी कि यह टेबुल मेरे हाथ

बेच दे।"

"टेरिबल !···ठीक है, आप आइए। मैं हेडक्लर्क को बुलाता हूँ।"

बड़े साहब से अनुरंजन ने पूछा, "आप ही बतलाइए, मैं क्या करूँ?"

बड़े साहब ने मिस दास से फोन पर कहा, "आप व्यर्थ में छोटी-सी बात को लेकर एक समस्या पैदा कर रही हैं। आज नये पद का काम ही बखेड़ों से शुरू कर रही हैं आप।"

अनुरंजन गुप्ता को बिसनूसिंघ ने फिर सलाम लाकर दिया—मिस दुर्बा दास का।

इस बार अनुरंजन ने दुर्बा दास के सुंदर चेहरे पर अबला नारी की बेबसी देखी। थकी, कुढ़ी, अस्त-व्यस्त कपड़े, सरकी हुई साड़ी—सामने से। अनुरंजन को याद आयी—दक्षिणेश्वर और बेलुड़ से लौटते समय दुर्बा इसी तरह थकी-कुढ़ी थी।

"मिस्टर गुप्ता !"

"हुक्म।"

"हुक्म नहीं। आप वह टेबुल मुझे दे दें।"

जनरल सेक्शन में एक बाबू ने तलहथी पर उँगली घुमाकर कहा, "लगा है लकड़पेंच।"

मेहता ने स्टोर बाबू—बनर्जी दादा से फोना-फोनी की, "हाँ, दादा। आप वही बात बोलिए कि शीशम का पेड़ कटेगा···।"

सभी बाबू प्रसन्न हैं···क्राइसिस, प्राबलेम अपनी जगह पर जस के तस और घड़ी की सुई आगे बढ़ती गयी—एक, दो, तीन, चार, पाँच !!

दूसरे दिन सभी ने अचरज से सुना, मिस दास अचानक बीमार हो गयी है। एक सप्ताह की छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र भेजा है, उसने।

पाँच ही दिनों में अनुरंजन ने अपने दफ्तर के प्रत्येक जीव को थोड़ा-बहुत पहचान लिया है। एक से एक कामचोर पड़े हुए हैं यहाँ। परले सिरे का चापलूस गुलसन मेहता, जिसे पोलसन मेहता कहते हैं।

जो भी हो, मिस दास काम करना जानती है। काम से उसे प्रीत भी है। जिस फाइल में हाथ लगाती है, वह आईने की तरह साफ। कहीं कोई भूल-चूक नहीं, उलझन नहीं। लेकिन टेबुल के लिए उसकी जिद ? क्या कहा जाये इसको ! आखिर बात तो होगी कोई ?

मेहता ने कहा, "सर, मैं जानता हूँ कारण।"

अनुरंजन ने पूछा, "क्या कारण है ?"

मेहता अनुरंजन के पास गया। फिर मद्धिम आवाज में बोला, "मिस दास की छाती पर—ठीक कॉलरबोन के नीचे—एक रुपया-भर गोल—दाद का चकत्ता है। टेबुल के इस कोने से वह समय-असमय खुजलाती···।"

"मेहता साहब ! आप अपने 'एबीएम' के संबंध में ऐसी बे-बात की बात मेरे सामने न बोलें तो अच्छा।"

सर्वांगसुंदरी दुर्बा की देह में दाद? धेत्त, उसने मेहता को अच्छी तरह पहचाना है। दुनिया-भर की बात कोई इससे पूछे।···सेन ने कल कहा, "एक दिन बड़ा साब बोला—मेटा ! गाधा कैसा माफिक बोलता है? बास—मेटा झट से आँकू-आँकू बोलने लगा। बलिहारी बाबा मेटा। तुम्हारी जुड़ी एई भूभारत में नेंहीं।"

ऐसे अवसरों पर मेहता सड़ी मछली, भूखा बंगाली और पांता भात आदि कहकर सेन को काटने की चेष्टा करता है।

उस दिन दफ्तर के बाद मेहता दौड़ा गया मिस दुर्बा के डेरे पर। दुर्बा बाहर लॉन में उदास बैठी थी। मेहता पाजी कुत्ते के डर से फाटक के अंदर नहीं गया। बाहर से ही उसने दुर्बा को संवाद दिया, "आज डी० डी० टी० पाउडर और गेमेक्सिन —दोनों मिलाकर टेबुल को डिसइंफेक्ट किया गया है।"

डीडीटी-ई-ई-ई ! लगा, अचेत हो गयी दुर्बा दास संवाद सुनकर।

सातवें दिन मालूम हुआ, मिस दास ने और भी चार दिन की छुट्टी बढ़ाने के लिए आवेदन-पत्र भेजा है।···

अनुरंजन गुप्ता ने—बड़े साहब के आदेशानुसार—असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर के जिम्मे नियमानुसार दिये जानेवाले कामों का एक लेखा-जोखा तैयार किया। मिस दास की अनुपस्थिति में उसने कुछ काम भी कर दिया है।

उस दिन फिर टेबुल की चर्चा छिड़ी।

सेन ने पूछा, "टेबुल पुलिंग है क्या?···इसी वास्ते ! हा-हा-हा-हा !"

मिस दास की बढ़ायी हुई छुट्टी भी कटी एक-एक कर तीन दिन।

उस दिन दफ्तर से लौटकर अनुरंजन ने कहा, "माँ, मैं जल्दी से नहा लूँ। चलो, आज तुमको आश्रम दिखला लाऊँ यहाँ का—रामकृष्ण आश्रम। प्रवचन है किसी स्वामीजी का वहाँ आज।"

अनुरंजन बाथरूम से निकला। माँ ने सूचना दी, "एक महिला मिलने आयी है।"

"महिला?" अनुरंजन अचरज से देखता ही रह गया—अरे, यह तो दुर्बा

दास है। माँ कहती है, महिला ! आधुनिक बाँह-कट ब्लाउज और कांजीवरम या—वरम साड़ी का यह मैच—अखबारों में रोज प्रकाशित होने वाली अंत-कंचुकी कंपनी की उस महिला की छाया—क्या हो गया है आज दुर्बा दास को ?

"नमस्कार !···अब कैसा है आपका जी, क्या हुआ था ?"

दुर्बा चुप रही। अनुरंजन की माँ दो प्याली चाय दे गयी। अनुरंजन ने परिचय करवाया, "माँ, आप ही हमारे एबीएम—मिस दुर्बा दास ! और···मेरी माँ !"

माँ रसोई में चली गयी।

"रसोई आपकी माँ स्वयं पकाती हैं, अभी भी ?"

"जी, मेरा सौभाग्य ! माँ के हाथ का···"

"जी नहीं। इस माने में मैं भी सौभाग्यशालिनी हूँ।"

"आप हर माने में सौभाग्यवती है।"

अनुरंजन ने पहचाना, यह कलकत्तावाली दुर्बा दास ही है। परिधान-प्रसाधन तनिक उग्र है। यही फर्क।

"तब ? कैसा लग रहा है पटना ?"

"अच्छी जगह है।"

"खाक अच्छी है। कलक···बंबई से भी अच्छी ?"

कलकत्ता कहते समय आँखें आतंकित क्यों हुई, दुर्बा की ? फिर कुछ क्षणों की चुप्पी।

"तो कल आप दफ्तर आ रही हैं न ?"

"कल ?" सपने से जगी दुर्बा मानो, "कल ? मेरा आना आप पर···तुम पर निर्भर है।"

"मुझ पर ?"

"हाँ।···तुम पर। अनुरंजन बाबू, तुम पर। मैंने कहा न, उस टेबुल पर किसी का बैठना मुझे सह्य नहीं होगा। उसके बिना···जानते हो ? इस बीच हर रात मैंने सपने में टेबुल को देखा। देखा, वह टेबुल मुझे मिल गया है। फिर छीन लिया गया है। बहुत बड़ा युद्ध हो गया—मार-काट। दंगे। ··टेबुल में आग लगा दी गयी है। मेरा टेबुल जल रहा है, धू-धू कर।···कितने सपने ऐसे ही भयावने।"

"मिस दास, सभी को अचरज हो रहा है···"

"सो मैं जानती हूँ। मैं सभी का कौतूहल मिटाने को बाध्य नहीं हूँ। तुमसे कहूँ—कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के पास पाँव फैलाकर, हाथ पसारकर, जी खोलकर बैठ सकती है भला ? बोलो।"

अनुरंजन का मुंह न जाने क्यों विकृत हो गया, किंचित् !

दुर्वा अनुनय-भरे स्वर में बोली, "गुप्ता, तुम तो ऐसे नहीं थे ? इतने निष्ठुर तुम हुए कि डी० डी० टी० छिड़कने में भी तुम्हारी आत्मा कुंठित नहीं हुई ? तुम जोर-जोर से दराजों को खोलते, बंद करते हो ? सेन उस पर घुस्सा मारता है ? तुमने कील ठोंक दी ? क्यों ? क्यों गुप्ता ?"

अनुरंजन ने देखा, बातें करते समय दुर्वा की मदमाती आँखें और भी मधु ढालती हैं। उँगलियाँ छंदबद्ध गति से नाचती हैं।

दुर्वा उठी। खिड़की पर गयी। नाक झाड़कर नासा-रंध्रों का 'परिष्कार' किया। हठात्, कलकत्तेवाली दुर्वा लौट आयी। कलकत्तेवाली दुर्वा, जो डकार ले, दाँत से नाखून कुतरे अथवा नाक की सर्दी झाड़े, मुंह विकृत करके भयभीत हो—प्रत्येक अवस्था में सुंदरी ही दीखती है।···नव-नव रूपे देखि तोमाय क्षणे-क्षणे !!

"तुम···।"

अनुरंजन ने सचेत करने के सुर में कहा, "क्षमा करें मिस दास। आप मुझे 'तुम' कहती हैं। किंतु मैं आपको तुम नहीं कह सकता।"

"मैं-तुम ? मैं तुमको 'तुम' कहती हूं ?···नहीं-नहीं, मैं तुमको अब 'आप' ही कहूँगी। हुआ न ? तुम भी 'तुम' कहो न ? क्यों नहीं कह सकते ? सिलि···। सुनो गुप्ता, टेबुल की समस्या पर सोच-विचार किया है मैंने—सात दिनों तक। बड़े साहब का कहना है—नया टेबुल तुमको नहीं दिया जा सकता।···देखो, गुप्ता। बस, एक रास्ता है। मुझे उम्मीद है, तुम अब जिद नहीं पकड़ोगे।"

"जिद ? मैंने पकड़ी है मिस दास ?"

"क्यों ? सिर्फ दुर्वा नहीं कह सकते ? अच्छी बात। अब तुमने नाहीं की तो मैं समझूंगी। तुम चाहते हो मैं नौकरी छोड़ दूं। इतने बड़े परिवार का सारा बोझ मेरे ही सिर है। मालूम है तुमको ? नौकरी छोड़ने पर भी—उस टेबुल के बिना कैसे जी सकूंगी मैं ?"

"मिस दास, आप मुझे बताइये, आपने क्या सोचा है ?"

"नहीं। पहले वचन दो, तुम मानोगे ?"

"ठीक, इसी तरह दुर्वा ने पिछले साल वचन लिया था, 'बोलो, मेरी सहायता करोगे न ?' अनुरंजन ने पहले ही दे दिया वचन, "मानूंगा। कहिए।"

"सच ? देखो, काम का जो सिलसिला है, तुमको अधिक समय मेरे चेंबर में ही रहना पड़ेगा। याद है, तुम्हीं ने तो कहा था कि यह नया स्कीम 'एबीएम' वाला क्या है—सीनियर हेडक्लर्क माने असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर। तो, क्यों न तुम मेरे चेंबर में ही बैठते ? बात यह है कि टेबुल मेरे चेंबर में रहेगा, मेरी आँखों के सामने रहेगा तो तुम जोर-जोर से दराजों को खोल-बंद नहीं करोगे। हथौड़े से कील नहीं ठोकोगे। मेरी उपस्थिति में कम-से-कम···।"

अनुरंजन ने पहले ही वचन दे दिया था। दुर्बा को विश्वास नहीं हुआ, किंतु उसने बार-बार पूछा, "बोलो, तुमको कोई एतराज है ? सच ? कल फिर मुकर तो नहीं जाओगे ? किसी की बात में पड़कर 'नट' तो नहीं जाओगे ? वह गुलसन मेहता बड़ा पाजी जीव है। बोलो···"

अंतिम वाक्य कहते समय दुर्बा ने अनुरंजन का हाथ पकड़ लिया, "बोलो।"

अनुरंजन की मां ने पूछा, "अब तो आश्रम नहीं जा सकोगे भैया। पीढ़ी डाल दूं चौके में ?"

दुर्बा असंख्य धन्यवाद देने की मुद्रा में बोली, "तो मैं चली अभी। हैं ? कल दस बजे के पहले ही आओ न ! बड़े साहब साढ़े नौ बजे ही आ जाते हैं।··· बाद में सभी आ जायेंगे तो फिर टेबुल खींच-तान···"

"नमस्कार।"

अनुरंजन को लगा, दुर्बा उसे चाबुक से पीटकर चली गयी, सपाक् ! सपाक् !

दूसरे दिन दुर्बा नौ बजकर पच्चीस मिनट पर ही दफ्तर आ गयी।

बड़े साहब की गाड़ी साढ़े नौ बजे पोर्टिको में आकर लगी। दुर्बा ने आगे बढ़कर नमस्कार किया।

"कहिए मिस दास, अब कैसी हैं ?"

"अब ठीक है सर।" उत्फुल्ल दुर्बा बोली।

साहब अवाक् हुए मन-ही-मन। प्रकट रूप से मुस्कराते रहे।

दुर्बा बड़े साहब के साथ उनके चेंबर में गयी। बड़े साहब का पियन जब तक चेंबर में रहा, वह चुप रही। उसके बाहर जाने के बाद दुर्बा ने साहब के मूड को परखने की चेष्टा की। फिर निवेदन करने लगी, "सर ! टेबुल की समस्या···।"

बड़े साहब उबल पड़े, "सुनो भाई, मिस दास। मैं अब इस समस्या या प्राबलेम के बारे में एक शब्द नहीं सुनना चाहता। आप लोग टेबुल-कुर्सी के लिए बच्चों की लड़ाई करेंगे तो मुझे बाध्य होकर जीएम को लिखना पड़ेगा।··· फनी।"

"नहीं सर, अब कोई प्राबलेम ही नहीं। सब तय हो गया।"

दुर्बा ने समस्या का हल विस्तारपूर्वक सुझाया। उसने यह भी कहा कि कल शाम को अनुरंजन के डेरे पर जाकर अनुरंजन को मना आयी है।

बड़े साहब ने इस फार्मूले पर सोचा, ठीक है। देखा जाये, कहाँ तक बौर··· यह अनुरंजन गुप्ता—हेड आफिसर से लेकर—बोर्ड के सभी सदस्य—जिसकी तारीफ में पुल बाँध चुके हैं, यही है वह कर्मठ पुरुष ? रीढ़हीन प्राणी ?···ठीक है, उधर जनरल सेक्शन में मेहता को अवसर मिलेगा···डोसालय मेहता। हैंडी एंड

हेल्लफुल मेहता और इस सुपुरुप अनुरजन में क्या फर्क···? "ठीक है। किंतु गुप्ता को यदि कोई एतराज हो ?"

"उसे क्या एतराज होगा ? सर, वह आ ही रहा है।"

दस बजे के पहले ही दुर्बा दास अपना प्रिय टेबुल ले आयी अपने चेंबर में। टेबुल लाते समय वह कुलियों के साथ थी—कहीं ठेस न लग जाये। आखिर कहाँ तक बचाये कोई ? कांच का तो नही टेबुल। जरा-सी ठेस लगी, चीख उठी दुर्बा दास।

चेंबर के एक हिस्से में टेबुल को प्रतिष्ठित किया गया। बिसनूसिंघ जोर-जोर से झाड़न मारकर धूल झाड़ने लगा। चिल्ला उठी दुर्बा दास, "ए—ए—जगली ! इस तरह जोर-जोर से क्यों मारता है ? लाओ डस्टर।"

दुर्बा ने अपने हाथों टेबुल की धूल को झाड़ा—हौले-हौले।···हाय रे ! एक पखवाड़े में ही तुम्हारी यह दुर्दशा ? हं, अब जाकर जान में जान आयी है। मैंने समझा था, अब नहीं पाऊँगी तुमको। लाल रोशनाई गिरी कैसे ?

टेबुल झाड़-पोंछकर उसने घड़ी देखी। दस बज रहे हैं। गुप्ता आता ही होगा। उसने दरवाजे की ओर देखा, हैंडलूम के पर्दे पर भरत नाट्य नृत्य की मुद्रा में खड़ी औरतों की पाँति। उसने दोनों बाँहों को दोनों ओर पसारकर सदा की भाँति टेबुल के टाप-ग्लास पर अपना एक गाल रखा···ओ हो ! एक पखवारे के बाद यह स्पर्श-सुख···सी-ई-ई···फिर दूसरा गाल···सी-ई-ई···रोम-रोम पुलक रहे। पुलक···

"क्रि। हजोर !"

बिसनूसिंघ अंदर आया। दुर्बा ने झटपट अपने को सँभाला, "कुछ नहीं, बाहर जाओ। कॉलिंग बेल आप ही बज उठा कैसे ?"

बड़े साहब ने देखा—पर्दे के उस पार दो पाँव। अनुरंजन गुप्ता आ रहा है। साहब ने एक मोटा फाइल खोलकर अपने को डाल दिया।

अनुरंजन आकर खड़ा रहा। बड़े साहब का ध्यान भंग नहीं हुआ, "सर, क्या मैं बैठ सकता हूँ—थोड़ी देर ?"

"उं ? हूं। बैठो। क्या है ?"

आवेदन-पत्र। एक नहीं, दो ?

"क्या है ?" एक में डेढ़ महीने की छुट्टी की प्रार्थना···माँ प्रयाग जायेगी कल्पवास करने···एकलौता बेटा है वह। इसलिए साथ जाना आवश्यक···दूसरा आवेदन-पत्र है कि···पटने का जलवायु स्वास्थ्य के प्रतिकूल···उसे या तो हेड ऑफिस कलकत्ता भेज दिया जाये या फिर बंबई। अन्यथा···अन्यथा···। यह आवेदन-पत्र ही त्याग-पत्र।

"देखो गुप्ता, भावावेश में···।"

"नहीं सर, मैंने बहुत सोच-समझकर देख लिया है। मेरी माँ भी नहीं चाहती।"

बड़े साहब ने आवेदन-पत्र की भाषा और अनुरंजन के चेहरे पर अंकित भाव को पढ़कर समझ लिया, यह सच कहता है। इसने बहुत सोच-समझकर फैसला किया है।···लोग झूठ नहीं कहते थे। अनुरंजन गुप्ता···

अनुरंजन ने आज की छुट्टी माँगी—मौखिक। मिल गयी।

हर सेक्शन में यह खबर फैली—फैलती गई।

एक साथ बीस टाइपराइटरों की खटपटाहट बंद हो गयी।

सभी बाबुओं ने एक ही साथ पानी माँगा, "पानी!"

"आ?"

"वही हुआ—जो मिस दास चाहती थी।"

"त्रियाचरित्रम्···।"

"गजब···अजब···औरत?"

"गुप्ता साहब चले गये?"

दुर्गा को भी खबर मिली।

कुछ देर तक सन्न रह गयी। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सुफेद मुख-मंडल।···त्याग-पत्र? छुट्टी? वह आया नहीं यहाँ? लेकिन, उसने तो वचन दिया था?

उसके चेहरे पर तुरंत लाली लौट आयी। वह अपनी कुर्सी छोड़कर उठी। अपने प्रिय टेबुल के पास गयी। कुर्सी पर बैठी। ओठों पर अंकित मुस्कराहट खिलती गयी।···त्याग-पत्र दे या चूल्हे में जाये मूर्ख अनुरंजन गुप्ता···मेरा धरम बच गया···मेरी इज्जत बच गयी···तुम मेरे ही रहे·· मेरे ही! काँटा दूर हुआ! आह···!!

टेबुल के टाप-ग्लास पर अपने गालों को बारी-बारी रखती, स्पर्श-सुख से सिहरती—सिसकती दुर्गा खिलखिलायी—जाको जापर सत्य सनेहू···हँ-हँ-हँ··· सी-ई-ई-ई!!

मेहता इस अवसर पर कई अप्रचलित अंग्रेजी शब्द ढूंढ़कर ले आया था, बधाई देने के लिए। वह चेंबर में घुसा। ओ—उसने देखा, मिस दुर्गा दास एबी-एम, टेबुल पर बाँह पसारे, काँच पर गाल रखकर, खिलखिला रही है या रो रही है! आँखों में आँसू हैं और ओठों पर यह कैसी हँसी? यह कैसा सुख पा रही है मिस दुर्गा दास? यह कैसा सुख-दुःख? यह क्या है···?

मेहता को लगा, किसी अश्लील दृश्य के सामने वह खड़ा है। मूढ़-मति!—नहीं, यह दृश्य देखने योग्य नहीं।

कस्बे की लड़की

"लल्लन काका ! दादाजी कह गये हैं कि लल्लन काका से कहना कि सरोज फुआ के साथ···।"

लल्लन काका अर्थात् प्रियव्रत ने अपनी भतीजी बंदना उर्फ बूंदी को मद्धिम आवाज में डांट बतायी, "जा-जा ! मालूम है जो कह गये है।"

बूंदी अप्रतिभ हुई किंतु उसके ओठों पर वंकिम-दुष्टता अंकित रही और लल्लन काका की मद्धिम झिड़की की कोई परवाह किये बगैर अब दादाजी की आज्ञा सुनाने लगी, "दादीजी कहती हैं कि सरोज फुआ नहा रही हैं। लल्लन काका से कहो, जल्दी तैयार होकर नाश्ता कर लें। सरोज फुआ को बहुत जगह जाना है। और रिक्शावाला···।"

'जा-जा !" प्रियव्रत पूर्ववत् पाइप पीता रहा।

बूंदी आंगन में लौटी तो उसने मुंह में पेंसिल डालकर लल्लन काका की नकल करते हुए सुना दिया दादी को, "जा-जा !"

दादी अचार-पापड़ के मर्तबानों को धूप में डाल रही थी। बड़बड़ायी, "सभी कामचोर हैं।" बूंदी ने सविनय-सदुलार निवेदन के सुर में कहा, "दादी-ई-ई ! एक हरे मिर्च का अ-चा-र···!"

"जा-जा, बड़ी पतली जीभ है तेरी।"

बूंदी का मुंह लटक गया। दादी ने मर्तबान से एक हरी मिर्च निकालकर देते हुए कहा, "जा, भगेलू से कह, सामनेवाली दूकान से···।"

बूंदी दांत से मिर्च को काटती सिसियायी, "सि-ई-ई ! सारी सुबह मैं इधर-उधर करती रहूंगी तो स्कूल कब जाऊंगी ? जिधर जाओ, उधर ही जा-जा ! जा-जा !! सरोज फुआ बाथरूम से बाहर ही नहीं होतीं। मैं कब नहाऊंगी, कब जाऊंगी···यह लो, आ गयी गाड़ी स्कूल की !"

प्रियव्रत सुबह से तनिक झुंझलाया हुआ है। रात जैसी गर्मी हजारीबाग में कभी नहीं पड़ी। नींद नहीं आयी रात-भर। हालांकि परिवार के और लोग

हल्की ऊनी चादर डालकर सोये थे। प्रियव्रत की माँ बारहों महीने रजाई ओढ़ती है। हल्की-फुल्की रजाई गर्मियों में और भारी सेदियों में।···और उनींदी रात की प्रतिक्रिया दूसरे दिन सुबह बाथरूम मे ही शुरू होती है। दाढ़ी कई स्थान पर कट गयी है। कनपटी के पास मीठा-मीठा दर्द है। वह सुन चुका है। बाबूजी का हुक्म, 'लल्लन से कहना, सरोज को जहाँ-जहाँ जाना है, ले जाय। बेचारी अकेली कहाँ-कहाँ जायेगी?' हुँह!···सरोजदी देहात से अकेली पन्द्रह-पंद्रह स्टेशन रेल-यात्रा करके यहाँ सकुशल आ सकती है तो शहर में ही कौन दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं कि सरोजदी के साथ एक सशस्त्र अर्दली जाय?—पुरुष माने सशस्त्र!··· और सरोजदी का रूप भी इतना मारात्मक नहीं।···

प्रियव्रत सुबह से ही सरोजदी के संबंध में सोच रहा है। सरोजदी! बाबूजी के एक मुफस्सिल के मुवक्किल मित्र की बेटी! एकदम देहातिन नहीं कह सकते सरोजदी को। मैट्रिक पास करके गाँव के स्कूल में पढ़ाती है। स्कूल के काम से ही आयी हैं। इसके पहले भी बहुत बार आयी हैं। मिडिल की परीक्षा देने आयी थीं। सरोजदी के बाबूजी भी साथ आये थे। मैट्रिक का इम्तहान देने आयीं, अकेली। अकेली नहीं, दूर के एक चाचा पहुँचा गये थे। सरोजदी के पिता की मृत्यु उसी साल हुई थी। लेकिन सरोजदी के पिता ही क्यों, सरोजदी भी जब आयीं, कभी खाली हाथ नहीं आयीं। घी, शहद, महीन चावल, दही-पपीते—सब विशुद्ध। जब से देख रहा है प्रियव्रत, सरोजदी ऐसी ही हैं। सदा से···।

प्रियव्रत सोच रहा है, कैसा अन्याय है? एक ओर सरोजदी हैं जो इतनी चीजें, इतने प्यार से लेकर आती हैं और दूसरे ही दिन भाईजी और भाभीजी का मुँह लटक जाता है। तीसरे दिन माँ भी उखड़ी हुई बातें करने लगती है उनसे। भाभी चुपके-चुपके मुंह बनाकर कहेंगी, "इतने जोर से खुर्राटा लेती है सरोज। घंटों बाथरूम बंद रखती है, सरोज··आज 'उनके' प्राइवेट रूम में चली गयी सरोज। वे अपने दोस्तों के साथ ड्रिंक कर रहे थे और यह भैयाजी-भैयाजी कहकर क्या-क्या रोने-गाने लगी।" भाभी बहुत स्वार्थी हैं। लेकिन, दूसरी ओर भाभी की आधा दर्जन बहनें या भाईजी के साले की सहेलियाँ खाली हाथ आती हैं। बिना मक्खन के रोटी नहीं खाती हैं और भाईजी की गाड़ी का इंजन हमेशा गर्म रहता है उन दिनों—बोकारो, कोनार, तिलैया, रामगढ़, राँची···। सरोजदी ने कभी नहीं कहा कि बिना कार के मैं एक कदम नहीं चल सकती। क्या सरोजदी के मन में भाईजी की गाड़ी पर चढ़ने की वासना नहीं हुई होगी? कौन जाने!···

सरोजदी साँवली नहीं, काली हैं। कद मँझोला है। मोटी नहीं, देह दुहरी है। संभवतः किसी ग्लैंड की गड़बड़ी के कारण उनकी बोली में तनिक गूँगेपन का सुर मिला हुआ है। चलते समय हर डेग पर अस्वाभाविक ढंग से जोर देती हैं और प्रसन्न होकर हँसते समय मुँह से लार टपक पड़ती है, यदा-कदा। ओठ

सदा भीगे रहते हैं।

प्रियव्रत को याद है, मैट्रिक की परीक्षा देने आयी थीं सरोजदी। बाबूजी का मुहर्रिर इब्राहिम रोज टमटम पर साथ जाता था। फिर, चार बजे जाकर ले आता था। उस बार भाभी ने झूठ-मूठ सरोजदी पर आरोप लगाया था। बूदी के गले की सोने की 'सिकरी' भाभी के बक्स से ही निकली थी।

सरोजदी बाथरूम से बाहर आ गयीं, नहा-धोकर।...."लल्लन बाबू!" प्रियव्रत ने अब अपने से सीधा सवाल किया, "क्यो लल्लन बाबू, भाईजी की किसी साली या भाईजी के साले की किसी साली के साथ एक रिक्शे पर, शहर घूमने में तुमको कभी कोई एतराज होता ?"

अंदर आँगन में भी भगेलू से कुछ कह रही है, "क्या भगेलू जायेगा सरोजदी के साथ ?"

भाभी कहती हैं, "तो क्या हुआ ? रिक्शा के पायदान पर बैठेगा भगेलू।"

बाबूजी बाहर से आ गये।

साथ मे है एक दूसरे वृद्ध—देवधर के अंजनी बाबू वकील। बाबूजी अब नियमानुसार अपने पुत्रो की निंदा से शुरू करेंगे, और हर बेटे की तारीफ तनिक तफसील से अंत में करेंगे, "हाँ, बड़ा देवव्रत—मन्नन—इंटर नेशनल टुबाको मे है। बोला, 'सरकारी नौकरी नही करेंगे, चाहे सरकार अपनी हो या बिरानी।'...नही करोगे तो मत करो। साली, सरकारी नौकरी मे धरा ही क्या है, अब ! मंझला लल्लन—प्रियव्रत—एम० ए० करके तीन साल से बैठा है। वह भी सरकारी नौकरी नहीं करेगा। हाँ, हाँ, आपने ठीक पहचाना है, वही प्रियव्रत ! कविता ही लिखता है और सबसे छोटा दहन—सत्यव्रत भागकर नेवी में चला गया। चिट्ठी आयी तो मैने भी कहा, 'डूबने दो कम्बख्त को। नेवी में जाय या एयरफोर्स मे।' लिख दिया, 'मेरा लड़का सबकी राजी-खुशी से नेवी में भर्ती हो रहा है।' और क्या करे ? इस साल ट्रेनिंग खत्म करके अफसर हो जायेगा।...भगेलू ! कहाँ जा रहा है भगेलू ? लल्लन कहाँ गया ? सरोज के साथ भगेलू क्यो जायेगा ? मैं जाऊँगा।"

प्रियव्रत धड़फड़ाकर उठा, 'अब एक सप्ताह घर की शांति गयी। दिन-रात बड़बड़ाते रहेंगे। ब्लडप्रेशर बढ़ेगा। डॉक्टर विनय आयेंगे, फिर दोनों मिलकर घर-भर के लोगों की दुर्गत कर डालेंगे।' अंदर जाकर बोला, "किसने कहा कि मै नही जा रहा हूँ ?"

कमरे मे कपड़े बदलती हुई सरोज ने कहा, "लल्लन को छुट्टी नही है तं भगेलू ही चले न !"

माँ बोली, "नही सरोज, लल्लन तैयार है।"

सरोज कमरे से बाहर आयी। चप्पलों को बेतरतीबी से खिसकाती हुई। भीगे

ओठों पर मूकजनोचित मुस्कराहट छायी हुई···गिलगिलाती मुस्कराहट !

रिक्शावाले की दृष्टि और मंद मुस्कराहट को परखता है प्रियव्रत। वह रिक्शे मे सिकुड़कर, एक किनारे जा बैठा। सरोज पास आकर बैठी। सरोजदी कोई सस्ता किंतु चालू पाउडर लगाती है, शायद। केश में कोई आयुर्वेदिक तेल डालती है क्या? साड़ी तो हैंडलूम की है। एक बार प्रियव्रत की भाभी कह रही थी—सरोज का ब्लाउज सर्दी के मौसम में भी बगल से भीग जाता है। अभी तो भीगा हुआ नहीं है? नहीं, भाभी अधिक नहीं, तनिक निष्ठुर भी है।···

रिक्शाचालक ने पहला प्रश्न किया, "मेममाहब, रांची से आयी है क्या?" प्रियव्रत उसे डाँटना चाहता था, लेकिन इसके पहले ही सरोज बोल पड़ी, "नहीं भैया! मैं हँसुआ से आयी हूँ। शिक्षक-संघ का दफ्तर देखा है?"

"कीचक संघ तो···।"

"मुझे मालूम है।" प्रियव्रत ने कहा, "चलो, मदनबाड़ी रोड।"

प्रियव्रत का घर शहर मे तीन मील दूर है। तीन पहाड़ी के पास, इस गाँव में प्रियव्रत के पिता ने जब घर बनवाया था तो लोग हँसते थे—वकील साहब जंगल में बस रहे है। आज, इस गाँव मे बसने के लिए शहर के लोग, जमीन की डाक बोलकर भी जमीन नहीं पा रहे है।

सरोज अपनी देह को भरसक संकुचित करती हुई बोली, "लल्लनजी! ठीक से बैठो, आराम से···।"

गाड़ी कुछ दूर आगे बढ़ी तो सरोज ने यहाँ की सड़कों पर अपना मंतव्य प्रकट किया, "हजारीबाग की सड़कों से मुझे बड़ी चिढ़ होती है। दस कदम पर चढ़ाई और दस कदम पर उतराई। हजारीबाग की सब चीजे मुझे अच्छी लगती है, इन सड़कों को छोड़कर।"

प्रियव्रत ने बात को मोड़ने के लिए पूछा, "कहाँ-कहाँ जाना है आपको?"

सरोज ने कहा, "पहले शिक्षक-संघ के दफ्तर मे, फिर शिवयोगी बाबू के यहाँ होते हुए स्कूल इंस्पेक्टर साहब के डेरे पर।"

प्रियव्रत ने पूछा, "यह शिवयोगी बाबू कौन है?"

प्रियव्रत ने लक्ष्य किया, सरोजदी हर बार बोलने के पहले एक अस्फुट हँसी हँसती है।

"हँहँ! शिवयोगी बाबू है हमारे हँसुआ रेलवे स्टेशन के स्टेशनमास्टर के दामाद। हर बार स्टेशनमास्टर साहब मेरे हाथ कुछ-न-कुछ भेजते है। इस बार नाती के लिए 'जंतर' बनवाकर भेजा है।"

सामने चढ़ाई थी। यहाँ सभी रिक्शावाले रिक्शे से उतरकर गाड़ी खींचते

हैं। लेकिन इस रिक्शावाले ने दोनों को उतर जाने के लिए कहा, "बिना उतरे ई दु-दु मन, ढाई-ढाई मन का लहास ?"

प्रियव्रत को अपना गुस्सा उतारने का मौका मिला। पैसा चुकाते हुए बोला, "तुम जा सकते हो। लेकिन फिर कभी कोरांगाँव की ओर कोई सवारी लेकर मत आना। समझे ?"

दोनों उतर पड़े। अभी तुरत दूसरा रिक्शा मिल जायेगा।

मंजरे हुए आम और जामुन के युग्म-पेड़ के नीचे वे जा खड़े हुए। यहाँ के लोग कहते हैं—जुड़मा गाछ ! झड़ती हुई मंजरियों के कई छीटे, जामुन के कुछ फूल सरोज के सिर पर झरे। कवि प्रियव्रत को पिछले साल रेडियो से सुने हुए एक लोकगीत की याद आयी—जिसकी पंक्तियाँ याद नही, अर्थ है—'ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी कारण—मंजरे हुए आम के तले जाकर खड़ी हुई थी—निश्चय ही। तेरे बालों के लट जटा गये हैं। मंजरी का मधु चू-चूकर तेरे सिर पर गिरा है। ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी महुए के तले जाकर खड़ी थी—तेरे बालों से महुए के दारू की बास आती है। मेरी आँखें झपक रही हैं—मतिया गयी हैं—तेरा जूडा कैसे बाँधूं ?'

सरोज बोली, "हूँह, लल्लनजी ! मैंने तुमको बेकार कष्ट दिया।"

राँची-रोड पर एक बग्घीगाड़ी दिखायी पड़ी। प्रियव्रत ने पूछा, "घोड़ागाड़ी पर चढ़ियेगा ?" सरोज के कंठ से सिर्फ 'हूँह' निकला। प्रियव्रत ने बग्घीवाले को आवाज दी।

घोर श्यामवर्ण, मंझोली दुहरी सरोज सुफेद साड़ी और सुफेद ब्लाउज में सभी का ध्यान आकर्षित करती है। घड़ी की पट्टी भी सुफेद, चप्पल के फीते भी। घोड़ागाड़ीवाले ने गौर से सरोज को ही देखा। प्रियव्रत को वह पहचानता है।

बग्घी पर आमने-सामने बैठने की जगह थी। किंतु सरोज जिस तरह रिक्शे पर बैठी थी, उसी तरह प्रियव्रत से सटकर बैठी। इस तरह सटकर बैठने की कोई जरूरत नही थी। जगह काफी चौड़ी थी। सरोज बोली, "इस चढ़ाई-उतराई के समय मेरी जान निकल जाती है। लगता है, सब खाया-पिया निकल जायेगा। हूँह !"

हर चढ़ाई-उतराई पर सरोज ने तमाशा किया। उतराई के समय प्रियव्रत की एक कलाई जोर से पकड़कर आँख मूँदे हँसती-खिलखिलाती रही। प्रियव्रत को लाज आयी।

शिक्षक-संघ के दफ्तर में जिस अधिकारी से मिलना था, सरोज को उससे फाटक पर ही भेंट हो गयी। काम भी हो गया—अगली मीटिंग के बारे में पूछना था। अधिकारी महोदय बार-बार प्रियव्रत की ओर देखते ही रहे। फिर बोले,

"आप प्रियव्रतजी हैं न ?" जी हाँ, सुनकर भी अधिकारी महोदय का कौतूहल कम नहीं हुआ, शायद।

"चलो सरोजदी ! शिक्षक-संघवाला काम तो शिक्षक-संघ के बाहर ही हो गया।" गाड़ी पर जानबूझकर दूसरी ओर बैठते हुए प्रियव्रत बोला और सरोज पहले तो सामनेवाली गद्दी पर बैठी। फिर उठकर प्रियव्रत के पास जाकर, उससे सटकर बैठी। सरोज ने चलती हुई गाड़ी में प्रियव्रत से दबी हुई आवाज में कहा, "लल्लनजी, तुम साथ थे, इसलिए जल्दी छुट्टी मिल गयी। नहीं तो, यह रामनिहोरा प्रसाद मुझे बेकार बैठाकर तरह-तरह की बातें करता। शादी-ब्याह की बात पूछनेवाला यह कौन होता है, भला ? बोलो तो ? और बातें करते समय बातें करो—यह रह-रहकर पीठ पर थप्पड़ मारने की और बाल पकड़कर खींचने की जैसी भद्दी आदत ? अपने काकाजी भी तो बाबूजी के दोस्त थे। कभी ऐसा नहीं करते। बोलो तो लल्लनजी, क्या यह ठीक है ?"

प्रियव्रत को हँसी आयी। वह पूछना चाहता था, क्यों नहीं ठीक है सरोजदी ? लेकिन वह कुछ बोला नहीं। हँसता रहा। सरोज कुछ क्षण बाहर की ओर देखती रही। फिर, दबी आवाज में ही बोली, "अच्छा लल्लनजी, तुम नौकरी करोगे तो तुम भी गाड़ी रखोगे न ?"

"यदि गाड़ी रखने लायक नौकरी मिली···।"

"हूँह, तुमको भला गाड़ी रखने लायक नौकरी नहीं मिलेगी ?"

प्रियव्रत चौंका।···तो सरोजदी का मुखड़ा भी कभी-कभी सुंदर दीखता है ? सरोजदी जब भाव-शून्य दृष्टि से उसको देखती है, सुंदर लगती है। उसने पूछा "क्यों सरोजदी ?"

सरोजदी इस बार मुस्करायी नहीं। और भी दबी आवाज में बोली, "तुम सुंदर हो। जिसमें रूप और गुण दोनों हों, उसी को ऊँची नौकरी मिलती है।"

प्रियव्रत का चेहरा लाल हो गया। उसने कहा, "यह किसने कहा है तुमसे ?'

"रामभाई ने। रामभाई कहते थे, व्यक्तित्व के बिना विद्वत्ता कुछ नहीं। यदि व्यक्तित्व होता तो रामभाई भी···।"

हजारीबाग चौक पर हमेशा की तरह भीड़ थी। गाड़ीवान ने पूछा, "भैयाजी ! मायाजी बोल रही थीं, चौक पर कुछ खरीदना है।" सरोज भूल गयी थी कि उसे कुछ खरीदना है। स्कूल की लड़कियों ने कापी-किताब, पेंसिल लाने के लिए पैसे दिये हैं। सरोज झोले से डायरी निकालकर पढ़ने लगी—यशोदा— तीन कापी रूल की हुई, दो बगैर रूल। जगमती—भारतवर्ष का भूगोल, साहित्यदर्पण, छोटी नीलू—एक दर्जन जल छवि !···

मरोज हमेशा जिस दुकान से मामान खरीदती है उमी दुकान में जायेगी। पाम ही प्रियव्रत के मित्र, हिमाशु की दुकान थी। उमने कहा भी, "सरोजदी, इस दुकान मे···।" लेकिन सरोज ने उधर नजर उठाकर देखा भी नही।

दुकानदार-छोकरा राखालचद्र उर्फ यावला ने सरोज को देखकर एक विचित्र मुखमुद्रा बनायी और अभद्रतापूर्व आँखे नचाकर पूछा, "कहिए, कहिए! बहोत दिन बाद···।" प्रियव्रत पर दृष्टि पड़ते ही यावलाराम अवाक् हो गया। तुरत भद्र हो गया उमका चेहरा। सरोज डायरी खोलकर धीमी आवाज मे पढ़ती गयी और प्रियव्रत जोर-जोर से दुहराता गया।

दुकान से बाहर निकलकर मरोज बोली, "इस बार तुम माथ थे, इसलिए उसने मुझे मीठी गोलियाँ नही दी। नही तो जबर्दस्ती दर्जनो मीठी गोलियाँ झोले मे डाल देता और जिद्द करके एक गोली दुकान मे ही बैठकर चूमने को कहता। चाहे एक चीज लो या दस, एक घटा अटकावेगा यह लड़का।···वेईमान नही, लेकिन···।"

मामने 'विवेकानद मिष्ठान भडार' मे बैठकर चाय पीते हुए लोगो ने आँखें फाड-फाड़कर मरोज और प्रियव्रत की ओर देखना शुरू किया। मरोज बोली, "विवेकानंद का कालोजाम नामी है। है न? हूँह!" सरोज के पैर लड़खड़ाये। प्रियव्रत ने पूछा, "कालाजाम खाओगी सरोजदी?"

"हूँह! तुम नहीं खाओगे?"

विवेकानद मिष्ठान भडार मे कई मिनटो तक 'कालोजाम, कालोजाम' का गुंजन होता रहा। डी० वी० मी० के अगाली कर्मचारियों के दल में कानाफूसी शुरू हुई, "कालाजामेर मगे चमचम।" एक ने ढाका की बोली मे कहा, "एबार दाशे (अर्थात् देशे) एड्डा काईनी ब्यार हुदद्दे—नामडा काकहोसिनी!···काम-हूँमिनी! कालोजाम!!"

प्रियव्रत ने मब ममझा। अच्छा हुआ, मरोजदी ने कुछ नहीं समझा। स्वाद ले-लेकर कालाजाम का रम जब प्लेट मे जीभ लगाकर चाटने लगी तो प्रियव्रत ने पूछा, "और मँगाऊँ कालाजाम?"

"हूँह! पेट फट जायगा जो।"

सरोज के इम जवाब से प्रियव्रत को फिर लाज आयी।

किंतु, इस बार गाड़ी मे वह प्रियव्रत के मामने बैठी, "चलो बटम बाजार!"

प्रियव्रत ने देखा, मरोजदी डकार लेते समय और भी असुदर हो जाती हैं, उनके गीले ओठ और भी गिलगिले हो जाते है। डकार लेने के बाद सरोज ने बताया, "रामभाई को भी कालाजाम पसंद है बहुत।"

गाडी बटम बाजार की ओर मुड़ी।···फिर उतराई? सरोज उठ खड़ी हुई और टलमलाकर प्रियव्रत पर गिर पड़ी। "तुम भी गाड़ी से बाहर गिर पड़ते

छिटककर…हूँह !!"

हठात् सरोज ने फिर मद्धिम आवाज में पूछा, "अच्छा लल्लनजी ! मैं बहुत काली हूँ ?" याने मुझसे भी ज्यादा काली होती है या नहीं…।

प्रियव्रत ने समझा, पूरा प्रश्न भी नहीं पूछ सकीं सरोजदी । क्योंकि प्रियव्रत का चेहरा अचरज और लाज में अजीब-सा हो गया था। सरोज ने फिर पूछा, "मैं बहुत मोटी हूँ ? हूँह !"

प्रियव्रत को तुरत जवाब सूझा, "मोटी नहीं ।…देहात में स्वास्थ्य जरा अच्छा रहता ही है।"

सरोज बोली, "रामभाई तो कहते हैं कि तुम्हारा तन काला है, पर मन काला नहीं—सादा है।"

प्रियव्रत ने इस बार सरोज के रामभाई पर विशेष ध्यान दिया…रामभाई ने कहा है, व्यक्तित्व के बिना…रामभाई को कालाजाम प्रिय है…रामभाई कहते हैं कि तुम्हारा तन…। प्रियव्रत ने रामभाई के बारे में कुछ नहीं पूछा, किन्तु।…

शिवयोगी बाबू के घर पहली बार नहीं आयी है सरोज । लेकिन कभी तो इतनी खातिरदारी नहीं हुई ?… हूँह ! सारे परिवार के लोगों ने मिलकर दोपहर के भोजन और विश्राम के लिए हार्दिक आग्रह किया तो सरोज प्रियव्रत का मुंह देख-कर कुछ देर तक सिर्फ हूँह-हूँह करती, हँसती रही । प्रियव्रत ने बग्घीवाले को विदा किया ।

साढ़े तीन बजे चाय पिलाकर, शिवयोगी बाबू के परिवारवालों ने छुट्टी दी । स्कूल इंस्पेक्टर से प्रियव्रत के बड़े भाई साहब की मित्रता है । इसलिए तय हुआ कि वहाँ का काम भाईजी करवा देंगे । सरोज मान गयी ।

प्रियव्रत ने पूछा, "और कोई काम बाकी तो नहीं रहा ?"

सरोज उदास हो गयी अचानक । बोली, "नहीं लल्लनजी !"

"तो अब घर चलें ?"

"चलो ।"

पुलिस-ट्रेनिंग-कॉलेज के पास एक सड़क, उत्तर की ओर केनाडी, पहाड़ी नेशनल पार्क जाने के लिए निकली है । सरोज ने साइन बोर्ड पढ़कर दुहराया, "नेशनल पार्क जाने का रास्ता ।…नेशनल ! हूँह !! नेशनल पार्क में क्या है लल्लनजी ?"

प्रियव्रत के मुंह से नेशनल पार्क का वर्णन सुनकर सरोज उत्तेजित हो गयी । फिर तुरत उदास होकर बोली, "नहीं, लल्लनजी ! अब मैं ज्यादा परेशान नहीं करूँगी तुमको । तुम्हारा दिन का सोना खराब किया मैंने ।"

प्रियव्रत ने रिक्शावाले से नेशनल पार्क चलने को कहा। सरोज बोली, "तुम्हारी इच्छा नहीं तो घर लौट चलो लल्लनजी !"

"मैं रोज आता हूँ, इसी समय।···वहाँ मेरी अपनी जगह है, "सरोजदी।" प्रियव्रत हँसकर बोला।

मोड़ पर सरोज ने फिर हकार लिया।

बहुत दूर तक उतराई है, कोना-कोठी के पास। रिक्शेवाले यहाँ पैडिल चलाना बंद कर देते हैं। बहुत देर तक 'फ्री व्हील' की करकराहट होती रहती है—'क्रिरि-रि-रि-रि-रि-रि···।' सरोज की सारी देह में मानो गुदगुदी लगा रही है यह किरकिरी···रि-रि-रि-रि। हँह ! हँह !!

केनाड़ी पहाड़ी करीब आती गयी और सरोज अपने-आप हँसती रही। एक नील गाय भागी जा रही है ! सरोज अचरज से मुँह बाकर देखने लगी। राल टपकी इस बार।···खरगोश फलाँगता हुआ झाडियों में गया—हँह ! पहाड़ी नदी की पतली धारा पर अस्तगामी सूर्य की रोशनी झिलमिलायी—हँह ! पहाड़ी की चोटी के पास बादल का एक टुकड़ा—हँह ! फूलों से लदा हुआ बन-तगर का पेड़—हँह ! हँह···!

रिक्शा से उतरकर सरोज बोली, "रामभाई भी कहते थे कि नेशनल पार्क एक चीज बनी है—देखने की।"

वन में मोर बोला। सरोज डरी, "हाँ लल्लनजी, सुना है, नेशनल पार्क में बाघ-सिंह भी हैं ? हँह !"

प्रियव्रत हँसा, "लेकिन, सरोजदी ! एक अजब बात है कि नेशनल पार्क में आकर कोई भी जंगली जानवर हिंस्र नहीं रहता और आदमी जानवर बन जाते हैं यहाँ आकर—इसके बहुत प्रमाण मिले हैं।"

"अच्छा !"

"अच्छा !

पिकनिक करके लौटनेवाली मंडली का एक अशिष्ट लड़का चिल्लाया, "भाग रे ! बाइसन, बाइसन···अरणा भैंस !"

मुखर्जी-परिवार की सुंदरियाँ, कुमारियाँ 'जमायबाबू टाइप' के एक व्यक्ति के साथ आयी हैं आज ! गाड़ी पर कलकत्ते का नंबर है। सुंदरियाँ बात-बात पर खिलखिला रही हैं। जमायबाबू निश्चय ही कोई गुदगुदानेवाली कहानी सुना रहे हैं···अमलतास की छाया में। एक सुंदरी ने न जाने क्या देखा कि चीख पड़ी, "उ-ई-ई-भूत !" बाकी लड़कियाँ खिलखिला पड़ीं। प्रियव्रत समझता है, चीखने वाली को वह जानता है—अंजू-अंजना। सरोजदी को देखकर ही अंजना चीख पड़ी है।

प्रियव्रत बोला, "पहाड़ की चोटी पर 'टावर' है—वहाँ से सारा नेशनल पार्क

दिखायी पड़ता है। चलोगी ऊपर?"

"नहीं लल्लनजी, मुझे डर लगता है।"

"तो चलो, तुमको अपनी जगह दिखाऊँ।"

केनाड़ी पहाड़ी की तलहटी में बिखरा वनखंड केनाल और बड़ी-बड़ी चट्टानों के इर्द-गिर्द पुटुस फूल की झाड़ियाँ। केनाल के किनारे कदंब के पेड़ पर—ठीक एक घंटे बाद छोटे-छोटे पंछियों का घनघोर कलरव शुरू होगा—घंटों होता रहेगा! इन्हीं चट्टानों के उस पार प्रियव्रत रोज बैठता है।

"यही है मेरी जगह। मैं इसी पत्थर पर बैठता हूँ, रोज।"

"हँह! बैठे-बैठे क्या करते हो?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा प्रियव्रत ने। "बैठो सरोजदी! मैं तुमको एक मजे का खेल दिखलाऊँ।"

प्रियव्रत पुटुस की एक फूली डाली तोड़ लाया। फूल और पत्तों को नोचकर एक छड़ी बनायी उसने, "इधर देखो सरोजदी!"

सरोज ने देखा—सामने की धरती पर लजौनी लता पसरी हुई है, कुछ दूर तक। लगता है—एक गलीचा...हँह...लज्यावती, लाजवंती, लजौनी, छुईमुई, "अरे-रे लल्लनजी! यह क्या कर रहे हो? हँह!"

प्रियव्रत रोज इसी तरह इन सजीव लताओं को छेड़ता है, आकर। पुटुस की डाल की छड़ी से पहले एक नाम बनाता है। छड़ी छुआता जाता है, पत्तियाँ मुँदती जाती हैं। अंत में, अंधाधुंध छड़ी चलाकर सबको सुला देता है।

सरोज प्रियव्रत के इस खिलवाड़ को अचरज से देखती रही। जब प्रियव्रत ने सभी पत्तियों को सुला दिया तो सरोज ने एक लंबी साँस ली। बोली, "लल्लनजी, तुम ठीक कहते हो। यहाँ आकर आदमी जानवर हो जाता है, कभी कभी। हँह!"

प्रियव्रत हँसा। वह अपनी जगह पर जा बैठा। उत्तर आकाश का बादल क्रमशः काला होकर झुकता जा रहा है। हवा गुम है! भाभी ठीक ही कहती थी। सरोज का ब्लाउज भीग गया है—बाँह के नीचे अर्द्धवृत्ताकार।

सरोज प्रियव्रत के पास आकर बैठ गयी, "एक बात बताऊँ लल्लनजी?"

बिजली चमकी। सरोज के गोल ओठों पर भी बिजली चमकी, मानो। प्रियव्रत अवाक् होकर देखता रहा। सरोज को इस तरह लाज से गड़ते कभी नहीं देखा प्रियव्रत ने।

सरोज कुछ बोल रही थी, लेकिन लार टपक पड़ी तो चुप हो गयी। फिर पुटुस के नन्हें फूलों को नाखून से खोटकर दाँत से चबाने लगी।

क्षण-भर दोनों मौन रहे।

"किस सोच में पड़ गयीं सरोजदी ?" प्रियव्रत ने सरोज की देह छूकर मानो जगाया, "सरोजदी, अब चलो, लौटें। पानी बरसेगा।"

सरोज हँसी, "पानी बरसे ! हुंह ! हम रुई नहीं हैं ! लल्लनजी, यह क्या कर रहे हो ? लल्लन···पगला···बचपन की आदत···हुंह···ठीक इसी तरह गोदी में सिर रखकर···इसी तरह मेरी छाती से सिर रगड़ते थे तुम···मैंने रामभाई से भी कहा है···हुंह···हुंह···तुम अभी भी पाँच साल के शिशु हो···लल्लनजी···तुम जानवर हो···जानवर···हुंह···हुंह···कवि···एम० ए०···सुंदर-सुपुरुष तुम··· इतने प्यारे···इतने प्यारे तुम···तुमको हुंह···मैं जानवर नहीं बनने दूँगी···मैं ही जानवर हो गयी हूँ···लल्लनजी, मुझे माफ करो···इस कुरूपा बहन पर दया करो···। मुझे लजौनी लता की तरह मत रौंदो···!!"

प्रियव्रत ने ध्यानमग्ना नारी-मूर्ति को फिर छूकर जगाया, "सरोजदी, तुम किस सोच में पड़ गयीं यहाँ आकर ?···चलो, घर चलें।"

सरोज मानो नींद से जगी, "हुंह !···नहीं लल्लनजी, यहाँ आकर आदमी कभी-कभी देवता भी हो जाता है ! देवता भी···।"

प्रियव्रत को लगा, सरोजदी अचानक सर्वांग-सुंदरी हो गयी हैं। वह फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

हवा का झोंका आया। मेघ बरसने लगा। दोनों दो चट्टानों पर बैठे भीगते रहे। प्रियव्रत फिर उठा। सरोज के पास गया। हाथ पकड़कर उठाया, "चलो।"

दोनों भीगते हुए जंगल पार कर सड़क पर आये। सरोज बोली, "अब मेरा हाथ छोड़ दो, लल्लनजी !···अब मैं कभी हजारीबाग नहीं आऊँगी।···राम-भाई मुझे नहीं आने देंगे अब।"

सरोज सड़क पर लड़खड़ायी। प्रियव्रत ने फिर हाथ पकड़ लिया। सरोज कुछ नहीं बोली। फिर दो बार हुंह-हुंह करके चुप हो गयी।

हाथ का जस और बाक का सत्त

इस बार तीन साल के बाद गाँव लौटा।

स्टेशन के पास, बद्री भगत के पिछवाड़े में खड़े बूढ़े गूलर के पेड़ की दुर्गति देखकर समझ गया—पिछले कई महीने से इलाके में कोई भीषण शिशु-रोग फैला हुआ है और जग्गू पंसारी जीवित है।···गूलर के तने पर छाल नहीं, समझो (गाँव का) अच्छा हाल नहीं। गूलर का दूध और बाकल (वल्कल) उस अनाथ शिशु-रोग की एकमात्र रामबाण दवा है—आज भी।···जग्गू पंसारी आज भी चुनौती-भरे सुर में कहता हो—सिविल सरजंट हो चाहे टैनबनरजी डॉक्टर, इस रोग का नाम ही नहीं जानता कोई। दवा क्या करेगा?···

गाड़ीवान से पूछा, "क्यों कुसुमलाल ! जग्गू पंसारी जिंदा है?"

कुसुमलाल ने सुर खींचकर एक शब्द में जवाब दिया है, "हैं-ए-ए-ए !" जिसका अर्थ हुआ—हाँ, किसी तरह जी रहा है। होंठों में दबे खैनी-तंबाकू को थूककर उसने अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया, "जिंदा तो है, लेकिन समझिए कि मुर्दा होकर जी रहा है।"

"बीमार है? क्या हुआ है?"

कुसुमलाल ने बैलों को एक भद्दी गाली दी। फिर बोला, "होगा क्या?"

कुसुमलाल ने मुस्कुराने की चेष्टा की, "पिछले साल मति भरम गयी, समझिए। इस बुढ़ापे में एक 'जवान तड़तड़' पहाड़िन को घर में बैठा लिया। तब से, दवा-दारू और हाट-बाजार सब बंद। दिन-भर आँगन में बैठकर पहाड़िन से लील्ला···भला कहिए, बूढ़ा आदमी गावेगा कि मेरा मन डोले कि मेरा तन डोले।"

तीन साल के बाद गाँव लौट रहा हूँ। कुसुमलाल गाड़ीवान इन तीन वर्षों में मूक से वाचाल हो गया है—यह तो स्टेशन पर ही समझ गया था। अब समझा कि कुसुमलाल वाचाल ही नहीं, रसदार गप्पी भी हो गया है। मुझे अचरज हुआ तो कुसुमलाल के उत्साह में वृद्धि हुई, जग्गू-प्रसंग फिर शुरू हुआ, "बेटे से लड़ाई-

झगड़ा, मार-फसाद, पर-पंचायत, बाँट-बखरा···रोज बखेड़ा! आजिज होकर बेटा रसिकलाल भिन्न हो गया। अब तो, दवा-दारू, हाट-बाजार, सब-कुछ रसिकलाल ही करता है। सो हाथ में जस है रसिकलाल के। बाप से बीस निकलेगा—उन्नीस नहीं।···इस बार खूब कमाया है। रुपया पीटकर ढेर कर दिया। पक्का मकान बनवा रहा है।"

···हाथ से निकल चुके कुसुमलाल के बेटे को रसिकलाल ने ही यमदूतों के हाथ से छुड़ाया है, कातिक महीने में। वह रसिकलाल को धन्वन्तरी का अवतार मानता है। माने। मेरी भी जान जग्गू पंसारी की बसारी की बचायी हुई है। और मैं भी मानता हूँ कि जग्गू की कई जड़ी-बूटियों में कई संजीवनी बूटी भी हैं। संजीवनी बूटी न भी हो, उसी जाति की (ग्रुप की) कोई बूटी उसके पास जरूर है। लेकिन, कुसुमलाल तुला हुआ है, बेटे को 'बीस' और बाप को 'अट्ठारह' साबित करने के लिए। जग्गू पंसारी की निंदावली शुरू की, "सुनते हैं कि जवान बनने की सबसे कीमती जड़ी—जितनी उसकी झोली में थी···माने, दस बूढ़ों के खुराक—सब एक ही साथ खा गया। जाड़े की रात में भी तीन बार नहाना शुरू किया जग्गू बूढ़े ने!···जी नहीं, पहले ऐसा नहीं था। लड़के का गौना हुआ, नयी दुलहिन घर में आयी। इसके बाद से ही उसको न जाने क्या हो गया। दूसरे ही महीने में न जाने कहाँ से एक जवान-तड़तड़···।"

कुसुमलाल जग्गू की पहाड़िन स्त्री के बारे में जब बोलता है, 'जवान-तड़तड़' विशेषण लगाना नहीं भूलता। "रसिकलाल की नयी दुलहन भी जवान है। सिंगार-पटार भी करती है। करना ही चाहिए, लेकिन···।"

"लेकिन क्या?"

"लेकिन इस बूढ़े ने तो कमाल कर दिया। रसिकलाल की बहुरिया एक दिन जालीदार कुर्ता पहनकर नाच देखने गयी—बायस्कोप का। दूसरे ही दिन जग्गू बूढ़े ने अपनी जवान पहाड़िन को 'इसपिरिंगवाला मेमकाट कुर्ता' पहनाकर घर से निकाला कि देखनेवालों की आँखें···।"

कुसुमलाल जिस बात को 'हाइलाइट' करना चाहता है, उसे अधूरी छोड़ देता है। मुझे पूछना ही पड़ा, "क्यों, क्या हुआ? देखनेवालों की आँखें फूटी-ऊटी तो नहीं?"

कुसुमलाल ने मुझे कनखियों से पूछा। उसने चुप होने के पहले एक पंक्ति की मोटी निंदा की, "अब न उसके हाथ में जस है और न बाक में सत्त। सब पहाड़िन ने खींच लिया।"

हाथ का जस, बाक का सत्त!

जग्गू के 'जस' और 'सत्त' की सैकड़ों कहानियाँ प्रचलित हैं। तीस-चालीस वर्षों से जग्गू के 'जस' और 'सत्त' के बारे में कहानियाँ सुनी जाती है। संभव है,

अधिकांश कहानियाँ खुद जग्गू की गढ़ी हुई हों। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी अचरज-भरी कहानियाँ···गोदान के बाद जग्गू आया और रोगी की नाड़ी पर हाथ रखकर बोला, कौन कहता है कि दम टूट गया? बस, एक पुड़िया दवा दिया कि बूढ़ा उठकर बैठ गया।···कसबा-शहर की मशहूर जमींदारिन को बुढ़ापे में सभी दाँत फिर से उग आये। भुने हुए चने की शौकीन बूढ़ी जमींदारिन, अस्सी साल की उम्र में पत्थर के दाँत में मिस्सी लगाती है।

चालीस साल पहले की बात!

जब दूर देहातों में—मौ रोग की कोई एक पेटेंट दवा के सिवा कोई अंग्रेजी दवा नहीं पहुँची थी। इलाके में पीलिया रोग जोर-शोर से फैला था। औकाद-वालों ने शहर से बड़े डॉक्टरों को बुलाकर देखा—इस रोग की कोई दवा डॉक्टरों के पास नहीं।···कोई अंग्रेजी दवा बनी ही नहीं है।

···सारे इलाके में एक पीली प्रेतनी नाच रही थी। रोज दो-तीन आदमी टूटते। बच्चे आध दर्जन से डेढ़ दर्जन तक। खेलता-कूदता, भोला-भाला बालक हठात् बुखार में चीख उठता। फिर सारी दुनिया पीली···हल्दी की ढेरी··· रक्तहीन देह···हल्दी में रंगी हुई लाशें!! दिन-रात गाँव के आसपास चील-काग, कुत्ते-सियार लड़ते रहते।

ऐसे ही दुर्दिन में गाँव की गलियों में एक अजीब आवाज में किसी ने हाँक लगायी — ति-वा-आ-आ-री-ई-ई ··· बैद-बैद-बैद-अ-अ-द-वा-आ-आ-ई-ई-लेजा, लेजा!!

लोगों ने झाँककर देखा—पीली पगड़ी बाँधकर आगे-आगे तिवारी अर्थात् वैद्य और कंधे पर बहँगी ढोता हुआ उसका चाकर। हाँक चाकर ही लगाता था। औरतों से रोगों के बारे में पूछताछ और दर-दस्तूर भी वही करता।

उसी दिन सारे मौजा में कानों-कान फैल गयी बात—पीलिया कहो या पियरी चाहे हल्दिया पिशाच—चुटकी बजाकर इस रोग को उड़ा देनेवाला बैद आ गया है।

नवटोली गाँव में तिवारी बैद ने अपना डेरा डाला।

उसका चाकर जग्गू, दिन-भर बैठकर जड़ी-बूटी कूटता और रह-रहकर रोगियों की भीड़ पर अभयवाणी की वर्षा करता, "पीलिया कहो या पियरी या हल्दिया पिशाच···अंग्रेज लोग क्या बनावेंगे इसकी दवा। पीलिया का नाम सुनते ही उनके चेहरे पीले पड़ जाते हैं···बैदजी को हिमालय पर्वत से लौटते हुए साधू ने जड़ी बता दी थी। इसलिए, इस रोग की दवा का पैसा नहीं लेते। सिर्फ प्रनामी लेते हैं, धर्मशाला के लिए। गुरु का वचन! यथाशक्ति तथा भक्ति!!

शक्ति के अनुसार भक्ति दिखलायी सिमराहा के साहूकार ने। एकलौते बेटे को पीलिया के पंजे से छुड़ाने के लिए मोहन साहूकार ने 'प्रनामी' में पाँच सौ

रुपये की थैली थमा दी। नवटोली गाँव का नाम ही बदल गया। गाँव का नाम मशहूर हुआ हल्दिया। अर्थात् जहाँ हल्दिया यानी पियरी जैसे भीषण रोग को चुटकी बजाकर उड़ा देनेवाला बैंद आया है। हल्दिया बैंद ! हल्दिया गाँव !

···कि पंद्रहवें दिन तिवारी बैंद को सूरज की रोशनी पीली दिखलायी पड़ी, दोपहर की धूप भी पीली। तिवारी बैंद ने समझ लिया—पीली प्रेतनी ही है। बीसवें दिन अपने चतुर चाकर जग्गू की सेवा और दवा के बावजूद पियराकर गिर पड़े बैंदजी।·· लाल टेसू देह बैंद की अमलतास के फूलों के ढेर जैसी···

आसपास के बीसों गाँव में सन्नाटा छा गया—'अब ? अब क्या होगा भगवान ?'

'घबराने की बात नहीं।' बैंद के चाकर ने कहा, 'आठ साल की उम्र से ही बैंद की बहँगी बेकार नहीं ढोयी है। पीलिया कहो या पियरी, चाहे जौंडिस···।'

हजारों भयभीत प्राण फिर मुस्कराये, 'सच ?···हाँ, बैंद का चाकर बैंद से बीस ही है, उन्नीस नहीं। चुटकी बजाने की भी जरूरत नहीं। उँगली उठाकर रोगी की ओर इशारा करता है, रोग छू-मतर···।'

अपने सद्यःस्वर्गीय गुरु के प्रति भक्ति-भरी वाणी बोलने के बाद बैंद का चाकर जग्गू अपनी आवाज को तनिक मद्धिम करके कहता, 'भाई ! नीयत ही सब-कुछ है। गुरु का हुकुम था कि धरमशाले के खाते में एक सौ रुपया पूरते ही फौरन कुटिया के पते पर मनिआडार कर देना—सीधे हरदुआर। निन्नानबे रुपये तक अपने पास रख सकते हो।···सो गफलत कहिये या नीयत चाहे भावी प्रालब्ध···पीलिया कहिये या भगवान की मार !'

बैंद का चाकर जग्गू ! चाकर नहीं, अब सोलह आना बैंद !!

गुरु से भी तेज, जग्गू बैंद ! साल-भर में, सारे इलाके से पीलिया को जड़-मूल से उखाड़कर फेंका जग्गू ने। उसने प्रतिज्ञा की थी—'या तो मैं ही यहाँ जड़ जमाऊँगा या यह पापिन पीलिया ही।' जरूर मनीआर्डर ठीक समय पर—निन्नानबे के बाद सौ होते ही—भेजता होगा, कुटिया के पते पर—हरदुआर !

पीलिया समाप्त होते ही जग्गू ने ऐलान किया, 'सिर्फ पीलिया ही नहीं, सभी असाध्य रोगों की दवा चला सकता हूँ।' लोगों ने देखा, जग्गू सचमुच अपने गुरु से भी ज्यादा सच्चा है। जो कहता है, कर दिखाता है।···बुखार में खट्टा दही और भात, पथ्य खिलाता है। इमली की चटनी भी।

दवा और जड़ी-बूटी के अलावा जग्गू की छोटी-मोटी कहानियों का प्रभाव रोगियों पर अधिक पड़ता था शायद। दवा कूटते-छाँटते रोगी की नाड़ी देखते समय भी उसकी कहानी बंद नहीं होती। रोग-जाँच करते वक्त वह अपनी कहानी की मोटी-मोटी बातें ही सुनाता। जाँच के बाद कोई चमत्कारपूर्ण कथा।

यथा : तंबाकू के मशहूर व्यापारी को डेढ़ लाख रुपये का घाटा लगा। उसने

सोचा कि इस जान को अब देह के पिंजड़े में बंद करके रखना बेकार है। दोनो पैर में 'महिषा-दादा'। महिषा-दादा कहो या इकजिमा, बात एक ही है। इसी इकजिमा के कारण डेढ़ लाख का घ.टा। और इकजिमा को अंग्रेज लोग असाध्य मानते हैं। किसी ने मेरा नाम बता दिया।···जाकर देखिये, परसों से कीर्तन करवाने का जोगाड़ लगा रहा है। मिठाई बँटेगी। सिर्फ चार दिनों में साला इकजिमा, भूसी की तरह देह से झड़ गया। जाकर देख सकते हैं।···

ऐसी कहानियों के प्रसंग में जग्गू पटने के प्रसिद्ध डॉक्टर टी० एन० बनर्जी साहब का नाम दो-तीन बार अवश्य लेता—एक बार की बात है···।

पुरानी खाँसी से परीशान बूढ़ी की कुकुर-खाँसी, इस कहानी की प्रथम पंक्ति को सुनकर ही रुक जाती। जग्गू अपने सफरी हुक्के पर चिलम रखकर कुछ देर गुड़गुड़ाता रहता। फिर—एक बार की बात है। परसा राज के मनिजर के दामाद का पेशाब अटक गया।···वैदजी से चार महीने की छुट्टी लेकर मैं भी परसा गया था। परसा में मेरा ससुराल है।···मनिजर साहब के दामाद के पेशाब अटकने की बात तुरत गजट में छापी हो गयी। मनिजर की नौकरानी रिश्ते में मेरी साली लगती थी। मैंने मनिजर की नौकरानी से कहा कि गजट-छापी से भला पेशाब होगा? जाओ, कुल्थी का पानी पिलाओ। नौकरानी बोली मनिजरानी से, मनिजरानी बोली जाकर डॉक्टर से तो, 'सिविल सरजट' बोला कि नहीं, जब तक पटने से टैनबनर्जी साहेब डॉक्टर नहीं आते है, दवा क्या एक बूंद पानी भी नहीं चलेगा किसी का।···लो भाई, आने दो टैनबनर्जी साहब को। हम भी दर्शन कर लेंगे।···डॉक्टर है टैनबनर्जी! सौ डॉक्टर पर एक डॉक्टर, समझिए कि होल इंडिया से भी बाहर जिनका 'जस' फैला हुआ है। ऐसे डॉक्टर का दर्शन भी दुर्लभ है।···सो, हवाई जहाज गिनगिनाता हुआ उतरा परसा पोलो-मैदान में। हवाई जहाज से उतरे टैनबनर्जी साहेब।···हरदम हँसते रहते हैं टैनबनर्जी डॉक्टर। क्या डॉक्टर है बाबा। मोटर से हवेली में आये। रोगी की नाड़ी पर हाथ रख दिया। पेट को टटोलकर देखा और चिल्लाये—कुलुथ! जल्दी से कुलुथ का पानी पिलाओ। तुरत···

सो, मनिजरानी तो पहले से ही पानी में कुल्थी डालकर बैठी थी। हाँ, मनिजरानी इसके पहले मुझसे, पच्चीस साल पुराना सिरदर्द झड़वा चुकी थी। तुरत चम्मच से कुल्थी का पानी पिलाया।···

जग्गू की ऐसी कहानियाँ प्रायः 'डबल क्लाइमेक्स' वाली होती।

···सो, पहला चम्मच ही पिया कि टोटा जो फूटा—तो फिर बिछावन, चादर, गजट-कागज-अखबार और कपड़ा-लत्ता सब ज-ला-म-य!! लगा, कटिहार-टीशन की पानी की कलटेरी खुल गयी हि-हि-हि-हि!!

खाँसी से जरजर पोपली बूढ़ी के ओंठो पर सलज्ज मुस्कुराहट खिल पड़ती।

हँसी की फुलझड़ी छूटती जवान लड़कियों के कंठ में। बच्चे हँसते-हँसते बेहाल!!

बूढ़ी की खाँसी से परीशान, परिवार के लोग उस रात को गहरी नींद से सोते।

रोग को छुड़ाने के लिए, रोगियों के दु:ख-दर्द को दूर करने के लिए जग्गू अपने अनेक गुणों का प्रयोग करता—आवश्यकतानुसार। टोटका, तंत्र-मंत्र, झाड़-फूंक, मुष्टियोग। किंतु, प्रत्येक गुण के प्रयोग के पूर्व तत्संबंधी कम-से-कम आध दर्जन कहानियाँ वह जरूर सुना डालता!

कहानियाँ, रोग-परीक्षा, निदान, टोटके और मुष्टियोग की दो श्रेणियाँ थीं। एक भद्र और दूसरी अभद्र।···अभद्र रोगों में भद्र टोटके से क्या हो? कहानियाँ वह रुचि को परखकर ही सुनाया करता। यों, प्रत्येक कहानी में 'ग्राम्य-रस' कुछ ज्यादा ही ढालता था वह।

कमर-दर्द से पीड़ित रोगी रविवार की पहली भोर में उठकर किसी ताड़ के पेड़ को अँकवार में भरकर आलिंगन-आदर करे। दर्द तुरत फुर्र-र-र!···शर्त है, कोई देखे नहीं, कोई टोके नहीं।

गलफुल्ली (मम्स!) से ग्रसित व्यक्ति महुँड के पेड़ के पास बैठकर 'दियाधरी' से पहले, पुक्का फाड़कर रोये। बैलून जैसे गाल तुरत 'चुपस' कर बटुआ जैसा हो जायेगा।

कुछ टोटके कान में ही फुसफुसाकर बताये जा सकते हैं।···अभद्र रोग का कोई अभद्र टोटका!

पंद्रह साल पहले, स्टेशन पर मलेरिया सेंटर खुला।

सरकारी डॉक्टर-कम्पाउडरों के अलावा और भी कई डाक्टर (होमो और एलो) आकर गाँव में बसे। फिर, प्रतिभावान 'अच्छर-कट्टू' लड़के भी थे कई, जो मिडिल पास-फेल करने के बाद घर बैठे डाक्टरी पास कर—लाठी के हाथ डॉक्टरी चला रहे थे।···क्वैक!

जग्गू 'क्वैक' का अर्थ किसी जानकार से पूछकर जान चुका था।

इसलिए, जब सरकारी डॉक्टर और कम्पाउडरों ने आपस में बातें करते समय जग्गू को 'क्वैक' कहा तो उसने तुरत विरोध किया था—नहीं हुजूर! गुरु की दया से जो कुछ मेरे पास है, वह गुरुमुख से ही मिला है—कुवैक नहीं कहिए—डॉक्टर बाबू!

इतने डॉक्टर और कम्पाउंडरों के आगमन से जग्गू की 'प्रेक्टिस' में कोई अंतर नहीं आया। लोगों ने देखा, डॉक्टरों की घरवालियाँ भी अपने बच्चों की अथवा अपनी दवा जग्गू से ही करवाती हैं।

हाट के दिन, हाट के चौरस्ते पर चट्टी लगाकर, कपड़े की सैकड़ों छोटी-बड़ी रंगी-बदरंगी झोलियों को वह सजाता—प्रतीक्षा करते हुए लोग उसकी चट्टी के चारों ओर जमा हो जाते। देखते-देखते भीड़ बढ़ जाती।···किंतु, हाट के भीड़-भड़ाके में भी नाड़ी देखने में जग्गू पंसारी कभी नहीं गड़बड़ाया।

हाट में तुरत जाँच, तुरत नुस्खा!

हाट में उसकी कहानी-कला तो नहीं, शब्द-प्रयोग की एक अभिनव चातुरी काम करती, उसकी।···

कोई हाथ दिखला रहा है। दूसरा पथ्य के बारे में पूछ रहा है। तीसरा घूंघट के अंदर से ही नकिया-नकियाकर धारा-प्रवाह कुछ सुनाती जा रही है। जग्गू सबकी सुन रहा है—गुन रहा है। कभी नहीं गड़बड़ाया है। सभी को सही दवा और वाजिब सलाह देता जा रहा है—पेट? गंदा? एँ? ठीक है न? भूख? भूख मंदा? है न? मुंह कड़वा और पेशाब कड़क? है न?···? काढ़ा-कुटकी-चिरैता भोर में। समझे? और, जीरा, काला नून, बुकनी दही-घोल में···चार आने की कुटकी-चिरैता। बढ़ाइये हाथ!···

···बहिनजी! हाँ—दिन-रात माथा भारी? है न? हर महीने बीमारी! एँ? है न? आँख के आगे उड़े जुगनू—कान के पास हमेशा घुनघुन? है न? ···अशोक के बाकल का काढ़ा, बकरी का दूध गाढ़ा···यह तुतिया किसका है भाई—लीजिए नीला थोथा—अदरख के साथ काला मोथा! पुराना शहद, काली गाय का गोत!!

गाँव पहुंचकर देखा, कुसुमलाल ही नहीं, जग्गू पंसारी की निंदा करते समय हर आदमी रस-भरी बातें बोलने लगता है। हाथ के 'जस' और वाक के 'सत्त' को लोगो ने मानो अपनी आँखो से देखा हो—एक जोड़ी चिड़िया की तरह फुर्र से उड़ गयी:···अब क्या है जग्गू के पास?

सबसे अचरज की बात! रसिकलाल ही सारे इलाके के रस-भरी कहानियाँ—अपने बाप की—सुनाता फिरता है--रोज नयी कहानी!

रसिकलाल को देखकर मैं दंग रह गया। वह अपने को डॉक्टर रसिकलाल कहना-सुनना पसंद करता है। पेटेंट दवाओं की एजेंसी उसने ली है। साइनबोर्ड पर लिखा हुआ है—'हजारों रोग की एक दवा 'रामबिंदु'—डॉक्टर रसिकलाल, मोकाम हल्दिया के पास भी मिलता है।'

कहानियाँ रसिकलाल भी सुनाता है। किंतु, उसकी कहानी एकदम आधुनिक होती है। अंग्रेजी शब्दों से वह अपनी कहानी को बीच-बीच में बघारता रहता है—स्टेशनमास्टर साहब की बड़ी लड़की रात में सपने में खराब 'ड्रीम' देखकर डर जाती। 'ड्रीम' देखती—स्टेशन का 'सिगल' कभी 'डौन' और कभी 'अप' हो जाता है। सूखकर काँटा हो गयी थी। स्टेशनमास्टर ने नहीं, बताया स्टेशन-

मास्टर की घरवाली ने। सो, एक ऐसा टोटका बता दिया कि फिर काहे को सपने में खराब-खराब ड्रीम देखेगी और काहे को साला सिगल फिर अप और डौन होगा!

कहानी सुननेवालों को जब और भी कुछ सुनना होता तो कोई 'लेकिन युक्त बात' से उसको उकसा देते—लेकिन, जग्गू तो कहता है कि रसिक ढोढ़ा-साँप का मंतर भी नहीं जानता। झूठ-मूठ लोगों को ठगता फिरता है।

रसिकलाल तब बार-बार सिगरेट सुलगाता और बाँटता है। धुआँ फेंकता हुआ अपने बाप को एक भद्दी गाली देता है। फिर एक अश्लील कहानी अपने बाप को शुरू कर देता है—कल रात की बात क्या बतावें? ओसारे पर उलंग होकर···।

सभी कीर्ति-कथाओं को सुनने के बाद ऐसा लगा कि जग्गू अब पूरा पशु हो गया है। गाँववालों की बातों से यह भी मालूम हुआ कि कोई ऐसी व्यवस्था हो रही है—गुप्त रूप से—कि जग्गू को अपनी झोली-झंडी लेकर इस गाँव से भागना पड़ेगा अब।···घिना दिया इस बूढ़े ने?

चालीस साल पहले आकर जड़ जमानेवाला जग्गू कहाँ जायेगा? अपना गाँव? जब इकलौता बेटा ही अपना नहीं हुआ तो गाँववाले तो उसे पहचानेंगे भी नहीं। चालीस साल पहले जिस गाँव को छोड़कर आया—वहाँ अब क्या धरा होगा?

मैं जग्गू से मिलना चाहता था। बच्चों के लिए एक बोतल 'हींग पाचक' बनवाकर शहर ले जाना है।

जग्गू की झोपड़ी के पास ही उसके लड़के की हवेली बन रही है। रसिकलाल ने नमस्कार करके स्वागत किया, "आइए!"

किंतु, मैंने जानबूझकर उससे पूछा, "तुम्हारे बाबूजी कहाँ है? मुझे जग्गू बैद से काम है।"

रसिकलाल अप्रतिभ हुआ। उसने झोपड़ी की ओर उँगली उठाकर कहा, "जाइए, अंग्रेजी बायस्कोप का खेला हो रहा होगा। देखिए···।"

रसिकलाल अपनी बात पर आप ही हँसा।

जग्गू की झोपड़ी मेरी जानी-पहचानी थी। दरवाजे पर ऐसा सन्नाटा कभी नहीं देखा। जहाँ हमेशा मेला लगा रहता था—वहाँ···??

जग्गू ने मेरी खाँसी सुनकर मुझे पहचाना।

दरवाजे पर पहुँचकर मैंने पुकारा, "लाल बाबू है क्या?" और अंदर से जवाब मिला, "आइए, आइए। अंदर ही आ जाइए।"

जग्गू की पहाड़िन पर पहली नजर पड़ी—अंदर आँगन में पैर रखते ही। जग्गू दहलीज में खाट पर बैठा हुआ था। पहाड़िन को देखकर ही समझ गया—कुसुमलाल 'तड़तड़-जवान' क्यों कहता है।

जग्गू ने कहानी शुरू की :

"देखा, पुराना कथाकार मरा नहीं है। किस तरह उसके पुत्र ने नादानी की, कैसे जग्गू ने माफ किया! फिर, गौना के बाद किस तरह बुरा व्यवहार करने लगे दोनो। यहाँ तक कि इस बुढौती मे कलंक भी लगा दिया।—मेरे गुरु ने कहा था—'बेटा हो या स्त्री, जब तक 'गुण' रखने के काबिल नही हो जायें, उनके हाथों में कुछ नहीं देना।' सच कहा था गुरु ने।···सो, अभी दिया ही कहाँ था कुछ मैंने। कहिए भला, शीशी की दवा चलती है। ऊपर है भगवान! सब देखते है। जो थोड़ा-बहुत हाथ में है वह भी नहीं रहेगा।"

मैंने टोक दिया, "लेकिन, दवा-दारू और हाट-बाजार बद करके इस तरह दिन-रात आँगन मे बैठे रहने से तो 'गुण' आपके हाथ मे भी नही रहेगा। लोग तरह-तरह की बात कर रहे है।"···

जग्गू के चेहरे पर एक चमक फैल गयी। उसके नथुने फडके।

पहाड़िन खरल मे कोई दवा कूट रही थी—ओमारे पर। वह शुरू से ही भाव-शून्य दृष्टि से मेरी ओर देख लेती थी। इस बार उसने जग्गू की ओर देखा। जग्गू चुप था। पहाड़िन का दवा कूटना रुक गया। वह उठी और जग्गू के पास आकर पहाड़िन मे ही बोली, "इस भले आदमी को क्या लेना है? नही लेना-देना है कुछ···घर जाने को कहिए। यहाँ क्या है? मेला है?"

पहाड़िन अब जग्गू की गजी खोपड़ी मे तेल लगाने लगी।

जग्गू बोला, "गाँववालो की बात पर आपने भी परतीत कर ली?···आप बहुत दिनो के बाद गाँव आये है! तो सुनिये!

"मेरे हाथ का गुण मेरे मरने के बाद भी मेरे हाथ मे रहेगा। और उसके बाद भी मेरे खानदान मे—मेरी ही औलाद के हाथ मे गुण रहेगा। मेरे बेटे का नाम होल इडिया से बाहर···।"

मैंने कहा, "लेकिन रसिकलाल तो···।"

इस बार जग्गू तड़प उठा, "उसका नाम मत लीजिए बाबू साहेब! वह मेरा बेटा नही। सचमुच मेरा बेटा नही।"

"तब आपने जो कहा कि···।"

"क्या कहा?"

जग्गू आवेश मे आ गया, "रसिकललवा पहले अपनी कागतरुया स्त्री का तो इलाज कर! बाबू साहेब, मै धरती पर तीन लकीर खीचकर कहता हूँ कि नाक रगड़कर धरती मे मर जायेगा···वह, उसकी बीबी के कोख म चूहा भी नही निकलेगा।"

"देखिए, वह आखिर लड़का ही है, आपका?"

"फिर वही बात? वह मेरा बेटा नही। मेरा बेटा तो···।"

जग्गू ने तेल लगाती हुई पहाड़िन का आँचल उठाकर, हाथ से पेट छूकर

दिखलाते हुए कहा, "मेरा बेटा यहाँ है। यहाँ···।"

मैं गूँगा हो गया, अचानक। पहाड़िन पूर्ववत् जग्गू के सिर में तेल लगाती रही। उसके चेहरे पर किसी तरह का परिवर्तन नहीं। न लजाई, न गुस्साई।

"लोग कहते है कि जग्गू के हाथ मे अब 'जस' नहीं। देखेंगे, लोग देखेंगे··· मेरी इस काछी को फारबिसगंज मिल के बदमाश मजदूरों ने लगातार चार साल तक अपने कब्जे में रखा। तरह-तरह की अंग्रेजी दवा खिलाकर इसकी बच्चादानी को बेकार बना दिया था।···मेरे पास जब आयी तो, पहले मैंने सोचा कि रखेलिन की तरह रहेगी! लेकिन, बाबू साहेब—यह औरत, औरत नहीं—साक्षात् सती है। सो, जब रसिकलाल ने अपनी नीयत बिगाड़ी—मैंने सोचा, अब नहीं···।"

मैंने लक्ष्य किया, जग्गू का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है।

"बाबू साहेब, पाँच महीने तक सिर्फ इसका कोख 'सुद्ध' किया मैंने। आप तो जानते ही है कि मैं सब रोगों की दवा चलाता था लेकिन कोख और कोखदानी की गड़बड़ीवाले केस को साफ जवाब दे देता था। क्योंकि गुरु का कहना था कि बच्चा देना विधाता के हाथ मे है। जो बैद विधाता के इस काम में टाँग अड़ाता है—विधाता उससे एक दिन पूछते है। सो, जब परेम हो गया तो फिर क्या जात, क्या पात।···बाबू साहेब, सालों ने इसकी दूह-दूहकर देह ढीला कर दिया था। सो कोख सुद्ध करने के बाद इसकी ढबरढीली देह का इलाज किया।··· बोलिये तो काछी की क्या उमर होगी! देह का गढ़न ऐसी देख रहे हैं न, सब दवा खाने के बाद हुआ है···।"

जग्गू रुका। मै घबराया। पेट दिखलाने के बाद अब कहीं···?

मै बोला, "हींग पाचक तैयार है?"

"बाबू साहेब, पाचक-वाचक नही। आजकल मैं वह सब मामूली दवा बनाने मे बेकार समय बर्बाद नही करता।···सो, जब काछी का कोख सुद्ध हुआ—एकदम पियोर हो गया, तब मैंने गुरु का नाम लेकर काछी को घर में बैठा लिया। सिर्फ हाथ के 'जस' और बाक के 'सत्त' को अपने खानदान में रखने के लिए!··· और आप तो जानते ही है कि बीजू आम से बढ़कर होता कलम आम! मगर, कलम लगाना बहुत कठिन काम है।"···

मै उठना चाहता था। क्योंकि, जग्गू की पहाड़िन उसकी खल्वाट खोपड़ी पर तेल मालिश करने के बाद—कमर की ओर हाथ बढ़ा रही थी।···झोलंगी-खटिया रह-रहकर चरमरा उठती थी और पहाड़िन हर बार 'अइयो' कहकर जग्गू से कहती, "पुग्यो?"

"सो, बाबू साहेब! जब मैंने सबकुछ सुद्ध करके काछी को घर में बैठा लिया, तब···तब उस हरामजादे ने क्या किया, जानते है?···मैं फारबिसगंज गया था और साले ने फिर 'असुद्ध' कर दिया।···जी हाँ, रसिकलाल ने। मैं घर आया

तो कांछी बोली—फिर असुद्ध···!"

अब मैं उठ खड़ा हुआ।···मैं सिर से पैर तक अशुद्ध होता जा रहा था।

"बाबू साहेब, सुनते जाइये।···कांछी के पेट में जो बच्चा है, वह आपके गांव का, समाज का, होल इंडिया का नाम रखेगा।···इसलिए, कांछी ने जिस दिन सुबह-सुबह उठकर कै किया—उसी दिन से मैं दिन-रात घर मे रहता हूँ। कही नहीं जाता। कैसे जाऊँ? छै महीने तक 'बबुआ' पर किसी को छाया नहीं पड़ने दूंगा। अभी तो दो महीने का ही है। क्यों कांछी, आज सिमुलाकद खायी है, तो? तुमको कुछ खयाल नहीं कि बेचारा बबुआ···?"

जग्गू ने फिर कांछी के पेट पर पड़ा हुआ आँचल उठाया, "देखते है बाबू साहेब, इसको कहते हैं हाथ का जस! रसिकललवा की बीवी कहाँ पायेगी?"

मैं आँगन से बाहर निकल आया।

तॅबे एकला चलो रे

···बात शुरू होगी उसके जन्म से ही, सात साल पहले से।

यद्यपि उसने पुरुष होकर एक पर्व के दिन जन्म लिया था···पर, उसके भूमिष्ठ होने के बाद उसे देखकर लोगों के मुंह विकृत हुए, नाक संकुचित हुई, अमंगल-वचन निकले—सभी के विकृत मुंह से।

उसका जन्म भी जन्माष्टमी की रात में हुआ था, इसलिए मैंने परिवार के लोगों को सुनाकर बार-बार कहा—इसका नाम श्रीकृष्ण रख दो।

लोगों को लगा, मैं जले पर नून छिड़क रहा हूँ। गँवार पत्नी मुंह बिदकाकर बोली, "ऐ-हे ! ई मुआ···करकुट्ठे-काले का नाम होगा किसन महराज ?"

सभी हँसे। मेरा प्रस्तावित नाम हँसी में उड़ गया। पत्नी का दिया फूहड़ और अपभ्रंश नाम चल गया—किसन महराज !

किसन महराज के जन्म से मैं—परिवार के अन्य सदस्यों की तरह—निराश नहीं हुआ था। घोर श्यामवर्ण, घुंघराले बालों वाला शिशु। कितना प्यारा !··· च:-च: !!

और, दूसरी ओर उसकी छठी के पहले से ही लोगों ने भविष्यवाणी शुरू कर दी—भादों में जन्म हुआ है। कहीं आसिन में कसके झड़ी-बदरी लदी तो किसन जी दो दिन में ही द्वारिकापूरी सिधारेंगे, नंगे पाँव।···छि:-छि: ! किसी बच्चे के बारे में, किसी भी शिशु के संबंध में ऐसी बातें 'राक्षसगण' वाला आदमी ही कर सकता है।

छठी की रात में परिवार वालों ने अपने 'बथान' के इतिहास पर आँसू बहाया, माँ षष्ठी से प्रार्थना की, परिवार की बड़ी-बूढ़ी ने—'जै मैया छठी ! मानुस को दो बेटा, पसु को बेटी।···ले जा मैया पाड़ा, दे जा मैया पाड़ी।'···ले जा; माने उठा लो, बलिदान लो। बथान में बेटा-बच्चा कभी मत दो !

आज हमारे परिवार के बथान पर मात्र दो भैंसें हैं। कोसी-कछार पर बसनेवाले बारहो-बरन के किसान, जमींदार भैंस पालते हैं। जिसके बथान पर तीन

कौड़ी भैंसें न हों, उसे दरिद्र समझा जाता था—आज से दस वर्ष पूर्व तक। अब इतनी भैंसें वे ही पोसते हैं जिनका दूध-घी के सिवा और कोई कारोबार नहीं। किंतु बथान छोटा हो या बड़ा, ग्वाले का हो अथवा किसान का, पाड़े का जन्म सभी अवस्था में मनहूस माना जाता है।

मुझे इस बात की विशेष प्रसन्नता थी कि उसका जन्म मेरी ही दु:ख-भरी पुकार पर हुआ था···इसकी खुराक का अधिकांश क्षीर मुझे ही मिलेगा; दही, जिसकी दुर्दिन में इस दुर्बल शरीर के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता थी। दूध-दही हमारे गाँव में भी दुर्लभ पदार्थ हो चुका है और बैदजी ने केले की रोटी के साथ सिर्फ दही खाने को कहा है। दही नहीं मिले, मट्ठा से भी काम चल सकता है। किंतु खबरदार! न एक 'रावा' नमक का, न एक दाना चीनी का···।

···मुझे ऐसा लगा था, मेरे कष्ट को दूर करने के लिये ही उसने ठीक समय जन्म ग्रहण किया है। अब इस माटी की काया में—जो सभी तीर्थों से बढ़कर है—फिर से जान आयेगी। अब धर्म बच जायेगा! आसिन की झड़ी-बदरी अथवा माँ षष्ठी इसे उठा भी लें, मेरे 'दधि-कदलीकल्प' में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

···ऊँयें! किसन महराज बथान पर बोले।

गाँव में उन दिनों अकेला मैं ही ऐसा मर्द-पुरुष था जो दिन-भर अपनी खाट पर लेटा टुकुर-टुकुर देखता रहता। भदई-फसल कटनी के दिन थे, लोग खेतों में ही रहते थे दिन-भर। उधर, बथान पर किसन महराज को छोड़कर दूसरा बेटा-बच्चा नहीं। उसकी माँ-मौसी भी खेतों में ही रहती।

किसन महराज को कौए तंग करते, मुझे मक्खियाँ।···बेचारा शुभ दिन में धरती पर आया और जन्म से ही अपमान और लांछना सह रहा है! पाड़ी होती तो गले में कौड़ियो की माला के साथ एक टुनटुनी भी पड़ी होती। कोई आँख के कीचड़ पोंछ जाती, हवेली से बाहर निकलकर। कोई बड़ी जतन से दूध में जड़ी घिसकर पिलाती—चुचकारकर। घर की बड़ी-बूढ़ी सदा तीर-धनुष लेकर बथान को अगोरती। उड़ने वाले हर परेवा-पंछी को कौआ समझकर हाँकती—हा-स्-स!

···उं-यें-एं-एं! किसन महराज ने दुखी होकर पुकारा।

याद है, खड़ाऊँ पहनकर कीचड़-गोबर की गिलगिली ढेरी को पार करके मैं बथान पर गया। अचरज से वह मेरी ओर ताकता रह गया था—कुछ देर तक मैंने पूछा था—क्या है महराज? कौए तंग कर रहे हैं?

वह उठ खड़ा हुआ। मैंने उसके घुंघराले बालों को सहलाना शुरू किया। देखा, कई कुकुरमाछियों ने कान के पास अड्डा बना लिया है। एक जोंक न जाने कब से खून पीकर गोल हो गयी थी।

उसे सूखी जमीन पर ले आया। उसका डगमग करके चलना···ठुमकि-

ठुमकि प्रभु चलहि पराई !

घाव पर चूना लगा दिया। आँख के कीचड़ को झिगुनी के पत्ते से पोंछा। कीचड़ ही नहीं, उसकी आँखों से आँसू भी चू रहे थे।

अपने चौपाल के पास, ठीक अपनी खाट के सामने खूंटे से उसे बांध दिया। स्थान-परिवर्तन से अथवा मेरा साहचर्य पाकर वह प्रसन्न हुआ था, रह-रहकर नाचने की चेष्टा करता।

उस दिन मैंने उसके संबंध में बहुत देर तक सोचा था।···आसिन की जान-लेवा झपमी से उबर भी जाये, पुरुष होने का पाप जीवन-भर भोगना पड़ेगा। तीन-चार साल के बाद ही किसी मेले में बेच दिया जायेगा। पूरब मुलुक से आये हुए व्यापारियों के दल का कोई 'लबाना' (पाड़ा खरीदने वाला) इसके पुट्ठे पर हाथ रखकर परीक्षा करेगा—अभी तो एकदम बच्चा है। हल में लगने काबिल नहीं··· लेबोना, एटा लेबोना।

शायद, हर बात में 'लेबोना, लेबोना' सुनकर ही लोगों ने इन व्यापारियों को 'लबाना' कहना शुरू किया।···लेबोना, लबाना !

उसी दिन किसन महराज से मैंने अपनी भी तुलना की थी—बेकाम का आदमी, बीमार आदमी, परिवार का बोझ। किसन महराज को बेचकर परिवार-वालों को साठ-सत्तर रुपये प्राप्त हो जायेंगे। मुझे मुफ्त में भी नहीं लेगा कोई।··· पेट का रोगी चिड़चिड़ा क्यों हो जाता है, यह मैं जानता हूँ।

शाम होने के पहले ही परिवार का सर्वकनिष्ठ सदस्य पाठशाला से बही-बस्ता लटकाकर लौटा और अचरज से ठिठककर हमें देखने लगा। मैंने झिड़की दी थी—इस तरह उल्लू की तरह आँखें गोल कर क्या देखता है ?

उसे दिखलाकर मैंने पाड़े के मुंह के पास अपना मुंह लाकर चुचकार दिया—चुः-चुः !! ईर्ष्या अथवा आश्चर्य के मारे आदमी के उस पिद्दी बच्चे ने मेरी ओर घृणा-भरी दृष्टि से देखा। फिर धरती पर थूकता हुआ आँगन की ओर भागा—'राम ! राम !! तोबा, तोबा ! बाबूजी निरघिन डोम भेल—पाड़ा'क थुथनी में चुम्मा लेल···!'

अपनी हँसी को ओठों से समेटती-सिकोड़ती मेरी गँवारिन फिर आयी—'ऐ-ऐ ! किसन महराज तो आज दालान पर बँधे हैं !'

'बँधे हैं माने ? आज से यह यहीं बँधेगा। इसी जगह।'

'मालूम है, दूध-पीते पाड़ा का गोबर ठीक···ही-ही-ही-ही !'

पेचिश से पीड़ित व्यक्ति की पत्नी को इस तरह दाँत निपोड़कर नहीं हँसना चाहिए—कौन समझाये !

'और तुम्हारे बच्चे तो मलयागिर चंदन ही गोबर करते हैं !'

उसकी हँसी और भी जहरीली हो गयी। जाते-जाते चोट कर गयी—'इह !

वही जो कहा है न कि दुबला काहे तो 'टिडिम' के मारे। मैं समझती हूँ—यह रीस। इनके सामने न हाथ से गिरे नून, न पात से गिरे चून ! सो, रीस कीजिये चाहे खीस, गुस्साइये या पगलाइये। बैदजी ने कहा है, चाय की एक बूंद नहीं।'

बैदजी ने मीठी बोली सुनाना भी मना किया है, शायद···मीठी बोली एक बूंद नहीं···हूँ !

शाम तक सभी लोग खेत-खलिहान, पानी-मैदान से वापस आये। प्रत्येक व्यक्ति ने पाड़े को पलानी में बंधा देखकर अचरज प्रकट किया, विरोध किया। इधर मेरे मन में गाँठ-पर-गाँठ पड़ती गयी—वज्र गाँठ।···पाड़ा यहीं बँधेगा।

थोड़ी देर के बाद ही बथान की महिषी आयी। हुँकरती-डिकरती बथान पर गयी—पाड़ कहाँ-आँ-आँ ? किसन महराज ने पलानी से जवाब दिया—मैं यहाँ-आँ-आँ !

पाड़े की माँ को सबसे अधिक अचरज हुआ था।

आज विस्तारपूर्वक उसके संबंध में कहने का अवसर है। सात साल के युवक किसन महराज के कृत्यों के लिये मुझे अपराधी प्रमाणित करने की चेष्टा की जा रही है। मुझसे जवाब तलब किया गया है···।

जानता हूँ, कचहरी में ऐसे बयान आजादी की लड़ाई के दिनों क्रांतिकारी लोग ही देते थे, जिन्हें तत्कालीन हाकिम न पढ़ते थे, न सुनते थे। किंतु आपके संबंध में मशहूर हो चुका है कि आप किसी भी मुकदमे की राई-रत्ती तक पढ़ते है, सुनते हैं। इसलिए, साहस करके इतना लंबा-चौड़ा बयान तैयार किया है।

तो यह हुई किसन महराज के बचपन की कहानी।

संक्षेप में कहने पर भी इतना कहना आवश्यक है कि दिन-रात मेरे साथ रहने के कारण वह मेरी हर बात को समझने लगा, और मैं हो गया उसकी भाषा का पंडित।

आसिन में आठ दिनों तक झपसी लदी रही, उस बार। पाड़ा दिनभर कूदता-फलाँगता रहा, आठों दिन। उसकी कृपा से मेरे असाध्य रोग में आशातीत सुधार हुआ।···दही खाने से चिड़चिड़ापन भी दूर हो जाता है।

बैदजी ने सुबह-शाम अगहनी धान के खेतों के आसपास टहलने की सलाह लिख भेजी। कहना नहीं होगा, पाड़ा भी मेरे साथ वायु-सेवन करने जाता—नित्य। एहि भाँति···बालकांड समाप्त।

पेट का रोग दूर हुआ, किंतु पेट की चिंता बढ़ गयी।

जिस दिन गाँव छोड़कर शहर जा रहा था, पाड़ा बैलगाड़ी के पीछे बहुत दूर तक आया था।···"जा किसन, लौट जा अब !" मेरी बोली कंठ में अटक गयी थी।

मेरी अनुपस्थिति में पाड़े को कोई कष्ट न हो, परिवार वाले उसे बेच न

दे—पत्नी को प्रत्येक पत्र में याद दिलाता। जब परिवार के एक सदस्य ने जि-
पकड़ ली तो मेरी पत्नी ने लिखवाया—'कन्हाई बाबू दिन-रात पाड़े की ही ब
करते है। कहते है, लोगों की फसल 'नुकसान' करता है। कौन दिन-रात उलहना
सुने ! बोल रहे थे कि गांव का ही मकदूम मियां नब्बे रुपया दे रहा है। मैं
कहती हूं, भेज दीजिये कन्हाई बाबू को उनका हिस्सा पैंतालीस रुपया। कलेजा
फटा जा रहा है उनका···।'

रुपए नहीं भेजे। चार दिन की छुट्टी लेकर गांव आया। गांव पहुंचकर देखा,
जो सोचा था ठीक वही हुआ है। पाड़ा बेच दिया गया है।

मकदूम मियां के बथान पर मोटी रस्सी में जकड़े हुए किसन महराज को
देखकर मेरा रोम-रोम कलपने लगा। उसको बस में लाने के लिए मकदूम ने उसे
बेरहमी से पीटा था। सारी देह में साटी के दाग···लंबे-लंबे पड़े थे।

एक सौ दस रुपए नकद लेकर मकदूम ने पाड़ा छोड़ा।

उसी बार, गांव के पांच पचों के बीच कह आया, "यह पाड़ा आज से सबका
हुआ—गांव का, इलाके का।"

उस बार, चार दिन तक पाड़े में ही मन की बातें कीं। पत्नी बोली,
"कन्हाई बाबू ने रुपए गिनकर मकदूम के हाथ में पाड़े की रस्सी थमा दी, लेकिन
पाड़ा रस्सी तुड़ाकर आंगन भाग आया, मेरे पास। मैं रसोईघर में थी। वहीं
पहुंचकर डिकरने लगा।···एह ! आंख से लोर झहर-झहर झर रहे थे···आंचल
में छिपाने की कोशिश कर रहा हो, मानो।"

इसके बाद की कहानियां मैंने भी सुनी है।

जब-जब गांव आया, एक-न-एक कहानी सुनी पाड़े की। अलौकिक कहिये या
असाधारण, कहते है पाड़े में कई विशेष गुण प्रकट हुए, क्रमशः।

सूधा तो वह ऐसा निकला कि गांव-भर के बच्चे उसकी पीठ पर सवारी
करते। किंतु, बड़े-बूढ़े आदत से लाचार होकर, कभी गाली देकर बात करते तो
पाड़े के नथुने से फोंस-फोंस आवाज निकलने लगती।

उजड्ड रामबुहारन बिना गाली के कोई बात बोल ही नहीं सकता। एक बार
उसने कहा; "सरवा पाड़ा···।" बस, सरवा सुनते ही किसन महराज पैर से खुरी
काढ़ने लगा। एक टोकरी धूल उड़ाकर रामबुहारन की आंखों में झोंक दिया।

मकदूम मियां के मन से लोभ-मोह दूर नहीं हुआ था, हालांकि उस पर
नजर पड़ते ही पाड़ा अगिया-बैताल हो जाता। मकदूम हमारे टोले का रास्ता ही
भूल गया था, किंतु दिन-रात पाड़े के लोभ में वह तरह-तरह की बातें सोचता।
उसने अपने दूर गांव के एक यगाना से परामर्श किया। मुस्तंड मवेशी-चोर
यगाना उसको बोला, "लोहे की सिकड़ी और दांत वाले नाथ से तो शेर भी थर-
थर कांपता है। और यह कमबख्त भैंस का पाड़ा ?"

एक रात को वे आये, चुपचाप पाड़े की चोरी करने—मकदूम, असगर।

ऐसा लगता है, किसन महराज ने धूल उड़ाकर उन्हें सचेत करने की चेष्टा की होगी—पहले। जब असगर ने भाला फेंककर पुट्ठे पर घाव कर दिया तब उसने निरुपाय होकर सीधे हमला बोल दिया होगा। बारी-बारी से चहेटकर उसने मकदूम और असगर के हाथ-पैर तोड़े थे।

इस घटना के बाद ही उसने गाँव की चौकीदारी शुरू की होगी। वह कब से रात में पहरा देता है, किसी को नहीं मालूम। तनुकसाह के पिछवाड़े से किसी की चीख सुनायी पड़ी, एक रात। तनुकसाह के परिवार वाले जगे, किंतु साहस नहीं हुआ पिछवाड़े की ओर जाने का। चीख-पुकार क्रमश. बढ़ती गयी—"बचाइये हो गाँव के लोग···अरे बाप, मर गये!" लोग हा-हू करते दौड़े आये। देखा, तनुकसाह के पिछवाड़े में एक आदमी लहूलुहान पड़ा कराह रहा है और पास खड़ा किसन महराज रह-रहकर हुँन्था मारता है।···चोर ने ही पाड़े की कहानी बतायी। जब वह गाँव में घुम रहा था, पाड़े ने उसे अचरज से देखा था। फिर जैसे ही सेंध लगाना शुरू किया, न जाने किधर से आकर पाड़े ने उसे हुँथियाना शुरू किया।

तनुकसाह के साथ गाँववालो ने भी एक स्वर में उसे 'देवहा' पाड़ा कहकर उसकी पूजा की—सींगों में घी लगाकर, सिर पर अक्षत-दूब डालकर।···कच्चा केला उसका प्रिय फल है, मेरी पत्नी ने बताया था। इसलिए तनुकसाह ने दो दर्जन कच्चे केले खिलाये थे किसन महराज को।

लेकिन दो दर्जन केले खिलाकर उसको नीति-भ्रष्ट नहीं कर सका तनुकसाह। एक दिन सुबह उठकर तनुकसाह ने हाय-हाय कर पंचगुहार की, "पाड़े ने दो बीघे तंबाकू को रौंदकर सत्यानाश कर दिया। दो सौ रुपए का माल मेरा—हाय रे हाय!"

गाँव के किसी पंच ने हमदर्दी नही दिखलायी। बच्चे-बच्चे के मुँह से निकला, "ठीक किया है। जैसी करनी···। परसों ही बेचारे अजबलाल दास के मवेसी की कुरकी करवायी है, तनुकसाह ने। बेईमानी से तीन सौ रुपये का चिट्ठा बनाया। फिर नालिस करके ··चुपचाप 'डिगरी' करवा ली थी।···अच्छा किया है पाड़े ने।"

दूसरे दिन भरी दोपहरी मे तनुकसाह ने चिल्लाना शुरू किया, "देखो, देखो हो लोगो—पाड़ा पगला गया हो-ओ-ओ!"

गाँव-भर के लोगों ने तमाशा देखा—तनुकसाह के चार बीघे में फूली-फुलायी सरसों रौंद रहा है पाड़ा; उन्मत्त होकर खेत में दौड़ रहा है इस छोर से उस छोर तक।···पीली चदरी चिथी-चिथी हो रही है, मानो।

तनुकसाह चुपचाप देखता रहा। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला।

उसी शाम को उसने अजबलाल दास से 'डिगरी' की सफाई कर ली—असल तीस रुपये लेकर। सूद भी नहीं लिया—एक पैसा···।

संतोखी ततमा की बेवा मुसम्मात दिन-भर किसानों के घर में धान-चावल कूटती-छाँटती। तीसरे पहर दौड़ी जाती दो मील दूर टेसन की गुदरी पर—हल्दी और हरी मिर्च बेचने। लौटती बेर कभी-कभी गुदरी पर ही दीया-बाती जल जाती। संतोखी की बेवा पाड़े को पुकारती हुई पगडंडी पकड़ती। पाड़े के लिए वह रोज एक छीमी कच्चा केला खरीदकर लाती थी। पाड़े के प्रति उसकी भक्ति के पीछे है एक अंधकार की घटना। संतोखी की बेवा ने मेरी पत्नी को सुनाया है :

गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की नजर में संतोखी की बेवा बहुत दिन से नाच रही थी।

एक दिन घात में बैठे—पाट के खेत में···।

गुनगुन करती, अपने-आप न जाने किससे झगड़ती-बडबड़ाती संतोखी की बेवा खेत के पास आयी। भले आदमी ने अचानक हमला नहीं किया, हालाँकि उनकी अवस्था उस समय जानवर से भी बदतर थी···।

बाजाप्ता प्रेम-निवेदन से प्रारंभ किया बाबू साहब ने।

तीन आने की हल्दी बेचकर, इकन्नी का नून लेकर लौटती हुई संतोखी की बेवा दस रुपये का नोट देखकर काँप उठी थी।···लगा, बाबू साहब के पाकिट से साँप निकला, फन काढ़े हुए। लेकिन वह चीख नहीं सकी, चिल्ला भी नहीं सकी, क्योंकि बाबू साहब पैर पर गिर पड़े···।

'छिः-छिः, उठिए बाबू साहेब !'

ठीक, इसी समय पता नहीं किधर से पाड़ा आकर हाजिर।

पाड़े को देखते ही गाँव के नरपुंगव की पुं-शक्ति समाप्त हो गयी।

'···सच कहती हूँ मालकिन, उस दिन किसन महाराज नहीं आ जाता तो मैं डूब चुकी थी,' संतोखी की बेवा ने मेरी पत्नी के कानों में फिसफिसाकर कहा था।

किसन महाराज रघुबर महतो के कूप का पानी छोड़ और किसी गड्ढे-तालाब में मुंह नहीं रोपता। ठीक दोपहर को रघुबर महतो के कूप के पास जाकर खड़ा हो जाता। बूढ़ा रघुबर महतो अपने हाथ से पानी भरकर पिलाता था—नियम-पूर्वक। रघुबर महतो के 'कच्चा-मीठा' आम के दो पेड़ हैं। आम के मौसम में—टिकोला लगते ही पेड़ों के नीचे मचान गाड़कर बैठता बूढ़ा, दिन-रात। पिछले साल बूढ़ा बीमार पड़ा। दिन-भर उसकी बेटी बतसिया ने पहरा किया। किंतु रात में ? रात में कौन पहरा करेगा ?

रघुबर महतो का कहना है, "सूरज डूबने के पहले ही पाड़े ने पेड़ के पास आकर डेरा डाल दिया। फिर दूसरे दिन सुबह जब बतासो पेड़ के पास गयी तो

उठा।···पाड़ा नहीं, देव है देव !"

अब अंतिम कहानी। मेरी देखी-सुनी।

बिहार विधानसभा में, जमीन-हदबंदी के सवाल पर विचार होना अभी भी बाकी है। लेकिन, जिस दिन यह प्रस्ताव सदन में पेश हुआ उससे दो माह पहले से ही छोटे-बड़े किसानों के मन में पाप समा गया। जिले में किसान और गरीब बँटाईदारों में कई जगह गुत्थमगुत्थी भी हो गयी—यह तो किसी से छिपा नहीं है।

मुझे भी चिट्ठी गयी, गांव मे।···जमीन-जायदाद मे मेरा भी हिस्सा है, इसलिए मुझे स्वयं इस झंझट के समय उपस्थित रहना चाहिए। पत्नी ने लिखवाया—'कन्हाई बाबू कहते है कि भैया के कारण ही पैमायस-बदोबस्त के समय पचास बीघे जमीन चली गयी—मुफ्त में। दान-खैरात करनी हो···अपने हिस्से की जमीन करें···।'

गांव पहुँचते ही मुझे गुप्त सूचना दी, छोटे भाई कन्हाई बाबू ने, "इस बार बँटाई करने वाले फसल काटकर न ले जायें—सभी बड़े किसान चिंतित है। एक चुटकी धान नहीं देंगे बाँटकर वे, सुना है। इसलिए हम लोगों ने, माने आसपास के कई छोटे-बडे किसानों ने मिलकर गुप्त परामर्श करके यह तय किया है···। नहीं-नहीं। मैं ऐसा मूर्ख नही—छतिऔना के शिवशंकर सिंह को चोट पर चढ़ाया है, सबसे पहले। तय हुआ है कि शिवशंकर अपने किसानों की फसल कटवाकर ले जायेंगे—अपने खलिहान पर। इसके बाद हम भी अपने बँटाईदारों से कहेंगे, जब दीगर गांव का किसान फसल काटकर अपने खलिहान पर ले गया तो हम क्यों तुम्हारे खलिहान पर फसल जाने दे ?···आप मेहरबानी करके चुप रहिएगा इस बार, नहीं तो···।"

मैंने पूछा, "यदि बँटाईदार लोग अपने-आप ही—राजी-खुशी से—फसल हमारे खलिहान पर ले आयें तो ?"

कन्हाई बाबू तुनककर बोले, "देखिये भैया, आप फिर इस बार सबको फेरे में डालियेगा, लगता है। भला वे क्यों लायेंगे ?"

मैंने तर्क छोड़ा नही, "क्या आपस मे, सुलह से कोई रास्ता नहीं निकल सकता ?···मान लो, यह तय किया जाये कि न किसान अपने खलिहान पर ले जायें और न बँटाईदार। गांव से बाहर एक 'पंचायती खलिहान' बने···!"

कन्हाई बाबू चिढ़कर आंगन की ओर चले गये। जाते समय कुछ बोले नहीं, किंतु उनकी मुद्रा बोली—'आपके जैसा मूर्ख कहीं नहीं देखा।'

मेरी पत्नी आंगन से मुंह लटकाकर आयी। उसकी दलील सुनकर मैं चुप हो गया, "जब जगह-जमीन ही नहीं रहेगी तो बाल-बच्चे खायेंगे क्या ? कन्हाई बाबू कहते हैं कि अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है ? सुनते हैं, पिनसिन भी नहीं

मिलता । आपके पैरों पड़ती हूँ, आप चुप रहिए ।"

चुप रहा मैं पाँच दिन तक।···अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है?

पाँचवें दिन अभिसंधि के अनुसार छतिऔना के किसान शिवशंकर सिंह हरवे-हथियार, लुटेरे जन-मजदूरों और लठैतों के साथ जमीन पर आ धमके ।

गाँव के सभी बँटाईदार अवाक् हो गये—यह क्या? अचानक कौन नया कानून पास हो गया? अँधेर है! जुलुम है!!

मुझे लगा, अचानक कुत्सित रोग मधुमेह का शिकार हो गया मैं ।

एक-एक कर सभी गरीब बँटाईदार हमारे दरवाजे पर आये—दौड़ते, रोते-चिल्लाते। मैंने देखा, कन्हाई बाबू निर्विकार भाव से पान में चूना लगा रहे हैं। पान मुँह में डालकर गंभीर हो गये, "हमे क्या कहने आये हो?"

"आप लोग चलकर शिवशंकर बाबू से पूछिए कि··।"

"उँहूँ!"

इसके बाद अभागे बँटाईदारों ने मेरी ओर देखा। बेकारी के समय मैंने भी गरीबों की पार्टी का झंडा ढोया था। संभवत: मेरी खादी की धोती को देखकर ही उन्हें मुझ पर भरोसा हुआ था। मेरे पास गिड़गिड़ाने लगे, "लाल बाबू!··· यही उचित है? साल-भर से खेती में बाल-बच्चे, औरत-मर्द मिलकर हमने फसल लगाया···और आज···आप लोगों के रहते···।"

लाल बाबू चुप रहे—अपने पसीजते हुए दिल को मन-ही-मन पत्थर बनाने की चेष्टा में व्यस्त। आँखें मूँद ली लाल बाबू ने।···बहुत मुश्किल से बोले—"मैं क्या करूँ? मैं क्या कर सकता हूँ? मेरे हाथ में क्या है?···अखबार की नौकरी भी कोई नौकरी है? पुलिस का सिपाही होता तो मेरी वरदी का प्रभाव पड़ सकता था।"

हाथ छोड़कर वे चले गये ।

बँटाईदारों के टोले मे कुहराम शुरू हुआ। औरतें छाती पीटने लगी। बच्चे बिलखने लगे। कुत्ते रोने लगे।

उधर खेतों में लुटेरे जन-मजदूरो और लठैतो की सम्मिलित जय-ध्वनि हुई—हो हो हो हो—हो हो हो हो!!

मेरे स्नायुमंडल पर प्रतिक्रिया शुरू हुई। ऐसे अवसरो पर मेरा शरीर काँपने लगता है—मलेरिया बुखार चढ़ते समय जैसी कँपकँपी होती है, वैसी ही।

···बाबू रे-ए-ए! हे-ए-ए, अब क्या खाओगे रे-ए-ए?

···माई-ई-ई! कलेजे पर हँसुआ चला-आ-आ!

···बाल-बच्चे मर जायेंगे!

···हाय! हाय!!

···हो हो हो हो—हो हो हो हो !!

कौन दौड़ी जा रही है ? नंगी औरत—पगली औरत ? एकदम नंगी ? नाच रही है—लूट ले । लूट ले—रे दुश्मनवां लूट ले !···

कौओं का काँव-काँव ? अथवा मैं ही पगला गया ?

···लाल बाबू ! आप देवता हैं ।···काँव-काँव !

लाल बाबू···! आप राक्षस हैं ।···काँव-काँव !!

लाल बाबू ? लाल बाबू ? काँव-काँव !!

···लाल बाबू ! जरा खेत पर चलिये ।

मै क्या कर सकता हूं ? मैं···मैं···!

कौन है ? शिवशंकर सिंह का छोटा भाई देवशंकर सिंह ? मुझे क्यो बुलाने आया है ? मैं कही नही जा सकता । मुझे बहुमूत्र रोग है । मैं एक डग भी नही चल सकता । मैं नशे मे चूर हूं । मैं जानवर हूँ । मुझे कोई क्यों बुलायेगा ?

"···लाल बाबू !" देवशकर ने कड़ककर मुझे होश मे लाने की चेष्टा की । बोला, "आप अपने पाड़े को पुकार लीजिए । वहां खेत मे···।"

क्या ! खेत मे पाड़ा ? अर्थात् ! किसन महाराज पहुँच गये है धर्मक्षेत्र मे, कुरुक्षेत्र मे ? ऐं ! तब फिर क्या—जिधर कृष्ण···उधर विजय !!

"लाल बाबू ! जल्दी चलिए ।"

"भैया ! जाइए न । पुकार लीजिए पाड़े को ।"

मेरी कँपकँपी रुक गयी हठात् । मेरी घुटती हुई उत्तेजना को रास्ता मिला, "मैं क्यों जाऊँ ? पाड़ा मेरा नही, सारे गाँव के लोगो का है । मै क्यों पुकारने जाऊँ ? मै किसी का नोकर नही; न तुम्हारा, न तुम्हारे शिवशकर सिंह का ।"

देवशकर चला गया । नगी औरत रोती-भागती चली गयी । कन्हाई बाबू भी चले गये ।

खेत मे फिर हो-हो की आवाज आयी । मैंने उत्कर्ण होकर सुना—इस बार जयकार अथवा हर्ष-ध्वनि नही !···धर्मक्षेत्र से, कुरुक्षेत्र मे, किसन महाराज को भगाने के लिए हल्ला किया जा रहा है—हुस्स ! होय-होय !

···मारो । मारो अ-रे-रे-र-रे !

···हुई ! हुईस ! अँह-अँह—हुस्स !

···भाग रे-ए-ए ! हो हो हो हो !

शोरगुल बढ़ता गया । अब किसन महाराज अगले पैरों से खुरी काटकर धूल उड़ा रहा होगा ।

···अश्रुगैम !

···मारो ! मारो ! हो हो हो हो !

···ट्ट्राँय ! ट्ट्राँय !!

झूठा फायर ? अथवा···अथवा ?

···भागो ! भागो !!

दृट्ठांय !

आह ! इस बार झूठा फायर नही ।

मैं दौड़ा ।

खेत पर पहुँचते-पहुँचते किसन महाराज का रथ दूर जा चुका था। परिवर्त-क्रिया के झोंके पर उसकी देह थरथरा रही थी, रह-रहकर पैर झटक रहे थे।··· किसन रे !

मेरे किसन ने किसी की जान नही ली । वह गरीबो के हक की रक्षा कर रहा था । ईंट-पत्थरो की मार खाकर भी धूल उड़ाता रहा, सिर्फ। चेतावनी देता रहा । फिर लाठी चली । वह अहिंसक रहा । सीगों से डराना, धूल उड़ाना, झुमा नही । तीर और भालों से घायल हुआ—देह छलनी हो गयी । तब उसने दो लुटेरे लठैतों के हाथ-पैर तोड़े पटककर । शिवशंकर ने झूठे फायर किये, किंतु देवशंकर ने गोली दाग दी—कलेजे पर ! गोली खाकर भी उसने किसी की हत्या नही की । मरते-मरते उसने शिवशकर और देवशंकर को घायल ही किया । वह जान ले सकता था ।···अत मे गाँव की ओर भागा । भागा नहीं । यह निश्चय ही मेरे पास आ रहा था । मेरी पत्नी के आँचल मे मुह छिपाकर सोने के लिए··· रघुबर महतो के कूप का पानी पीने के लिए ··सतोखी की बेवा के हाथ से केला खाने के लिए···मेरे बेटे के हाथ से फरही-गुड़ खाने के लिए···!

कुछ दूर आया···डगमगाया···गिरा· !

मैंने उसके कान के पास मुँह लाकर पुकारा, "किसन रे ! हाय-हाय, मैंने तुझे पहले ही क्यो न पुकार लिया ?···लेकिन मै जानता हूँ—तुम आज मेरे पुकारने पर भी नही आते ।···तुम धर्मयुद्ध मे कैसे मुँह मोड़ सकते थे···?"

अब मैं पुलिस द्वारा लगाये गये आरोप के जवाब दे दूं—अत में !

पुलिस की रपट है—मैने गाँव मे अशाति फैलायी है ।

उत्तर मे निवेदन है—गाँव मे सर्वत्र शाति विराज रही है—पवित्र शांति । गाँव के छोटे-बड़े किसानो ने अपने बँटाईदारों से कह दिया—जहां जी मे आये ले जाओ फसल काटकर । शिवशकर को उसका हिस्सा भदई धान मिल चुका है । कन्हाई बाबू की फसल बँटाईदारो ने कन्हाई बाबू के खलिहान पर ही रखी ।··· कही भी किसी किस्म की अशाति नही ।

किसन की मृत्यु के बाद कुछ लोग उत्तेजित हुए थे, अवश्य । किंतु रामधुन सुनकर वे शांत हो गये । रात-भर उसकी लाश को घेरकर 'निरगुन' गाये गये ।

सुबह को धूमधाम से माटी दी गयी। उसकी समाधि पर आसपास के दस गाँवों के लोगों ने आँसू से गीली मिट्टी दी, बारी-बारी से औरतों ने आँचल पसारकर समाधि पर छाया की। धूप-दीप और शंखध्वनि··· अशांति नहीं फैलानी।

घटना की खबर शहर पहुँची। खेतिहर मजदूर संघ के मंत्रीजी आये, किसान सभा और कांग्रेस के कार्यकर्ता भी आये। दरोगा साहब आये। कौन-कौन आये, कौन गये, मुझे कुछ नहीं मालूम। किसन की मृत्यु के बाद से ही मेरी बोली बंद थी। आँखें बंद थीं···।

समाधि देने के समय एकत्रित लोगों ने बार-बार जय-ध्वनि की थी। सभी अपने को दोषी समझ रहे थे। किसन के बिना सभी अपने को असहाय अनुभव कर रहे थे, इसलिए कभी-कभी सम्मिलित रुदन भी करते थे—हाय-हाय कर।··· किंतु इससे भी शांति भंग नहीं हुई···।

पुलिस रपट में कहा गया है—गरमागरम भाषण दिये गये। लोगों को उभाड़ने के लिए, हिंसात्मक कार्रवाई करने के लिए क्रांतिकारी गीत गाये गये!

जहाँ तक मुझे याद है, भाषण किसी पेशेवर नेता ने नहीं दिया था। गाँव के एक भावुक विद्यार्थी ने अपनी टूटी-फूटी भाषा में तुतलाकर कुछ कहा था, जरूर। लेकिन वह कोई गरम बात नहीं थी। उसने कहा, 'जब आदमी के दुःख को आदमी ने नहीं समझा, किसन महराज ने पशु होकर भी आदमी का काम किया। आदमी का काम नहीं, देवता का। उसने अपनी जान देकर साबित कर दिया कि हम जानवर से भी गये-बीते हैं···।''

और, मेरे टोले की चंपा ने, अपनी तीनों बहनों के साथ मिलकर विश्वकवि का प्रसिद्ध गीत गाया—'यदि तोर डाक सुने केउ न आसे···।'

दरोगा साहब ने लिखा है—समाधि पर लाल झंडे गाड़े गये हैं।

इस बात पर, इस विषाद-भरे क्षण में भी मुझे हँसी आ रही है। गाँव में किसी भी देवस्थल पर लाल-सालू का झंडा फहराया जाता है। हनुमानजी का झंडा हो, चाहे माँ चंडिका का—रंग लाल ही होता है···।

[मुझे आश्चर्य तो तब हुआ—जब कि आपने उनकी इस रपट के आधार पर यह सवाल किया—आपके नाम 'लाल बाबू' का 'लाल' किसी 'राजनैतिक लाल' का संकेत है क्या?··· मैं आपके विनोदप्रिय मिजाज की सराहना करता हूँ।]

किसन महराज की समाधि पर गड़े झंडे भी लाल हैं—स्वीकार करता हूँ।

गाँव के दरजी ने झंडों पर पाड़े की आकृति बनाने की चेष्टा की है, सफेद कपड़े से। मुझे लगता है कि दरोगा साहब ने झंडों में अंकित किसन महराज के सींगों को हँसिया समझा···पैर को हल···पूँछ को चक्र···मुँह को हथौड़ा···!

दोष उनकी दृष्टि का है।

(जनवरी, 1962)

अच्छे आदमी

उजागिर ने दोनो बड़ी केतलियों को ताजे चूल्हे पर चढ़ाकर सामने—पूरब की ओर देखा।···रात से ही 'अदरालछत्तर' (आर्द्रा नक्षत्र) चढ़ा है। सूरज उगा है या नहीं, पता नहीं चलता। बादल हल्की पुरवैया के झोंके पर उमड़े आ रहे हैं। दूर फुहिया वर्षा में पेड़ की पत्तियां छिप रही हैं। सामने—खुला हुआ विशाल मैदान हरियाली पर बिछी हुई—पिच रोड। नयी सड़क !

उजागिर का जी न जाने क्यों, अचानक हल्का हो गया। मन में रात-भर उस 'पसिजर' की बोली चुभ रही थी— खच-खच !—तुम तो मुँह देखकर चाय मे चीनी डालते ही हो, उधर पकौड़ी में भी हाथ-सफाई का खेला होता है। किसी को 'हरियर मिरिच' (हरी मिर्च) और अदरख के टुकड़े डालकर कुरमुरी पकौड़ी दी जाती है और किसी को सड़े प्याज और बासी बेसन की।

···जरूर वह पसिजर जोगबनी या फारबिसगंज से दारू पीकर चला होगा। ऐसा मुँहफट्ट पसिजर उजागिर ने कभी नही देखा था।

उजागिर ने फिर मैदान की ओर देखा।

मैदान का दाहिना हिस्सा फुहिया वर्षा मे ढक-छिप रहा है। सरकारी जंगल विभाग के नये बाँस के बन में हजारो पताके उड़ रहे है, मानो बाँस के नये पौधो की नयी 'कंचियो' के हरे पताके—कास के सफेद गलीचे—सब ढक गये। दो ही साल के बाद यह बाँस का जंगल 'बिजूबन-बिजूखड' हो जायेगा !

उजागिर का घर, गाँव के सबसे दक्षिन छोर पर ऊँची जगह पर है। सामने बहुत दूर तक ढालू जमीन है। कोसी की मारी हुई जमीन कोसी की सूखी और बालू से भरी धारा तक, ऊबड़-खाबड़ है। कटिहार से जोगबनी तक पक्की सडक पिछले साल ही बनकर तैयार हुई है—खुली है। जब, पहली बार कागजवाला नक्शा धरती पर अंकित हुआ, तो लगा कि उजागिर के घर तक आने के लिए ही सड़क इधर आयी है। उजागिर के घर को छूकर फिर दाहिनी ओर मुड़ गयी है।

उजागिर ने देखा···लेटी हुई धरती के गले में चंद्रहार की तरह पड़ी—

पिच रोड !

एक केतली का पानी गनगना उठा।

फिर दूसरी केतली का भी।

उजागिर की आंखों में 'प्रदीपकुमार की माय' के गले में पड़ी चंद्रहार की झलक लगी।···आज प्रदीपकुमार की माय इतनी सुस्त क्यों है? केतलियों में चाय का पानी खौल रहा है। अभी तक न बेसन का गमला खनखनाया और न कड़ाही-कल्छी ही। आखिर बात क्या है?

उजागिर ने अपने तीन वर्ष के एकलौते बेटे को पुकारा, "क्या हो प्रदीप-कुमार! बबुआ! माय से कहो, सादा गाड़ी के आने का समय हो गया। इधर हमारे 'डिपाट' का सब काम 'फिनिस' है।"

अंदर में कोई आवाज नहीं आयी।

उजागिर ने अपने 'डिपाट' पर निगाह डाली। उजागिर का विभाग—चाय डिपाट—कप, तश्तरी, गिलास, छन्ना, चम्मच, चाय, दूध—सब। सब ठीक है। लेकिन आखिर बात क्या है?

उजागिर का घर, इस इलाके का 'गैरसरकारी बस पड़ाव' है। करीब, बीस-पच्चीस गांव के लोग यहीं आकर चढ़ते, उतरते हैं बसों में। दक्खिन कटिहार से आनेवाली बस अररिया कोर्ट से डेढ़ घंटे में और उत्तर जोगबनी-फारबिसगंज से चलनेवाली गाड़ी को एक से सवा घंटे तक लग जाता है। इसलिए उजागिर के घर और दूकान के सामने दस-पंद्रह मिनट रुकती है।

इस 'लाइन' (सड़क) में उजागिर की दूकान के पकौड़े और चाय का खूब नाम हो गया है। सादा, खाकी और लाल गाड़ियों के ड्राइवर-कंडक्टर, पसिंजर, किलनर, सभी तारीफ करते हैं।

प्रदीपकुमार की माय आयी।

नहायी-धोयी प्रदीपकुमार की माय को देखकर उजागिर का हल्का जी और भी गुदगुदा उठा। गिलास में गर्म पानी डालते हुए वह मुस्कराया। प्रदीपकुमार की माय भी तनिक मुस्करायी। मानो, मन की बात को वह मन में अब नहीं रख सका। बोल पड़ा, "अब रेडियो फिट कराना जरूरी है!"

कल तक उजागिर की समझ से, दूकान में एक दीवालघड़ी फिट करना जरूरी था। आज अचानक रेडियो की जरूरत सुनकर प्रदीपकुमार की माय को अचरज हुआ। वह अकचकायी।

उजागिर बोला, "रेडियो में एक ही बात नहीं, तीन-तीन बात हैं। मन हो तो गाना सुनो, मन हो तो खबर सुनो और जानना हो तो टैम भी मालूम कर लो।"

प्रदीपकुमार की माय ने कड़ाही चढ़ा दी।

आंगन मे आंखें मलता हुआ प्रदीपकुमार निकला। उजागिर ने प्यार से बुलाया, "इधर आओ बाबू !···बबुआ !"

हर रोज, पहले तीन गिलास···सबसे पहले प्रदीपकुमार को, फिर प्रदीपकुमार की माय को और तब खुद !···प्रदीपकुमार दिन-भर में पांच गिलास चाय पीता है !

बसों में चढ़नेवाले 'कचहरिया-पसिजर' एक-एक कर आने लगे। बैलगाड़ी पर कोई नयी दुल्हिन है क्या ? सावन-भादो में नैहर जा रही है। यह सायकिल वाला आकर फिर तंग करेगा। यह सायकिल रखने की जिम्मेवारी अब उजागिर अपने ऊपर नहीं ले सकता। ताला लगाने पर भी नही।

पहली बोहनी की किसनपुर के बाबू ने, चार आने के पकौड़े और दो गिलास चाय। दूध-चीनी बराबर-बराबर, गिलास जरा बढ़िया से धोकर।

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के अंदर से ही देखा—किसनपुर के बाबू की नजर उसकी कलाई से लेकर बांह तक गुदी हुई मछलियों पर है। कई जोड़ी मछलियां ! चुलबुला रही है।

प्रदीपकुमार की माय ने बांह की मछलियों को आंचल खींचकर ढक लिया। किसनपुर के बाबू ने कहा, "पकौड़े तनि और खरे-कुरमुरे···।"

छनौटा मे छने पकौड़ो को फिर से खौलते हुए तेल मे डाल दिया प्रदीपकुमार की माय ने।

गीली पुरवैया के झोके मे गर्म पकौड़े की सोंधी-सलोनी सुगंध गांव मे धीरे-धीरे फैलने लगी।

···पकौड़े ! वाह ! चाय ! वहा !

गांव का बूढ़ा संतोखीसिंघ रोज इसी समय आता है।···रोज, 'नित्तम' दिन, टैम बंधा हुआ है, यही। यदि बोहनी नहीं हुई तो परम संतोषपूर्वक प्रतीक्षा करता है। बोहनी हुई कि उसकी चुटकी बजी, 'जै सिरि सित्ताराम !'

आज बोहनी होने के बाद भी संतोखीसिंघ की ओर ध्यान नही दिया उजागिर ने। संतोखीसिंघ ऐसे अवसरों पर कोई गप शुरू कर देता है। गप निश्चय ही किसी चोरी-डकैती अथवा 'घरघुस्सी' की होगी। घरघुस्सी मे पकड़े गये चोर को 'चमचोर' कहते है।

आज संतोखीसिंघ ने, पास के गांव मे हुई चमचोरी मे पकड़े गये किसी चमचोर की कहानी शुरू की।

संतोखीसिंघ को इस इलाके के सभी नामी-गरामी लोग जानते है। जातिवालो ने मिलकर बूढ़े संतोखीसिंघ को बहिष्कृत कर दिया है। जाति का हुक्का-पानी छूटे, मगर संतोखीसिंघ उजागिर की दूकान की चाय और पकौड़े को नहीं छोड़ सकता। और अब तो पकौड़े-चाय खा-पीकर ही वह सारा दिन रहता है।

न आगे नाथ, न पीछे पगहा। संतोखीसिंघ रिटायर्ड दफादार है। बहुत-बहुत 'इसपी' और दरोगा के मातहत काम कर चुका है वह। जब कहीं कोई नयी घटना नहीं घटती है तब संतोखीसिंघ कोई पुरानी कहानी, बिना किसी प्रसंग के ही शुरू कर देता है।

किंतु आज की कहानी, टटकी है, जो कल रात को ही घटी है।

किसनपुर के बाबू ने, हरी मिर्च की कड़ुवाहट पर 'सी-सी' करते हुए इस बात की पुष्टि की, "हाँ, इसीलिए रात में उधर हल्ला-गुल्ला हो रहा था, क्यों?··· सी-सी !"

मामले को गाँव के पंचों ने मिलकर 'रफा-दफा' कर दिया है, संतोखीसिंघ को यह खबर भी मिल चुकी है। मुद्दई, बेचारी साधोसाह की बेवा, क्या कर सकती है? पाँच पंच की बात से बाहर कैसे जाये बेचारी !

प्रदीपकुमार की माय ने पकौड़ा नहीं दिया।

उजागिर ने चाय का गिलास बढ़ाते हुए कहा, "संतोखी काका, पकौड़े गाड़ी जाने के बाद।"

"सो क्यों ?" संतोखीसिंघ ने नकद पैसा देकर खानेवाले खरे गाहक की तरह खनखनाकर पूछा।

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के अंदर से ही उजागिर को इशारे से कुछ कहा। केले के पत्ते पर गर्म पकौड़ा लाकर सामने रख दिया उजागिर ने। इधर कई दिनों से संतोखीसिंघ इसी तरह तेवर चढ़ाकर बातें करने लगा है।

संतोखीसिंघ ने किसनपुर के बाबू से कहा, "रासो बाबू, यह ससुरी सड़क जब से चालू हुई है—चोरी-चुहाड़ी और भी बढ़ गयी है। पहले तो साला गाँव के आसपास के ही चोर-डकैत चोरी-डकैती करते थे। अब तो मानिहारी घाट का चोर साला जोगबनी आकर चोरी कर जाता है—रातोंरात—बेदाग !"

किसनपुर के बाबू ने विरोध किया, "इसमें सड़क का क्या कसूर ? बिना सड़क खुले ही कलकत्ता के लोग कटिहार में पाकिट मारते हैं।"

किसनपुर के बाबू को मालूम है, सड़क बनते समय इलाके में कई सड़क-विरोधी आंदोलन हुए थे। लोगों को उभाड़ने के लिए आंदोलन के नेताओं ने इस बात को प्रमुख प्रचार-अस्त्र बनाया था—सड़क खुलते ही कलकतिया पाकिटमार से लेकर पटनिया ठग दिन-दहाड़े गाँवों में घुसकर उतपात मचावेंगे।

किसनपुर के बाबू ने अपनी कलाई पर बँधी घड़ी देखी, फिर कान के पास लाकर सुना—बस लेट है या घड़ी बंद है ?

उजागिर बोला, "दोनो तरफ की गाड़ी आज लेट है। रात में जोगबनी की ओर जोर की बरखा हुई है।"

संतोखी बोला, "पूरब भी हुई है।"

उजागिर को चोरी-डकैती की कहानी जरा भी नहीं अच्छी लगती। तिस पर आज चमचोरी का किस्सा !

उजागिर ने चमचोरी-प्रसंग को अच्छी तरह बदलने के लिए बात की छोर अपने हाथ में ले ली, "पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन सब तरफ पानी बरसा है। सिर्फ अपने इलाके में···।"

संतोखीसिंघ ने बीच में ही काट दिया, "अरे ! इस इलाके में क्या पानी होगा साला, दिन-दहाड़े चमचोरी जहाँ होता है, वहाँ पानी बरसेगा ! बज्जर गिरेगा—हड़हड़िया बज्जर !"

बादल सचमुच गरजा। प्रदीपकुमार की माय घूंघट के नीचे हँसी। "बादल नही, बस की आवाज !"

प्रदीपकुमार की माय को पिछले साल की बरसात की याद आयी। वर्षा में पकौड़े और चाय की बिक्री बढ़ जाती है। छाता-धोती बंधक रखकर भी आदमी पकौड़ी खाकर चाय पीता है।

किसनपुर के बाबू ने थैले से, 'प्लास्टिक पेपर' के बड़े थैले से, वाटर प्रूफ निकाला। मलेरिया विभाग के दवा छिड़कनेवाले से बहुत पैरवी के बाद यह बरसाती मिली है। झमाझम पानी पड़े, मुदा कपड़े का एक सूत भी नहीं भीगता।

किसनपुर के बाबू ने उठते-उठते उजागिर को सलाह दी, 'इधर, चार हाथ और बढ़ाकर बैठने की जगह बनाकर छवा क्यो नही देते ?"

प्रदीपकुमार की माय ने बाँह के ऊपर साड़ी खींचकर उजागिर से कुछ कहा। किसनपुर के बाबू की आँखों में गुदी हुई मछलियाँ फिर चुलबुलाने लगी।

उजागिर ने कहा, "रासोबाबू ! एक गाड़ी बाँस के बिना सब काम रुका हुआ है। आपके दरबार में एक दिन 'इस्दुआ' लेकर···।"

किसनपुर के बाबू ने देखा, घूंघट से एक जोड़ी आँखे भी कुछ कह रही हैं। बोले, "अच्छी बात है। एक दिन आना। एक गाड़ी क्यों, दो गाड़ी बाँस मिल जायेगा।"

उजागिर ने दाँत निपोड़कर प्रदीपकुमार की माय की ओर देखा। प्रदीपकुमार की माय ने आँखो मे ही बात की, "मैंने कहा था न, रासोबाबू अच्छे आदमी है।"

संतोखीसिंघ बोला, "एक गाड़ी घास क्यों नही माँगी तुमने ! आज रासोबाबू का दिल 'दरियाव' हो गया है।"

वर्षा शुरू हुई। दोनों ओर से बस आयी। एक ही साथ।···पकौड़ी। चाय। पैसे। नये पैसे।

उजागिर को आज बात करने की फुरसत नहीं।

"एक पत्तल पकौड़ी, बिना मिर्च की।"

प्रदीपकुमार की माय ने घूंघट के नीचे से ही कुछ कहा। वह आज बिना मिर्च

की पकौड़ी अलग से किसी गाहक के लिए नहीं बना सकेगी।

"लाल गाड़ी के ड्राइवर जी माँगते हैं।"

प्रदीपकुमार की माय बिना मिर्चवाला बेसन फेंटने लगी।

लाल गाड़ी का ड्राइवर अच्छा आदमी है। मनिहारी घाट में जहाज से उतरने वाले यात्रियों को भी वह उजागिर की दूकान की पकौड़ी और चाय की तारीफ सुनाकर फाँस लाता है—'भाई, रास्ते में कहीं चाय पीना और पैसा फेंकना बराबर है। चाय, नाश्ता चलकर रहिकपुर में कीजियेगा। एक बार चखकर देखियेगा, तो फिर कभी नहीं भूलियेगा। गर्मागर्म चाय और कुरमुरे पकौड़े!'

लाल गाड़ी का ड्राइवर ऐसी जगह पर गाड़ी लगाता है, जहाँ से प्रदीपकुमार की माय की आँखें, तिरछी निगाह से देखने पर टकरा जाती हैं।

गाड़ी में बैठे हुए यात्रियों की नजर दूकान के सामनेवाले हिस्से पर ही पड़ती है। जिधर प्रदीपकुमार की माय बैठती है, उधर बाँस की 'झझनी' की टट्टी लगी हुई है—छोटी-सी, आड़ में बैठी हुई प्रदीपकुमार की माय का सिर्फ हाथ दिखलायी पड़ता है। पकौड़े डालती हुई अंगुलियाँ। छनौटे से पकौड़े निकालकर बर्तन में रखते समय काँच की चूड़ियाँ मीठे सुर में बज उठती हैं।

उजागिर को इधर-उधर देखने की छुट्टी कहाँ?

गिलास, चीनी, पानी, पत्ती, चम्मच, पैसा, गाहक!

पत्तल पकौड़ा लेते समय एक बार वह प्रदीपकुमार की माय की ओर जरूर देख लेता है, "देखिए भाई, हल्ला-गुल्ला नहीं। शांती से—शांती!"

दोनों गाड़ियाँ आकर चलीं गयीं।

प्रदीपकुमार की माय उठकर अंदर गयी। उजागिर रेजगारियों का हिसाब करने लगा।

संतोखीसिंघ को एक गिलास चाय और चाहिए। जोरों की बारिश शुरू हुई।

उजागिर ने कहा, "पानी गरम होने दीजिए।"

उजागिर ने लड़कपन से ही चाय बनाने का काम किया है।

कमलदह के जमींदार की ड्योढ़ी में हर काम के लिए अलग-अलग नौकर-चाकर थे—चाय बनानेवाला, चिलम सुलगानेवाला, तेलमालिश करनेवाला, भंग घोटनेवाला।

कमलदह के जमींदार की जमींदारी चली गयी, लेकिन उजागिर के हाथ का 'इलम' हाथ में ही रह गया। इसी 'इलम' ने उसकी मनोकामना पूरी की। घर में लक्ष्मी आयी···!

रहिकपुर गाँव की अपनी बपौती जमीन पर घर बनाकर एक 'रूपवाली'

घरनी लाने की लालसा उसके मन में बचपन से ही घर बनाकर बैठी थी। कमलदह के छोटे बाबू की दुलहिन जैसी घरवाली मिल जाये, तो उजागिर सारी उम्र सिर्फ 'रूप' पीकर रह सकता है।

रूपवाली दुलहिन !

बालूवाली जमीन का कूप और गाँव की लड़की का रूप—दोनों बराबर। बालूवाली जमीन के कूप का पानी 'कचनठंढा' होता है। एक घूंट पीकर ही आत्मा जुड़ा जाये। गाँव की लड़की का रूप, एक बार निहारकर नींद आ जाती है, आँखों में। लेकिन, बलुवाही कूप दो साल में ही 'भथ' जाता है। गाँव का रूप साल लौटते ही 'ढल' जाता है।

उजागिर ने भागलपुर, दरभंगा और पटना जैसे शहरों में घूम-घूमकर नौकरी की। कहीं रूप की झलक नहीं मिली। सब नकली—कच्ची कली कचनार जैसी ऊपर से···। इसको भला रूप कहते है ?

शहर से वह रुपये की गठरी ले आया। मन की झोली उसकी खाली ही रही।

गाँव के 'घटक-दलालों' ने उजागिर को ठगकर बहुत पैसा खाया। बिरादरी के पंचों ने पान-सुपारी के नाम पर पचासो रुपये 'झींट' लिये—रूपवाली घरनी नहीं मिली।

किंतु उजागिर निराश नहीं हुआ। कमलदह की छोटी दुलहिन ने एक दिन कहा था, 'उजागिर, चाय पिलाकर तुम इंद्रासन की परी को भी 'फुसला' कर मुट्ठी में कर सकते हो !'

उजागिर ने छोटी दुलहिन की बात याद की और एक दिन घर से निकल पड़ा—कहीं चाय की दूकान पर नौकरी भी मिल जाये, वह करने को तैयार है।

उजागिर उस (शुभ) दिन को कभी भूल सकता है भला !

कुरसेला स्टेशन पर उतरकर वह बहुत देर तक बैठा रहा।

खीरा खरीदकर खाते समय उसको बचपन के एक खेल की याद आयी थी। बच्चे खीरे-ककड़ी के बीज को अँगुलियों में दबाकर कहते, 'फलाने की शादी किधर होगी ? बीज छिटकर जिस ओर गिरे—उधर ही, उसी दिशा में।'

उजागिर ने खीरे के एक बीज को अँगुलियों में दबाकर मन ही मन में कहा था, 'बीज जिस ओर छिटकेगा, मेरी होनेवाली रूपवती दुलहिन उधर ही होगी।'

बीज उत्तर की ओर छिटका और बिना कुछ सोचे-विचारे वह कुरसेला से रानीगंज जानेवाली बस पर जा बैठा था।

कंडक्टर ने पूछा, 'कहाँ जायेगा ?'

उजागिर क्या जवाब दे ? न जाने यह गाड़ी कहाँ-कहाँ जाती है। तब तक बगल के यात्री ने बिरौली का टिकट माँगा और उजागिर ने भी बिरौली तक का

टिकट कटा लिया।

गाड़ी बिरौली पहुँचकर पकौड़ीवाली महुआइन की दूकान के सामने रुकी। बिरौली में उतरनेवाले उतर गये। उजागिर बैठा रहा। बिरौली गाँव में उतरकर वह क्या करेगा? वह आँखें मूंदकर कुछ सोच रहा था कि कंडक्टर ने उसको ठेलकर जगाया, 'ए, बिरौली आ गया। उतरो।'

उजागिर ने अपनी झोली सँभाली। अनिच्छापूर्वक उतरा।

बस से उतरे हुए लोग पकौड़ीवाली दूकान पर थोड़ी देर रुके और जलपान करके चले गये। उजागिर चुपचाप बगल में एक मोढ़े पर बैठा रहा। बूढ़ी महुआइन ने पकौड़ी की कड़ाही उतारकर उजागिर से पूछा, 'कहाँ जाना है?'

उजागिर ने कुनमुनाकर जवाब दिया, 'कहीं नहीं। एक आने की पकौड़ी हम को भी चाहिए।'

बूढ़ी झुंझलायी, 'इतनी देर से मुंह सीकर बैठे रहे। अब कड़ाही उतारने के बाद, एक आने की पकौड़ी! अब पकौड़ी नहीं, बैंगनी खाना है, तो बोलो, चढ़ाऊँ कड़ाही?...अरी ओ सितिया! कब तक बैठकर बैंगन काटेगी! एँ? दे जा, जितना हुआ है। गाहक बैठा हुआ है यहाँ।'

झोंपड़े के अंदर से उसी अंदाज से पतली आवाज में जवाब आया, 'कल से मैं काना-कुबड़ा बैंगन नहीं काटूंगी। एक-एक बैंगन में पाँच-पाँच पिल्लू।'

बूढ़ी ने सितिया नाम की लड़की को 'बैंगन लगाकर' एक भद्दी-सी गाली दी।

सितिया सूप में बैंगन के टुकड़े लेकर आयी, 'मैं रोज तुमसे कहती हूँ मौसी, परदेसी जातरी के सामने गाली मत बका करो।'

उजागिर सितिया उर्फ सीता का रूप देखकर पसीने से तर-बतर हो गया था। एक-एक बैंगन में पाँच-पाँच पिल्लू और बैंगन-भरी गाली सुनकर उसको मतली आ रही थी, सो सीता को देखने के बाद ही दूर हो गयी।...यही है रूप! यही है रूप!

उसने गला साफ किया, 'माताराम! एक आने की बैंगनी नहीं, चार आने की।'

बूढ़ी बोली, 'ऊँ! ई आदमी का मन रह-रहकर बदलता है। जो बोलना हो, एक ही बार क्यों नहीं बोलते?'

उजागिर चुप रहा। किंतु गाहक का पक्ष लेकर बोली सीता, 'एक बार बोले, चाहे हजार बार—तू इस तरह गाहक से बात-बात पर 'रगड़' करेगी तो एक पाई की बैंगनी भी नहीं बिकेगी।'

बूढ़ी कड़ाही में बैंगनी डालती हुई बोली, 'बड़ी आयी है 'भतार' का पच्छ लेने!'

जब बूढ़ी और जवान जीभों की 'बतकुट्टी' जोर पकड़ने लगी, तो उजागिर ने

मर्दानगी दिखलायी, 'छिः-छिः, आप लोग इस तरह बेवजह लड़ियेगा तो रखिए अपनी बैंगनी ! ऐसी बैंगनी कौन खाये ?'

सीता बोली, 'लो, सुनती है ? अब छानो बैठकर चार आने की बैंगनी। देखूं कौन खाता है ?'

बूढ़ी बोली, 'नहीं खायेगा, तो पैसा दे जायेगा।'

सीता ने उजागिर को पहली बार नजर उठाकर देखा और मुंह की बात मुंह में रखकर अंदर चली गयी।

उजागिर बैठकर सोचता रहा, 'चार आने की बैंगनी वह खा सकेगा ? यह चंगेरी-भर बैंगनी !'

बूढ़ी सहुआइन ने फिर पुकारा, 'अरी, ओ सितिया ! पत्तल कहाँ है ? बैंगनी तेरे कपाल पर परोसूं ?'

उजागिर बैंगनी खाने लगा। तब बूढ़ी ने नरम सुर मे कहा, 'भैया, बुरा मत मानना। मुंहजली सितिया सीधी बात कभी सुनती ही नही। ठहरो, मैं पानी ला दूं।'

बूढ़ी क उठने के पहले ही सितिया पानी दे गयी, 'मैं जानती हूँ। अब गाडी आने का समय हुआ तो, तू कोई न कोई बहाना बनाकर चूल्हे के पास से उठेगी ही। कड़ाही उठाकर सडक पर फेंक दूंगी। हाँ !'

बूढ़ी बैठ गयी फिर। वह कोई भद्दी गाली जीभ पर चढ़ा रही थी कि उजागिर ने टोक दिया, 'यहाँ एक चाह की दूकान खूब चलेगी, माताराम !'

सहुआइन ने पोपले मुंह को तनिक विकृत करके पूछा, 'क्या चलेगी खूब ?'

'चाह की दूकान।'

'कौन खोलेगा ?'

'कोई भी खोले, चलेगी खूब।'

बूढ़ी अब कुढ़कर बोली, 'आग लगे चाह की दूकान में। एक पकौड़ी के चूल्हे में ही मेरी हड्डी जलकर 'छार' हो रही है।'

सीता ने इस बार फिर उजागिर को देखा। चाह की दूकान की बात सुनकर ही उसने ऐसी निगाह से 'हेरा' है। उजागिर बोला, 'चाह में अठगुना नफा है। चार आने के माल में दो रुपये मुनाफा !'

'दो रुपये !' बूढ़ी मौसी और जवान सीता ने एक ही साथ अचरज-भरे स्वर में कहा, 'दो रुपये ?'

बूढ़ी कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोली, 'रहने दो, बाबा, मुनाफा। यहाँ चाह कौन पियेगा ?'

सीता ने कहा, 'मिलने पर सभी पियेगा।'

उजागिर बोला, 'वाजिब बात।'

बूढ़ी ने छनौटा चमकाकर पूछा, 'मैं पूछती हूँ, चाह बनायेगा कौन, तेरा भतार? एँ?'

सीता ने इस बार जवाबी गाली दी, 'मेरा नहीं, तेरा!'

आश्चर्य! गाली सुनकर पोपली बूढ़ी हँस पड़ी। सीता भी हँसी और उजागिर का कलेजा जोर से धड़कने लगा। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने तौलकर बात शुरू की, 'हाँ, चाह की दूकान तो मर्द-पुरुस ही चला सकता है।'

बूढ़ी ने लंबी साँस ली। सीता फिर आँगन के अंदर चली गयी।

उजागिर बहुत देर तक बूढ़ी मौसी को विस्तारपूर्वक चाय की दूकान की योजना के संबंध में समझाता रहा।

दूसरी गाड़ी के लौटने के पहले ही उजागिर ने बूढ़ी को अपनी मीठी बोली से मोह लिया, 'माताराम! आप लोगों की मर्जी हो तो मैं आज ही जाकर सामान ले आऊँ।'

'तुम्हारा घर कहाँ है?'

'रहिकपुर।'

'कौन जात?...अरे, तब तो बिरादरी के ही निकले।'

बात पक्की हो गयी।

उजागिर कुरसेला बाजार आया और चाय की दूकान का सारा सामान खरीदकर रात की गाड़ी से ही वापस लौटा। बूढ़ी ने कहा, 'अरे, तुम सचमुच लौट आये? मैं तो समझ रही थी कि कोई लुच्चा-लबड़ा आकर ऊन का दून हाँककर चला गया।'

अंदर सीता ने झिड़की दी, 'मौसी, तू बूढ़ी हुई, लेकिन आदमी को पहचानना नहीं आया।'

चाय की दूकान का सामान देखकर बूढ़ी और जवान आँखें अचरज से बड़ी हो गयीं, 'इतना सामान लगता है चाह की दूकान में?'

रात में सीता ने अपने हाथ से भात-दाल परोसकर खिलाया था—पहली बार। पुरानी बातें याद करके आज भी उजागिर की देह सुड़सुड़ाने लगती है। सीता की बोली, सीता की हँसी। सीता का चलना-फिरना। दिन-रात उजागिर मानो सपनों की दुनिया में ही रहता था—रूप पीकर जीता था।

चाय की दूकान खुली और चल निकली।

गाँव-भर में बात फैल गयी, 'बूढ़ी सहुआइन का एक रिश्तेदार आया है। चाय की दूकान खोले है। अब पियो घर बैठे—चाह गरमागरम!'

बस के ड्राइवर, कंडक्टर, पैसेंजर, क्लीनर ने एक स्वर से प्रशंसा की, 'अलबत्त चाह बनाता है जवान! चलेगी दूकान।'

लेकिन, चाय की दूकान छः महीने भी नहीं चल सकी। पाँचवें महीने में ही

सीता ने उजागिर को उकसाया, 'क्यों ? तुम्हारा कलेजा इतना छोटा है ? बूढ़ी से साफ-साफ कहते क्यों नहीं ?'

'यदि बूढ़ी 'नकार' जाये ?'

'बला से । पहले कहके देखो ।'

'यदि कहे 'घरजमाई' रहना पड़ेगा ?'

'अभी मान लेना । बाद में फिर···।'

बूढ़ी मौसी आँख से कम देखती थी और कान से जरा कम सुनती थी । किंतु बिना कुछ देखे-सुने ही वह सब-कुछ समझ चुकी थी। इसलिए जिस दिन उजागिर ने हकला-तुतलाकर प्रस्ताव किया था, बूढ़ी ने एक भद्दी गाली दी थी, 'सौ बार सतुअन और भतार के आगे दतुअन । अब बाकी ही क्या रहा है ?···छुतहर-कलस में अब कौन पंडित-पुरोहित वेद-मंतर पढ़ेगा ?···खूब पियो गरमागरम चाह !'

बूढ़ी सहुआइन अपनी पकौड़ी की दूकान पर बैठी आज भी गालियाँ दे रही होगी, 'उस मिठवचना ने आते ही चाह पिलाकर इस मुई को मुट्ठी में कर लिया।···दिन रात खुसुर-फुसुर मैं नहीं देख सकती थी । जवाब दे दिया, तुम लोग अपना रास्ता देखो ।'

और, इसी को कहते है 'तिरिया के भाग से मिले ~ ा !'

सीता नहीं, लक्ष्मी !

रानीगंज से कुरसेला जानेवाली बस पर सवार होकर, रूपवाली दुलहिन को साथ लेकर उजागिर गाँव लौट आया। लौटकर उसने सुना, 'इधर भी नयी सड़क खुलने वाली है। बहुत जल्दी ही !'

सचमुच, लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय !

बनने वाली नयी सड़क के ठेकेदार ने उजागिर की झोंपड़ी में ही डेरा डाला था।

गाँव के लोगो ने घुमा-फिराकर उजागिर को समझाया, 'घर में जवान और खूबसूरत बहू और बाहर 'पलानी' में परदेसी का बासा, अच्छी बात नही ।'

संतोखीसिंघ जब मिलता, दिन-दहाड़े 'चमचोरी' की कोई कहानी सुनाना नहीं भूलता। उजागिर घर लौटकर अपनी रूपवती को निहारते हुए कहता, 'जानती हो, गाँव के लोग क्या कहते है ?'

'गाँव के लोगों की बात सुनोगे या ठेकेदारजी की ? ठेकेदारजी कहते हैं, सड़क जब खुलेगी, चाह और पकौड़ी की दूकान तब खोलना । अभी इतने 'जन-मजूरे' काम कर रहे हैं। अभी चावल-दाल की दूकान खोल दो। मजदूरो को

उधार खिलाओ और हफ्ता के बाद एक का डेढ़ वसूलो। यही मौका है।'

'सच ? और यदि उधार खाकर भाग जायें सभी—तब ?'

'भागकर कहाँ जायेंगे ? उनकी चुटिया तो ठेकेदारजी के हाथ में है।'

'सच ? तुम ठीक कहती हो बिरौलीवाली। ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं।'

'ए ? तुम मुझे बिरौलीवाली क्यों कहते हो ? मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'तब क्या कहूँ ?' उजागिर खिलखिलाकर हँसता, 'ओ ! अब मैं भी ठेकेदार साहब का दिया हुआ नाम ही कहूँगा, रेशमबहू। ठेकेदार साहब सचमुच बहुत अच्छे आदमी हैं।'

गाँव के आवारा नौजवानों ने उजागिर को चिढ़ाने के लिए एक बोली निकाली, 'ठेकेदार साहब सचमुच अच्छे आदमी हैं।'

अच्छे आदमी को अच्छा आदमी नहीं कहे, तो क्या कहे ? गाँव के लोग जलते हैं। उजागिर की बहू रूपवती है। सुलच्छनवाली है। है किसी की बहू ऐसी, गाँव में, जिसके आते ही गाँव मे नयी सड़क खुल गयी, इलाके में ? चावल-दाल की छोटी-सी दूकान खोलकर, पाँच ही महीने में दस बीघे जमीन किसने खरीदी है ? लोग तो जलेंगे ही। ठेकेदार साहब अंग्रेजी में चिट्ठी लिखते हैं। है कोई अंग्रेजिया इस गाँव मे ? रेशमबहू ठीक ही कहती है—काम ऐसा करो कि 'देख पड़ोसी जल मरे।'

बबुआ का जब जन्म हुआ, तो ठेकेदार साहब ने चमड़े की थैली से पचीस रुपये निकालकर मुँह-दिखायी दी थी। छठी की रात में, खुशी के मारे रात-भर बैठकर रमैन बाँचते रहे। और यह प्रदीपकुमार नाम भी उन्हीं का रखा हुआ है। गाँव के दुःखमोचन पंडित ने तो बस, पतासू नाम रख दिया था। भला, पतासू भी कोई नाम है !

पता नहीं ठेकेदार साहब आजकल किस इलाके में हैं। कहीं भी रहें, आदमी अच्छे हैं। प्रदीपकुमार की माय आज भी हर महीने याद करती है। बोले थे कि बीच-बीच मे आकर प्रदीपकुमार को देख जायेंगे।

उस दिन छिनन् का रमडोलवा बेटा कह रहा था कि प्रदीपकुमार का मुंह ठीक ठेकेदार साहब जैसा है। पागल है साला !

लाल गाडी के ड्राइवरजी भी बहुत भले आदमी हैं। रोज कहते, 'देखो, उजागिर भाई, चूल्हे के पास बैठते-बैठते प्रदीपकुमार की माय का रंग बादामी हो गया है। देह में गमकौआ पौडर लगाने से रंग ठीक रहेगा।' और दूसरे ही दिन एक डिब्बा पौडर खरीदते आये—पुरनिया साहा कंपनी से। ऐसा भला आदमी, इस गाँव मे क्या, इस इलाके में भी खोजने पर न मिलेगा।

यह नये दारोगा साहब भी हीरा आदमी हैं। कह रहे थे, इसपी साहेब तुम्हारे

पकौड़े की खूब तारीफ करते हैं। और, जोगबनी के लाला के बेटे की जीभ तो नाम से ही 'पनिया' जाती है। बारह बजे रात में, गाड़ी पर दारोगा साहेब के साथ आता है और चुराकर पकौड़े खाता है। वैष्णव लाला, जिसके चौके में प्याज नहीं चढ़ता है कभी, वह उजागिर की दूकान में बैठकर कैसे खा सकता है प्याजवाले पकौड़े? प्रदीपकुमार की माय कहती है, लाला का बेटा एकदम गौ जैसा सीधा है। जरा दुबला-पतला है, इसलिए पकौड़े के साथ चाह नहीं, अंग्रेजी दारू पीता है। उस रात को प्रदीपकुमार की माय की देह में दर्द था सांझ से ही। दारोगा साहेब ने कहा—एक गिलास ले आओ। एक घूंट पीते ही सब दर्द छूमंतर हो जायेगा। सचमुच! हुआ भी वही। सांझ से ही कुहरती हुई प्रदीपकुमार की माय टनटनाकर बोल उठी और लाला के बेटे से मुंहा-मुंही गप करने लगी। लक्ष्मी है प्रदीपकुमार की माय!

तीन बजेवाली गाड़ी आ रही है।

'कहाँ हो, बबुआ! माय से कहो कि तिनबज्जी गाड़ी आ रही है। मेरे खिपाट का सब काम रैट है।'

"बबुआ! प्रदीपकुमार! माय कहाँ?"

प्रदीपकुमार सुबह की मीठी नींद में सोया हुआ था। उजागिर चुपचाप बैठकर बीड़ी पीने लगा। आज इतना सबेरे ही प्रदीपकुमार की माय कहाँ गयी है? तबीयत खराब है क्या? नहीं, लाल गाड़ी के ड्राइवरजी ठीक ही कहते हैं—जान है तो जहान है। प्रदीपकुमार की माय दिन-भर चूल्हे के पास बैठी रहती है, यह ठीक नहीं। पकौड़ी बनाने के लिए, सुगनी की माय को मजदूरी देकर रखना होगा।

उजागिर बैठा रहा। जब भुरुकुवा तारा डूब गया और उजाला हुआ और प्रदीपकुमार की माय कोठरी में नहीं आयी, तो वह बाहर निकला। बाहर बर्तन-बासन सब बिखरे पड़े हैं। दोनों लोटे भी हैं। तब कहाँ गयी?

उजागिर ने कोठरी में आकर देखा—पेटी खुली पड़ी हुई है—रेशमी साड़ी और रेशमी बिलौज क्या हुआ? लगा, धरती अचानक घूमने लगी। उसने चिल्लाकर अपने बेटे को जगाया, "बेटा! बबुआ!! प्रदीपकुमार—माय कहाँ?"

प्रदीपकुमार उठकर जोर-जोर से रोने लगा, "मैया कहाँआँऽआँऽआँऽ?"

प्रदीपकुमार को चुप कराने के लिए उजागिर ने अपने को सँभाला। फिर बोला, "बेटा, माय गंगा तीर का मेला गयी है। दोपहर की बरबज्जी (बारह बजे वाली) गाड़ी में आवेगी।"

उसने अपने मन को भी समझाया, 'कहाँ जायेगी? कहीं काम से ही गयी होगी।'

सुबह की गाड़ियों के आने का समय हुआ। संतोखीसिंघ ठीक समय पर ही आया। उसने आते ही टोका, "आज पकौड़ी का चूल्हा नहीं सुलगा है?"

उजागिर ने जवाब दिया, "प्रदीपकुमार की माय की मौसी का संवाद आया कि वह लबेजान है। इसलिए रात की गाड़ी से ही चली गयी।"

प्रदीपकुमार ने कहा कि, "मैया गंगा-तीर का मेला गयी है।"

संतोखीसिंघ ने पुराने दफादारी की तरह जिरह करते हुए पूछा, "रात में तो सादा गाड़ी लौटी नहीं। फिर किस गाडी में गयी?"

उजागिर ने आज बिना 'बोहनी' हुए ही संतोखीसिंघ को चाय का बड़ा गिलास दिया। संतोखीसिंघ ने चाय पीते हुए कहा, "जमाना बहुत खराब है। जनाना जात अकेली बाहर जाये···।"

दोनों ओर से गाड़ियाँ आयी। उजागिर ने लाल गाड़ी की ओर देखा··· नया ड्राइवर? "लाल गाड़ी के ड्राइवरजी कहाँ गये?" "छुट्टी में?" "कितने दिन की छुट्टी?" "आज पकौड़े नहीं, सिर्फ चाह मिलेगी, भैया!"

दोपहर के बाद उजागिर ने दूकान बंद कर दी।

उसका दिल अंदर ही अंदर टूटने लगता। तब वह जोर-जोर से रोना चाहता। लेकिन प्रदीपकुमार का मुंह देखकर वह अपने को सँभाल लेता। वही रोने लगेगा, तो बच्चे की क्या दुर्दशा होगी!

"बप्पा! बरवजी गाड़ी आ रही है।"

प्रदीपकुमार की माय नहीं आयी। "बेटा, अभी नहीं आयी तो 'तिनबज्जी' गाडी से आवेगी।"

"बप्पा! तिनबज्जी गाड़ी आ रही है।"

"नहीं आयी।"

इस बार बाप-बेटा मिलकर आँगन में रोने लगे। जब प्रदीपकुमार हिचकियाँ लेते हुए दाँत पर दाँत बैठाकर घिघियाने लगा, तब उजागिर को होश हुआ। उसने आँसू पोंछकर कहा, "रात की गाड़ी में जरूर आवेगी। तुम्हारे लिए बिस्कुट लावेगी।···खिलौने!"

प्रदीपकुमार की माय रात की गाडी से ही आयी।

"आ गयी, मैया! मैया आ गयी!"

प्रदीपकुमार जोर-जोर से रोने लगा। उजागिर भी रोने लगा, "कहाँ चली गयी थीं तुम, प्रदीपकुमार की माय-य-य?"

"लो, लो, क्या हो गया है तुम दोनों को?"

"कहाँ गयी थी? किस गाड़ी में गयी?"

"काम से गयी थी, पुरैनिया। गाड़ी में नहीं, ट्रक में गयी थी।"

'कहकर जाती।"

"काम के पहले, बात कही नही जाती।"

प्रदीपकुमार खिलौना पाकर खुश हो गया। उसकी माँ ने गठरी से बिस्कुट का डिब्बा निकाला। उजागिर चुपचाप, अपलक दृष्टि से देखता रहा—कितने दिनों के बाद प्रदीपकुमार की माय ने रेशमी साड़ी पहनी है।···रूप जरा भी मलिन नही हुआ है। कौन कहता है कि गाँव का रूप साल लौटते ही ढल जाता है।

अब, प्रदीपकुमार की माय ने आँचल की खूंट से कागज का एक टुकड़ा निकालकर दिखलाते हुए कहा, "बोलो तो क्या है ?"

उजागिर ने लालटेन की रोशनी में कागज को उलट-पलटकर देखा, "भगवान जाने क्या है ! बोलो न, क्या है ? देखने में तो सरकारी कागज जैसा लगता है।"

प्रदीपकुमार की माय हँसी, "ठीक ही पहचाना है तुमने। सरकारी कागज ही है।···परमिट !"

"परमिट ? किस चीज की परमिट ?"

"सीमेंट, कोयला और लोहे के छड की।"

"क्या करोगी परमिट ?"

प्रदीपकुमार की माय बोल उठी, "गाँव के दुश्मनों को जरा और भी अच्छी तरह जलाऊँगी।"

"जलायेगी ! माने ? ओ-हो, समझा। पक्का घर ऐं ? सच कहता हूँ, प्रदीपकुमार की माय, तुम धन्न हो। अच्छा किया तुमने जो मुझसे पहले ही नही कहा। इतनी बड़ी बात मेरे पेट में हरगिज नही पचती। सच कहता हूँ, मैं पागल हो जाऊँगा। सच, तुम लछमी हो—साच्छात् !"

"मैंने क्या किया ? सब लाल गाड़ी के ड्राइवरजी की मेहरबानी है। हाकिम के किरानी से उनकी दोस्ती है।···और जानते हो—इसी परमिट से घर बनाने का आधा रुपया भी निकलेगा।"

"सो कैसे ?"

"देखना, आने दो लालाजी के बेटे को।"

"सच ? हद है ! हद है ! कल माने सतीखोमिष को पाँच गिलास चाय बोहनी में पहले ही पिलाऊँगा।···अब तुमको क्या कहें, प्रदीपकुमार की माय ?"

"रेशमबहू।"

"हि हि हि हि !"

उजागिर के घर की नींव पड़ गयी। एक बाँस में पुराना झाड़ू बाँधकर गाड़ दिया गया—बुरी नजर को काटने के लिए। गाँव के लोग मन-ही-मन जल-भुनकर

खाक होने लगे।

किंतु इधर कई दिनों से उजागिर का मन भी अंदर-ही-अंदर सुलग रहा है। न जाने क्यों? परमिट का कागज लालाजी के बेटे को देकर, ईंट-सीमेंट-लोहा लिया गया। ठीक है। लालाजी के बेटे ने परमिट लेते समय प्रदीप की माय की अँगुलियाँ टीप दी थीं। इसमें भी कोई हर्ज नहीं। दारोगाजी ने उस दिन दारू के झोंक मे कबूतरी कह दिया। सरकारी आदमी का सात खून माफ है। लाल गाड़ी के ड्राइवरजी ने होली के दिन गाल पर अबीर लगा दिया। होली की बात! फिर ड्राइवरजी भले आदमी है। लेकिन...

केतली का खौलता हुआ पानी टोंटी से गिरने लगा। प्रदीपकुमार की माय ने कहा, "लो, लो। तुम्हारा ध्यान कहाँ है? होश में हो या...?"

उजागिर बोला, "खूब होश में हूँ।"

उसने केतली उतार दी। मकान बनानेवाला यह छुछुंदर-मुंहा राज-मिस्तरी बिना कहे-सुने आँगन के अंदर क्यों गया? जाने के पहले प्रदीपकुमार की माय को उस तरह आँख की मटकी क्यो मार गया? प्रदीपकुमार की माय उस तरह हंसी क्यों? उठकर आँगन मे गयी क्यों?

उजागिर का मन धुएँ से भर गया मानो।

उसने पुकारा, "बबुआ! बेटा प्रदीपकुमार!"

प्रदीपकुमार आया। उसका मुंह भी तमतमाया हुआ है। उजागिर ने धीरे से पूछा, "बबुआ, माय कहाँ है? क्या कर रही है?"

प्रदीपकुमार बोला, "बप्पा, मिस्तरी बड़ा बदमाश है। हमको पतासू कहता है।"

उजागिर गुस्सा से थपदपा उठा। उस छुछुंदर-मुंहा की इतनी हिम्मत! मेरे बेटे को, प्रदीपकुमार को पतासू कहेगा?

वह उठकर दहलीज के पास गया। आँगन मे घुन-घुन करके क्या प्राइविट बात हो रही है? आमने-सामने बैठकर? मिस्तरी साला इस तरह जाँघ के कपड़े हटाकर क्यों बैठा है?

उजागिर के सिर पर अँगीठी जलने लगी मानो, वह आँगन मे जाकर गरजा, "मिस्तरी! दीवाल की गँथाई यही हो रही है क्या?"

मिस्तरी अप्रतिभ होकर उठा। हँसती हुई प्रदीपकुमार की माय भी चौंक पड़ी। उजागिर ने धड़ाम से दहलीज का दरवाजा बद कर दिया।

प्रदीपकुमार की माय उजागिर की आँखें देखकर डर गयी। उजागिर ओठ को दाँतों से भींचता हुआ उसके पास गया। फिर धीरे से बोला, "तू कुत्ती है! कुत्ती! कुतिया!"

प्रदीपकुमार की माय ने आवाज ऊँची करके कहा, "क्या हो गया है तुमको?"

उजागिर चुपचाप अपनी कोठरी मे चला गया। अंदर मे ही उसने पुकारा, "बेटा! प्रदीपकुमार! यहाँ आओ।"

प्रदीपकुमार अपने बाप के पास चला गया। बाहर, दूकान मे चूल्हे सुलगते रहे।

गाड़ियाँ आयी। ड्राइवरो ने हॉर्न बजा-बजाकर पुकारा। संतोखीसिंघ ने आवाज दी। आँगन से कोई जवाब नहीं मिला। किसी ने कहा, "भाई अब पक्का मकान बनवा रहा है। दूकान पर क्यो बैठेगा?"

गाड़ियाँ आती, रुकती, हॉर्न देती, फिर चली जाती।

दिन-भर उजागिर घर से नही निकला। प्रदीपकुमार भी दम साधकर बाप के बगल मे पड़ा रहा। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर बैठी गुन-गुन सुर मे, धीरे-धीरे रोती रही।

साँझ हुई। उजागिर उठा और प्रदीपकुमार की माय के पास जाकर बोला, "उस छुछुंदर-मुहे मिस्तरी के साथ जाती क्यो नही, हरामजादी! निकल जा मेरे आँगन से।"

प्रदीपकुमार की माय बोली, "इतनी तेजी है तो कल से तुम्ही देखो जन-मजदूरो को। पक्का घर बनवाना खेल···"

"जहन्नुम मे जाये साली तेरा पक्का घर!"

"और दूकान पर हजारो लोगो के सामने··?"

"आग लगे तेरी दूकान मे।"

उजागिर बाहर गया और लात मारकर दोनो चूल्हो को तोड़-फोड़ आया। दहलीज का दरवाजा बंद करते हुए बोला, "निकल जा, पिछवाड़े की राह चुप-चाप। नही तो आज खून कर डालूँगा।"

अब प्रदीपकुमार रोने लगा। उजागिर उसको गोद मे लेकर अपनी कोठरी में चला गया। प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही बैठी रही। प्रदीपकुमार रोते-रोते सो गया।

साँझ बीती। रात आयी। सड़क पर एक ट्रैक्टर भड़भड़ाता हुआ चला गया। उजागिर ने बाहर निकलकर देखा, प्रदीपकुमार की माय ओसारे पर ही लेट गयी है।

उजागिर दबे पाँव उसके पास गया।····"जाकर मिस्तरी की खटिया पर क्यों नही सोती? नखरा पसारकर यहाँ जमीन पर क्यो सोयी है?"

उजागिर ने धक्का दिया, "उठ साली! तिरिया-चरित्तर कही और जाकर दिखला।"

प्रदीपकुमार की माय उठकर बैठ गयी और दोनो हाथो मे उजागिर का पाँव पकड़कर बोली, "प्रदीप के बाबू! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। मेरा गला घोटकर मार

डालो !···मार डालो मुझे !"

उजागिर ने दोनों हाथों से उसकी गर्दन को झपटकर पकड़ा। लंबे बाल छितरा गये, खुलकर, "हां, मार डालूंगा।"

"मार डालो। मैं जीना नहीं चाहती।"

"मार डालूंगा, गला टीपकर। हरामजादी !"

"मारो। प्रदीप के बा···! आ···आक !"

"बोल, कल से तू आंगन के बाहर पैर रखेगी ?"

"नहीं रखूंगी।"

"किसी से हंसेगी-बोलेगी नहीं। बोल !"

···"नहीं।"

"मिस्तरी से ?"

···"नहीं।"

"दारोगा से ?"

···"नहीं।"

"उस लाला के बेटे से ?"

···"नहीं।"

"लाल गाड़ी के ड्राइवर से ?"

···"नहीं ! नहीं ! नहीं !···प्रदीप के बाबूउ-उ-उ !···"

प्रदीप की माय उजागिर की छाती से मुंह सटाकर बिलखने लगी। उसे लगा, विवाह के बाद आज पहली बार वह अपने घरवाले के साथ—अपने पुरुष के साथ सुहागरात मना रही है।···अंग-अंग में सिहरन···लहरें···तूफान···प्रदीप के बाबू, मुझे मार···डा···लो···मार···डालो !!

सड़क से एक ट्रक हड़बड़ाती हुई गुजर गयी।

संवदिया

हरगोबिन को अचरज हुआ—तो, आज भी किसी को संवदिया की जरूरत पड़ सकती है! इस जमाने में, जबकि गाँव-गाँव में डाकघर खुल गये हैं, संवदिया के मार्फत संवाद क्यों भेजेगा कोई? आज तो आदमी घर बैठे ही लंका तक खबर भेज सकता है और वहाँ का कुशल-संवाद मँगा सकता है। फिर उसकी बुलाहट क्यों हुई?

हरगोबिन बड़ी हवेली की टूटी ड्योढ़ी पार कर अंदर गया। सदा की भाँति उसने वातावरण को सूँघकर संवाद का अंदाज लगाया।···निश्चय कोई गुप्त समाचार ले जाना है। चाँद-सूरज को भी नहीं मालूम हो। परेवा-पंछी तक न जाने।

"पाँव लागी बड़ी बहुरिया!"

बड़ी हवेली की बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन को पीढ़ी दी और आँख के इशारे से कुछ देर चुपचाप बैठने को कहा। बड़ी हवेली अब नाममात्र को ही बड़ी हवेली है। जहाँ दिन-रात नौकर-नौकरानियों और जन-मजदूरों की भीड़ लगी रहती थी, वहाँ आज हवेली की बड़ी बहुरिया अपने हाथ से सूपा में अनाज लेकर झटक रही है। इन हाथों में सिर्फ मेहँदी लगाकर ही गाँव की नाइन परिवार पालती थी। कहाँ गये वे दिन? हरगोबिन ने लंबी साँस ली।

बड़े भैया के मरने के बाद ही जैसे सब खेल खत्म हो गया। तीनों भाइयों ने आपस में लड़ाई-झगड़ा शुरू किया। रैयतों ने जमीन पर दावे करके दखल किया, फिर तीनों भाई गाँव छोड़कर शहर में जा बसे, रह गयी बड़ी बहुरिया—कहाँ जाती बेचारी! भगवान् भले आदमी को ही कष्ट देते हैं। नहीं तो एक घंटे की बीमारी में बड़े भैया क्यों मरते?···बड़ी बहुरिया की देह से जेवर खींच-छीनकर बँटवारे की लीला हुई थी। हरगोबिन ने देखी है अपनी आँखों से द्रौपदी-चीर-हरण लीला! बनारसी साड़ी को तीन टुकड़े करके बँटवारा किया था, निर्दय भाइयों ने। बेचारी बड़ी बहुरिया!

गाँव की मोदिआइन बूढ़ी न जाने कब से आँगन में बैठकर बड़बड़ा रही थी, "उधार का सौदा खाने में बड़ा मीठा लगता है और दाम देते समय मोदिआइन की बात कड़वी लगती है। मैं आज दाम लेकर ही उठूँगी।"

बड़ी बहुरिया ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरगोबिन ने फिर लंबी साँस ली। जब तक यह मोदिआइन आँगन से नहीं टलती, बड़ी बहुरिया हरगोबिन से कुछ नहीं बोलेगी। वह अब चुप नहीं रह सका, "मोदिआइन काकी, बाकी-बकाया वसूलने का यह काबुली-कायदा तो तुमने खूब सीखा है।"

'काबुली-कायदा' सुनते ही मोदिआइन तमककर खड़ी हो गयी, "चुप रह मुँह-झौंसे! निमौछिये···!"

"क्या करूँ काकी, भगवान् ने मूँछ-दाढ़ी दी नहीं, न काबुली आगा साहब की तरह गुलजार दाढ़ी···!"

"फिर काबुल का नाम लिया तो जीभ पकड़कर खींच लूँगी।"

हरगोबिन ने जीभ बाहर निकालकर दिखलायी। अर्थात्—खींच ले।

···पाँच साल पहले गुल मुहम्मद आगा उधार कपड़ा लगाने के लिए गाँव में आता था और मोदिआइन के ओसारे पर दूकान लगाकर बैठता था। आगा कपड़ा देते समय बहुत मीठा बोलता और वसूली के समय जोर-जुल्म से एक का दो वसूलता। एक बार कई उधार लेनेवालों ने मिलकर काबुली की ऐसी मरम्मत कर दी कि फिर लौटकर गाँव में नहीं आया। लेकिन इसके बाद ही दुखनी मोदिआइन लाल मोदिआइन हो गयी।···काबुली क्या, काबुली बादाम के नाम से भी चिढ़ने लगी मोदिआइन। गाँव के नाचनेवालों ने नाच में काबुली का स्वाँग किया था। 'तुम अमारा मुलुक जायेगा मोदिआइन? अम काबुली बादाम-पिस्ता-अकरोट किलायगा···!'

मोदिआइन बड़बड़ाती, गाली देती हुई चली गयी तो बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन से कहा, "हरगोबिन भाई, तुमको एक संवाद ले जाना है। आज ही। बोलो, जाओगे न?"

"कहाँ?"

"मेरी माँ के पास।"

हरगोबिन बड़ी बहुरिया की छलछलायी आँखों में डूब गया, "कहिए, क्या संवाद है?"

संवाद सुनाते समय बड़ी बहुरिया सिसकने लगी। हरगोबिन की आँखें भी भर आयीं।··· बड़ी हवेली की लक्ष्मी को पहली बार इस तरह सिसकते देखा है हरगोबिन ने। वह बोला, "बड़ी बहुरिया, दिल को कड़ा कीजिए।"

"और कितना कड़ा करूँ दिल?···माँ से कहना, मैं भाई-भाभियों की नौकरी

करके पेट पालूँगी। बच्चों की जूठन खाकर एक कोने में पड़ी रहूँगी, लेकिन यहाँ अब नहीं···अब नहीं रह सकूँगी।···कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नहीं ले जायेगी तो मैं किसी दिन गले में घड़ा बाँधकर पोखरे में डूब मरूँगी।···बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ? किसलिए···किसके लिए?"

हरगोबिन का रोम-रोम कलपने लगा। देवर-देवरानियाँ भी कितने बेदर्द हैं! ठीक अगहनी धान के समय बाल-बच्चों को लेकर शहर में आयेंगे। दस-पंद्रह दिनों में कर्ज-उधार की ढेरी लगाकर, वापस जाते समय दो-दो मन के हिसाब से चावल-चूड़ा ले जायेंगे।-फिर आम के मौसम में आकर हाजिर। कच्चा-पक्का आम तोड़कर बोरियों में बंद करके चले जायेंगे। फिर उलटकर कभी नहीं देखते ···राक्षस हैं सब!

बड़ी बहुरिया आँचल के खूँट मे पाँच रुपये का एक गंदा नोट निकालकर बोली, "पूरा राह-खर्च भी नहीं जुटा सकी। आने का खर्चा माँ से माँग लेना। उम्मीद है, भैया तुम्हारे साथ ही आवेंगे।"

हरगोबिन बोला, "बड़ी बहुरिया, राह-खर्च देने की जरूरत नहीं। मैं इंतजाम कर लूँगा।"

"तुम कहाँ से इंतजाम करोगे?"

"मैं आज दस बजे की गाड़ी से ही जा रहा हूँ।"

बड़ी बहुरिया हाथ में नोट लेकर चुपचाप, भावशून्य दृष्टि से हरगोबिन को देखती रही। हरगोबिन हवेली से बाहर आ गया। उसने सुना, बड़ी बहुरिया कह रही थी, "मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ।"

संवदिया!···अर्थात् संदेशवाहक!

हरगोबिन संवदिया!···संवाद पहुँचाने का काम सभी नहीं कर सकते। आदमी भगवान् के घर से ही संवदिया बनकर आता है। संवाद के प्रत्येक शब्द को याद रखना, जिस सुर और स्वर में संवाद सुनाया गया है, ठीक उसी ढंग से जाकर सुनाना सहज काम नहीं। गाँव के लोगों की गलत धारणा है कि निठल्ला, कामचोर और पेटू आदमी ही संवदिया का काम करता है। न आगे नाथ, न पीछे पगहा। बिना मजदूरी लिये ही जो गाँव-गाँव संवाद पहुँचावे, उसको और क्या कहेंगे!··· औरतों का गुलाम। जरा-सी मीठी बोली सुनकर ही नशे मे आ जाये, ऐसे मर्द को भी भला मर्द कहेंगे? किंतु, गाँव मे कौन ऐसा है, जिसके घर की माँ-बहू-बेटी का संवाद हरगोबिन ने नहीं पहुँचाया है।···लेकिन ऐसा संवाद पहली बार ले जा रहा है वह।

गाड़ी पर सवार होते ही हरगोबिन को पुराने दिनों और संवादों की याद आने लगी। एक करुण गीत की भूली हुई कड़ी फिर उसके कानो के पास गूँजने लगी।

'पैयाँ पड़ूँ दाढ़ी धरूँ···
हमारो संवाद ले ले जाहु रे संवदिया-या-या !···'

बड़ी बहुरिया के संवाद का प्रत्येक शब्द उसके मन में काँटे की तरह चुभ रहा है—किसके भरोसे यहाँ रहूँगी ? एक नौकर था, वह भी कल भाग गया। गाय खूँटे से बँधी भूखी-प्यासी हिकर रही है। मैं किसके लिए इतना दुःख झेलूँ ?

हरगोबिन ने अपने पास बैठे हुए एक यात्री से पूछा, "क्यों भाई साहेब, थाना बिहपुर में डाकगाड़ी रुकती है या नहीं ?"

यात्री ने मानो कुढ़कर कहा, "थाना बिहपुर में सभी गाड़ियाँ रुकती है।"

हरगोबिन ने भाँप लिया, यह आदमी चिड़चिड़े स्वभाव का है, इससे कोई बातचीत नहीं जमेगी। वह फिर बड़ी बहुरिया के संवाद को मन-ही-मन दुहराने लगा···लेकिन, संवाद सुनाते समय वह अपने कलेजे को कैसे सँभाल सकेगा ! बड़ी बहुरिया संवाद कहते समय जहाँ-जहाँ रोयी है, वहाँ भी रोयेगा !

कटिहार जंक्शन पहुंचकर उसने देखा, पंद्रह-बीस साल में बहुत कुछ बदल गया है। अब स्टेशन पर उतरकर किसी से कुछ पूछने की कोई जरूरत नहीं। गाड़ी पहुँची और तुरंत भोंपे से आवाज अपने-आप निकलने लगी—थाना बिहपुर, खगड़िया और बरौनी जाने वाले यात्री तीन नंबर प्लेटफार्म पर चले जायें। गाड़ी लगी हुई है।

हरगोबिन प्रसन्न हुआ—कटिहार पहुँचने के बाद ही मालूम होता है कि सचमुच सुराज हुआ है। इसके पहले कटिहार पहुँचकर किस गाड़ी में चढ़ें और किधर जायें, इस पूछताछ में ही कितनी बार उसकी गाड़ी छूट गयी है।

गाड़ी बदलने के बाद फिर बड़ी बहुरिया का करुण मुखड़ा उसकी आँखों के सामने उभर गया—'हरगोबिन भाई, माँ से कहना, भगवान् ने आँखें फेर ली, लेकिन मेरी माँ तो है···किसलिए···किसलिए···मैं बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ ?'

थाना बिहपुर स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची तो हरगोबिन का जी भारी हो गया। इसके पहले भी कई भला-बुरा संवाद लेकर वह इस गाँव में आया है, कभी ऐसा नहीं हुआ। उसके पैर गाँव की ओर बढ़ ही नही रहे थे। इसी पगडंडी से बड़ी बहुरिया अपने मैके लौट आवेगी। गाँव छोड़कर चली जावेगी। फिर कभी नहीं जावेगी !

हरगोबिन का मन कलपने लगा—तब गाँव में क्या रह जायेगा ? गाँव की लक्ष्मी ही गाँव छोड़कर चली आवेगी !···किस मुँह से वह ऐसा संवाद सुनायेगा ? कैसे कहेगा कि बड़ी बहुरिया बथुआ-साग खाकर गुजर कर रही है।···सुननेवाले हरगोबिन के गाँव का नाम लेकर थूकेंगे—कैसा गाँव है, जहाँ लक्ष्मी जैसी बहुरिया दुःख भोग रही है !

अनिच्छापूर्वक हरगोबिन ने गाँव में प्रवेश किया।

हरगोबिन को देखते ही गाँव के लोगों ने पहचान लिया—जलालगढ़ गाँव का संवदिया आया है !···न जाने क्या सवाद लेकर आया है !

"राम-राम भाई ! कहो, कुशल समाचार ठीक है न ?"

"राम-राम भैयाजी। भगवान् की दया से आनंदी है।"

"उधर पानी-बूँदी पड़ा है ?"

बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पहले हरगोबिन को नहीं पहचाना। हरगोबिन ने अपना परिचय दिया, तो उन्होंने सबसे पहले अपनी बहन का समाचार पूछा, "दीदी कैसी है ?"

"भगवान् की दया से सब राजी-खुशी है।"

मुँह-हाथ धोने के बाद हरगोबिन की बुलाहट आँगन में हुई। अब हरगोबिन काँपने लगा। उसका कलेजा धड़कने लगा···ऐसा तो कभी नहीं हुआ ?···बड़ी बहुरिया की छलछलायी हुई आँखें ! सिसकियों से भरा हुआ संवाद ! उसने बड़ी बहुरिया की बूढ़ी माता को पाँव लागी की।

बूढ़ी माता ने पूछा, "कहो बेटा, क्या समाचार है ?"

"मायजी, आपके आशीर्वाद से सब ठीक हैं।"

"कोई सवाद ?"

"एँ ?···संवाद ?···जी, संवाद तो कोई नहीं। मैं कल सिरसिया गाँव आया था, तो सोचा कि एक बार चलकर आप लोगों का दर्शन कर लूँ।"

बूढ़ी माता हरगोबिन की बात सुनकर कुछ उदास-सी हो गयी, "तो तुम कोई संवाद लेकर नहीं आये हो ?"

"जी नहीं, कोई संवाद नहीं।···ऐसे बड़ी बहुरिया ने कहा है कि यदि छुट्टी हुई तो दशहरा के समय गंगाजी के मेले में आकर माँ से भेंट-मुलाकात कर जाऊँगी।" बूढ़ी माता चुप रही। हरगोबिन बोला, "छुट्टी कैसे मिले ! सारी गृहस्थी बड़ी बहुरिया के ऊपर ही है।"

बूढ़ी माता बोली, "मैं तो बबुआ से कह रही थी कि जाकर दीदी को लिवा लाओ, यहीं रहेगी। वहाँ अब क्या रह गया है ? जमीन-जायदाद तो सब चली ही गयी। तीनों देवर अब शहर में जाकर बस गये हैं। कोई खोज-खबर भी नहीं लेते। मेरी बेटी अकेली···।"

"नहीं मायजी ! जमीन-जायदाद अभी भी कुछ कम नहीं। जो है, वही बहुत है। टूट भी गयी है, तो आखिर बड़ी हवेली ही है। 'सवांग' नहीं है, यह बात ठीक है ! मगर, बड़ी बहुरिया का तो सारा गाँव ही परिवार है। हमारे गाँव की लक्ष्मी है बड़ी बहुरिया।·· गाँव की लक्ष्मी गाँव को छोड़कर शहर कैसे जायेगी ? यों, देवर लोग हर बार आकर ले जाने की जिद करते हैं।"

बूढ़ी माता ने अपने हाथ हरगोबिन को जलपान लाकर दिया, "पहले थोड़ा जलपान कर लो, बबुआ।"

जलपान करते समय हरगोबिन को लगा, बड़ी बहुरिया दालान पर बैठी उसकी राह देख रही है—भूखी-प्यासी···। रात में भोजन करते समय भी बड़ी बहुरिया मानो सामने आकर बैठ गयी···कर्ज-उधार अब कोई देते नहीं।···एक पेट तो कुत्ता भी पालता है। लेकिन मैं ?···माँ से कहना···!!

हरगोबिन ने थाली की ओर देखा—दाल-भात, तीन किस्म की भाजी, घी, पापड़, अचार।···बड़ी बहुरिया बथुआ-साग उबालकर खा रही होगी।

बूढ़ी माता ने कहा, "क्यों बबुआ, खाते क्यों नहीं ?"

"मायजी, पेट भर जलपान जो कर लिया है।"

"अरे, जवान आदमी तो पाँच बार जलपान करके भी एक थाल भात खाता है

हरगोबिन ने कुछ नहीं खाया। खाया नहीं गया।

संवदिया डटकर खाता है और 'अफर' कर सोता है, किंतु हरगोबिन को नींद नहीं आ रही है।···यह उसने क्या किया ? क्या कर दिया ? वह किसलिए आया था ? वह झूठ क्यों बोला ?···नहीं, नहीं, सुबह उठते ही वह बूढ़ी माता को बड़ी बहुरिया का सही संवाद सुना देगा—अक्षर-अक्षर : 'मायजी, आपकी इकलौती बेटी बहुत कष्ट में है। आज ही किसी को भेजकर बुलवा लीजिये। नहीं तो वह सचमुच कुछ कर बैठेगी। आखिर, किसके लिए वह इतना सहेगी !···बड़ी बहुरिया ने कहा है, भाभी के बच्चों की जूठन खाकर वह एक कोने में पड़ी रहेगी···!'

रात-भर हरगोबिन को नींद नहीं आयी।

आँखों के सामने बड़ी बहुरिया बैठी रही—सिसकती, आँसू पोंछती हुई। सुबह उठकर उसने दिल को कड़ा किया। वह संवदिया है। उसका काम है सही-सही संवाद पहुँचाना। वह बड़ी बहुरिया का संवाद सुनाने के लिए बूढ़ी माता के पास जा बैठा। बूढ़ी माता ने पूछा, "क्या है, बबुआ ? कुछ कहोगे ?"

"मायजी, मुझे इसी गाड़ी से वापस जाना होगा। कई दिन हो गये।"

"अरे, इतनी जल्दी क्या है ! एकाध दिन रहकर मेहमानी कर लो।"

"नहीं, मायजी। इस बार आज्ञा दीजिए। दशहरा में मैं भी बड़ी बहुरिया के साथ आऊँगा। तब डटकर पंद्रह दिनों तक मेहमानी करूँगा।"

बूढ़ी माता बोली, "ऐसी जल्दी थी तो आये ही क्यों ? सोचा था, बिटिया के लिए दही-चूड़ा भेजूँगी। सो दही तो नहीं हो सकेगा आज। थोड़ा चूड़ा है बासमती धान का, लेते जाओ।"

चूड़ा की पोटली बगल में लेकर हरगोबिन आँगन से निकला तो बड़ी बहुरिया

के बड़े भाई ने पूछा, "क्यों भाई, राह-खर्च तो है ?"

हरगोबिन बोला, "भैयाजी, आपकी दुआ से किसी बात की कमी नहीं।"

स्टेशन पर पहुँचकर हरगोबिन ने हिसाब किया। उसके पास जितने पैसे हैं, उससे कटिहार तक का टिकट ही वह खरीद सकेगा। और यदि चौअन्नी नकली साबित हुई तो सैमापुर तक ही।···बिना टिकट के वह एक स्टेशन भी नहीं जा सकेगा। डर के मारे उसकी देह का आधा खून सूख जायेगा।

गाड़ी में बैठते ही उसकी हालत अजीब हो गयी। वह कहाँ आया था ? क्या करके जा रहा है ? बड़ी बहुरिया को क्या जवाब देगा ?

यदि गाड़ी में निरगुन गानेवाला सूरदास नहीं आता, तो न जाने उसकी क्या हालत होती ! सूरदास के गीतों को सुनकर उसका जी स्थिर हुआ, थोड़ा—

···कि आहो रामा !

नैहरा को सुख सपन भयो अब,

देश पिया को डोलिया चली-ई-ई-ई,

भाई रोओ मति, यही करम की गति···!!

सूरदास चला गया तो उसके मन में बैठी हुई बड़ी बहुरिया फिर रोने लगी--किसके लिए इतना दुःख सहूँ ?

पाँच बजे भोर में वह कटिहार स्टेशन पहुँचा।

भोंपे से आवाज आ रही थी—बैरगाछी, कुसियार और जलालगढ़ जानेवाले यात्री एक नंबर प्लेटफार्म पर चले जायें।

हरगोबिन को जलालगढ़ जाना है, किंतु वह एक नंबर प्लेटफार्म पर कैसे जायेगा ? उसके पास तो कटिहार तक का ही टिकट है। जलालगढ़ ! बीस कोस!···बड़ी बहुरिया राह देख रही होगी।···बीस कोस की मंजिल भी कोई दूर की मंजिल है ? वह पैदल ही जायेगा।

हरगोबिन महावीर-विक्रम-बजरंगी का नाम लेकर पैदल ही चल पड़ा। दस कोस तक वह मानो 'बाई' के झोंक पर रहा। कस्बा-शहर पहुँचकर उसने पेट-भर पानी पी लिया। पोटली में नाक लगाकर उसने सूँघा—अहा ! बासमती धान का चूड़ा है। माँ की सौगात—बेटी के लिए। नहीं, वह इससे एक मुट्ठी भी नहीं खा सकेगा···किंतु, वह क्या जवाब देगा बड़ी बहुरिया को ?

उसके पैर लड़खड़ाये।···उँहूँ, अभी वह कुछ नहीं सोचेगा। अभी सिर्फ चलना है। जल्दी पहुँचना है, गाँव।···बड़ी बहुरिया की डबडबायी हुई आँखें उसको गाँव की ओर खींच रही थीं—मैं बैठी राह ताकती रहूँगी !···

पंद्रह कोस···माँ से कहना, अब नहीं रह सकूँगी। सोलह···सत्रह···अठारह···जलालगढ़ स्टेशन का सिगनल दिखलायी पड़ता है···गाँव का ताड़ सिर ऊँचा करके उसकी चाल को देख रहा है। उसी ताड़ के नीचे बड़ी हवेली के दालान पर चुप-

बाप टकटकी लगाकर राह देख रही है बड़ी बहुरिया—भूखी-प्यासी : 'हमरो संवाद ले जाहु रे संवदिया-या-या-!!'

लेकिन, यह कहाँ चला आया हरगोबिन ? यह कौन गाँव है ? पहली साँझ में ही अमावस्या का अँधकार ! किस राह से वह किधर जा रहा है ?···नदी है ! कहाँ से आ गयी नदी ? नदी नहीं, खेत है।···ये झोंपड़े हैं या हाथियों का झुंड ? ताड़ का पेड़ किधर गया ? वह राह भूलकर न जाने कहाँ भटक गया···इस गाँव में आदमी नहीं रहते क्या ?···कहीं कोई रोशनी नहीं, किससे पूछे ?··· कहाँ, वह रोशनी है या आँखें ? वह खड़ा है या चल रहा है ? वह गाड़ी में है या धरती पर—?

"हरगोबिन भाई, आ गये ?" बड़ी बहुरिया की बोली, या कटिहार स्टेशन का भोंपा बोल रहा है ?"

"हरगोबिन भाई, क्या हुआ तुमको···?"

"बड़ी बहुरिया ?"

हरगोबिन ने हाथ से टटोलकर देखा, वह बिछावन पर लेटा हुआ है। सामने बैठी छाया को छूकर बोला, "बड़ी बहुरिया ?"

"हरगोबिन भाई, अब जी कैसा है ?···लो, एक घूंट दूध और पी लो।··· मुंह खोलो···हाँ···पी जाओ। पीओ !"

हरगोबिन होश में आया।···बड़ी बहुरिया दूध पिला रही है ?

उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर बड़ी बहुरिया का पैर पकड़ लिया, "बड़ी बहुरिया !···मुझे माफ करो। मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका।···तुम गाँव छोड़कर मत जाओ। तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूंगा। मैं तुम्हारा बेटा ! बड़ी बहुरिया, तुम मेरी माँ, सारे गाँव की माँ हो ! मैं अब निठल्ला बैठ नही रहूँगा। तुम्हारा सब काम करूंगा।···बोलो, बड़ी माँ, तुम···तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी ? बोलो···!!"

बड़ी बहुरिया गर्म दूध में एक मुट्ठी बासमती चूड़ा डालकर मसकने लगी।···संवाद भेजने के बाद से ही वह अपनी गलती पर पछता रही थी।

एक श्रावणी दोपहरी की धूप

शादी के बाद फिर 'मेस' मे कौन रहता है ! किंतु, पंकज ने मेस के साथ अपने 'मेस-मित्रों' को भी छोड दिया।···दुनिया-भर के लफंगों का अड्डा !

इतना ही नही, पिछले साल तक उसने बहुत बार निश्चय किया था—यदि छोटे साहब की भद्दी दिल्लगी बंद नही हुई तो वह 'मेरी एंड मेरी' कंपनी की नौकरी भी छोड देगा। एक मिनट भी देरी से पहुँचने पर अभद्र छोटे साहब को मौका मिल जाता—क्यों दास ? 'मॉनिंग शो' में जाना हुआ था ?

इसके बाद सहकर्मियो की दबी हुई विषैली हँसी !

एक रेलवे-रसीद की गडबडी पर छोटे साहब ने कहा था—गलती माने ? यदि तुम्हारे सिनेमा के टिकट के नंबरो मे ऐसी ही गलती हो जाये, तब ?···माल कही और 'आर-आर' कहीं ?

सिनेमा ? असल मे सिनेमा-हॉल से ही पूर्वराग-पर्व शुरू हुआ था—पंकज-झरना के प्रेम का। झरना अपनी माँ और बहनों के साथ आयी थी। पंकज ने, प्रथम-परिचय के दिन दस पैकेट टनटन-भाजा के खरीदे थे। छोटे साहब को उसके सहकर्मियो ने टनटन-भाजा की भी बात बना दी थी। इसीलिए, छोटे साहब कॉलिंग-बेल को 'टनटन-बाजा' कहने लगे।

पंकज ने ठीक ही समझा था, शादी के बाद सभी उससे ईर्ष्या करने लगे थे। और, छोटे साहब की मोटी बीवी को पंकज ने देखा था। वैसी बेडौल औरत का स्वामी और कैसी बातें करेगा, भला ? कई बार पंकज के जी मे हुआ था, फाइल पटककर साफ-साफ कह दे—मुझे आप सिनेमा का 'गेटकीपर' कहते हैं ? जनाब, आप 'गोलकीपर' है।

किंतु, बेकारी का जिसे कड़वा अनुभव हो, वह लगी हुई नौकरी को क्षणिक आवेश मे आकर नही ठुकरा सकता। उसने सोच-विचारकर देखा था—आदमी को सहिष्णु होना चाहिए।···क्यो न वह अपना उपनाम 'सहिष्णु' रख ले। नाम का कुछ प्रभाव स्वभाव पर निश्चय ही पडता होगा।

झरना ने भी यही कहा था, 'पंकज नाम का प्रभाव तुम्हारे तन-मन पर ऐसा पड़ा है कि···!'

वक्तव्य अधूरा छोड़कर झरना ने पंकज के कंधे पर अपना सिर रख दिया था, 'क्या सभी 'लव-मैरेज' करने वालों के नाम ऐसे ही सुंदर होते हैं ?'

'छोड़ो भी, नाम में क्या रखा हुआ है।'

अपने दफ्तर में अकेला पंकज ही है, जिसने इस प्रेमहीन संसार में आकर 'लव-मैरेज' किया है ! उसकी स्त्री झरना अपूर्व सुंदरी है। सितार बजाती थी, गीत गाती थी। शादी के बाद फिर कौन लड़की सितार बजाती है और गीत गाती है !

शादी के पहले, मेस में कई दिनों तक 'प्रेम-परिणय' पर बेकार की बहस चली थी। अवधेश की बात रह-रहकर आज भी याद आती है, पंकज को—लव-मैरेज करने वालों को यदि मौका मिले, तो सारा जीवन 'लव' और 'मैरेज' करने में ही गुजार दें।

तो, अवधेश के कहने का अर्थ हुआ, यदि झरना को शादी के बाद भी मौका मिले तो वह किसी को 'लव' करना शुरू कर देगी ? असंभव !

मेस के सभी मित्र उससे जलते थे। एक साथ बैठकर किसी तालाब में 'बंसी' से मछली फँसानेवालों के बीच, किसी साथी को बड़ी मछली मिल जाय तो ऐसा ही होता है।

विवाह के पहले पंकज को भी संदेह था कि इस आर्यावर्त्त में अब सती-साध्वी नारी जन्म ही नहीं लेती। सो, भ्रम दूर हुआ—शादी के बाद। सीता और सावित्री के साथ-साथ झरना का नाम स्वयं ही निकल पड़ता, पंकज के मुँह से।

इसी बात पर जगन से उसकी लड़ाई हो गयी थी और पंकज को मेस छोड़ने का एक बहाना मिल गया था। जगन नीच है। नीच आदमी और कैसी बात करेगा भला ! मुँह बिदकाकर बोला था, 'जी हाँ साहब। सभी अपनी स्त्री को सीता-सावित्री ही समझते है। दुनिया के आश्चर्यों में, एक महान् आश्चर्य की बात यह भी है।'

जगन ने इसी सिलसिले में मुहल्ला-मुहर्रमबाग के किसी रमणीमोहन का नाम लिया था, 'मुहर्रमबाग की कौन ऐसी कुमारी लड़की है जो रमणीमोहन की गाड़ी पर चढ़कर मनेर-डाकबंगलों में पिकनिक करने नहीं गयी होगी। लड़कियाँ उसे 'गाड़ीवाला दादा' कहती हैं।'

पंकज ने उसी रात को, जरा घुमा-फिराकर 'गाड़ीवाला दादा' के विषय में पूछ लिया था, 'यह 'गाड़ीवाला दादा' कौन हैं तुम्हारे मुहल्ले में ?'

झरना का चेहरा इस नाम को सुनकर जरा उतर गया था। पंकज के दिल की धड़कन तेज हो गयी थी। झरना ने सप्रतिभ होकर स्वीकार किया था, 'हाँ,

गाड़ीवाला दादा है। सुना है, बहुत 'लूज कैरेक्टर' है उसका। डोरे तो उसने मुझ पर भी डाले थे, जरूर। मगर, क्या मजाल जो कभी मुंह से कुछ बोले !'

पंकज के गालों का ताप अचानक तेज हो गया था। बहुत देर तक झरना को बहु-बंधन में बांधकर, सिर्फ एक ही बात बार-बार दुहराता रहा, 'तुम सती हो, तुम सती हो !'

मेम छोड़ने के बाद, पंकज दो महीने तक ससुराल में ही रहा। यों, झरना उसे रोज याद दिलाती—घर-वर का पता लगा कहीं ?

पंकज को यह बात बड़ी भली लगती—झरना को अपने पति का अपने मैके में अधिक दिन रहना पसंद नहीं। झरना की मां रोज कहना नहीं भूलती कि पड़ोस के लोग पंकज को 'घरजमाई' समझते हैं।

झरना को मां की बात से दुःख हुआ था। उस दिन जरा रुखाई से वह बोली थी, 'यदि घर नहीं मिले तो आज फिर यहां लौटकर मत आना। मैं सबकुछ सह सकती हूं, किंतु पति का अपमान···।'

पंकज ने झरना की पीठ पर हौले-हौले हाथ फेरकर शांत किया था, 'आज जैसे भी हो, जहां भी मिले, घर ठीक करके ही लौटूंगा।'

'घर क्यों नहीं मिलेगा ? 'घरनी' होनी चाहिए साथ में।'

पंकज को घर मिल गया। झरना को लेकर अपना घर-संसार बसाने के लिए मखनियाकुआं की कुकुरगली में आया तो झरना ने कहा, 'शहर में घर लेते समय मुहल्ले का भी ख्याल रखना चाहिए।'

झरना ने गली में पैर रखते ही नाक-भौं सिकोड़कर कहा था, 'भले लोगों की गली नहीं यह।'

मखनियाकुआं मुहल्ले को दोष नहीं देता है, पंकज। किंतु, कुकुरगली में वे एक महीना से अधिक नहीं रह सके। घर के सामने का हलवाई बड़ा भारी असभ्य निकला। झरना ने बताया कि दोपहर को वह अपने दोनों जंघों को उघारकर खिड़की के सामने बैठता है और रह-रहकर खिड़की की ओर देखकर किसी मिठाई का नाम लेकर बेवजह पुकारता है—रसगुल्ला है—रसगुल्ला !!

हलवाई की देखा-देखी फलवाले का आवारा लड़का हाथ में संतरा लेकर चिल्लाता रहता है—चार आने जोड़ा, जोड़मजोड़ा—मीठा केवला !!

झरना ने बताया कि इस गली की औरतें भी वैसी ही हैं।

मखनियाकुआं से कुनकुनसिंघ लेन, कुनकुनसिंघ लेन से बिहारी-साबगली और अंत में पिछले साल नालारोड पर घर बदलकर आ बसा है पंकज। झरना को वह इलाका भी पसंद नहीं। किंतु, पंकज ने फिर घर की समस्या पर, झरना के कुनमुनाने के बावजूद कभी ध्यान नहीं दिया···मुहल्ला अच्छा हो, पड़ोसी अच्छे हों, गली के कुत्ते रात में शोर न मचायें, ऐसा घर कहां मिलेगा शहर में ? झरना

कुछ नहीं सोचती ?

सिर्फ घर की समस्या पर ही नहीं—इधर कुछ दिनों से पंकज ने झरना द्वारा उठायी गयी सभी समस्याओं को टालना शुरू किया है।

आज दफ्तर आने के पहले जब झरना ने ग्वाले के देर से आने की शिकायत की तो पंकज तनिक चिढ़ गया—बड़े-बड़े अफसरों के घर में एकाध दिन देर-सबेर से दूध पहुँचता है।

पति की रुखाई को परखकर झरना चुप रही।

ऑफिस आने के पहले, मुंह में पान का बीडा डालने के बाद, पंकज अपनी पत्नी को हल्के ओठो से चूमता आया है। अब यह क्रिया यंत्रवत् होती है। इधर कई महीने से पंकज सोच रहा है, झरना को किसी दंत-विशेषज्ञ के पास ले जायेगा। पायरिया का शिकार हो गयी है, निश्चय ही।

आज झरना लजाकर पूछ रही थी, "इस बार सरकारी फार्म का दूधिया भुट्टा नही आया है बाजार में ?"

"ध्यान नही दिया है। आज देखूंगा। मिलेगा तो···"

"नही-नही। मैंने यों ही पूछा।"

पति के जाने के बाद झरना कुछ क्षण खड़ी देखती रही। टिफिन की झोली से 'खट-खट' आवाज क्यो आती है ? डब्बा खुला हुआ तो नही रह गया ?

वह एक बार फिर नहाने के घर में घुसी। देह धोकर बाहर आयी। सिंदूर पहनते समय आईने में अपने चेहरे को ध्यानपूर्वक देखा। उँगली से जरा-सा स्नो छूकर गाल पर मल लिया। छाती पर 'घमोरी' के दाने निकल आये है। पाउडर छिड़कने के पहले उसने अँगिया खोल ली।···यहाँ कौन देखने आता है ?

किंतु, झरना के अंदर कही कुछ सुलग रहा है। ज्वाला शांत नही हो रही। भोजन करने बैठी तो कुछ रुचा ही नही। जबर्दस्ती दो-चार ग्रास मुंह मे डालकर उठ गयी।

दोपहर को उसे सोने की आदत है। गर्मियो मे वह फर्श पर शीतलपाटी बिछाकर—नंगे बदन सोती है। शीतलपाटी की छाप उसकी गोरी देह पर पाँच बजे तक उभरी रहती है। मछली के कांटे जैसा दाग।

शीतलपाटी पर लेटते ही उसे पंकज की रूखी और झुंझलाहट-भरी बातों की याद आयी।···क्या हो गया है आजकल ? हर बात पर चिढ़ जाता है। हमेशा मुंह लटका रहता है। बोली में कोई रस नही। डर के मारे झरना आजकल कुछ पूछने का साहस नहीं करती।

पहले, ऑफिस से लौटने के बाद, कम-से-कम पंद्रह मिनट तक इस तरह अंक-

बार में जकड़े रहते थे मानो मुद्दत की खोयी हुई चीज मिली हो। हर बात का जवाब चुंबन से देते थे। दिन-भर परिश्रम करने के बावजूद, रात में देर तक जगे रहते, जगाए रहते। अब तो बिस्तर पर पड़ते ही कुंभकरन की नींद उतर आती है, आंखों में। और, खुर्राटे की आवाज इधर इतनी कर्कश हो गयी है कि झरना सो नहीं पाती है।

उस दिन पड़ोसी के गुंडे लड़के ने झरना को फिर छेड़ा। लेकिन, पति ने कहा—कौन क्या कहता है, क्या बोलता है, क्या देखता है, क्यों देखता है; आदमी इन बातों पर ध्यान देने लगे तो उसका जीना मुश्किल हो जाय। तीन साल से बस इन्हीं छोटी बातों को लेकर कम-से-कम पचास आदमी से लड़ाई मोल ले चुका हूं।

पिछले साल तक झरना को गली की ओर खुलने वाली खिड़की के पास खड़ी देखकर पंकज बड़बड़ाने लगता था—जब जानती हो कि गली में हरामियों का अड्डा है तो खिड़की के पास उस तरह खड़ी क्यों होती हो?

और, अब? अब इनका कहना है कि आजकल की सफल गृहिणियां ग्वाले, धोबी और फेरीवाले के सामने जानबूझकर ब्लाउज के एक-दो बटन खोलकर, चीजों का दर-भाव करती है।···छिः-छिः, कितना गंदा हो गया है इस आदमी का मन!

किंतु, बात सच है।

एक दिन झरना एक फेरीवाले से पुराने कपड़ों के बदले कांच के बर्तन ले रही थी। फेरीवाला लौंडा शुरू से ही रट लगाये हुए था—मायजी, खादी कपड़ा नहीं लेंगे। सो, न जाने कैसे झरना की छाती से सामने की साड़ी जरा सरक गयी। फिर, झरना ने खादी कपड़े की गुदड़ी-चिथड़ों की गठरी सामने रख दी। लौंडे के मुंह से विरोध का एक शब्द भी नहीं निकला।

दूध लेते समय जब से अनजान में ग्वाले की उंगली जरा छू जाती है—दूध में पानी की मिलावट कम हो गयी है।

झरना को आज नींद नहीं आयेगी। उसने सामने की खिड़की खोल दी। वह जानती थी, ठीक इसी समय पीली कोठी की मुंडेर पर एक रोगी युवक नीम की छांव में आ बैठा होगा। खिड़की खुली रहे या बंद, उसकी नजर इधर ही टंगी रहती है।

झरना ने उसे देखकर भी नहीं देखने का भाव दिखलाया। वह फिर शीतल-पाटी पर आकर सो गयी। इस बार उसने अस्त-व्यस्त साड़ी को समेटकर एक किनारे कर दिया। सिर्फ पेटीकोट पहनकर लेटी रही और कनखियों से छत पर बैठे रोगी युवक को देखने लगी। अब उसका मन रोने का बहाना ढूंढ़ने लगा।···इनके लिए, अपने पतिदेव पंकज के लिए, वह दाल-भात जैसी चीज हो गयी है। किंतु,

झरना की एक झलक पाने के लिए अब भी लोग टकटकी लगाकर बैठे रहते हैं।···यह पड़ोसी का गुंडा लड़का जो अभी जोर-जोर से गीत गा रहा है, वह किसी और को सुनाने के लिए नहीं। झरना समझती है!

करवट लेते समय वह बड़बड़ायी—हाय रे पुरुष की जाति! · अच्छा, वह भुट्टा लावेगा तो? नहीं, कभी नहीं। आकर कहेगा—दिखायी नहीं पड़ा कहीं बाजार में फार्म का भुट्टा।

झरना की जीभ पनिया गयी। भुट्टे की सोंधी गंध···नींबू···हरी मिर्च!!

अचानक कुछ सुनकर वह चौंक पड़ी—अरे! यह तो गाड़ीवाला दादा की गाड़ी का हॉर्न है?

वह उठ बैठी। साड़ी पहनते समय उसने लक्ष्य किया, रोगी युवक का चेहरा तमतमा गया है। तेज ज्वर चढ़ गया है, मानो।···हाँ, सच! यह तो गाड़ीवाला दादा की ही गाड़ी है। बिना कुछ सोचे ही उसने खिड़की से पुकार दिया—दादा!

नारी-कंठ की पुकार दादा नहीं सुने, भला!

—अरे तुम? इस मुहल्ले में कब से हो?

—माँ कैसी है?

—तो, माँ की खोज-खबर अब तक लेती हो?

—माँ से कहियेगा कि···।

गाड़ीवाला दादा ने कहा—मैं सब्जीबाग से तुरत लौट रहा हूँ।

अब झरना क्या करे? तीन-साढ़े तीन वर्षों के बाद अचानक उसे आज क्या हो गया? शादी के बाद, राह चलते कई बार गाड़ीवाला दादा पर उसकी दृष्टि पड़ी और हर बार नजर चुराकर, मुंह फेरकर उसने अपनी जान बचायी है। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। झरना को पुष्पा की बात याद है। पुष्पा अपने पति के साथ सिनेमा गयी थी। गाड़ीवाला दादा ने देखते ही कहा—क्यों पुष्पा, पुराने दिनों को भूल गयी हो, सो तो ठीक किया है तुमने। किंतु, पुरानी जान-पहचान के लोगों को देखकर भी नहीं पहचानोगी, ऐसी उम्मीद तुमसे नहीं थी।

पुष्पा कह रही थी, उसके पति ने इस बात को लेकर पुष्पा को जीवन-भर खोंचा दिया। मरते समय भी कह गया—तुम्हारे तो बहुत लोग हैं, पुरानी जान-पहचान के—पुराने मित्र!

अब? वह तो आवेगा क्या, आ ही रहा होगा। आवेगा तो आवेगा। अच्छा होगा। झरना मन-ही-मन लड़ने लगी—वह आज जी भरकर बातें करेगी गाड़ी-वाला दादा से।

झरना ने गली की ओर खुलनेवाली खिड़की बंद कर दी। नहाने के घर से चेहरा धो आयी। बालों को कंघी से सँवारा। चेहरे पर फिर एक उँगली स्नो—आँखों में एक सलाई काजल और मुंह में एक बड़ा पान डालने के बाद, धुली हुई साड़ी

निकालने लगी। बक्स से निकली हुई, धुली साड़ी की गंध झरना को सदा उत्तेजित करती है। एक नशा छा जाता है क्षण-भर के लिए।

आईने के सामने खड़ी झरना ने गली में फेरीवाले की आवाज सुनी। चाबी के झब्बों को बजाता हुआ यह आदमी ठीक इसी समय आकर हाँक लगा जाता है। न जाने क्या कहता है। इसके बाद ही आवेगा, ढाकई-साड़ी बेचनेवाला रिफ्यूजी फेरीवाला—चा—य—का—धो-ओ-ओ-ड़ !

झरना सभी फेरीवालों की आवाज पहचानती है। सभी के आने का अपना-अपना बँधा हुआ समय है।

गाड़ीवाला दादा का हॉर्न !

सीढ़ियों पर जूते की आवाज क्रमशः निकट होती गयी। झरना ने एक बार फिर अपने को आईने में देख लिया।···यही नयी ब्रेजरी दुःख दे रही है, जरा। पीठ पर 'हुक' गड़ रहा है।

गाड़ीवाला दादा ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा—बगलवाले बदामदे की कोठरी में कौन रहता है? उस महिला को लगता है, मैं पहचानता हूँ।

उसने एक सरसरी निगाह से झरना की गृहस्थी को देखा और पलक मारते ही सबकुछ भाँप गया। अनुभवी शिकारी की तरह उसने एक गिलास पानी माँगा। सिर्फ पानी !

झरना सुराही में पानी डालते समय मुस्करायी, पानी पीकर दादा निश्चय ही कोई उद्‌गार प्रकट करेंगे—आ-ह ! कलेजा जुड़ गया ! अथवा—तुम्हारी सुराही का पानी इतना ठंडा है ?

सचमुच दादा ने यही कहा—तुम्हारी सुराही का पानी···।

झरना की पतली कमर को हाथ से आवेष्ठित करते हुए दादा ने अपने सिर को झरना की छाती में टिकाने की चेष्टा की।

"न: न. दादा ! कोई देख लेगा।"

झरना ने दबी हुई आवाज में विरोध किया, "दादा !"

दादा, अधर-सुधा-रस पान नहीं कर सके। झरना अपने को छुड़ाकर दूसरे कमरे में चली गयी, "मैं चाय बना लाती हूँ।"

"चाय नहीं। जरा, इधर सुनो। क्या कहूँगा तुम्हारी माँ से ?"

झरना सोच में पड़ गयी, वह क्या कहे ? बोली, "बहुत दिन हुए माँ को देखे।"

"तो, चलो न।"

"चलूँ ?"

तीन बज रहे हैं। दो घंटे में ही वह लौट आयेगी। और दो घंटे के बाद भी लौटे तो क्या ? उसकी परवाह किसे है ? वह नहीं भी लौटे तो उसके पति को अब

कोई दुःख नहीं होगा। सिर का बोझ है वह। और, उनके पास दूसरी चाबी तो है ही। संभवतः कोई दूसरी प्रेमिका भी हो, कहीं।

"क्या सोचा ?"

झरना लजायी, "चलूंगी, लेकिन···।"

"लेकिन, क्या ?"

"आप मुझे सीधे माँ के घर पहुंचा देंगे तो !"

"इतना डर है फिर···"

"नः नः, डर नहीं !"

दिन-भर उमस के बाद अभी पुरवा हवा चली है। बादल उमड़-घुमड़ रहे हैं।

ताला लगाते समय दादा ने पूछा, "क्यों, किसी से कुछ कहना नहीं है ? एक पुर्जा छोड़ दो लिखकर।"

झरना चुप रही। गाड़ी में वह पिछली गद्दी पर बैठी। दादा मुस्कराये···तो, झरना सयानी हो गयी है ! झरना ने पूछा, "आजकल पारुल दीदी कहाँ है ?"

दादा इस प्रश्न का अर्थ समझते हैं। झरना जानना चाहती है कि पारुल से उसका गुप्त संबंध अब भी है या नहीं ?

दादा ने कहा, "दुनिया-भर की खबर तो पूछती हो। मगर, अपनी खबर नहीं लेतीं ?"

"अपनी खबर ?"

"तीन साल हो गये। दो से तीन तुम लोग कब···?"

गाड़ीवाला दादा अपनी भोंड़ी रसिकता पर स्वयं हँसे। झरना चुप रही तो उन्होंने फिर कहा, "तुम लोग चेष्टा ही नहीं करते।"

दादा ने उलटकर झरना की ओर देखा।

गाड़ी साहित्य-सम्मेलन-भवन के पास आकर दाहिनी ओर मुड़ गयी। यह बादल बरसेगा अब ! किरानियों को रुलानेवाली वर्षा ! सभी 'बाबू' भीगते हुए घर पहुंचेंगे···एक प्याली गर्म चाय···कुछ गर्म···कुछ गर्म-गर्म पकौड़े···कॉफी···भुट्टा···नीबू···हरी मिर्च !!

"जो भी हो, तुमने अपनी देह को अब तक पहले जैसा पालकर रखा है। स्वास्थ्य देखकर मुझे खुशी हुई है।" दादा ने झरना की छाती पर दृष्टि टिकाकर अपना वक्तव्य समाप्त किया। थोड़ी देर और इधर निगाह रह जाती तो जरूर इस सायकिल वाले को धक्का मार देते, गाड़ीवाला दादा।

बाकरगंज नुक्कड़ के पास गाड़ी की चाल धीमी हुई। सामने वाले फुटपाथ पर छोटी-सी भीड़ लगी हुई है। न जाने क्या बिक रहा है !

झरना चिहुंक पड़ी, "ओ !"

"क्या हुआ ?" दादा ने पूछा ।

झरना आँचल में मुंह छिपाकर, फुटपाथ की ओर कुछ खोज रही है । हाँ, उसका पति ही है । पंकज ही है । कुछ खरीद रहा है ।

ट्रॉफिक पुलिस ने हाथ से राह रोकी । सभी गाड़ियाँ रुक गयीं । झरना का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा । उसे अचानक ज्वर हो गया क्या ? नहीं, भीड़ में उसका पति खो नहीं सकता । झरना देख रही है लेकिन पंकज उसको नहीं देख पायेगा । क्या खरीद रहा है ? भुट्टा ? दूधिया भुट्टा ? झरना के लिए ही !

भुट्टावाले की हाँक बीच-बीच में सुनायी पड़ती है—सरकारी फारम का भुट्टा, तीन आने जोड़ा !

बादल गांधी मैदान पर छाने के लिए दल बाँधकर उतर रहे है । झरना को अचानक भुने हुए भुट्टे की सोंधी गंध लगी । भुट्टा-नीबू—हरी मिर्च ? झरना की जीभ पनिया गयी ।

ट्रॉफिक पुलिस ने रास्ता छोड़ दिया । सभी रुकी हुई गाड़ियाँ, गियर बदलते समय गुर्रायीं । झरना बोली—"दादा, जरा रुक के !"

दादा के क्यों का कोई जवाब दिये बिना ही झरना एक झटका देकर गाड़ी से उतर गयी । उसने फिर उलटकर देखा भी नहीं । भीड़ में खो गयी—झटपट ।

भीड़ में पंकज को लगा, उसके हाथ का झोला कोई खींच रहा है, 'ए ! कौन है ? झोला क्यों ·· अरे, तुम ?"

पंकज की ऐसी उत्फुल्ल मुस्कराहट बहुत दिनों के बाद छलकी है । लगा, उसे युगों के बाद मिली है झरना । झरना बोली, "मैंने सोचा कि तुम भुट्टा लाना भूल जाओगे । इसलिए खुद चली आयी ।"

"वाह, भूल क्यों जाऊँगा ! चलो, ठीक है । अच्छा ही किया । आज बहुत दिनों के बाद दफ्तर से जरा पहले ही क्यों छुट्टी मिली है, जानती हो ? आज बड़े साहब खुश थे । दो-दो इन्क्रीमेंट एक साथ !···अरे-रे, अब तो तुम्हारी यह साड़ी भीगकर लथपथ हो जायेगी ।—ए ! रिक्शा !"

बारिश शुरू हुई । भीड़ की भगदड़ में दोनों ने एक-दूसरे को देखा और रिक्शा में जा बैठे । रिक्शावाले ने पर्दे के फीते को बाँधते हुए पूछा, "कहाँ चलना है बाबू ?"

झरना ने झोले से एक भुट्टा निकालकर कहा, "देखो-देखो, इसके बाल कैसे लगते है, ठीक पादरी साहब की भूरी दाढ़ी ।"

पर्दे से ढँके हुए रिक्शे के अंदर झरना की मुस्कराहट रोशनी बिखेरती है—रह-रहकर ।

"जरा इधर खिसक आओ । और भी जरा । भीग जाओगी । सोचा था, आज हम कहीं बाहर ही भोजन करने जायेंगे । लेकिन यह साँझ की वर्षा और यह

सुनहली साँझ···!"

पंकज की बोली में न जाने कितने दिनों का संचित रस उतर आया है !··· एक-दूसरे के स्पर्श में वैसा ही सुख—अब भी जीवित है !! वैसी ही मादक उत्तेजना···!

झरना सरककर पास नहीं गयी। वह सीधे पंकज की गोद में जा बैठी और पंकज की गर्दन पकड़, पाँच साल की बच्ची की तरह मचलती हुई—लटक गयी।

रोमांस-शून्य प्रेम-कथा की एक भूमिका

आज वह 'हल्दी-चिरैया' फिर आयी है ? बरसात-भर यह रोज इसी तरह समय-असमय आयेगी और किसी पेड़ की डाली पर भीगती हुई या पंख सुखाती हुई—सुरीले स्वर में एक लंबी पंक्ति दुहरायेगी। संस्कृत-श्लोक की कड़ी—का कस्य परिवेदना ! स्पष्ट ! हू-ब-हू !!···पता नहीं क्या बोलती है! पवित्रा को अचरज होता है, यहाँ के लोग इस 'पाखी' का नाम नहीं जानते। पूछने पर मुंह बिदकाकर कहेंगे—पता नहीं क्या नाम है। हल्दी-चिरैया नाम पवित्रा ने ही गढ़ लिया है।

यही एक पखेरू है, जो उसके देश में नहीं होता। या, होता भी हो तो पवित्रा ने कभी नहीं देखा। सचमुच इस 'देश' में कुछ भी ऐसा नहीं, जो पवित्रा के 'देश' में नहीं था। पेड़, फल, फूल, फसल, जानवर, पंछी ! सिर्फ, इस 'हल्देपाखी' को छोड़कर।···माछरांगा को यहाँ के लोग मछलोकनी कहते हैं। पवित्रा के गाँव का अर्थात् 'पूर्वबंग' का 'पेंचा' ही यहाँ का उल्लू है, यह उसने यहाँ आकर जाना। उल्लू को वह भालू के जैसा कोई जानवर समझती थी। लोगों के नामों में लाल, प्रसाद और झा तथा नारायण लगा देने से क्या होता है, चेहरे तो नहीं बदलते ? लेकिन, इस 'कॉलोनी' (नबीनगर गाँव) के सैकड़े-निन्नानवे लोग ऐसे हैं जो पवित्रा की इस राय से सहमत नहीं। वे कहेंगे—की मुश्किल दीदी ठाकरुन··· परछाद-टाइटेल अपने गाँव के किसी आदमी के नाम में लगा दो, देखोगी फिट ही नहीं करेगा ! नाम के माफिक चेहरा भी होना होगा दीदी ठाक···! की मुश्किल !!

गाँव बसने के बाद पवित्रा एक दिन गाँव के लोगों को समझा रही थी—हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि हमें इस जिले में बसाया गया। यहाँ धान और पाट की खेती होती है। हम भी अपने 'देश' में धान और पाट की खेती करते थे। यहाँ के लोग भी मछली-भात खाते हैं। गाँव-घर, बाग-बगीचे, पोखरे और नदी, सब-कुछ अपने ही 'देश' जैसा···।

मूखी हुई कायावाले हरलाल साहा ने तीखी आवाज में विरोध किया था—से हुति पारेना···ऐसा होना असंभव है ! कहाँ अपना देश और अपने देश की मिट्टी और अपने देश का चावल और कहाँ इस अद्भुत देश का सब 'आजगूबी-व्यापार' ।···पता नहीं, तुमने क्या देखा है दीदी ठाकरुन ! यहाँ की मछली में क्या वही स्वाद है, जो 'पद्मा के इलिच' (पद्मा नदी की हिलसा मछली !) में···?

हरलाल साहा की बात पर सभी इस तरह मुस्कराये मानो वह सबके दिल की बात कर रहा हो ।

गाँव में ट्यूबवेल गाड़ने के लिए सरकारी आदमी आया है। वह बंगाल से आये हुए शरणार्थियों के लिए कई गाँव बसा चुका है, यानी गाँवों में ट्यूबवेल लगवा चुका है । इसलिए, 'पूब बंगाल' की बोली 'कुछ-कुछ' समझने का दावा करता है। उसे देखते ही हरलाल साहा ने आँख टीपकर अपनी बात बंद कर दी। सभी चुप हो गये ।

किंतु वह सरकारी आदमी चुप नहीं रहा। उसने मुस्कराकर सीधे पवित्रा से पूछा था—यह आप लोग 'अपना देश-अपना देश' क्या बोलते है ? देश का क्या मतलब ? क्या माने ?

···देश का माने आर केया होगा···देश का माने देश···हरिधन मोड़ल को इस ट्यूबवेल गाड़नेवाले 'खुदे मनिब' (क्षुद्र अधिकारी) से न जाने क्यो चिढ़ है··· 'माइयाँ-छायला' (लड़कियाँ) देखते ही बात करने के लिए इसकी जीभ 'मुड़-मुड़ानी' रहती है । मानो हर बात का माने खोजता है बेटा !

···देश का माने देश, तो क्या हिंदुस्तान अपना देश नही है ? आप लोगों का देश नहीं है ?

···हिंदुस्तान कैसे 'आपना-देश' होगा ?

काला चाँद घोष चतुर नौजवान है । उसने अपनी भारी और मोटी हँसी से बात को हल्का करने की चेष्टा की—हे-हे-हे-हे ! अरे बाबू, आप देश का जो माने बूझता है, 'आसल' में हम लोगों का देश का माने वो नेंही है। देश का माने ? जैसे बांग्ला-देश, बिहार-देश, उड़ीसा-देश ! वैसे माफिक । हे-हे-हे-हे !

"तो प्रदेश बोलिए। प्रांत कहिए ।"

छिदामदास सरकारी कर्मचारियो से बातें करने का अवसर ढूंढ़ता रहता है। उसने दाँत निपोरकर कहा—ओवरसियेर बाबू—यह देश बोलिए, प्रदेश बोलिए या कि प्रांत कहिए—अब तो जो है सो बस यही नोबीननगर ग्राम !

सरकारी आदमी न जाने क्यों ठठाकर हँस पड़ा था। छिदामदास की बुद्धिमानी देखकर पवित्रा मुस्करायी थी और उस ट्यूबवेल-फिटर साहब की नजर शुरू से अंत तक पवित्रा पर ही गड़ी हुई थी। जेब से बीड़ी निकालकर बाँटने के बाद सभी के मुँह के सामने, बारी-बारी से सच्च-सच्च लाइटर जलाकर

बीड़ी सुलगा दिया, फिटर साहब ने।

वह अपने काम पर चला गया। छिदामदास ने कहा—देखा? फिटर साहेब को ओवरसियेर बाबू कह देने से कितना खुश हुआ?

सभी अपने देश की हँसी हँसे थे—जी खोलकर, एक साथ! किंतु पवित्रा बोली थी—जो भी कहो, वह ठीक ही कहता था। देश माने हिंदुस्तान अर्थात् भारत।

···दीदी ठाकरुन, देश माने हिंदुस्तान की कथरे हॅय बुझाइया दिन···कैसे देश माने हिंदुस्तान हो? हम लोगों के इस गाँव का नाम है नोबीननगर और यहाँ के लोग कहते है पाकिस्तानी-टोला!·· की करे हॅय बुझाइया दिन! काला चाँद घोष की माँ वाजिब बात कहती है!

अधेड़ गोपालदा बहुत कम बोलने वाला आदमी है। मैट्रिक तक पढ़ा हुआ है और गाँव में स्थापित होने वाले स्कूल का उम्मीदवार मास्टर है। उसने टोका था—काला की माँ! साइनबोर्ड लगने दो गाँव के बाहर। स्कूल चालू होने दो एक बार; तब देखना, फिर कैसे लोग पाकिस्तानी-टोला कहते हैं, हमारे इस नोबीन-नगर को!

छिदामदास अपने पेट से गंजी को तनिक ऊपर की ओर सरकाकर पेट पर हाथ फेरते हुए बोला था—आसल चीज है यह साला पेट! ई बेटा पेट का वास्ते जो कुछ सुनना पड़े, कहना पड़े—सब कबूल!

···हल्दी-चिरैया फिर बोली—का कस्य परिवेदना!

नोबीननगर नहीं—नबीननगर!

न नोबीननगर, न नबीननगर। इस गाँव का सही नाम है नबीनगर।

राज्य के पुनर्वास-उपमंत्री मुहम्मद इस्माइल नबी ने, इस गाँव के शिलान्यास-समारोह के अवसर पर बोलते हुए कहा था—यह सब उस बापू की महिमा है कि मेरे जैसे अदना खिदमतगार, जनता के इस छोटे सेवक के नाम पर आज नगर बसाया जा रहा है।···

इसके बाद डिप्टी मिनिस्टर नबी साहब ने वीराने को बसाने और बसे को उजाड़ने की बात पर एक शे'र पढ़ा था। गाँव के अधिकांश लोगों ने जिसका कोई मतलब नहीं समझा। लेकिन, तालियाँ खूब जोर से बजायी थीं···

बसे को उजाड़ना?

पवित्रा इस नये बसे हुए गाँव नबीनगर की एक झोंपड़ी में लेटी हुई अपने उजड़े गाँव मे पहुँच जाती है—जिला मैमनसिंघ के जुमापुर गाँव में।

···पवित्रा के पिता, जुमापुर गाँव के एकमात्र हिंदू जमींदार! एकमात्र ब्राह्मण-

परिवार। एकमात्र सवर्ण हिंदू !

गाँव में तीन और जमींदार थे। तीनों मुसलमान। मुसलमानों की तेरह टोली और हिंदुओं के—सब मिलाकर—ढाई मुहल्ले। गाँव के सभी लोग—हिंदू-मुसलमान—पवित्रा के पिता को 'पिता ठाकुर' कहते थे। और पवित्रा की हवेली का नाम मशहूर था—ठाकुरबाड़ी !

काशीनाथ चटर्जी—पवित्रा के पिता—बगला और सस्कृत के ही पडित नही, उर्दू और फारसी के भी अच्छे जानकार थे।···जुमापुर की 'मजलिस' मे दूर-दूर के मौलवी और मुल्ले आते थे और 'पिता ठाकुर' उन लोगो मे घंटो इस्लाम की बारीक बातो पर बहस करते। घर मे, जब किसी बात पर उन्हे गरम आना तो वे प्राय: फारसी का कोई पद्य दुहराते थे। उस समय सारे घर मे एक दबी हुई हँसी खेल जाती। किंतु, जब उसका अर्थ ठेठ बगला मे सुनाया जाता, तो व्यग्यबाण से घायल शिकार छटपटाकर रह जाता। माँ चिढ़कर कहती—तुम हर बात मे 'कलमा' पढ़कर जीतना चाहते हो···!

···कलमा···कादिर···कासिम···कासिम नही—कासिमदादा···कासिम-दादा नहीं, कसाई !

···कादिर अब्बा के घर, हर साल 'ठाकुरबाड़ी' मे दो बार सौगात भेजे जाते। ईद और दुर्गापूजा में। अपने पिता के साथ पवित्रा बचपन मे ही ईद के मौके पर कादिर अब्बा की हवेली में जाती। कासिम, शमीम, शबनम—कादिर अब्बा के सभी बच्चे—दुर्गापूजा मे 'ठाकुरबाड़ी' आते थे।

···किंतु, उस बार 'ईद' के दिन पवित्रा नही गयी। कासिमदादा खुद आये। पवित्रा ने हँसकर कहा था—ईद मुबारक कासिमदादा !

···कासिमदादा ने इधर-उधर देखकर कहा था—चाँद तो मैंने अभी देखा है।—कासिमदादा, क्या बक रहे हो?···तुमी आमार चाँद!···किंतु, कासिम-दादा, चाँद तो आकाश में रहता है।

··· उसी बार पवित्रा ने अपने पिता से स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था—बाबा, यह कासिमदादा बड़ा फाजिल···माने···बदमाश हो गया है।

···बाबा उन दिनों गांधीजी की तरह सप्ताह मे एक दिन मौन व्रत रखते थे। उन्होंने लिखकर उत्तर दिया था, कागज के एक टुकड़े पर—बदमाश हो या शैतान—प्रेम से सबको जीता जा सकता है। प्रेम सदा विजयी होता है!···आसल जिनिस होलो भालोबासा ! गांधीजी बलेछेन···!!

···इसके बाद, एक रात को अचानक महाविनाश लीला शुरू हुई।···आग ···मार···काट···बंदूकों की आवाजें···ईद का जश्न···फुलझड़ी···बंदेमातरम् ···गांधीजी की जय—पवित्रा के पिता की आवाज ठाकुरबाड़ी मे मँडरा रही है ···आग की लपलपाती हुई लपटों में पवित्रा ने देखा था—कासिम ढूंढ रहा है।

कोथाय ?—कहाँ है वह ?

·· फिर, पवित्रा ठाकुरबाड़ी से निकलकर कैसे बागदीपाड़ा में पहुँच गयी, वह नहीं जानती। उसकी आँखें खुली थीं—हिंदुस्तान के एक शरणार्थी कैंप में—कटिहार स्टेशन पर। होश में आते ही पवित्रा ने पूछा था—बाबा कहाँ हैं ? माँ कहाँ है ? और लोग कहाँ हैं ?··· किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने फिर कोई सवाल नहीं किया। एक लंबी साँस लेकर वह चुप हो गयी। तभी से वह चुप है। सभी अपने गाँव और गाँव के लोगों की, बिछड़े हुए आत्मीय-स्वजनों की चर्चा करते है। वह मुंह बिदकाकर मुस्कराती रहती है। अर्थात्—क्या मूर्खता-भरी बातें करते रहते है लोग !

·· जिला मैमनसिंघ, गाँव जुमापुर !

नबीनगर कॉलोनी के सैकड़े-पचहत्तर निवासी एक ही जिला और गाँव के रहनेवाले हैं। पवित्रा को छोड़कर सभी पिछड़ी जाति के लोग हैं—सतगोप, कादू, नम.-शूद्र, कैवर्त और बागदी।

योगेशदास बारिसाल से आया है, शारदा बर्मन और माखन त्रिपुरा जिले के निवासी थे—बेतिया शरणार्थी कैंप में जुमापुरवालों के दल में आ मिले, इनके परिवार।

···तीन-चार शरणार्थी कैंपों में, कई वर्षों तक जुमापुरवालों का दल, पवित्रा के बल पर ही टिका रहा! जुमापुर का एक बच्चा भी दल से बिछुड़कर कहीं जाना नहीं चाहता। और, पवित्रा के कारण ही उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ—कहीं भी। जुमापुरवालों के सारे अभाव-अभियोग की सुनवायी सबसे पहले होती।··· दीदी ठाकरुन की आज्ञा के बिना न तो कोई रेशन का एक दाना छू सकता था और न सरकारी सहायता का एक पैसा। वे कहते—जाने दीदी ठाकरुन !

···और, हर जगह पवित्रा को एक जोड़ी आँखें घूरती रहतीं। उन आँखों से कासिम झाँककर कहता—यहाँ है मेरा चाँद ! पवित्रा सुनती, कासिम कह रहा है—तुम जो कहोगी—करने को तैयार हूँ। आग में कूदने कहो, पानी में डूबने कहो !

···पवित्रा हुक्म देती—चावल, दूध, बिस्कुट, दवा, कपड़े जल्दी भेजो !··· कैंप सुपरवाइजर की बदली करो।···रिलीफ क्लर्क को बर्खास्त करो !!··· कासिम कहता—जो हुक्म ! जैसी मर्जी ! लेकिन, लेकिन···मेरी अर्जी ? यानी, कम-से-कम एक बोसा भी नहीं ?

ऐसे सवालों पर पवित्रा मुंह बिदकाकर मुस्करा देती। अर्थात्—नॉनसेंस ! ···किंतु, बेतिया कैंप के इंस्पेक्टर की आँखों में झाँकता हुआ कासिम अधीर होकर टूट पड़ा था—चाँद को पकड़ने।

···पवित्रा मुंह बिदकाकर हँसती रही और एक दर्जन जुमापुरी शरणार्थियों

ने मिलकर इंस्पेक्टर का सिर मूड़ दिया, मुँह पर कालिख और चूना पोतकर कैंप से बाहर निकाल दिया था—समारोह के साथ।

···इसके बाद सबसे बड़े अफसर की आँखों में कासिम की झलक पाते ही पवित्रा ने हुक्म दिया था—जुमापुरी शरणार्थियों को ऐसी जगह में भेजो, जहाँ वे मछली-भात पेट-भर खा सकें। धान उपजा सकें, पाट की खेती कर सकें।

···सबसे बड़े अफसर ने कहा—जो हुक्म! सभी जुमापुरी पूर्णियाँ जायेंगे। आँखों की खिड़की से कासिम ने झाँककर कहा—किंतु, तुमको मेरे साथ जाना होगा। मेरे दिल में एक वीरान जगह है, तुम अपना घर वहीं बाँधो।···पवित्रा मुँह बिदकाकर हँसती रही, गाड़ी पूर्णियाँ की ओर चली—सभी जुमापुरी शरणार्थियों को लेकर।

···और पूर्णियाँ पहुँचकर आर० ओ० साहब के पी० ए० यानी रिहेबिलेशन ऑफिसर के पर्सनल असिस्टेंट की आँखों में देखा—कासिम विराजमान है, पहले से ही।

···इसलिए, सबसे अच्छी जगह और अच्छे इलाके में जुमापुरवालों की 'कॉलोनी' बसायी गयी। जहाँ की धरती उपजाऊ है, जहाँ की नदियों में हर किस्म की मछलियाँ हैं। गोड़ियर गाँव के दक्षिण गैरमजुरवा जमीन पर 'कॉलोनी' की नींव खुद आर० ओ० साहब ने डाली। उस दिन, कासिम आर० ओ० की आँखों में था। पी० ए० ने आँख उठाकर देखने का साहस भी नहीं किया।

एक सरकारी लिफाफा हाथ में लेकर गोपालदा चिल्ला रहे हैं—सभी भाई-बहन सुन लीजिए। मंजूर हो गया! हो गया मंजूर! स्कूल हो गया!

पवित्रा को अचरज होता है, बहुत कम बोलनेवाला, कम सुननेवाला और कम सोनेवाला गोपालदा इधर इतना 'बकबक' क्यों करने लगा है? स्कूल तो होना ही था। इस तरह चिल्लाने की क्या जरूरत?

उसने गोपालदा के सारे उत्साह को अचानक बुझा दिया, मानो—गोपालदा, स्कूल तो हुआ मगर आपके पोखता-साइन-बोर्ड का क्या हुआ? स्कूल का नाम पाकिस्तानी स्कूल तो नहीं रख देंगे, हाकिम लोग?

गोपालदा ने इस बार ध्यान से—एक-एक शब्द पर जोर देकर पत्र पढ़ना शुरू किया—गोड़ियर गाँव के पाकिस्तानी टोला में स्कूल खोलने के प्रस्ताव पर···।

इसके आगे वह नहीं पढ़ सका। उसका गला भर आया—सचमुच, यह पाकिस्तानी टोला नाम अब कभी नहीं मिटेगा?···गोड़ियर···गोड़ियर···चूल्हे में जाये यह गोड़ियर गाँव।

···नहीं, गोपालदा ! ऐसा नहीं कहते। सभी गाँव फूलें-फलें। पवित्रा ने समझाया—गोड़ियर गाँव के साथ आपका नोबीननगर भी चूल्हे में चला जायेगा।

कालाचाँद घोष अब तक चुप था। उसको अपनी कीर्तन-पार्टी में दिलचस्पी है। स्कूल खुले या गाँव का नाम बदले ! उसने गोपालदा की ओर देखकर गाना शुरू किया :

नोबीननगर नेई बाबा—
नोबीनगर बोलो
पाकिस्तानी टोलार नामे—स्कूल
का रजिस्टर खोलो
बोलो हरि बोलो !

सभी हँस पड़े और गोपालदा फूट-फूटकर रो पड़ा। पवित्रा ने आँखों से ही कालाचाँद को डाँटा।

गोड़ियर गाँव !

पद्रह घर मैथिल ब्राह्मण, चार परिवार राजपूतो के—यह हुआ गोड़ियर गाँव का बाबूटोला। बीस घर ग्वाले, आठ कैवर्त, तेरह घर गोढ़ी। गोड़ियर गाँव का असल नाम इसी गोढ़ी टोला से हुआ—जहाँ गोढ़ी (मछली पकड़नेवाली जाति) लोग रहते हो—गोढ़िहार। गोढ़िहार से हुआ गोड़ियर। गोड़ियर गाँव का सबसे सुखी और संपन्न परिवार गोढ़ी का ही है।···तालेवर गोढ़ी के यहाँ रुपया 'गंध' करता है। अर्थात् सुंगठी (सूखी मछलियाँ) की तरह जमे हुए पैसे से गंध निकलती है।

ब्राह्मण टोली में चौधरी परिवार और राजपूतों में गिन-गूँथकर बस एक ही ऐसा घर है, जिनके पास थोड़ी जमीन है। बाकी लोग यजमानी, पहलवानी, गाड़ीवानी, घोड़ा लदाई, दुकान, नौकरी, खेत-मजदूरी और चोरी करके जीवन-यापन करते हैं।

'कॉलोनी' में स्कूल खुलने की खबर गोड़ियर गाँव के सभी टोलो में तुरंत पहुँच गयी। तालेवर गोढ़ी के दरबार में मुँहलगुए और चापलूसों की भीड़ लगी हुई है। धानुकटोले का मोहना दफादार चूँकि सरकारी आदमी है, इसलिए वह गैरकानूनी बातें नही करता कभी। उसने कहा—गाँव के लोग दस साल से चिल्ला रहे हैं। स्कूल-स्कूल। मगर स्कूल के नाम पर एक चटसार भी नहीं खुला, अब तक। उधर देखिए, पाखिस्थनियाँ सबको आये छः महीने भी नहीं हुए हैं, मिडल स्कूल खोलने का ऑडर पास हो गया !

सभी ने एक ही साथ अचरज से कहा—क्या-आ-आ-आ ? स्कू-ऊ-ऊ-ऊ-ल ? पाखिस्थनियाँ-टोला में ?

इसके बाद कुछ देर तक खामोशी छायी रही। सभी की आँखें वृद्ध तालेवर

गोढी पर जा अटकी । तालेवर गोढी ने हाथ की 'सुमरनी' को, 'सत-नाम-सहसर-नाम' कहकर झोले में रख दिया और निर्विकार चित्त से कहा—जो सचमुच अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए सरकार जरूर स्कूल खोलेगी । इसमें अचरज करने की क्या बात है ?

—वाजिब बात ! वाजिब बात !

तालेवर गोढी की वाजिब बात सुनकर सभी के चेहरे मुर्झा गये ।···आज बुढ़वा 'खखुआया' हुआ है, शायद । आज कोई काम बनने की उम्मीद नहीं ।

तालेवर गोढी ने लोगों के मुरझाये हुए चेहरों को फिर खिला दिया । बोला—भैया, तुम लोग कहाँ हो ? पच्छिमधनियाँ सब भला बसेगा ? बसना रहता होता तो ये जहाँ बसे हुए थे, वहाँ से भागते ही क्यों ?

—वाजिब बात ! वाजिब बात !

दोनों सौतेले भाई—जयराम सिंघ और रामजय सिंघ—आजकल तालेवर गोढी के बिना पैसा के लठैत हैं । जयराम सिंघ बोला—साला, जहाँ-जहाँ कालनी बसाया—वहाँ जाकर देखिए । ई बंगलिया सब देखने में 'निर्बोनिया' लगते हैं, लेकिन 'भीतरे-भीतर' बड़े 'मारखू' होते हैं । रातों-रात सिमेंट, लोहा-लक्कड़ बेचकर गाँव-के-गाँव 'परेट' (अर्थात् भाग गये) । सिमुआ में, महिचदा में—सब जगह यही हाल हुआ कॉलनी का ।

"कामचोर है सब ।"

"फैशन देखा है ?"

"साला, जनाना भी खड़ाऊँ पहनकर चलेगी । धरती पर पैर नहीं देगी, कभी ।"

"धरती पर पैर कैसे दे ? सरकार बहादुर का रुपया है, घर की मुर्गी है, चाहे दाल बनाओ···"

पंडित रामचंदर चौधरी अब तक चुप थे । खैनी थूकते हुए बोले—यदि स्कूल का रुपया हजम करके पच्छिमधनियाँ लोग नहीं भागे तो, मेरा नाम रामचन्द्र चौधरी नहीं—कुकुरचंद्र चौधरी कहना । जितने निठल्ले और कामचोर लोग थे, सभी रिफूजी हो गये हैं । मगर पंजाबी-रिफूजी ऐसे नहीं । पटना में, जक्शन रोड के बगल में, लौलीसेन के सामने एक पंजाबी-रिफूजी की पकौड़ी की दुकान थी । जब हम लोग अपील करने के लिए हायकोठ गये थे तो बूढ़ा-बूढ़ी दिन-रात पकौड़ी और घुघनी बेचता था । और जब केस का जजमेंट सुनने गये तो देखा कि न पकौड़ी है, न पकौड़ी की दुकान और न बूढ़ा है, न बूढ़ी है···!

"कहाँ चले गये ? सरकारी कर्जा खाकर भाग गये ?"

"नहीं भाई, वे क्यों भागेंगे ? भागे ये बंगाली-रिफूजी । अब क्या बतलावें ? कहाँ तो टीन की टूटी हुई 'छत्ती' और कहाँ तीन मंजिला बिल्डिंग···!"

'क्लीविंग क्या ?'

मोहना दफादार ने पूछनेवाले को 'क्लिविंग' का अर्थ समझा दिया और बात का छोर भी अपने हाथ में ले लिया — लौंडे जी जो ठीक कहते हैं। मेहनत के नाम से इनका भूत भागता है और दिन-भर एक जगह गोल बांधकर बैठेंगे और बीड़ी 'धकेंगे' और हमेशा इधर-उधर करके आपस में बहस करेंगे। सभी को 'सालार बेटा साला' कहेंगे।

चौधरी रामचंदर को मोहना दफादार की यह आदत अच्छी नहीं लगती। बात के बीच में बोलने का साहस ? वे अकुलाकर बोले — सालार बेटा साला कहता है तो कौन-सी बड़ी कहता है ! साला तो जैसे बिहार में, वैसे बंगाल में। अजी, कालनी का छोटा-छोटा बच्चा भी हम लोगों के लड़कों को कहता है — असभ्यो, जोगूली, खाट्टा !

असभ्यो माने ?''

मोहना दफादार खुद 'असभ्यो' का अर्थ नहीं जानता। कैसे समझाये ? मतलब पूछनेवाले को ?

रामजस सिंघ बोला — मगर सारे कालनी में एक ही जनाना ऐसी है कि देखिए तो बस देखते ही रह जाइए — एकटक !

इस बार मोहना दफादार एक सरकारी बात बोला — अरे हाँ ! वह औरत नहीं, चाबी है चाबी ! सभी हाकिम से मुँहा-मुँही बोलती है और हाकिम लोग गुम हो जाते हैं।... दारोगा साहब कह रहे थे, उस पर नजर रखना। शायद कौमनास है।...

"कौमनास क्या ?'

तालेवर गोढ़ी ने कहा — कौमनास का माने भी नहीं जानते ? अजी, जिसको हिंदी में कमनिस कहते हैं, उसी को उर्दू में कौमनास कहते हैं।

मोहना ने बाधा डालने की चेष्टा की — नहीं, नहीं...।

इस बार पंडित रामचंदर चौधरी चिढ़ गये — मोहना, तुम एक साल की दफादारी में ही तालेवर भाई की बात को नहीं काट सकते। एक तुम्हीं अर्थ समझनेवाला हो इस गाँव में !

मोहना बोला — कौमनास का माने कमनिस है। मगर ऐसा कमनिस...।

मोहना को किसी ने बोलने नहीं दिया।

सामने की सड़क से नवीननगर कालोनी के फेरी करनेवाले लड़कों का एक झुंड गुजरा — गले और पीठ पर टीन के कनस्तर लटकाये। बिस्कुट, लेमनचूस, गमछा की फेरी करने के लिए ट्रेन और बस से दूर-दूर तक जाते हैं। फिर रात को दस-ग्यारह बजे तक लौटेंगे।

पवित्रा 'आफिस-घर' के दक्षिण में कटहल के छोटे पेड़ के पास खड़ी है···न जाने कहाँ देख रही है ! न जाने क्या देख रही है !!

गोपालदा ने पवित्रा का ध्यान भंग किया—की देखसेन ?···स्कूल की जगह देख रही हैं। और देखना नहीं होगा। हम लोगों के नोबीननगर के स्कूल का साइट—एकदम फस्ट क्लास···।

"नहीं गोपाल मास्टर ! मैं कुछ और ही देख रही हूँ। आपको भी दिखलाती हूँ, अभी। सभी जुमापुरवालों को बुलाकर दिखलाना होगा।"

"क्या ?"

पवित्रा हँसी। बोली—इधर आइए ! यहाँ खड़ा होइए।···अब, देखिए—वहाँ उस···उधर नहीं, सीधे—दूर, उस टेढ़े पेड़ को। देख रहे हैं न ? अब, उससे भी दूर जो काला जंगल दिखलायी पड़ रहा है···और टाइल-खपड़े के वे घर—खजूर के दोनों पेड़ों के उस पार—देखा ?···अच्छा, बोलिए तो गोपाल मास्टर—हम लोगों के जुमापुर गाँव से अछिमुद्दिनपुर हाट जैसा दिखलायी पड़ता था···मान लीजिए आप जुमापुर के 'ठाकुर पोखरे' पर पूरब मुँह खड़े है और दूर दिखलायी पड़ रहा है—अछिमुद्दिनपुर हाट का काला जगल। वह पेड़, ठीक ऐसा ही टेढ़ा पेड़ उस रास्ते में भी था। और खजूर का जुड़वा-गाछ···आपको याद है ?···देखिए तो ? बोलिए तो ?

गोपालदा ने आँखों के ऊपर तलहथी रखकर दूर तक दृष्टि दौड़ायी और फिर अपनी आँखों को रगड़ा। फिर देखता ही रहा—ए की लीला ?

—मैं कल से ही देखकर हैरान हूँ।

गोपालदा एक-डेढ़ मिनट तक चुपचाप खड़ा देखता रहा, फिर न जाने कैसे सब-कुछ भूल गया। उसे लगा; वह जुमापुर गाँव के ठाकुर पोखरा पर खड़ा होकर अछिमुद्दिनपुर हाट की ओर देख रहा है। पीठ की ओर है 'ठाकुरबाड़ी'—काशीनाथ चटर्जी की ड्योढ़ी।···गोपालदा अभी तुरत पाठशाला से लौटा है। कुछ जरूरी बातें करनी हैं सेक्रेटरी (पिता ठाकुर) से। बाग्दीपाड़ा में पाठशाला खोलने की बात हो रही है और कादिर जमीदार का बेटा कासिम विरोध कर रहा है। लोगों को भड़का रहा है। पिता ठाकुर, अछिमुद्दिनपुर गये है, 'गोरूगाड़ी' (बैल-गाड़ी) पर।···टेढ़े पेड़ के पास, 'गोरूगाड़ी' देखकर गोपालदा का कलेजा दहक उठा था—पता नहीं, कमिटी में किसकी जीत हुई ? पिता ठाकुर का कोई प्रस्ताव कभी नहीं गिरा। इस बार देखा जाय। ठाकुरबाड़ी चबूतरे पर खड़ी पवित्रा पुकार रही है—गोपाल मास्टर, बाबा अब आ ही रहे हैं। यहाँ आकर बैठिए न···!

"गोपाल मास्टर, की होलो ?"

"पाठशाला नहीं खोलने दिया तो···आमि हांगार-स्ट्राइक कोर्बो !"

"लेकिन, स्कूल को मजूरी तो मिल गयी है। कल मकान बनानेवाला ठेकेदार भी आ रहा है।"

"कोथाय ?···सालार बेटा साला कादिरेर बेटा कासिम मार साला जालिम ···आमि हागार···!"

"क्या बक रहे हो मास्टर ?"

"मैं बक रहा हूं ?"

अचानक, गोपाल मास्टर को किसी ने नवीनगर कॉलोनी के ऑफिस-घर के सामने लाकर पटक दिया। उसकी आंखों से आंसू की झड़ी लग गयी—ए की देखाले दीदी ठाकरुन !···यह क्या दिखलाया तुमने ? यह कैसे हुआ ?

"सोचती हूं, गांव का रुख इस ओर कर दिया जाय। जैसा जुमापुर में था।"

'आलबत (अवश्य) बदल दीजिए।"

गोपाल मास्टर को इतनी बड़ी बात मिल गयी और वह चुपचाप खड़ा रहेगा ? उसने जुमापुर के एक-एक निवासी को नाम ले-लेकर पुकारना शुरू किया—देखे जाम—देखे जाम—आकर यहां देखो—अपनी जननी जन्मभूमि की एक झलक—देखे जाम !

छिदामदास, कालाचांद घोष, हरराम, हरिधन, राखाल विश्वास, हरलाल साहा, लखीकांत सरकार—सभी दौड़े आये—भूत-ऊत तो नहीं ?

खेत-खमार से लौटे हुए और हाट-बाजार से आये हुए लोगों को गोपालदा चौरस्ते पर—कॉलोनी के बाहर ही—चेतावनी दे देता है- एक अद्‌भुत व्यापार ! दीदी ठाकरुन एक 'मजा' की चीज दिखलायेंगी।···चल ! चल !!

पवित्रा ने कालाचांद से भी उसी तरह खड़ा होने को कहा—हां, तुम एक बार आंखों को मूंदकर कल्पना करो कि तुम जुमापुर के ठाकुर पोखरे पर खड़े होकर अछिमुद्दिनपुर हाट की ओर देख रहे हो—सामने पूरब की ओर। फिर, आंखें खोलो।···लो, आंखें बंद करो।

कालाचांद हंसा—आंख मूंदने से क्या होगा ? पैर जो इस 'पर-भूमि' पर है !

"तुम मूंदो भी। और, जैसा कहा है···।"

आंखें खोलकर कालाचांद ने कुछ देर तक पूरब की ओर देखा और उसका चेहरा पीला पड़ गया।···उसी जुड़वां खजूर के पेड़ पर चढ़कर उसने 'टीया' (तोता) के दोनों बच्चों को उतारा था—राम-लखन का जोड़ा।···अछिमुद्दिनपुर हाट का आलूचोप खाने के लिए वह घर से पैसे चुराकर हर 'हाटबार' को भाग जाता था।···वह, वहां जो बगुले उड़ रहे हैं, वही है 'बीबी दीघी'—मछलियों से भरी हुई छोटी नदी। उसी के किनारे मुहर्रम का मेला लगता है। जंगल के उस पार अछिमुद्दिनपुर गांव है। जंगल के पास वह···दरगाह है। उसी जंगल से, एक दिन हजारों लोग जुलूस बनाकर निकले थे।···बंदे मातरम ! बंदे मातरम !! महत्ता

गांधी की जै !

पवित्रा ने हँसकर पूछा—नारा क्यों लगा रहे हो ?

कालाचांद ने भरे गले में कहा—दीदी ठाकरुन, उस पर-भूमि में—

पवित्रा ने डांट बतायी—फिर 'पर-भूमि' कहते हो ?

—नहीं दीदी ठाकरुन ! यह तो···सचमुच जुमापुर में ही हैं हम लोग। ··· जुगीदा आप नहीं समझियेगा। बारिसाल का नहीं—जुमापुर गांव की छवि देखना चाहते हैं जो—देखे जास, देखे जास !!

पच्चीस साल और इससे अधिक उम्रवालों ने उस दिन बार-बार जुमापुर गांव की छवि देखी। अपने 'देश' की झलक !!

लखीकांत सरकार, ससूर साहेब की दुकान में नौकरी करता था। रोज सुबह उठकर हाट की ओर जाने के पहले, पूरब की ओर देख लेता—ठाकुर-सांड तो नहीं है, उधर ? ठाकुर-सांड लखीकांत को देखकर आगबबूला हो जाता था। लाल रंग का कोई कपड़ा नहीं—लीग के झंडे के लिए ससूर साहेब की दुकान में गांठ-के-गांठ कपड़े आये थे। उसी कपड़े का कुर्ता ससूर साहेब ने अपनी दुकान के सभी नौकरों को बनवा दिया था। जिस दिन लखीकांत उस कपड़े का कुर्ता पहनकर निकला, सदा शांत रहनेवाला ठाकुर-सांड उसे देखकर ऐसा बिगड़ा कि लखीकांत की जान पर बन आयी।···किसी तरह उस दाहिनेवाले खजूर पर चढ़कर, दो घंटों तक वह लटका रहा···।

पंद्रह साल के लड़के-लड़कियों की बुद्धि में कोई बात नहीं आ रही !

इनमें से अधिकांश का जन्म भागते समय—खानाबदोशों की हालत में विभिन्न कैंपों में हुआ था—मालदह, कटिहार, पटना, बेतिया के कैंपों में। इसके बावजूद वे उन खुले खेतों की ओर, खजूर के पेड़ों को, काले जंगल को, लाल खपरैलवाले घरों की ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं···वह अछिमुद्दिनपुर क्यों होने लगा, वह परवाहा गांव है। कल ही उस गांव में बिस्कुट बेच आया है, अद्भू !

जुमापुर-निवासी शरणार्थियों को रात-भर नींद नहीं आयी—यह क्या दिखला दिया दीदी ठाकरुन ने ? रात के अंधकार में भी—वही झलक ! हू-ब-हू अछिमुद्दिनपुर हाट की रोशनी ! ऐसी ही झिलमिलाती हुई रोशनी !!

रात-भर, जब तक वे जगे रहे, जुमापुर में ही रहे। वहीं की याद, वहीं की चर्चा। किसी ने खाया—कोई यों ही लेटा रह गया।

रात के तीसरे पहर में, नींद के साथ सपने आये—सभी को।

सुबह में एक-दूसरे के सपने की बात सुनते और एक लंबी सांस छोड़कर चुप हो जाते। राखाल ने कहा—आज वह खेत पर नहीं जा सकेगा। रात-भर उसकी 'खुड़ी' (चाची) पुकारती रही है—ओ रे राखाल ! को थाय गेलि रे !!

तीस जुमापुर-निवासियों में बीस स्त्री-पुरुषों ने उस दिन कोई काम नहीं किया। किंतु, फेरीवाले नौजवानों और किशोरों ने समय पर अपना काम किया—एक-दूसरे को पुकारकर बुलाया। नहाया-धोया और अपनी-अपनी झोली-टोकरी, कनस्तर और बक्से लेकर निकले—चल रे! साढ़े आठ-टा बाजलो।···गाड़ी फेल होने पर आज 'बस' नहीं है, फिर।

फेरी करनेवाले नौजवानों का 'दलपति' है—बिश्टू। ट्रेन में, चेकर और गार्ड से मिलकर, अपने साथियों के दुःख-दर्द की कहानी सुनाकर, ट्रेन में फेरी करने का मौखिक 'ऑर्डर' लेना, बस के ड्राइवर और कंडक्टरों को खुश रखना और सामूहिक खर्च का हिसाब रखना बिश्टू का काम है। महाजन भी उसकी 'जामिन' (जमानत) माँगते हैं।

कॉलोनी से बाहर निकलकर उसे याद आयी, दीदी ठाकरुन ने बुलाया था। कोई चिट्ठी भेजनी है कहीं।

पवित्रा ऑफिस-घर में एकत्रित लोगों को समझा रही थी—काम पर नहीं जाने का क्या कारण? क्या मतलब?···देखो, 'देश' की याद—अपनी जन्मभूमि की याद करते-करते हमारा हृदय कुंठित हो गया है। किसी काम में जी नहीं लगता। हम किसी चीज से प्यार नहीं···न यहाँ की धरती से, न यहाँ के लोगों से और न यहाँ के पशु-पक्षी से। किसी चीज पर विश्वास जमता ही नहीं। इसीलिए, भगवान् ने सोचा कि चलो, इन्हें अपनी लीला दिखला दो, ताकि ये यहाँ की मिट्टी को प्यार कर सकें, यहाँ के मनुष्य-सो प्रीति जोड़ सकें। जुमापुर और नबीनगर एक ही है···।

बिश्टू आकर चुपचाप खड़ा हो गया। पवित्रा बोली—नहीं बिश्टू! तुम जाओ। मेरा काम हो गया।

सभी चले गये। पवित्रा अपने काम का लेखा-जोखा लेने लगी—चार टेबुल-क्लाथ, दो आसनी, दो दर्जन गिलास ढँकने के नेट-कवर, पाँच बटुए! दो महीने का उत्पादन—बस, इतना ही?

पवित्रा कॉलोनी-मेंबर है। जिला-कॉलोनी-कमिटी के कई महत्त्वपूर्ण विभागों से उसका संबंध है। हर महीने में एक बार उसे 'सदर' जाना पड़ता है। परसों आवश्यक बैठक है। वह चाहती थी, बिश्टू के हाथ एक पत्र भेजकर···।

···कालाचाँद की माँ फिर कहाँ आ रही है?

"क्या है काला की माँ?"

"कुछ नहीं। एक बात पूछने आयी हूँ।"

वह बैठ गयी, चटाई पर। पवित्रा ने पूछा—क्या बात है?

उधर, योगेशदास की बेटी संध्या, दीदी ठाकरुन के सिखाये नये गीत का 'रियाज' कर रही है—देशे-देशे मोर घर आछे, आमि सेई घर खुँजि मरिया!

कालाचांद की मां का रंग-ढंग देखकर पवित्रा समझ गयी, आज यह बूढ़ी सचमुच कोई गंभीर बात पूछने आयी है।···कालाचांद की मां, 'ठाकुरबाड़ी' की नोकरी करती थी। पवित्रा के घर की बहुत-सी बातें जानती है। वह यह भी जानती है कि जुमापुर की विनाशलीला के पीछे धर्म और जाति नहीं—क्योंकि, इलाके-भर के लोगों ने 'पिता ठाकुर' को एक दिन पूर्व तक विश्वास दिलाया था--आप निश्चित रहें। यहां कुछ नहीं होगा। काला की मां ने ही बेतिया कैंप में चुप-चाप बतलाया था—कासिम भाले की नोक पर 'विनोद' का कटा हुआ सिर लेकर सबसे आगे था। विनोद मुखर्जी! लखिमपुर के राय साहब विक्रम मुखर्जी का बेटा—जो 'पिता ठाकुर' के नाम अपने बाप का गुप्त संदेश लेकर आ रहा था। अथवा—उसके मन में जो बैठी हुई थी, उसी की सुधि लेने आ रहा हो।·· अछिमुद्दिनपुर हाट पर कासिम ने उसे देखा और भुलावा देकर अपने घर ले गया।

कालाचांद की मां बोली—दीदी ठाकरुन! एक बात पूछूं?···बुरा न मानियेगा। आप 'पढ़वा-पंडित' हैं? भूल-चूक हो—माफ कर दीजियेगा।

सब-कुछ तो मिला। अपने देश का अन्न, 'साग-बाग', माछ, 'तरी-तरकारी'—सब-कुछ अपने जुमापुर गांव में जैसा मिलता था—यहां भी मिलता है। हवा-पानी भी वही है।···लेकिन, 'मन के मानुस' के जैसा·· कोई यहां नहीं। मुझे माफ करना—दीदी ठाकरुन!···तुमने एक बार कहा था—यहां भी सैकड़ों कासिम हैं।···

पवित्रा समझ गयी, कालाचांद की मां क्या कहना चाहती है। पवित्रा को लगा, कालाचांद की मां ने उसके हृदय के सबसे 'स्पर्श कातर' स्थल को छू लिया।

नबीनगर के आकाश पर, कौओं का एक झुंड बेतरह शोर मचाता हुआ चक्कर मारने लगा।

पवित्रा ने अपने को संभाल लिया। उसने मुस्कराने की चेष्टा की—काला की मां, अचरज की बात! 'मन के मानुस' जैसा भी 'मानुस' है यहां। अपने मन की बात—आंखों में लिखकर, वह भी ले आता है। आंखों से ही जवाब उसे मिलता है···।

काला की मां बोली—देखने में हू-ब-हू विनोद बाबू जैसा है न? मैं बतलाऊं? वह···वह 'खबर के कागज' का बाबू?

पवित्रा इस बार हंस पड़ी। कालाचांद की मां ने कहा—मैंने ठीक ही पकड़ा है?···किंतु, विनोद बाबू की तरह···माने···उसने कुछ कहा नहीं है? आपने ···आपने···दीदी ठाकरुन, सब भगवान् की लीला है। लेकिन, बात आंखों में···

"काला की मां! सबसे अचरज की बात सुनोगी? विनोद की तरह हंसता-बोलता है, तुतलाता है।···मिठाइयों में इसको भी सर्वप्रिय है—चंद्रपुलि!"

"दीदी ठाकरुन ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ । भगवान् ने शायद उन्हें ही फिर भेजा है, मन की बात कहने के लिए ।"

मन की बात तो वह कह चुका ।

"तुमने क्या जवाब दिया, दीदी ठाकरुन ?"

···तुम पागल हो गयी हो काला की माँ ? तुम क्या चाहती हो, खोये हुए धन को पाकर—मैं फिर खो दूँ ?···मैं सिर्फ पवित्रा नहीं—मैं आग हूँ, मैं तलवार हूँ, मैं बर्छी हूँ, मैं-मैं···जहर हूँ·· साँपिन हूँ·· वह मुझे पाकर अथवा मेरे मन को पाकर कितनी देर तक जी सकेगा?···और, तुम लोगों को छोड़कर मैं कहीं जाऊँगी तो कितने दिनों तक—तुम लोग मुझे अपने दरवाजे से इस तरह ठेलकर बाहर नहीं फेंक देना ! और···तुम···तुम काला की माँ—मेरी माँ हो ! भगवान् के लिए, फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना ।·· वह···उसे यह बात···इस बात की भनक भी नहीं लगे···दुहाई···उसे जीने दो ! नहीं तो, तुम लोगों की दीदी ठाकरुन···!

पवित्रा दहाड़ मारकर रो पड़ी ।

कालाचाँद की माँ उसके उमड़ते हुए आँसू को पोंछते हुए खुद रो पड़ी ।—नहीं माँ ! मैं तुझे अपने कलेजे से सटाकर रखूँगी । अपनी 'खुकुमणी' (बिटिया) को आँखों में बिठाकर रखूँगी ।···तुमी जे आमार प्राण !!

उच्चाटन

ठीक वही हुआ, उसी तरह शुरू हुआ, जैसा उसने सोचा था। बरसों से मन में 'गुनी' हुई बात अक्षर-अक्षर फल गयी। रात की गाड़ी से वह गाँव लौटा—दो साल के बाद। और 'मरकट-महाजन' बूढ़े मिसर को रात में ही खबर मिल गयी। 'किरिन' फूटने के पहले ही वह 'बाभन-बनिया' खड़ाऊँ खटखटाता हुआ आया और उसके दरवाजे पर उकासी करके कफ थूकने लगा।

पहले तो उसको ऐसा लगा कि वह भोर का सपना देख रहा है।···दो साल से, भोर में आनेवाले सपने का 'सिरगनेश' ठीक इसी तरह होता!

कफ से बझी हुई कंठ-नली से एक गिलगिलाती हुई 'गिटकारी-भरी' बोली निकली, "बिलस-वा-वा-वा!··· आ य-हूँ-क्-थो-ह!"

बेसुध, चित होकर सोयी हुई उसकी अधनगी बीवी हड़बड़ाकर उठी और कपड़े सहेजने लगी, "मिसर महाराज?"

···महाराज? नहीं, सपना नहीं। बुढ़वा साला सचमुच ही आया है!

उसे अचरज हुआ···ठीक वैसा ही हो रहा है। ठीक इसी घड़ी की प्रतीक्षा और इससे जीवट बाँधकर जूझने की तैयारी वह पिछले चौबीस महीने से कर रहा था। इसके बावजूद उसका दिल धड़का। हड्डी के अंदर एक पुराने डर का तार काँप गया। गाल और कनपटी दहकने लगी, 'डरामा' में परदा उठते ही अचानक 'पाट' भूल गया, मानो।

उसने देखा, उसकी बीवी की आँखों में नींद के बदले भय समाया हुआ था। वह आँखों से ही पूछ रही थी—"महाराज को क्या···?"

अपनी बीवी की घबरायी हुई सूरत को देखकर वह सँभला। मद्धिम आवाज में बड़बड़ाया, "तेरे महराज को···! तू इस तरह क्या देख रही है? अचंभा का बच्चा?"

बाहर, मिसर ने खाँसी के पहले वेग को झेल लिया था। इस बार उसकी आवाज में स्वाभाविक 'खनक' थी, "बिलसि-या-या-या!"

उसने आँगन में निकलकर देखा, बूढ़ी माँ एक कोने में दुबक गयी है—गठरी जैसी। डर के मारे हाथ का हुक्का नहीं पी रही···कहीं गुड़गुड़ाहट न सुन लें मिसर महाराज !

सुनहले बटनवाला 'टीमाट' पहनते हुए उसने आँगन से जवाब दिया, "कौन है जी ?···इस तरह हल्ला काहे कर रहे है साहेब ?"

ऐसा नुकीला जवाब सुनकर उसकी माँ-बीवी ही नहीं, बाहर खड़ा बहत्तर साल का बूढ़ा, इस गाँव का मालिक मिसर भी अवाक् हो गया—नशा-पानी खाया है क्या ?

उसकी बीवी हाथ मे छोटी मचिया लेकर दरवाजे की ओर बढ़ी। उसने डाँट दिया—"कहाँ चली मचिया लेकर मटकती हुई उधर ? आँच सुलगाकर पानी गरम कर।"

आँगन से बाहर निकलकर उसने बीड़ी का धुआँ फेंका।···नहीं, इतने दिन का रटा हुआ 'पाट' अब वह नहीं भूलेगा। बोला, "कहिये, क्या बात है ?"

मिसर के लिए इतना ही काफी था।···न प्रणाम, न पाँवलागी? मुंह पर बीड़ी का जूठा धुआँ फेंक दिया।

"अरे, तू तो एकदम बदल गया है, बिलसिया !"

···अचरज की बात ! मिसर ने ठीक वही बात कही !

उसने अपना 'तैयार-जवाब' दिया, "बिलसिया-बिलसिया क्या बोलते हैं ? मेरा नाम रामबिलास है···रामबिलास सिंघ।"

रामबिलास ने अपनी माँ को पुकारकर कहा, "माय, जरा एक टोकरी गोबर और एक झाड़ू लेकर इधर आना तो···!"

रामबिलास की बीवी ने अपनी बूढ़ी सास की ओर देखा।·· पहले पानी गरम करने को कहा, अब गोबर और झाड़ू माँगना है !

बूढ़ी आँगन से ही बोली, डरती-डरती, "झाड़ू-गोबर का क्या होगा, बेटा ?"

मिसर की आँखे गोल हो गयी। दम फूलने लगा—सशब्द ! अपमान, क्रोध और भय के मारे मिसर के गले में फिर खसखसाहट शुरू हुई। खाँसी को रोकने की चेष्टा करते उसका 'थुथना' विकृत हो गया। पेट में कुपित वायु·· !

"वह पूछती है कि गरम पानी का क्या होगा ?"

रामबिलास कुढ़ गया, "बस, लगी जिरह्-बहस करने ! पानी क्या होगा तो झाड़ू क्या होगा ? आकर देखो, किस तरह मारे कफ-थूक के दरवाजा 'घिना' गया है।···ए ! ए मिसरजी, थूक-थाक जरा उधर खेत मे हें-हें-हें-हें···!"

मिसर ने सँभालने की कोशिश की, लेकिन उनकी गमछी गंदी हो गयी।

रामबिलास ने घृणा से मुंह-नाक सिकोड़ते हुए कहा, "ऐसी 'बेसँभाल' खाँसी है तो गाँव-घर मे 'चल-फिर' क्यों करते है ? इस बीमारी को पोसे हुए हैं, इलाज

क्यों नहीं करवाते ?···फोटो करवाकर देखिये, 'टीबी-उबी' न हो गया हो !"

किंतु मिसर की इस खाँसी-उकासी ने सारा खेल ही बिगाड़ दिया मानो। जैसा कि रामबिलास ने सोच रखा था, रामबिलास के 'टीबी-उबी' वाले संवाद के बाद, मिसर को बोलना था—'चुप साला बेटीच्···टीबी हो तुम्हें और तुम्हारी औलाद को···!'

लेकिन मिसर 'पाट' छोड़कर 'बेपाट' की बात बतियाने लगा। बोला, "बबुआ ! अब क्या इलाज और क्या डागडर, क्या बैद ! टीबी हो या दमा, अब तो चलाचली की बेला है।"

···पिछले साल, महेंद्रपुर मोहल्ला दुर्गापूजा के 'डरामा' में जुगल महतो पनवाड़ी ने इसी तरह खेला चौपट किया था। जल्लाद का 'पाट' लेकर उतरा और तलवार उठाकर मारते समय रटा हुआ 'पाट' ही भूल गया और बेपाट की बात बोलते-बोलते तलवार फेंककर रोने लगा।···मिसर भी रोता है क्या ? नहीं, नाक पोंछ रहा है।

मिसर समझ गया···'राड़' की बाढ़ ! जब देखो राड़ की बाढ़, मुंह सँभाल-कर बोली काढ़ !

रामबिलास की बूढ़ी माँ हाथ में झाड़ू लेकर बाहर आयी—"पाँव लागी महराज !"

···बूढ़ी ने हाथ में झाड़ू लेकर ही पाँवलागी की ?

"प्रभु हो ! प्रभु हो ! ! अब तो बिल···रामबिलास बबुआ, इज्जत-आबरू के साथ चले जायें, यही मना रहा हूँ। इधर से जा रहा था तो सुना कि रात को बिल···रामबिलास बबुआ लौटा है तो बड़ी खुशी हुई।···वाह ! खूब उन्नति किये हो। वाह ! !"

अब रामबिलास क्या जवाब दे !···बेपाट की बात !

"हम तो समझे कि आप बकाया रुपये का तकादा करने आये हैं। रात मे तो आया ही हूँ। भागा जा रहा हूँ क्या ? खैर, जब आ गये हैं तो लेते जाइये अपना बकाया।"

बूढ़ी ने पूछा, "बहू पूछती है कि पानी गरम हो गया। अब क्या···?"

"हर बात में जिरह ! पानी गरम करने कहा है चा बनाने के लिए।"

मिसर बोला, "बाकी-बकाया का हिसाब-किताब होता रहेगा। जल्दी क्या है ?"

"नहीं···।" उठकर आते समय भी बिलसिया ने पाँवलागी नहीं की।

रामबिलास अपने नये सूटकेस से चाय-चीनी-प्याली निकालने लगा। बहू बोली, "अभी तो मिसर महराज मैदा के हलुआ जैसा नरम हो गये। मैया से ो, किस तरह महीने में दो बार आकर भैंस 'कुरुक' करने की धमकी देते थे

दोनों—बाप-पूत मिलकर।"

"तो उस समय बोली क्यों नहीं? मुंह में क्या था, केला?"

रामबिलास को याद आयी। मिसर की बेबात की बात सुनकर ही वह 'परन' ठानकर घर से भागा था—शहर, रुपया कमाने!···'साले, रुपया लेकर 'बिहा-गौना' किया। अब बीवी की टांग पर टांग चढ़ाकर सोते हो और मेरे रुपये की बात भूल गया? एं?···मैं यदि रुपया नहीं देता तो अभी 'गुलगुला' कैसे खाते रोज, एँ?'

···साला! कान गरम हो जाता है अब भी, याद करके।

"बेटा! अब क्या बताऊँ? अभी उस दिन मिसर का बड़ा बेटा दूध लेने आया। दूध बिक गया था, सब। कहाँ से देती? तो बर्तन उठाकर जाते समय जीभ ऐंठकर बोला—जमाना ही उलट गया है। नहीं तो इसी टोले से भैंस के बदले औरत का दूध दूहकर ले गये हैं हमारे सिपाही बरकंदाज!"

रामबिलास की जीभ जल गयी। चाय को फूंकते हुए वह बोला, "तो उस समय बोली क्यों नहीं? मुंह में क्या था, केला?"

···औरत का दूध? साला, कलेजा काट देनेवाली बात!

रामबिलास ने अपनी बीवी से कहा, "सूटकेस में नयी अँगिया है। निकालकर पहन ले।···अंग्रेजी अँगिया।"

"राम-राम पालवेत!"

सूरज की रोशनी के साथ गाँव में बात फैलती गयी।

···बिलसिया घर लौटा है, रात में! ऐ! अब उसको बिलसिया मत कहना कोई! मिसर को 'भोरे-भोरे' बेपानी कर दिया। बोला, 'बिलसिया मत बोलिये, रामबिलास कहिये।'···मिसर की नाक पर दो सौ रुपये का 'पुलिंदा' फेंक दिया।···हाँ, उसके कुरता के पाकिट में 'लैसंस' है, सरकारी मोहरवाला। पटना में 'रिक्शा-डलेवरी' करता है तो सरकारी मोहरवाला लैसंस जरूर मिला होगा।···जानते हो? अपनी घरवाली को नाम धरकर बुलाता है—'ए, झुमकी!'

झुमकी—रामबिलास की घरवाली—लाल अँगिया पहनकर पानी भरने गयी। औरतों ने उसे घेर लिया। "देखें जरा अंग्रेजी अँगिया; मेमिन लोग पहनती हैं···पेट 'उघारे'। अरे, इस बित्ते-भर अँगिया का दाम पाँच टका? बटन नहीं है तो खोलती-पहनती हो कैसे? ऐसा ही 'सकिस्त' रहता है हरदम? साड़ी भी ले आया होगा? रात में कब आया? पहली-पहर रात में ही?"

झुमकी लजाती-हँसती कहती, "मैं तो डर गयी कि रात में नालवाला जूता पहनकर कौन आया रे बाप! मैया डरकर 'कोठाली' के पीछे छिप गयी दम साधकर।···सहर जाकर आदमी की आवाज तक बदल जाती है। मगर, कारी भैंस ने उसकी बोली को ठीक पहचान लिया।···ऊँय-ऊँय करती रस्सी तुड़ाकर

आंगन में दौड़ी आयी। सिर से पैर तक चाटने लगी मारे दुलार से।···सो, आते ही उलाहना दे दिया मरद ने—तुम लोगों से भली है मेरी यह कारी भैंस।··· आदमी से बढ़कर।"

"तब इसके बाद? खाने को क्या दिया 'उत्ती' रात को?"

"क्या बताऊँ दिदिया, लाज की बात। संजोग ऐसा देखो कि घर में न एक चुटकी चावल, न चूड़ा और न भूजा। मुदा, दही जम गया था तब तक।···सो, दही खाते समय उलाहना दे दिया—'कारी नहीं होती तो घर आकर रात में उपास ही करना पड़ता!' "

"तब? इसके बाद?"

"चोली रात में ही पहनी?"

"गुल रोगन का तेल भी लाया होगा?"

"तब? और भी कोई उलाहना दिया?"

"सहर जाकर आदमी की आवाज ही बदली है या···?"

झुमकी मुंह बनाकर मुस्करायी। पनभरनियां हँस पड़ीं, सभी। सभी की आंखों में झुमकी की लाल अँगिया की लाली तैरने लगी। सचमुच अँगिया पहनकर झुमकी का रूप खुल गया है!

दोपहर को पानी भरने आयी तो झुमकी के दोनों कानों में कुंडल लटक रहे थे।···झुमकी का रूप खुलता ही जाता है।

नहाने के समय औरतों और लड़कियों की भीड़ लग गयी। सभी ने झुमकी से 'मुनलैट साबुन' का झाग मांग-मांगकर देह में लगाया।···झुमकी अब रोज साबुन लगाकर नहायेगी? तब तो, एकदम मेमिन-बंगालिनों की तरह गोरी हो जायेगी? है कि नहीं?

अबेर में दुकान पर गयी—कपाल पर चकमक बिंदी लगाकर। राह में ही, बहुरी मौसी की गली में शिवधारी खड़ा था। झुमकी को देखकर सिहर गया, "एह! आब जीयब कोना···अब? अब मेरा क्या होगा?"

"धेत्त! राह चलते हँसी-दिल्लगी मुझे पसंद नहीं।"

···हँसी-दिल्लगी पसंद नहीं? मुंह बनाकर बड़बड़ाती हुई गयी। कहीं घर जाकर कह न दे! सुनते हैं कि शहर से नाम में सिंघ लगवाकर आया है। अच्छा, देखना है, कितने दिन तक यह गुमान? शहर का मलीदा खाया हुआ मरद गाँव में कब तक रहेगा?···इतने दिन का सब 'लिया-दिया, किया-धिया'—सब फुस?

दुकान पर उतने लोगों के बीच भी मोदियाइन ने बात को घुमा-फिराकर झुमकी से कहा, "तनि अपनी सास से होशियार रहना। अकेले में बेटा को फुसलाकर बस में करने के लिए इधर-उधर की बात न लगा दे, तुम्हारे

खिलाफ ! रुपया-पैसा न 'हथिया' ले बूढ़ी कहीं !"

झुमकी सदा की भाँति नयी बहुरिया की रीत निभाते हुए घूँघट के अंदर से ही बोली, "मौसी, कोई कुछ लगावे-बझावे। ऊपर भगवान् तो हैं ! टोला-समाज, अड़ोस-पड़ोस के लोग तो है ! यह भैंस न होती तो न जाने क्या नतीजा होता ? दो-दो बरस किस तरह खेपा है सो सभी जानते है !"

···झुमकी भी बात को घुमा-फिराकर कहना जानती है। सभी समझ गये, इस बात को शिवधारी की बात पर बैठायी गयी है। अर्थात् शिवधारी नहीं होता तो भैंस की चरवाही कौन करता ? रात की चरवाही 'ठट्ठा' नहीं।

झुमकी बोली, "पिछवाड़े मे दो धूर जमीन 'सर्वे' मे हुआ है, लेकिन जमीन होने से ही तो नही होता है, उसको जोतना-कोड़ना जनाना का काम तो नही !··· बीस रुपये की गोभी और प्याज-लहसुन दस रुपये का दो साल से हुआ—सो ऐसे ही नहीं।···इस गाँव में कैसे-कैसे 'जमामार लोग' है सो किसी से छिपा है ? लेने के समय दूध-दही मीठा लगता है और दाम देने के बेर खट्टा ! हाट-बाजार मे लोगों को 'पिठिया' कर दूध-दही का दाम वसूलते फिरना तो जनाना जात नहीं कर सकती !"

दुकान मे लौटते समय झुमकी बहरी मौसी के आँगन मे गयी। शिवधारी मुँह लटकाये, सुतली का 'ढेरा' घुमा रहा था। झुमकी तनिक विहँसकर बोली, "मैं तुम पर गुस्साई हूँ। सुबह से सभी लोग आये और तुम भैंस दूहकर बथान पर से ही क्यों भाग आये ?···सुबह से तुम्हारे बारे मे दस बार पूछ चुका है। नही जाओगे तो उसको कैसे मालूम होगा कि तुमने कैसे-कैसे दिन मे क्या-क्या किया है ? अपने जानते, जितना हो सका, मैंने कहा है।···तुमको डर काहे का लगता है ? साँच को आँच क्या ?"

झुमकी ने टोकरी से बीड़ी का एक 'मुट्ठा' निकालकर ओसारे पर रख दिया, "यह रही तुम्हारी बीड़ी-सुपारी।···मुँहचोर होकर रहोगे तो वह जो कुछ सुनेगा, पतिया लेगा।"

शिवधारी का तन-बदन झनझना उठा। लगा, जान लौट आयी।···नही, उसकी बुद्धि सचमुच थोड़ी मोटी है। झुमकी भौजी का गुस्सा जायज है !

···झुमकी के कान के कुंडल···लाल अँगिया···चकमक बिंदी···महमह महक देह की···जानलेवा हँसी !

शिवधारी की देह तप गयी···आग लग गयी हो जैसे !

शिवधारी ओसारे पर रखे बीड़ी के मुट्ठे से एक बीडी निकालकर सुलगाने लगा। उसका दिल अचानक बुझ गया···सब दिन ललचाती ही रही।···'कहीं भागी जा रही हूँ ?'

···अब तो भेंट-मुलाकात भी चोरी-चोरी ही कर सकता है वह।

शिवधारी बहुत देर तक बीड़ी का धुआँ उड़ाता रहा।

रामबिलास के 'मचान' पर सुबह से ही बीड़ी के धुएँ का गुब्बारा उड़ रहा है। रह-रहकर हँसी की लहरें आती हैं। एक-से-एक दिल को गुदगुदानेवाला किस्सा सुना रहा है, रामबिलास—पटनियाँ किस्सा !

···दो साल पहले, चैत महीने की आधी रात में गाँव छोड़कर चुपचाप भागा था रामबिलास—गाँव छोड़कर और मिसर की नौकरी छोड़कर, मिसर का करजा पचाकर।

···दूसरे दिन उसके मचान के पास और आँगन में ऐसी ही भीड़ लगी थी। उसकी माँ रो-रोकर लोगों को सुना रही थी, गौना के बाद से ही उसके लाड़ले बेटे बिलसिया की मति फिर गयी। पराये घर की बेटी ने आकर उसके पाले हुए सुग्गे को उड़ा दिया।

झुमकी घूँघट के अंदर से ही बुढ़िया को कोस रही थी और खूँटे पर बँधी भैंस रह-रहकर बहुत करुण सुर में पुकारती जाती थी—ऊँ-यें-यें-यें-ये-ये-हूँ-हूँ-हूँ !!

बूढ़े मिसर के सिपाही रामसिंघासन सिंघ ने कहा था, 'हम खूब समझते हैं। लीला पसार रही है दोनों ! बिलसिया चुपचाप नहीं भागा है। अपनी माँ-बीवी से सलाह करके 'घसका' है, गाँव छोड़कर। भागकर जायगा कहाँ?··· ई 'भैंसिया' तो मालिक के बथान पर जइबे करी, एक-न-एक दिन !'

"वह साला आजकल कहाँ है?···नौकरी छोड़कर चला गया क्या?" रामबिलास के इस सवाल को सुनकर सभी ने एक ही साथ अचरज प्रकट किया—"ओ-ओ-ओ ! तुमको नहीं मालूम ?"

पटनियाँ किस्सों के मुकाबले में एक 'गँवैया-घरैया' किस्सा सुनाने का मौका मिला है, घोतना को।

"हाँ-हाँ, सुनाओ तुम्हीं, घोतना।"

"रामबिलास भाय ! तुमने आज जैसी बहादुरी की है उससे बढ़कर मर्दानगी का काम किया पिछले साल, पछियारी टोली की मुसम्मात की नयी पुतोहू ने।··· जानते ही हो, सिधवा साला कैसा 'घरढुक्का' था ! गाँव में कोई नयी बहुरिया आयी कि उसकी नींद गयी।···बिलार की तरह घर में पैठकर, बिना 'छिका' को हिलाये ही दही के ऊपर की मलाई साफ कर देता था। लेकिन सब मलाई निकाला मुसम्मात की पुतोहू ने !···साले को ऐसा 'कसकसाकर' पकड़ा कि ऊपर-नीचे दोनों तरफ की हवा गुम !"

"एँ ?"

"पूछो, सभी से।···आखिर अररिया अस्पताल में औपरेशन करके 'बधिया' किया तब जाकर होम हुआ। सुनते हैं, अस्पताल का डागडर पूछता था कि कहीं चक्की के दो पाट में पड़ गया था क्या सिंघजी? सो, अस्पताल से निकलने के बाद इस गाँव की ओर मुंह नहीं किया, फिर। साला, एकदम बधिया! आ-आ-हा-हा···!"

"इस औरत को तो सरकारी तगमा मिलना चाहिए। सहर में होती तो अखबार में खबर 'औट' हो जाती, फोटो के साथ···।"

"फोटो कैसे औट होता?···कसकसाकर पकड़े हुए ही? हू-ब-हू?"

फोटो की बात पर रामबिलास को अपनी तसवीर की बात याद आयी। पॉकेट से लाइसेंस निकालकर दिखलाया। सभी ने बारी-बारी से हाथ में लेकर फोटोवाला रिक्शा-डलेवरी-लाइसेंस को देखा।···नहीं, रामबिलास झूठ नहीं कहता। लोगों ने झूठमूठ खबर उड़ा दी थी कि 'रूस्थान होटिल' में बर्तन माँजता है।···लोगों ने नहीं, उस दूबे के बड़े बेटे ने। जनेऊ की कसम खाकर कहता था कि हम अपने 'चसम' से देखा है, उसको।

शिवधारी को देखकर सभी चुप हो गये।···रामबिलास को 'लाट-साट' का किस्सा मालूम हुआ है या नहीं?' 'मालूम हुआ कि जान से खतम कर देगा।'' बात छिपेगी थोड़ी!

"क्या रे सिवधरिया! सुबह से कहाँ 'लापत्ता' थे?"

"जरा टिसन चला गया था भैया!"

जरूर घड़े का पानी फेंककर पानी भरने निकली है अभी रामबिलास की बहू!···शिवधारी की बोली सुनकर आँगन में कैसे रहे?

बहू पानी लेकर वापस आयी और घूंघट के अंदर से ही बोली, "अभी सहजो पीसी कह रही थी, तुम्हारे पिछवाड़े से मुसलमान-टोली की तरह महक क्यों आ रही है? मुर्गी का अंडा पकाया जा रहा है कहीं?"

रामबिलास ने जाने क्या समझा। बोला, "कल से यहाँ मुर्गा बनेगा, मुर्गा! देखें, कौन साला क्या बोलता है!···साला यह भी कोई जगह है? आलू की तरकारी में जरा-सा गरम मसाला डलवा दिया तो सारे गाँव में मुर्गी के अंडे की महक फैल गयी? बोलो!"

शिवधारी ने कहा, "इस गाँव की बलिहारी है! बिना पर की चिड़िया उडाने वाले बहुत लोग हैं।"

"सहर में सभी अपनी औरत को नाम लेकर बुलाते हैं। मैं अपनी बीवी को हजार नाम लेकर पुकारूँ, किसी साले का क्या?"

रामबिलास ने अपनी बहू को पुकारकर कहा, "ए झुमकी! सिवधरिया आया है। उसके लिए एक कुलफी चा भेज दो।"

आँगन में बहू ने सास से कहा, "माई ! सुनते हैं इस मरद की बोली-बानी !"

कमाऊ पूत की मस्ती देखकर, मसाले की गंध सूँघकर बूढ़ी प्रसन्न है। कहती है, "बोली बानी क्या सुनूँगी ? आदमी जहाँ रहेगा, चाल वहीं का चलेगा !"

"साला ! हम दिन-भर चा पीयें या रात-भर दारू पीयें, इससे लोगों का क्या ?—सिवधरिया, टिसन की कलाली में पचास दारू अमली मिलता है या पानी मिलाया हुआ ? आज दो बोतल चढ़ेगा।"

शिवधरिया दारू का हाल क्या जाने ! वह गाँजा के बारे में कह सकता है।

"ए झुमकी ! इधर आ !" तू एक हाथ घूँघट क्यों काढ़ती है ?"

झुमकी लजाकर आँगन की ओर भागी।

सब-कुछ हुआ। रामबिलास ने पटना में बैठकर जो-जो सपने देखे थे, सभी सच हुए।···मिसर का 'जहरदाँत' उसने उखाड़कर फेंका। गाँव में इस बात को लेकर रामबिलास का जै-जैकार हो रहा है। गाँव के हर घर में उसका नाम दिन में दस बार लिया जा रहा है।—बेटा हो तो ऐसा !···मरद हो तो ऐसा !

उसका मचान गाँव के मालिक मिसर का चौपाल हो गया है, मानो। अब बाभन-राजपूत टोले के जवान भी आकर बैठते हैं। दिन-भर चाय, बीड़ी, ताश और रात में 'अंग्रेजी ताश' !

उस दिन मिसर का बड़ा बेटा दिन-भर रामबिलास के मचान पर ताश खेलता रहा। साँझ हुई तो रामबिलास ने कहा, "अब यहाँ अंग्रेजी ताश का खेला होगा।···खेलियेगा ?···एक ही घूँट !"

मिसर का बड़ा बेटा अब रोज साँझ को पाव-भर पी जाता है और दाम पूरे बोतल का देता है।

गाँव के सभी नौजवान रामबिलास के साथ पटना जाना चाहते हैं, इस बार। रामबिलास के मुँह से चटकदार पटनियाँ किस्सा सुनकर गाँव कौन रहना चाहेगा, भला !

"···राजिन्दरनगर ? अब क्या बतावें कि कैसा है ? लगता है कि सरकारी इंजीनियर इंदरासन में जाकर फोटो खींच लाया है, हू-ब-हू वैसा ही सहर बसा दिया।···सड़क के दोनों ओर रंग-बिरंग के फूल। और हर फूल की झाड़ी में एक लड़की बैठी हुई···गीत गाती हुई !"

"एह ! तब तो सचमुच इंदरासन की इंदरसभा···!"

"अजी, जहाँ की जमादारिन···जमादारिन माने पुलिस-जमादार की बहू नहीं, सड़क पर झाड़ू देनेवाली···पटना की जमादारिन को देखोगे तो लगेगी किसी बड़े जमींदार की बहू है।"

"ऐसी खपसूरती ?"

"देखने में काली होने से क्या होता है ? असल चीज है, देह की गठन।···एक है रजबतिया। हमारे 'रिक्सा-खटाल' के पास ही रहती है। साली, सुबह-सुबह छापेदार साड़ी पहनकर, कंधे पर झाड़ू-डंडा का झंडा लेकर इस तरह ऐंठती हुई निकलती है जैसे राज जीतने जा रही है, झाड़ू देने नहीं।"

"एह !"

···भला कौन जवान रहना चाहेगा, इस मनहूस गाँव में ?

···रामबिलास भैया, इस बार आपके साथ मैं भी जाऊँगा।···मैं भी !···मैं भी !!···मैं भी !!!···यहाँ साल-भर हलवाही करते हैं, सिरफ एक सौ साठ रुपये में। वहाँ, एक महीना में दो सौ ?···रामबिलास काका, मैं भी !···रामबिलास पाहुन, मुझे मत भूलिएगा। रिक्सा-ठेलवरी नहीं तो किसी होटल में रखवा दीजिएगा। साला, हम चिनियाँ-बादाम बेचेंगे।···मामा, आप उस दिन कह रहे थे कि रद्दी कागज-सीसी-बोतल का कारबार भी खूब नफावाला होता है···।

एक शिवधरिया को छोड़कर सभी ने शहर जाने का इरादा पक्का कर लिया है। शिवधरिया ने कभी चर्चा भी नहीं की।

सब-कुछ हुआ, लेकिन रामबिलास के मन में एक छोटा-सा काँटा कई दिनों से 'खच-खच' कर गड़ जाता है—समय-असमय। उस रात झुमकी ने वैसा क्यों कहा ? क्यों ?···'सब ठीक है। मुदा···!'

'क्या मुदा ? बोल !'

···झुमकी आँखें मूंदकर हँसती है।

'आँख क्यों मूंद रखी है ?'

'लालटेन क्यों जलाकर रखे हो ? बुझा दो।'

रामबिलास ने अनचाहे लालटन की रोशनी मद्धिम कर दी। झुमकी बोली, 'नहीं, एकदम बुझा दो।'

···साली ! औरत है या चमगादड़ ?

शिवधारी गाँजा पीता है। बहुत जिद्द करने पर भी उसने किसी दिन दारू का एक घूंट नहीं लिया। चखने के लिए एक बूंद भी नहीं !

सुबह, नींद खुलने के बाद ही रात की बात मन में 'खचखचा' कर गड़ गयी, 'सब-कुछ ठीक है। मुदा···!!'

अब चार ही दिन रह गये हैं।···रमां-आं रहा एक दिन अवधि अधारा-आ-आ-आ रम्माँ हो रमां-आँ !···रामबिलास के मन में आजकल हमेशा एक बिदाई गीत—समदाऊन—गूंजता रहता है···मिली लेहु सखियो, दिवस भेल रतिया कि

चित भेल जग से उदा-आ-आ-आ-स !!

गाँव के सभी जानेवाले नौजवान कल स्टेशन-हाट से बाल कटवाकर आये है।···रामबिलास बोला था कि शहर में केश के फैशन से ही लोग समझ जाते है कि कहाँ का आदमी है।···सभी की देह की बोटी-बोटी में 'उछाह' है, लेकिन रामबिलास के मन में रह-रहकर काँटा गड़ जाता है।

···आज रात में वह झुमकी से फिर पूछेगा।

"झुमकी, अब तो यहाँ चार ही दिन रहना है।"

"हूँ-ऊँ-ऊँ !"

रामबिलास बहुत देर तक चुप रहा। तब बहू ने पूछा, "फिर कब आओगे ?"

"आने का क्या ठिकाना !"

आज रामबिलास ने दारू नही पी है। स्टेशन-हाट की पचास दारू एकदम खाँटी होता है, गांव के खाँटी दूध की तरह।···एक ही प्याली में नशा सिर पर सन्न से सवार हो जाता है।···आज अंग्रेजी ताश नहीं होगा, भाई !

रामबिलास की 'निरगुनियाँ-बोली' का कोई जवाब नहीं दिया झुमकी ने, लेकिन है जगी हुई ही।

"झुमकी !"

"हूँ !···आज तुम दारू क्यों नहीं पीये ?"

"आज सारी रात जगा रहूँगा।"

···सचमुच, सारी रात जगा रहा रामबिलास। भोर को जब कौआ-मैना बोलने लगा तो झुमकी ने कहा, "जरा मद्धिम आवाज में बोलो !"

अब तीन दिन 'फक्कत'। चौथे दिन साँझ को गाड़ी से—बरौनी पसिंजर से—बीसों जवान रवाना हो जायेंगे, एक शिवधारी को छोड़कर। कई दिन से वह भैंस भी दूहने नही आता है। रामबिलास खुद दूहता है।

"झुमकी !"

"क्या है ?"

"आज मैंने दारू नही, गाँजा पीया है। लगता है, आसमान मे उड़ रहा हूँ।"

"सिवधारी अब रात में भैंस नही चरावेगा। उसकी बहरी मौसी आकर कह गयी है।"

"मारो साले को गोली ! कल एक भैंसवार ठीक कर दूँगा।"

"भैंसवार कौन चरावेगा तुम्हारी भैंस ?"

"क्यो ?"

"सभी गिरस्तो के हलवाहे-चरवाहो को तुम भगाकर सहर ले जा रहे हो।"

"किसने कहा कि मै भगाकर ले जा रहा हूँ ?"

"गाँव के सभी गिरस्त बोलते हैं !"

"सभी गिरस्त नहीं। बोलता होगा, तुम्हारा वह सिवधरिया !"

झुमकी चुप रही। रामबिलास ने घुटने मे ठोकर मारते हुए कहा, "क्यों? ठीक कहता हूँ न?"

"जो कहो तुम।"

"मैं जो कहता हूँ, ठीक कहता हूँ।"

झुमकी ने एक लबी साँस ली।

"ठीक कहता हूँ न?"

"हूँ!"

"चौथे दिन से खूब मौज करना।"

"मैं मौज करूँ या दुःख से मरूँ, तुमको क्या? मौज करेगी रजबतिया-डोमिनियाँ तुम्हारे साथ।"

"क्या बोली?"

झुमकी चुप रही। रामबिलास ने फिर घुटने से एक ठोकर लगाकर पूछा, "क्या बोली?"

"मारना है तो जान से मार दो।"

"साली ! जाने के पहले तुमको और तुम्हारे सिवधरिया को खतम करके ही···।"

रामबिलास के सिर पर कोई भूत सवार है। आज वह दो चिलम गाँजा पीकर आया है।

"चिल्लाओ मत, इस तरह।"

"साली ! पटना का बड़ा-से-बड़ा बालिस्टर हमारी बोली को बद नही कर सकता और तुम कहती हो, चिल्लाओ मत !"

"तो चिल्लाते रहो।"

"आज तो मैंने दारू नही पी है। तू उधर मुँह फिराकर क्यो सोयी है? इधर पलट, तेरी···!"

"नहीं।"

"स्-स्-सा-ली !"

···आज रामबिलास खून कर देगा। चीर-फाड़कर रख देगा झुमकी को। "···क्या समझ लिया है?···ऍं?···रिक्सा-डलेवरी करने से आदमी जनखा हो जाता है?···ऐ?···बोल?···कहती है, सब झूठ है!···मिसर से चौगुने सूद पर करजा लेकर उस सिवधरिया ने तुमसे बिहा किया था?···ऍं?··· बोल ! चोप साली !···खा कसम !···क्या समझ लिया है? सहर में रहने से, दारू पीने से आदमी···चौप साली ! हम सब समझते हैं।"

झुमकी बहुत देर तक रोती रही। रामबिलास जब बिछावन छोड़कर उठने लगा तो झुमकी ने उसकी गंजी पकड़ ली।

"क्या है ?"

"तुम पटना मत जाओ।"

"क्या बकती है ?"

"हाँ, मैं पैर पड़ती हूँ, मत जाओ !"

"हुँ।···सहर नहीं जाऊँगा तो काम कैसे चलेगा ?"

"इतने लोगों का काम कैसे चलता है ?"

"उँहु !"

"तब मुझे भी साथ ले चलो।"

"और सिवधरिया ?"

झुमकी रोने लगी फूट-फूटकर। सूरज बाँस-भर ऊपर उग आया। बूढ़ी ने पुकारा—"बहू-ऊ-ऊ-ऊ !"

गाँव के सभी जवान एक ही साथ आसमान से गिरे। रामबिलास आज मिसर के दरबार में कह रहा था कि घर की आधी रोटी भली।···शहर में क्या है ? जितनी आमदनी होती है उससे चौगुना लहू खर्च होता है। गाँव आखिर गाँव है।···मिसरजी ने बाकी करजे का एक पाई भी सूद नहीं लिया। शहर में इस तरह कोई सूद छोड़ देता ?···पटना कहो या दिल्ली, जो मजा अपने गाँव में है, वह इंद्रासन में भी नहीं।

···सुना है, मिसर का बड़ा बेटा आँटा-धानी का मिल बैठावेगा। रामबिलास मैनेजरी करेगा उसका !

···सुना है, गाँव के गृहस्थों ने मिलकर चुपचाप रामबिलास को 'घूस' दिया है। सभी के हलवाहे-चरवाहे भागे जा रहे थे न !

···सुना है, रामबिलास पटना में एक डोमिन से फँस गया था, इसलिए अब नहीं जाना चाहता। डोमिन को बच्चा होने वाला है।

और चौथे दिन सभी ने सुना, शिवधारी गाँव छोड़कर भाग गया।···कल स्टेशन-हाट में दारू पीकर धुत्त था।

उसकी बहरी मौसी कह रही थी कि रामबिलास की बहू साँझ से आकर न जाने क्या फुसुर-फुसुर कह गयी और रात में ही शिवधरिया हवा हो गया।

रामबिलास ने कहा, "झुमकी, सुना वह सिवधरिया साला भाग गया !"

"दो कौड़ी रुपया मेरा लेकर भागा है।"

"तू पहले ही क्यों न बोली ? मुँह में क्या केला था ?"

"ऐसी नमकहरामी करेगा वह, सो कौन जानता था ?"

"तू आदमी को नहीं पहचानती !"

"कभी तो आवेगा मुँहझौंसा ! तब पूछूँगी।"

रामबिलास ने झुमकी को खींचकर छाती से लगा लिया। बाँहों में उसके सिर को भरकर बोला, "मारो साले को गोली ! वह साला सहर से बचकर कभी वापस नहीं आवेगा !···साले को दारू खा जायगा ! देखना !"

झुमकी हठात् उठ बैठी, "भैंस क्यों 'डिकर' रही है इस तरह ?"

रामबिलास ने कहा, "सुबह भैंसा की खोज में जाना होगा। भैंस 'उठ' गयी है, लगता है।"

आज झुमकी फिर नयी बहुरिया की तरह लजाकर मुस्कराती है। बिना पीये ही रामबिलास मतवाला हो गया।

"ऐ ! जरा दारू चखेगी ?·· बस, एक घूंट।"

झुमकी हंसने लगी—"नहीं !···नहीं !!···नहीं !!! मुझे दारू की बास··· उयेक्···ऊँ-हूँ-हूँ-हूँ !!"

एक आदिम रात्रि की महक

···न···करमा को नीद नही आएगी।

नये पक्के मकान में उसे कभी नींद नहीं आती। चूना और वार्निश की गंध के मारे उसकी कनपटी के पास हमेशा चौअन्नी-भर दर्द चिनचिनाता रहता है। पुरानी लाइन के पुराने 'इस्टिसन' सब हजार पुराने हों, वहाँ नींद तो आती है।···ले, नाक के अंदर फिर मुड़सड़ी जगी समुरी!···

करमा छींकने लगा। नये मकान में उसकी छीक गूंज उठी।

"करमा, नींद नही आती? बाबू ने कैंप खाट पर करवट लेते हुए पूछा।

गमछे से नथुने को साफ करते हुए करमा ने कहा, "यहाँ नीद कभी नही आएगी, मैं जानता था बाबू।"

"मुझे भी नीद नहीं आएगी।" बाबू ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "नयी जगह में पहली रात मुझे नींद नही आती।"

करमा पूछना चाहता था कि नये पोख्ता मकान में बाबू को भी चूने की गंध लगती है? कनपटी के पास दर्द रहता है हमेशा क्या?···बाबू कोई गीत गुनगुनाने लगे। एक कुत्ता गश्त लगाता हुआ सिगनल केबिन की ओर से आया और बरामदे के पास आकर रुक गया। करमा चुपचाप कुत्ते की नीयत को ताड़ने लगा। कुत्ते ने बाबू की खटिया की ओर थुथना ऊंचा करके हवा मे सूंघा। आगे बढ़ा। करमा समझ गया—जरूर जूताखोर कुत्ता है, साला!···नहीं, सिर्फ सूंघ रहा था। कुत्ता अब करमा की ओर मुड़ा। हवा सूंघने लगा। फिर मुसाफिरखाने की ओर दुलकी चाल से चला गया।···

बाबू ने पूछा, "तुम्हारा नाम करमा है या करमचंद या करमू?"

···सात दिन तक साथ रहने के बाद, आज आधी रात पहर में बाबू ने दिल खोलकर एक सवाल के जैसा सवाल किया है।"

"बाबू, नाम तो मेरा करमा ही है। वैसे लोगो के हजार मुँह हैं, हजार नाम कहते हैं।···निताय बाबू कोरमा कहते थे, घोस बाबू करीमा कहकर बुलाते थे,

सिंघजी ने सब दिन कामी ही कहा और असगर बाबू तो हमेशा करम-करम कहते थे। खुश रहने पर दिल्लगी करते थे—हाय मेरे करम !···नाम में क्या है बाबू ! जो मन में आये कहिये। हजार नाम···!"

"तुम्हारा घर संथाल परगना में है, राँची-हजारीबाग की ओर ?"

करमा इस सवाल पर अचकचाय जरा। ऐसे सवालों के जवाब देते समय वह रमता जोगी की मुद्रा बना लेता है। घर ? जहाँ धड़, वहीं घर। माँ-बाप—भगवान्‌जी !···लेकिन, लेकिन बाबू को ऐसा जवाब तो नहीं दे सकता।···

···बाबू भी खूब हैं। नाम का अरथ निकालकर अनुमान लगा लिया—घर संथाल परगना या राँची-हजारीबाग की ओर होगा, किसी गाँव में ? करमा का पर्व के दिन जन्म हुआ होगा, इसीलिए नाम करमा पड़ा। माथा, कपाल, होंठ और देह की गठन देखकर भी।···

···बाबू तो बहुत गुनी मालूम होते है। अपने बारे में करमा को कुछ मालूम नही। और बाबू नाम और कपाल देखकर सब-कुछ बता रहे है। इतने दिन के बाद एक बाबू मिले हैं, गोपाल बाबू के जैसा !

करमा ने कहा, "बाबू, गोपाल बाबू भी यही कहते थे। यह करमा नाम तो गोपाल बाबू का ही दिया हुआ है।"

करमा ने गोपाल बाबू का किस्सा शुरू किया—"गोपाल बाबू कहते थे, आसाम से लौटती हुई कुली गाड़ी में एक 'डोको' के अंदर तू पड़ा था, बिना 'बिल्टी-रसीद' के ही। लावारिस माल !"

···चलो, बाबू को नींद आ गयी। नाक बोलने लगी। गोपाल बाबू का किस्सा अधूरा ही रह गया।

···कुत्ता फिर गश्त लगाता हुआ आया। यह कार्तिक का महीना है न ! ससुरा पस्त होकर आया है। हाँफ रहा है।···ले, तू भी यहीं सोएगा ? उँह ! साले की देह की गंध यहाँ तक आती है—धेत्त ! धेत्त !

बाबू ने जगकर पूछा, "हूँ-ऊँ-ऊँ ! तब क्या हुआ तुम्हारे गोपाल बाबू का ?"

कुत्ता बरामदे के नीचे चला गया। उलटकर देखने लगा। गुर्राया। फिर, दो-तीन बार दबी हुई आवाज में 'बुफ-बुफ' कर जनाने मुसाफिरखाने के अंदर चला गया, जहाँ पैंटमान जी सोता है।

"बाबू, सो गये क्या ?"

···चलो, बाबू को फिर नींद आ गयी। बाबू की नाक ठीक बबुआनी आवाज में ही डाकती है। पैंटमान जी तो, लगता है, लकड़ी चीर रहे हैं !··· गोपाल बाबू की नाक बीन जैसी बजती थी—सुर में !···असगर बाबू का खर्राटा···सिंघजी फुफकारते थे और साहू बाबू नींद में बोलते थे—'ए, डाउन

दो, गाड़ी छोड़ा···!

'तार की घंटी ! स्टेशन का घंटा ! गार्ड साहब की सीटी ! इंजिन का बिगुल ! जहाज का भोंगा !···सैकड़ों सीटियाँ···बिगुल···भोंपा···भों-ओं-ओं-ओं···!'

·· हजार बार, लाख बार कोशिश करके भी अपने को रेल की पटरी से अलग नहीं कर सका, करमा। वह छटपटाया, चिल्लाया, मगर जरा भी टस से मस नहीं हुई उसकी देह। वह चिपका रहा। धड़धड़ाता हुआ इंजन गर्दन और पैरों को काटता हुआ चला गया।···लाइन के एक ओर उसका सिर लुढ़का हुआ पड़ा था, दूसरी ओर दोनों पैर छिटके हुए ! उसने जल्दी से अपने कटे हुए पैरों को बटोरा—अरे, यह तो एंटोनी गाट साहब के बरसाती जूते का जोड़ा है। गंबूट !—उसका सिर क्या हुआ ? धेत्त-धेत्त ! ससुरा नाक-कान चबा रहा है।···

"करमा !"

"धेत्-धेत् !···"

"उठ करमा, चाय बना !"

करमा फड़फड़ाकर उठ बैठा।···ले, बिहान हो गया। मालगाड़ी को 'थुरू पास' करके, पैटमान जी हाथ मे बेत की कमानी घुमाता हुआ आ रहा है।··· साला ! ऐसा भी सपना होता है, भला ? बारह साल मे, पहली बार ऐसा अजूबा सपना देखा करमा ने।

बारह साल मे एक दिन के लिए भी रेलवे लाइन से दूर नही गया करमा। इस तरह 'एकसिडंटवाला सपना' कभी नहीं देखा उसने !

करमा रेल कंपनी का नौकर नही। वह चाहता तो पोटर, खलासी, पैंटमान या पानी पांडे की नौकरी मिल सकती थी। खूब आसानी से रेलवे नौकरी में 'घूस' सकता था। मगर मन को कौन समझाए। मन माना नही। रेल कंपनी का नीला कुर्ता और इंजिन छाप बटन का शौक उसे कभी नही हुआ।

रेल कंपनी क्या, किसी की नौकरी करमा ने नही की। नाम-धाम पूछने के बाद लोग पेशे के बारे मे पूछते है। करमा जवाब देता है, "बाबू के 'साथ' रहते हैं।—एक पैसा भी मुसहरा न लेनेवाले को नौकर तो नहीं कह सकते।"

···गोपाल बाबू के साथ, लगातार पाँच वर्ष ! इसके बाद कितने बाबुओ के साथ रहा, यह गिनकर बतलाना होगा। लेकिन एक बात है···रिलिफिया बाबू को छोड़कर किसी सालटन बाबू के साथ वह कभी नही रहा।···सालटन बाबू माने किसी टिसन मे परमानटी नोकरी करनेवाला—फैमिली के साथ रहनेवाला !

···जा रे गोपाल बाबू ! वैसा बाबू अब कहाँ मिले ? करमा का माय-बाप, भाय-बहिन, कुल-परिवार, जो बुझाए, सब एक गोपाल बाबू !···बिना बिल्टी-

रसीद का लावारिस माल था, करमा। रेलवे अस्पताल से छुड़ाकर अपने साथ रखा गोपाल बाबू ने। जहाँ जाते, करमा साथ जाता। जो खाते, करमा भी खाता।...लेकिन आदमी की मति को क्या कहिए। रिलिफिया काम छोड़कर सालटनी काम में गये। फिर, एक दिन शादी कर बैठे।...बौमा...गोपाल बाबू की फैमिली—राम-ही-राम ! वह औरत थी? साच्छात चुड़ैल !...दिन-भर गोपाल बाबू ठीक रहते। साँझ पड़ते ही उनकी जान चिड़िया की तरह लुकाती फिरती...आधी रात को कभी-कभी इसपेसल पास करने के लिए बाबू निकलते। लगता, अमरीकन रेलवे इंजिन के बायलर में कोयला झोंककर निकले हैं।... करमा क्वाटर के बरामदे पर सोता था। तीन महीने तक रात में नींद नहीं आयी, कभी।...बौमा फों-फों करती—बाबू मिनमिनाकर कुछ बोलते। फिर शुरू होता रोना-कराहना, गाली-गलौज, मारपीट। बाबू भागकर निकलते और वह औरत झपटकर माथे का केश पकड लेती।...तब करमा ने एक उपाय निकाला। ऐसे समय में वह उठकर दरवाजा खटखटाकर कहता, "बाबू, इसपेसल का कल बोलना है।"...बाबू की जान कितने दिनों तक बचाता करमा?...बौमा एक दिन चिल्लायी, "ए छोकरा हरामजादा के दूर कोरो ! यह चोर है, चो-ओ-ओ-र !"

...इसके बाद से ही किसी टिसन के फैमिली क्वाटर को देखते ही करमा के मन में एक पतली आवाज गूँजने लगती है—चो-ओ-ओ-र ! हरामजादा ! फैमिली क्वाटर ही क्यों—जनाना मुसाफिरखाना, जनाना दर्जा, जनाना... जनाना नाम से ही करमा को उबकाई आने लगती है।

...एक ही साल में गोपाल बाबू को हाड़-गोड़ सहित चबाकर खा गयी, वह जनाना ! फूल जैसे सुकुमार गोपाल बाबू ! जिंदगी में पहली बार फूट-फूटकर रोया था, करमा।

...रमता योगी, बहता पानी और रिलिफिया बाबू ! हेडक्वाटर में चौबीस घंटे हुए कि परवाना कटा—फलाने टिसन का मास्टर बीमार है, सिकरिपोट आया है। तुरत जोआयेन करो।...रिलिफिया बाबू का बोरिया-बिस्तर हमेशा रेडी रहना चाहिए। कम-से-कम एक सप्ताह, ज्यादा-से-ज्यादा तीन महीने से ज्यादा किसी एक जगह में जमकर नहीं रह सकता कोई रिलिफिया बाबू !... लकड़ी के एक बक्से में सारी गृहस्थी बंद करके आज यहाँ, कल वहाँ।...पानी-पाड़ा से भातगाँव, कुरैठा से रौताड़ा। फिर, हेडक्वाटर, कटिहार !

...गोपाल बाबू ने ही घोस बाबू के साथ लगा दिया था—खूब भालो बाबू ! अच्छी तरह रखेगा। लेकिन, घोस बाबू के साथ एक महीना से ज्यादा नहीं रह सका, करमा। घोस बाबू की बेवजह गाली देने की आदत ! गाली भी बहुत खराब-खराब। माँ-बहन की गाली।...इसके अलावा घोस बाबू में कोई

ऐब नहीं था। अपने 'सर्वांग' की तरह रखते थे।···घोस बाबू आज भी मिलते हैं तो गाली से ही बात शुरू करते हैं, "की रे···करमा ? किसका साथ में है आज-कल मादर्चं···?"

···घोस बाबू को माँ-बहन की गाली देनेवाला कोई नहीं। नहीं तो समझते कि माँ-बहन की सुनकर आदमी का खून किस तरह खौलने लगता है। किसी भले आदमी को ऐसी खराब गाली बकते नहीं सुना है करमा ने आज तक।

···राम बाबू की सब आदत ठीक थी। लेकिन—भा-आ-री इश्की आदमी ! जिस टिसन में जाते, पैंटमान-पोटर-सूपर को एकांत में बुलाकर घुमुर-घुमुर दतियाते। फिर रात में कभी मालगोदाम की ओर तो कभी जनाना मुसाफिर-खाना में, तो कभी जनाना पैखाना···छि:-छि:···जहाँ जाते, छुलुआते रहते, "क्या जी, असल माल-वाल का कोई जोगाड़-जंतर नहीं लगेगा ?···" आखिर वही हुआ जो करमा ने कहा था—माल ही उनका काल हुआ। पिछले साल जोगबनी लाइन में एक नेपाली ने खुखरी से दो टुकड़ा काटकर रख दिया। और उड़ाओ माल !···जैसी अपनी इज्जत, वैसी परायी !

···सिंघजी भारी पुजेगरी ! सिया सहित राम-लछमन की मूर्ति हमेशा उनकी झोली में रहती थी। रोज चार बजे भोर से ही नहाकर पूजा की घंटी हिलाते रहते। उधर कल की घंटी बजती।···जिस घर में ठाकुरजी की झोली रहती, उसमें बिना नहाये कोई पैर भी नहीं दे सकता था।···कोई अपनी देह को उस तरह बाँधकर हमेशा कैसे रह सकता है ? कौन दिन में दस बार नहाए और हजार बार पैर धोए ! सो भी, जाड़े के मौसम मे !···जहाँ कुछ छूओ कि हूँ-हूँ-हूँ—हाँ-हाँ-हाँ—अरेरेरे—छू दिया न !···ऐसे छुतहा आदमी को रेल कंपनी में आने की क्या जरूरत !···सिंघजी का साथ नहीं निभ सका।

···साहू बाबू दरियादिल आदमी थे। मगर मदक्की ऐसे कि दिन-दोपहर को पचास दारू एक बोतल पीकर मालगाड़ी को थ्रू पास दे दिया और गाड़ी लड़ गई। करमा को याद है, एकसिडंट की खबर सुनकर साहू बाबू ने फिर एक बोतल चढ़ा लिया।···आखिर डाक्टर ने दिमाग खराब होने का सर्टिफिकिट दे दिया।

···लेकिन, उस एकसिडंट के समय भी किसी रात को करमा ने ऐसा सपना नहीं देखा !

···न···भोरे-भोर ऐसी कुलच्छन-भरी बात बाबू को सुनाकर करमा ने अच्छा नहीं किया। रेलवे की नौकरी मे अभी तुरत 'घुसवें' किये हैं।

···न···बाबू के मिजाज का टेर-पता अब तक करमा को नहीं मिला है। करीब एक सप्ताह तक साथ मे रहने के बाद, कल रात मे पहली बार दिल खोलकर दो सवाल-जवाब किया बाबू ने। इसीलिए सुबह को करमा ने दिल

बोलकर अपने सपने की बात शुरू की थी। चाय की प्याली सामने रखने के बाद उसने हँसकर कहा, "हँह, बाबू, रात में हम एक अ-जू-ऊ-ऊ-बा सपना देखा। धड़धड़ाता इंजन—लाइन पर चिपकी हमारी देह टस-से-मस नहीं" सिर इधर और पैर दोनों लाइन के उधर"'एटोनी गाट साहेब के बरसाती जूते का जोड़ा"' गबोट"'!"

"धेत्त ! क्या बेसिर-पैर की बात कहते हो, सुबह-सुबह ! गांजा-वांजा पीता है क्या ?"

'''करमा ने बाबू को सपने की बात सुनाकर अच्छा नहीं किया।

करमा उठकर ताखे पर रखे हुए आईने मे अपना मुंह देखने लगा। उसने अ-जू-ऊ-ऊ-बा कहकर देखा। छि., उसके होंठ तीतर की चोंच की तरह'''

"का करचमन ? का बन रहा है ?"

'''पानी पांड़े भला आदमी है। पुरानी जान-पहचान है इससे करमा की। कई टिसन में संगत मे संगत हुआ है। लेकिन, यह पैटमान लटपटिया आदमी मालूम होता है। हर बात में पुच-पुच कर हँसनेवाला।

"करमचन, बाबू कौन जाति के है ?"

"क्यों ? बंगाली है।"

"भैया, बंगाली में भी साढ़े बारह बरन के लोग होते है।"

"पानी पांडेजी, सो तो मैं नहीं जानता। मगर बहुत गुनी आदमी है। आपका नाम का मतलब निकालकर—चेहरा देखकर सब-कुछ बता देंगे''' लीजिए, घटी पड़ गयी जुबउजी गाड़ी की, और मेरी तरकारी अभी तक चढ़ी हुई है।"

पानी पांड़े जाते-जाते कह गया, "थोड़ी तरकारी रखना, करमचन !"

'' घर कहाँ ? कौन जाति ? मनिहारी घाट के मस्तान बाबा का सिखाया हुआ जवाब सभी जगह नहीं चलता—हरि के भजे सो हरि के होई ! मगर, हरि की भी जाति थी !'''ले, यह घटही गाड़ी का इंजन कैसे भेज दिया इस लाइन में आज ? सथाली बांसी जैसा पतली सीटी—सी-ई-ई !!

'''ले, पक्का ! एक भी पसिंजर नहीं उतरा इस गाड़ी से भी। काहे को इत्ता खर्चा करके रेल कंपनी ने यहाँ टिसन बनाया, करमा की बुद्धि में नहीं आता। फायदा ? बस, नाम ही आदमपुरा है—आमदनी नदारद। सात दिन में दो टिकट कटे है और सिर्फ पांच पसिंजर उतरे है, तिसमें दो बिना टिकट के।''' इतने दिन के बाद पंद्रह बोरा बैंगन उस दिन बुक हुआ। पंद्रह बैंगन देकर ही काम बना लिया, उस बूढ़े ने।'' उस बैंगनवाले की बोली-बानी अजीब थी। करमा से घुलकर गप करना चाहता था बूढ़ा। घर कहाँ ? कौन जाति ? घर में कौन-कौन है ?'''करमा ने सभी सवालों का एक ही जवाब दिया था—ऊपर की

ओर हाथ दिखलाकर ! बूढ़ा हँस पड़ा था।···अजीब हँसी !

···घटही गाड़ी ! सी-ई-ई-ई !!

करमा मनिहारी घाट टिसन में भी रहा है। तीन महीने तक एक बार, एक महीना दूसरी बार।···मनिहारी घाट टिसन की बात निराली है। कहाँ मनिहारी घाट और कहाँ आदमपुरा का यही पिद्दी टिसन !

···नयी जगह में, नये टिसन में पहुँचकर आसपास के गाँवों में एकाध चक्कर घूमे-फिरे बिना करमा को न जाने कैसा-कैसा लगता है। लगता है, अंध-कूप में पड़ा हुआ है।···वह डिसटन सिगनल के उस पार दूर-दूर तक खेत फैले हैं।···वह काला जंगल···ताड़ का वह अकेला पेड़···आज बाबू को खिला-पिलाकर करमा निकलेगा। इस तरह बैठे रहने से उसके पेट का भात नहीं पचेगा।···यदि गाँव-घर और खेत-मैदान में नहीं घूमता-फिरता, तो वह पेड़ पर चढ़ना कैसे सीखता ? तैरना कहाँ सीखता ?

···लखपतिया टिसन का नाम कितना जब्बड़ है ? मगर टिसन पर एक सत्तू-फरही की भी दुकान नहीं। आसपास में पाँच कोस तक गाँव नहीं। मगर, टिसन से पूरब जो दो पोखरे है, उन्हें कैसे भूल सकता है करमा ? आईना की तरह झलमलाता हुआ पानी।···बैशाख महीने की दोपहरी में घंटों गले-भर पानी में नहाने का सुख मुँह से कहकर बताया नहीं जा सकता।

···सुद्रा, कदमपुरा—सचमुच कदमपुरा है। टिसन से शुरू करके गाँव तक हजारों कदम के पेड़ हैं।···कदम की चटनी खाए एक युग हो गया !

···वारिसगंज टिसन बीच कस्बा में है। बड़े-बड़े मालगोदाम, हजारों गाँठ पाट, धान-चावल के बोरे, कोयला, सीमेंट-चूना की ढेरी ! हमेशा हजार लोगों की भीड़ ! करमा को किसी का चेहरा याद नहीं।···लेकिन टिसन से सटे उत्तर की ओर मैदान में तंबू डालकर रहनेवाले गदहावाले सगहिया डोमों की याद हमेशा आती है।···घाघरीवाली औरतें, हाथ में बड़े-बड़े कड़े, कान में झुमके··· नंगे बच्चे, कान में गोल-गोल कुंडलवाले मर्द !···उनके मुर्गे ! उनके कुत्ते !

···बथनाहा टिसन के चारों ओर हजार घर बन गए हैं। कोई परतीत करेगा कि पाँच साल पहले बथनाहा टिसन पर दिन-दोपहर को टिटही बोलती थी ?

···कितनी जगहों, कितने लोगों की याद आती है।···सोनबरसा के आम··· कालूचक की मछलियाँ···भटोतर का दही··· कुसियारगाँव का ऊख !

मगर सबसे ज्यादा याद आती है मनिहारी घाट टिसन की। एक तरफ धरती, दूसरी ओर पानी। इधर रेलगाड़ी, उधर जहाज। इस पार खेत-गाँव-मैदान, उस पार साहेबगंज-कजरोटिया का नीला पहाड़। नीला पानी—सादा बालू !···तीन एक, चार ! चार महीने तक तीसों दिन गंगा में नहाया है, करमा।

चार जनम तक श्राप का कोई असर तो नहीं होना चाहिए। इतना बढ़िया नाम शायद ही किसी टिसन का होगा—मनिहारी !···बलिहारी ! मछुवे जब नाव से मछलियाँ उतारते तो चमक के मारे करमा की आँखें चौंधिया जातीं।···

···रात मे, उधर जहाज चला जाता—धू-धू करता हुआ। इधर गाड़ी छक-छकाती हुई कटिहार की ओर भागती। अजू साहू की दूकान की झाँपी बंद हो जाती। तब घाट पर मस्ताना बाबा की मंडली जुटती।

···मस्ताना बाबा कुली कुल के थे। मनिहारी घाट पर ही कुली का काम करते थे। एक बार मन ऐसा उदास हो गया कि दाढ़ी और जटा बढ़ाकर बाबाजी हो गए। खजड़ी बजाकर निरगुन गाने लगे। बाबा कहते—घाट-घाट का पानी देखा—सब फीका। एक गंगाजल मीठा।···बाबा एक चिलम गाँजा पीकर पाँच किस्सा सुना देते। सब वेद-पुरान का किस्सा ! करमा ने ग्यान की दो-चार बोली मनिहारी घाट पर ही सीखीं। मस्तान बाबा के सत्संग मे। लेकिन गाँजा मे उसने कभी दम नही लगाया।···आज बाबू ने झुंझलाकर जब कहा, गाँजा-वाँजा पीते हो क्या—तो करमा को मस्तान बाबा की याद आई। बाबा कहते—हर जगह अपनी खुशबू-बदबू होती है !···इस आदमपुरा की गंध के मारे करमा को खाना-पीना नही रुचता।

···मस्तान बाबा को बाद देकर मनिहारी घाट की याद कभी नही आती।

करमा ने ताखे पर रखे आईने मे फिर अपना मुखड़ा देखा। उसने आँखें अधमुंदी करके दाँत निकालकर हँसते हुए मस्तान बाबा के चेहरे की नकल उतारने की चेष्टा की—मस्त रहो !···सदा आँख-कान खोलकर रहो।···धरती बोलती है। गाछ-बिरिच्छ भी अपने लोगों को पहचानते है।···कमल को नाचते-गाते देखा है, कभी ? रोते सुना है कभी अमावस्या की रात को ? है···है···ह् मस्त रहो !···

···करमा को क्या पता कि बाबू पीछे खड़ा होकर सब तमाशा देख रहे हैं। बाबू ने अचरज से पूछा, "तुम जगे-जगे खड़ा होकर भी सपना देखता है ?··· कहता है कि गाँजा नही पीता।"

सचमुच वह खड़ा-खड़ा सपना देखने लगा था। मस्तान बाबा का चेहरा बरगद के पेड़ की तरह बड़ा होता गया। उनकी मस्त हँसी आकाश में गूँजने लगी। गाँजे का धुआँ उड़ने लगा। गंगा मे लहरें आईं। दूर, जहाज का भोंपा सुनाई पड़ा—भों-ओं-ओ !

बाबू ने कहा, "खाना परोसो। देखूँ, क्या बनाया है ? तुमको लेकर तो भारी मुश्किल है।···"

मुंह का पहला कौर निगलकर बाबू करमा का मुंह ताकने लगे, "लेकिन खाना तो बहुत बढ़िया बनाया है।"

खाते-खाते बाबू का मन-मिजाज एकदम बदल गया। फिर रात की तरह दिल खोलकर गप करने लगे, "खाना बनाना किसने सिखलाया तुमको ? गोपाल बाबू की घरवाली ने ?"

···गोपाल बाबू की घरवाली ? माने बौमा ? वह बोला, "बौमा का मिजाज तो इतना खट्टा था कि बोली सुनकर कड़ाही का ताजा दूध फट जाए। वह किसी को क्या सिखावेगी ? फूहड़ औरत !"

"और यह बात बनाना किसने सिखलाया तुमको ?"

करमा को मस्तान बाबा की 'बानी' याद आई, "बाबू, सिखलाएगा कौन ? शहर सिखाए कोतवाली !"

"तुम्हारी बीवी को खूब आराम होगा ?"

बाबू का मन-मिजाज इसी तरह ठीक रहा तो एक दिन करमा मस्तान बाबा का पूरा किस्सा सुनाएगा।

"बाबू, आज हमको जरा छुट्टी चाहिए।"

"छुट्टी ! क्यों ? कहाँ जाएगा ?"

करमा ने एक ओर हाथ उठाते हुए कहा, "जरा उधर घूमने-फिरने···"

पैंटमान जी ने पुकारकर कहा, "करमा ! बाबू को बोलो, कल बोलता है।"

···तुम्हारी बीवी को खूब आराम होगा !···करमा की बीवी ! वारिसगंज टिसन···मगहिया डोमों के तंबू···उठती उमेरवाली छौंड़ी···नाक में नथिया··· नाक और नथिया में जमे हुए काले मैले···पीले दाँतों में मिस्सी !!

करमा अपने हाथ का बना हुआ हलवा-पूरी उस छौंड़ी को नहीं खिला सका। एक दिन कागज की पुड़िया में ले गया। लेकिन वह पसीने में भीग गया। उसकी हिम्मत ही नहीं हुई।···यदि यह छौंड़िया चिल्लाने लगे कि तुम हमको चुरा-छिपाकर हलवा काहे को खिलाता है ?···ओ, भइयों-यों-यों-यों-यों !!···

···बाबू हजार कहें, करमा का मन नहीं मानता कि उसका घर संथाल परगना या राँची की ओर कहीं होगा। मनिहारी घाट में दो-दो बार रह आया है, वह। उस पार के साहेबगंज-कजरोटिया के पहाड़ ने उसको अपनी ओर नहीं खींचा कभी ! और वारिसगंज, कदमपुरा, कालूचक, लखपतिया का नाम सुनते ही उसके अंदर कुछ झनझना उठता है। जाने-पहचाने, अचीन्हे, कितने लोगों के चेहरों की भीड़ लग जाती है ! कितनी बातें—सुख-दुःख की ! खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, नदी-पोखरे, चिरई-चुनमुन सभी एकसाथ टानते हैं, करमा को !

···सात दिन से उस जंगल का वह काला ताड़ का पेड़ उसको इशारे से बुला रहा है। जंगल के ऊपर आसमान में तैरती हुई चील आकर करमा को क्यों पुकार जाती है ? क्यों ?

रेलवे हाता पार करने के बाद भी जब कुत्ता नहीं लौटा तो करमा ने झिड़की

दी, "तू कहाँ जाएगा ससुर ? जहाँ जाएगा झाँव-झाँव करके कुत्ते दौड़ेंगे।···जा ! भाग ! भाग !!"

कुत्ता रुककर करमा को देखने लगा। धनखेतों के बीच से गुजरनेवाली पगडंडी पकड़कर करमा चल रहा है। धान की बालियाँ अभी फटकर निकली नहीं हैं।···करमा को हैडक्वाटर के चौधरी बाबू की गर्भवती घरवाली की याद आई। सुना है, डॉक्टरनी ने अंदर का फोटो लेकर देखा है—जुड़वाँ बच्चा है पेट में।

···इधर हथिया नच्छत्तर अच्छा झरा था। खेतों में अभी पानी लगा हुआ है।···मछली ?

···पानी मे माँगुर मछलियों को देखकर करमा की देह अपने-आप बँध गई। वह साँस रोककर चुपचाप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे खेत की मेड़ पर चला गया। मछलियाँ छलमलाईं। आईने की तरह थिर पानी अचानक नाचने लगा। ···करमा क्या करे ?···उधर की मेड़ से सटाकर एक छेका देकर पानी को उलीच दिया जाए तो···?

···है है—है है ! साले ! बन का गीदड़ जाएगा किधर ? और छलमलाओ! ···अरे, काँटा करमा को क्या मारता है ? करमा नया शिकारी नहीं।

आठ माँगुर और एक गरई मछली ! सभी काली मछलियाँ ! कटिहार हाट में इसी का दाम वेखटके तीन रुपया ले लेता।···करमा ने गमछे में मछलियों को बाँध लिया। ऐसा संतोख उसको कभी नहीं हुआ, इसके पहले। बहुत-बहुत मछली का शिकार किया उसने !

एक बूढ़ा भैंसवार मिला जो अपनी भैंस को खोज रहा था, "ए भाय ! उधर किसी भैंस पर नजर पड़ी है ?"

भैंसवार ने करमा से एक बीड़ी माँगी। उसको अचरज हुआ—कैसा आदमी है, न बीड़ी पीता है, न तंबाकू खाता है। उसने नाराज होकर जिरह करना शुरू किया, "इधर कहाँ जाना है ? गाँव मे तुम्हारा कौन है ? मछली कहाँ ले जा रहे हो ?"

···ताड़ का पेड़ तो पीछे की ओर ही धसकता जाता है। करमा ने देखा, गाँव आ गया। गाँव में कोई तमाशावाला आया है। बच्चे दौड़ रहे हैं। हाँ, भालू-वाला ही है। डमरू की बोली सुनकर करमा ने समझ लिया था।

···गाँव की पहली गंध का पहला झोंका !

··· गाँव का पहला आदमी। वह बूढ़ा गोभी को पानी से पटा रहा है। बाल सादा हो गए हैं, मगर पानी भरते समय बाँह में जवानी ऐंठती है।···अरे, यह तो वही बूढ़ा है जो उस दिन बैंगन बुक कराने गया था और करमा से घुल-मिल-कर गप करना चाहता था। करमा से खोद-खोदकर पूछता था—माय-बाप है

नहीं या माय-बाप को छोड़कर भाग आए हो? ···ले, उसने भी करमा को पहचान लिया!

"क्या है भाई? इधर किधर?"

"ऐसे ही। घूमने-फिरने···।···आपका घर इसी गांव में है?"

बूढ़ा हँसा। घनी मूँछे खिल गई। बूढ़ा ठीक सत्तो बाबू टीटी के बाप की तरह हँसता है।

एक लाल साड़ी वाली लड़की हुक्के पर चिलम चढ़ाकर फूंकती हुई आयी। चिलम को फूंकते समय उसके दोनों गाल गोल हो गए थे। करमा को देखकर वह ठिठकी। फिर गोभी के खेत के बाड़े को पार करने लगी। बूढ़े ने कहा, "चलो बेटी, दरवाजे पर ही हम लोग आ रहे है।"

बूढ़ा हाथ-पैर धोकर खेत से बाहर आया, "चलो।"

लड़की ने पूछा, "बाबा, यह कौन आदमी है?"

"भालू नचानेवाला आदमी।"

"धेत्त!"

करमा लजाया।···क्या उसका चेहरा-मोहरा भालू नचानेवाले जैसा है? बूढ़े ने पूछा, "तुम रिलिफिया बाबू के नौकर हो न?"

"नही, नौकर नहीं।···ऐसे ही साथ मे रहता हूँ।"

"ऐसे ही? साथ मे? तलब कितना मिलता है?"

"साथ मे रहने पर तलब क्या मिलेगा?"

···बूढ़ा हुक्का पीना भूल गया। बोला, "बस? बेमतलब का ताबेदार?"

बूढ़े ने आंगन की ओर मुंह करके कहा, "मरमतिया! जरा माय को भेज दो यहाँ। एक कमाल का आदमी···।"

बूढ़ी टट्टी की आड में खड़ी थी। तुरत आयी। बूढ़े ने कहा, "जरा देखो, इस किल्लाठोग जवान को! पेट भर भात पर खटता है।···क्यों जी, कपड़ा भी मिलता है?···इसी को कहते है—गटमाधोराम मर्द!"

···आंगन में एक पतली खिलखिलाहट।···भालू नचानेवाला कहीं पड़ोस में ही तमाशा दिखा रहा है। डमरू के इस ताल पर भालू हाथ हिला-हिलाकर थब्बड़-थब्बड़ नाच रहा होगा—थुथना ऊँचा करके।···अच्छा जी भोलेराम, नाच तो खूब बनाया, तैंने। अब एक बार दिखला दे कि फूहड़ औरत गोद में बच्चा को सुलाकर किस तरह ऊँघती है।···वाह जी भोलेराम!

···सैकड़ों खिलखिलाहटें!!

"तुम्हारा नाम क्या है जी? मरमचन? वाह, नाम तो खूब सगुनिया है। लेकिन काम? काम चूल्हचन?"

करमा ने लजाते हुए बात को मोड़ दिया, "आपके खेत का बैंगन बहुत बढ़िया

है। एकदम घी जैसा···" बूढ़ा मुस्कराने लगा।

और बूढ़ी की हँसी करमा की देह में जान डाल देती है। वह बोली, "बेचारे को दम तो लेने दो। तभी से रगेट रहे हो।"

"मछली है ? बाबू के लिए ले जाओगे ?"

"नहीं। ऐसे ही···रास्ते मे शिकार···।"

"सरसतिया की माय ! मेहमान को चूड़ा भूनकर मछली की भाजी के साथ खिलाओ।··एक दिन दूसरे के हाथ की बनाई मछली खा लो जी !"

जलपान करते समय करमा ने सुना—कोई पूछ रही थी, "ए, सरसतिया की माय ! कहाँ का मेहमान है ?"

"कटिहार का।"

"कौन है ?"

"कुटुम ही है।"

"कटिहार मे तुम्हारा कुटुम कब से रहने लगा ?"

"हाल से ही।"

···फिर एक खिलखिलाहट ! कई खिलखिलाहट !!

···चिलम फूंकते समय सरसतिया के गाल मौसम्बी की तरह गोल हो जाते हैं। बूढ़ी ने दुलार-भरे स्वर मे पूछा, "अच्छा ए बबुआ ! तार के अंदर से आदमी की बोली कैसे जाती है ? हमको जरा खुलासा करके समझा दो।"

चलते समय बूढ़ी ने धीरे से कहा, "बूढ़े की बात का बुरा न मानना। जब से जवान बेटा गया, तब से इसी तरह उखड़ी-उखड़ी बात करता है···कलेजे का घाव···।"

"एक दिन फिर आना।"

"अपना ही घर समझना।"

लौटते समय करमा को लगा, तीन जोड़ी आँखें उसकी पीठ पर लगी हुई हैं। आँखें नहीं—डिसटन सिगनल, होम सिगनल और पैट सिगनल की लाल-लाल, गोल-गोल रोशनी !!

जिस खेत मे करमा ने मछली का शिकार किया था उसकी मेड़ पर एक ढोंढा साँप बैठा हुआ था। फों-फों करता हुआ भागा।···हद है ! कुत्ता अभी तक बैठा उसकी राह देख रहा था। खुशी के मारे नाचने लगा करमा को देखकर।

रेलवे हाता में आकर करमा को लगा, बूढ़े ने उसको बनाकर ठग लिया। तीन रुपये की मोटी-मोटी माँगुर मछलियाँ एक चुटकी चूड़ा खिलाकर, चार खट्टी-मीठी बात सुनाकर···

···करमा ने मछली की बात अपने पेट मे रख ली। लेकिन बाबू तो पहले से ही सब-कुछ जान लेनेवाले 'अगरजानी' है। दो हाथ दूर से ही बोले, "करमा,

तुम्हारी देह से कच्ची मछली की बास आती है। मछली ले आए हो ?"

···करमा क्या जवाब दे अब ? जिंदगी में पहली बार किसी बाबू के साथ उसने विश्वासघात किया है।···मछली देखकर बाबू जरूर नाचने लगते।

पंद्रह दिन देखते-देखते ही बीत गए।

अभी रात की गाड़ी से टिसन के सालटन मास्टर बाबू आए हैं ···बाल-बच्चों के साथ। पंद्रह दिन से चुप फैमिली क्वाटर में कुहराम मचा है। भोर की गाड़ी से ही करमा अपने बाबू के साथ हैडक्वाटर लौट जाएगा···इसके बाद, मनिहारी घाट !

···न···आज रात भी करमा को नींद नहीं आएगी। नहीं, अब वार्निश-चूने की गंध नहीं लगती।···बाबू तो मजे मे सो रहे है।बाबू सचमुच में गोपाल बाबू जैसे हैं। न किसी जगह से तिल-भर मोह, न रत्ती-भर माया।···करमा क्या करे ? ऐसा तो कभी नही हुआ···एक दिन फिर आना। अपना ही घर समझना।···कुटुम हैं···पेटमाधोराम मर्द !

···अचानक करमा को एक अजीब-सी गंध लगी। वह उठा। किधर से यह गंध आ रही है ? उसने धीरे से प्लेटफार्म पार किया। चुपचाप सूँघता हुआ आगे बढ़ता गया।···रेलवे लाइन पर पैर पड़ते ही सभी सिगल—होम, डिसटन और पैंट—जोर-जोर से बिगुल फूंकने लगे।···फैमिली क्वाटर से एक औरत चिल्लाने लगी—"चो-ओ-ओ-र !" वह भागा। एक इंजिन उसके पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा है।···मगहिया डोम की छौड़ी !···तंबू में वह छिप गया।···सरसतिया खिलखिलाकर हँसती है। उसके झबरे केश, बेनहाई हुई देह की गंध करमा के प्राण में समा गयी।···वह डरकर सरसतिया की गोद में···नहीं, उसकी बूढ़ी माँ की गोद मे अपना मुँह छिपाता है।···रेल और जहाज के भोंपे एक साथ बजते हैं। सिगल की लाल-लाल रोशनी···।

"करमा, उठ ! करमा, सामान बाहर निकालो।"

···करमा एक गंध के समुद्र में डूबा हुआ है। उसने उठकर कुरता पहना। बाबू का बक्सा बाहर निकाला। पानी पांडे ने 'कहा-सुना माफ करना' कहा। करमा डूब रहा।

···गाड़ी आई। बाबू गाड़ी में बैठे। करमा ने बक्सा चढ़ा दिया···वह सरवेंट दर्जा में बैठेगा। बाबू ने पूछा, "सब-कुछ चढ़ा दिया तो? कुछ छूट तो नही गया ?"

····"नहीं, कुछ छूटा नही है।" गाड़ी ने सीटी दी। करमा ने देखा, प्लेटफार्म पर बैठा हुआ कुत्ता उसकी ओर देखकर कूं-कूं कर रहा है।···बेचैन हो गया कुत्ता !

"बाबू !"

"क्या है ?"

"मैं नहीं जाऊँगा।" करमा चलती गाड़ी से उतर गया। धरती पर पैर रखते ही ठोकर लगी। लेकिन सँभल गया।

आत्म-साक्षी

भात की हाँड़ी से उबले हुए आलुओं को निकालकर छील रहा था गनपत, कि बाहर किसी ने खखासकर अपने आने की सूचना दी—सूचना नहीं, चेतावनी। उसने पूछा, "कौन है ?"

"कौन है अंदर ? गनपतजी ?...इधर ऑफिस में अँधेरा क्यों है ? लालटेन दे जाइए इधर।"

गनपत को अचरज हुआ। कॉमरेड बलरामजी कब आये पटना से ? और कॉमरेड लोग अभी रैली से लौटे नहीं। बलरामजी कब और कैसे लौट आये ?

उसने आलू की कटोरी को थाली से ढँक दिया और लालटेन लेकर बाहर आया।

"लाल सलाम, साथी ! कहिए रैली का कुशल-समाचार !"

बलराम का लटका हुआ मुँह देखकर गनपत का हुलसा हुआ मन अचानक बैठ गया। बलराम की विकृत मुखमुद्रा को देखकर उसका जी धड़का।...लक्षण अच्छे नही।

"ऑफिस खोलिए जरा।"

गनपत ने मन-ही-मन कहा, 'जरा क्यो ! पूरा ही खोल देता हूँ। मुंह-नाक इस तरह सिकोड़कर क्यो बतियाते हैं ?'...पटना एक बार पहुँचते ही साथियों को न जाने क्या हो जाता है !

उसने ऑफिस नामक झोंपड़ी का दरवाजा खोल दिया। कई दिन से बंद कमरे से एक गुमी हुई गध निकली। लालटेन की रोशनी दो-तीन बार भुकभुका-कर काँपने लगी।

बलरामजी ने अपने मुंह को और भी बिगाड़कर कहा, "लालटेन में तेल है या पानी ? एक चिमनी क्यों नही खरीद लेते ?"

गनपत को भात की याद आयी। ठंडा भात वह नहीं खा सकता। खाते ही 'बाय' उखड़ जाता है। उसने रसोईघर की ढिबरी जलाते हुए कहा, "तेल और

चिमनी की बात पूछते हैं कॉमरेड, तो पहले हमको भोजन कर लेने दीजिए, तब जवाब देंगे।···आप चाह-चू पीजिए तो बोलिए, पानी चढ़ा दे। चूल्हे में आग है। पुड़िया में थोड़ी पत्ती और कागजी नीबू भी है।"

चूल्हे पर अलमूनियम की काली देगची चढ़ाकर गनपत ने जलावन को धधकाया और आलू निकालकर छीलने लगा।···आलू का भुर्ता और गरम-गरम भात! गनपत के लिए इससे बढ़कर लोभनीय पदार्थ इस संसार में और कुछ नहीं। कुसमी कहती है कभी-कभी, 'भुता खौका मरद!' और गनपत हँसकर जवाब देता है, 'भतारखौकी!' बलरामजी ने 'खखास' कर चेतावनी दी थी उस समय। यदि अंदर कुसमी होती उस समय तो गनपत का चेहरा लाल हो जाता और वह जोर-जोर से बेवजह कुसमी को डाँटने लगता—'काम करने का मन नहीं है तो छोड़ दो। जैसे तुम्हारा बेटा कामचोर, वैसी ही तुम।' कुसमी हँसती हुई घूंघट के नीचे से जवाब देती···।

भुर्ता बनाते समय गनपत को आज के अखबार में पढ़ी हुई बात याद आयी—'हमारे जवानों ने दुश्मनों के टैंकों का भुर्ता बना डाला···।'

तेल, प्याज, मिर्च और धनिया की कतरी हुई पत्ती को भुर्ता में मिलाकर उसने गोला तैयार किया। पीतल की चमचमाती हुई थाली में भात डालते समय भाप की महक उसके तन-मन में समा जाती है। भात की यह ललचानेवाली गंध उसे सबसे पहले सन् तीस में लगी थी—स्वयंसेवक शिविर में। तब से आज तक न जाने कितने आश्रम, शिविर, रैली, सम्मेलन और जेलों के सामूहिक भोजनालयों में गनपत ने पत्तल जूठा किया है मगर ऐसी गंध क्या हर जगह और हर रोज मिलती है?

तृप्तिपूर्वक पेट-भर भोजन कर लेने के बाद गनपत ने जूठी थाली और जूठे चौके को माँज-धोकर पवित्र किया। सुबह कुसमी आकर चिकनी मिट्टी से लीप-पोत देगी। उसने पुकारकर कहा, "शोभितलाल! भात ले जा रे!"

काठ के बक्स से प्याली निकालकर बलरामजी के लिए नीबूवाली चाय तैयार की गनपत ने। फिर भुने हुए सौंफ की बुकनी मुँह में डालकर, हाथ में चाय की प्याली लेकर वह ऑफिस घर में आया। सौंफ की बुकनी के अलावा किसी किस्म की लत नहीं है गनपत को। न बीड़ी-सिगरेट पीता है, न पान-तंबाकू खाता है।

चाय की पहली चुस्की लेते ही बलरामजी का बिगड़ा हुआ मुखड़ा सुधर गया। चमड़े के थैले में कागज-पत्तर डालते हुए बलरामजी ने पूछा, "आप खुद क्यों खाना बनाते हैं? शोभित की माँ क्या करती है?"

गनपत कूट-भरी बोली का मतलब समझता है। अर्थात् तीन रुपये महीना शोभित को और पाँच रुपये माहवार उसकी माँ कुसमी को किस काम के लिए दिए जाते हैं?

बलरामजी ने दूसरा सवाल किया, "तब ?···इधर कुछ चंदा-फंदा वसूल हुआ है, या···?"

गनपत ने डकार लेते हुए कहा, "वही तो कह रहा था, कॉमरेड···!"

बलराम ने टोक दिया, "देखिए, आप इस तरह बात-बात में कॉमरेड जोड़कर क्यों बोलते हैं ?"

"कॉमरेड को कॉमरेड न कहें तो क्या कहें ? और यह कुछ नयी बात तो नहीं। सन् तीस से ही जब से 'पाटी' का प्लेज लिया, तभी से कॉमरेड···।"

"तब की बात छोड़िए। आजकल कोई नहीं बोलता।···आपकी बोली सुनकर लोग हँसते हैं, इसी के चलते।"

"इसमें हँसने की क्या बात है ?"

"खैर, बहस छोड़िए। आपसे बहस में कौन पार पायेगा ? हाँ, तो क्या कह रहे थे आप चंदा के बारे में ?"

"कहना क्या है ? पिछले छः महीने से साहू की दुकान का बकाया बढ़ते-बढ़ते ढाई सौ पर पहुँच गया है। जिला रैली के समय टीसन के मारवाड़ी का पचास रुपया बकाया अब तक चुकता नहीं हुआ। पाट के समय चंदा की उम्मीद थी। मगर भुखमरी के समय कौन माँगता है—और कौन देता है चंदा ? अब धान का समय आया है तो सभी कॉमरेड साथी महीना-भर से 'फिड़ाड़' हैं···"

बलराम चौंका, "फिरार ? कौन है फिरार ?"

गनपत मुस्कराकर बोला, "फिड़ाड़ माने वह फिड़ाड़ नहीं। माने अभी सभी कॉमरेड क्षेत्र से बाहर हैं।"

बलरामजी गंभीर हो गये। उठते हुए बोले, "गनपतजी, आप ठीक कहते हैं। लगता है, सभी अब फिरार हो जायेंगे।"

"मतलब ?"

"मतलब आप समझकर क्या कीजियेगा। वह सब 'हाई लेवेल' और 'सिद्धांत की लड़ाई' की बात आप क्या समझिएगा ?"

गनपत और कुछ समझे या नहीं, आदमी के मन की बात को पढ़ना जानता है। बलरामजी की बात में उसको एक खास किस्म की 'झास' लगी।···आलू के भुर्ते में खराब तेल की गंध ?

हाई लेबेल ! बलराम अंग्रेजी पढ़ा-लिखा नहीं है तो क्या ? सैकड़ों अंग्रेजी के शब्दों का मतलब वह समझता है। बोलता है—केपिटलिस्ट, बुर्जुआ, प्रोलेतारियत, कुलक, रिएक्शनरी, गाँधियाइट, पीस, पार्टी-लिटरेचर, और भी अनेक शब्द।

बलरामजी ही नहीं, सभी 'नये कॉमरेड' गनपत को तीन कौड़ी का आदमी भी नहीं समझते हैं। अभी साथी जियाउद्दीन या शैलेन्द्रजी अथवा गोपालजी

होते तो क्या किसी रैली से या मीटिंग से लौटकर इसी तरह मुंह लटकाकर, भौंह चढ़ाकर बातें करके घर चले जाते—बीवी के पास सटकर सोने ? ऑफिस सेक्रेटरी बलरामजी का जब से गौना हुआ है, सूरज डूबने के पहले ही ऑफिस बंद करके घर भाग जाते हैं ।

इधर कई वर्षों से गनपत को लगता है कि हर तरफ एक मनहूसियत घनी होकर छा रही है । कहीं किसी के मन में किसी बात के लिए उत्साह नहीं । आखिर यह रोग गनपत की 'पार्टी' को भी लग गया ? इस बार जिला कांफ्रेंस में वह जी खोलकर इस सवाल को पेश करेगा ।

वह जानता है कि सवाल पेश करने के लिए वह ज्यों ही उठेगा, नवतुरिया कॉमरेड लोग आपस में फुसफुसाकर मुस्कराने लगेंगे, कपट-खाँसी खाँसेंगे, और कोई-कोई चिल्लाकर कहेंगे, 'कॉमरेड गनपत ! यह सवाल कलचरल प्रोग्राम के समय स्टेज पर पेश कीजियेगा ।'

"हूँ ! स्टेज पर ! स्टेज···।"

उँगलियों पर जोड़ने की जरूरत नहीं । गनपत का सब-कुछ जोड़ा हुआ है । पैंतीस साल पहले वह सबसे पहले आर्यसमाजी सभा-मंच पर खंजड़ी बजाकर 'अछूतोद्धार वाला गीत' गाने के लिए खड़ा हुआ था ।

उस सभा की याद आते ही परबतिया की याद आ जाती है, जिसके हाथ का पानी पीने से जाति मारी जाये, प्रेम में पड़कर गनपत ने 'नीच कुल' की उसी परबतिया के मुंह का 'चुम्मा' लिया था । 'सत्त' किया था—सब-कुछ छूट जाये, परबतिया को वह कभी नहीं छोड़ेगा । जाति-समाज के अलावा घर के लोगों ने गनपत को तरह-तरह की यातनाएँ दीं । गनपत ने हारकर आर्यसमाज के मंत्री के पास अरजी दी । लेकिन तब तक परबतिया का बाप परिवार सहित गाँव छोड़कर भाग गया था ।

गनपत फिर लौटकर घर नहीं गया, गाँव नहीं गया । माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुंब-परिवार, गाँव-समाज—सबसे 'नेह-छोह' तोड़कर 'देश' और 'दस' के काम में लग गया । जहाँ कहीं भी सभा होती, गनपत सबसे पहले हाथ में खंजड़ी लेकर गीत शुरू कर देता—'हिंदुओ ! दिल में सोचो-विचारो जरा—अपने भाई से नफरत···।'

और सन् तीस में इसी गीत को गाने के अपराध में वह पकड़ा गया, जेल गया, सजा भोगी । उसी बार जेल में ही सरमाजी की कृपा से वह कॉमरेड हो गया···।

सरमाजी ने उसकी 'टिक्की' को दाढ़ी बनानेवाली 'पत्ती' से कतर दिया था और जनेऊ को उतारकर पैजामा में फँसा दिया था और बोले थे, 'आज से तुम कॉमरेड गनपत । सिंघ-उंघ कुछ भी नहीं । सिर्फ कॉमरेड···।'

याद है, बावनदास और चुन्नीदास ने मिलकर गनपत को कितना 'धिक्कारा था ! मगर वह टस-से-मस नहीं हुआ। उसने बावनदास को चिढ़ाने के लिए सरमाजी से सीखा हुआ सवाल पेश कर दिया था—'बावनदासजी, चर्खा चलाने और बकरी का दूध पीने से सुराज कैसे मिलेगा, समझा दीजिए जरा।'

जेल से निकलने के बाद सारे जिले में गनपत ही अकेला 'पार्टी कॉमरेड' रहा कई वर्षों तक। एक ही साल में बिहार प्रांत के कई 'किसान फ्रंट' और मजदूर-मोर्चों पर पहुँचकर गनपत ने मेहनतकशों की लड़ाई में साथ दिया, नारा लगाया, धरना दिया, खँजड़ी बजाकर गीत गाये, अछूतोद्धार के बदले सरमाजी का सिखाया हुआ 'अंतर्राष्ट्रीय गीत' गाया—'उग रहा है आफताब लाल-लाल आफताब··· जाग रे किसान भाई, जाग ! जाग रे मजदूर भाई, जाग···!'

वैष्णव माँ-बाप का बेटा गनपत ! जन्म से ही वैष्णव था। जिसको कहते हैं 'गर्भदास'। सो सरमाजी ने जब परीक्षा ली तो वह खरा उतरा।···मुर्गी का अंडा नहीं, बिना किसी घृणा और संकोच के वह 'मुर्गमुसल्लम' खा गया था। सरमाजी बोले थे, 'शाबाश कॉमरेड ! तुम जन्मजात इंकलाबी हो !'

स्कूल-कॉलेज के फेलियर लौंडे-लहेंगड़े क्या समझेंगे कि कॉमरेडशिप किसको कहते हैं !···डेहरी ऑफिस में सात साथियों के बीच बस दो पाजामे, तीन हाफ-पैंट और एक ही धोती। और उसी में सभी साथी मजे में काम चला लेते थे। सप्ताह-भर सत्तू घोलकर पीते थे, प्रेम से मिल-जुलकर।···अब तो हर रैली के समय पत्तल पर ही 'इंकलाब' छेड़ देते हैं साथी लोग, 'यह क्या बात है? खाने के समय कोई खाये पुआ-पूड़ी, कोई भूजा फाँके ? अन्याय है ! जुल्म है !'

आज किसी साथी से सभा का ऐलान करने को कहिए, बिना जीप और लाउडस्पीकर के। तुरत तमककर जवाब देगा, 'हम क्या 'भोलटियर' हैं ?' अपनी पार्टी की सभा का ऐलान करने में इन्हें लाज आती है। पार्टी का झंडा कंधे पर लेकर चलने में इज्जत चली जाती है। गनपत ने अकेले ढोल बजाकर मुनादी और ऐलान किया है, 'भाइयो ! देश की गरीबी को दूर करने के लिए, पूँजीवाद का खात्मा करके किसानों और मजदूरों का राज कायम करने के लिए, आज चार बजे दिन में···!'

और गनपत नहीं होता तो उस गाँव में यह 'शहीद किसान आश्रम' कभी खुलता भी ? तीन-तीन नामी जुल्मी और जालिम जमींदारों के इस खूनियाँ इलाके में किसी पार्टी का 'वर्कर' कभी खाँसी करने के लिए भी नहीं आता था—डर के मारे। दिन-दहाड़े मारकर लाश को गायब कर देनेवाले तीनों जमींदारों की आठ सौ एकड़ जमीन पर 'बकाश्त-संघर्ष' छेड़ने का प्रस्ताव पास करके 'पार्टी' चुपचाप महीनों बैठी रही। न किसी बहादुर कॉमरेड का कदम कभी आगे बढ़ा और न कोई क्रांतिकारी किसान आगे आया। तब गनपत ने ही बीड़ा उठाया

था।···जमींदार के सिपाहियों ने अपनी समझ में उसको मारकर फेंक दिया था। मगर गनपत मरते-मरते जी गया था। होश में आते ही वह अस्पताल में नारे लगाने लगा था—'बकाश्त आंदोलन जिंदाबाद ! बिसनपुर के किसान जिंदाबाद !' यदि गनपत उस दिन घायल होकर अस्पताल नहीं पहुँचता तो मामला 'बकाश्त बोर्ड' में कभी नहीं जाता।···आठ सौ एकड़ जमीन मुफ्त में जीतने के बाद बिसनपुर के किसानों ने दो एकड़ जमीन मिल-जुलकर आश्रम खोलने के लिए दिया—सो भी बहुत कहने-सुनने और 'धिक्कारने' पर।

आश्रम जब से खुला है, जिले-भर के कॉमरेड शुरू अगहन में ही बोरे-बोरियाँ लेकर पहुँच जाते हैं—धान-वसूली के लिए। किसी को बहिन की शादी में मदद चाहिए, किसी को 'घर-खर्च' के लिए। गनपत को एक ही साथ अपने इलाके की लाज और पार्टी-कॉमरेडों की इज्जत रखनी पड़ती है।

जिले-भर में बस यही एक क्षेत्र है, जहाँ से पार्टी का उम्मीदवार विधान सभा के लिए विजयी हुआ—सिर्फ इसी आश्रम की महिमा से।

लालटेन भुकभुकाकर बुझ गयी। गनपत के मन में अचानक 'निरगुन' की एक कड़ी गूँज गयी—तेरो जनम अकारथ जाय मूरख···!

गनपत ने सपने में देखा—चोर 'पार्टी' ऑफिस का बक्सा उठाकर भागा जा रहा है। उसने जोर से पुकारने की चेष्टा की—चो-ओ-ओ-ओ ! चो-चो-चो···!

गनपत का सपना झूठ नहीं, सच साबित हुआ।

सुबह कॉमरेड चंद्रिकाजी ने आकर महाअशुभ समाचार सुनाया, "पार्टी दो टुकड़ों में बँट गयी।"

गनपत को लगा, कॉमरेड चंद्रिका के मुँह से निकली हुई बात ने वज्रपात कर दिया। कागजात, चंदा-बही, रसीद-वाउचर, मोहर—सब-कुछ गायब। गनपत ने कहा, "कल पहली पहर रात में कॉमरेड बलराम आये थे···।"

गनपत की बात पूरी भी नहीं हो पायी थी कि कॉमरेड चंद्रिका ने उसके गाल पर कसकर तमाचा जड़ दिया। वह तिलमिलाकर कुछ कहना चाहता था, मगर कॉमरेड चंद्रिका चिल्लाने लगा, "आखिर आपको यहाँ किस काम के लिए रखा गया है ? चंदा वसूल कर पेट पालने के लिए सिर्फ ! आप जानते नहीं थे कि बलराम डिसिडेंट, माने बागी मैंबरों के साथ है ? एँ ?"

"नहीं जानता था," गनपत ने सीधा और सही जवाब दिया, "कौन बागी है और कौन दागी, यह मुझे क्या मालूम ?"

"आप गद्दार हैं," चंद्रिका ने उँगली उठाकर पिस्तौल का निशाना लेने के

लहजे में कहा, "आपने पार्टी के साथ गद्दारी की है। आप मक्कार हैं !"

एक-से-एक तेज और नुकीली गाली गनपत की देह में धँसती आ रही है। आसपास गाँव-भर के लोग—औरत-मर्द—जमा हो गये हैं।...गद्दार, मक्कार ! फटकार !

कॉमरेड चंद्रिका ने चलते समय चेतावनी दी, "इसका नतीजा बाद में जो कुछ भी हो, मैं अभी आपको बरखास्त करता हूँ। चले जाइए...!"

कॉमरेड चंद्रिका के जाते ही कॉमरेड बलराम अपने नये साथियों के साथ आया। गनपत की डबडबाई हुई आँखें झरने लगीं।

बलराम ने कहा, "कॉमरेड गनपत, रोइए मत। बहादुरी से इन डिक्टेटर-शाहों का मुकाबला करना होगा। पेटी-बुर्जुआ के बच्चों ने पार्टी को अपनी जमींदारी समझ लिया था।"

गनपत ने भर्रायी हुई आवाज में कहा, "कॉमरेड बलरामजी, आपने ऐसा काम क्यों किया? यदि जानता कि आप पार्टी ऑफिस से सामान लेने आये हैं, तो हरगिज...।"

बलराम के बदले में इस बार बोला अकालू महतो का अधपगला बेटा सुधीर महतो, "गनपतजी, आप डूबकर पानी पीते हैं, और समझते हैं कि बात छिपी हुई है। पार्टी ऑफिस दिन-रात बेवा मुसम्मात के साथ इश्कबाजी करने के लिए नहीं बना है।"

गनपत अब बेपानी हो गया। आम जनता के बीच उसकी इज्जत उतर गयी। उसको नंगा कर दिया सुधीर महतो ने। वह गद्दार है, मक्कार है, बद-चलन है। अब क्या रह गया है देखने-सुनने को !

बलराम ने जाते समय लाल रंग के पर्चों का एक बंडल देकर कहा, "आज हाट में, स्टेशन पर, हर जगह यह पर्चा बँट जाना चाहिए। समझे ?"

गनपत अपनी झोंपड़ी के अंदर चला गया और बिछावन पर कटे हुए पेड़ की तरह गिर पड़ा। उसकी देह के रोम-रोम में गालियाँ गड़ रही थीं। उसने लाल पर्चे को टटोलकर पढ़ना शुरू किया। पार्टी के कई बड़े लीडरों ने जनता को सावधान किया है—'किसान-मजदूरों के नाम पर, पूँजीपतियों की थैली से पार्टी चलानेवाले धोखेबाजों से होशियार...!'

इससे आगे एक शब्द भी नहीं पढ़ सका वह। गाली-गलौज, कीचड़-गोबर !... सब गुड़-गोबर !

गनपत के पेट में पित्त का प्रकोप शुरू हुआ। अब 'बाय' भी जोर मारेगा। हाँ, मिचली आने लगी।

कौन असली, कौन नकली ? कॉमरेड चोरघड़े या कॉमरेड जादव ? पिछले साल प्रांतीय किसान सभा का सभापतित्व करने आये थे चोरघड़ेजी। स्वागत-

भाषण में जादवजी ने उनकी कितनी तारीफ की थी !···सब झूठ ! और चोर-घड़ेजी ने बिहार की पार्टी को देशद्रोहियों का दल कह दिया है इस पर्चे में ।

गनपत ने तय किया कि वह पटना जायेगा, दिल्ली जायेगा । हर जगह के बड़े और छोटे साथियों से मिलकर बातें करेगा, रोयेगा, कलपेगा, जनता की दुर्दशा की कहानियाँ सुनायेगा । खँजड़ी बजाकर गीत गायेगा—भैया, झगड़ न जाहु कचहरिया···!

जादवजी और चोरघड़े केंद्रीय पार्टी ऑफिस के सामने लड़ रहे हैं। तलवार लेकर एक-दूसरे पर हमला करते हैं, और गनपत उन दोनों के बीच जाकर खड़ा हो जाता है—'सांति, सांति !' मगर दोनों की तलवार गनपत की गरदन पर ।

गनपत की आँखों के आगे पंद्रह साल पहले देखे हुए किसी नाटक का दृश्य उपस्थित हुआ, फिर बिला गया । उसकी देह रह-रहकर सिहरने लगी । मलेरिया बुखार चढ़ने के पहले ऐसी ही सिहरन और कँपकँपी देह को झंझोड़ जाती है ।

गनपत ने कंबल ओढ़ लिया, कै किया, सौंफ की बुकनी मुंह में डालकर लेट गया । सिहरन के बाद तेज बुखार के साथ 'बाय' । वह बकने लगा । चालीस साल के बाद—देश से मलेरिया-उन्मूलन के बाद गनपत पहली बार बीमार पड़ा है । इस बीच कभी सिर-दर्द भी नहीं हुआ । उसके मुंह से पहली करुण पुकार निकली, "मैया—ने-ए-ए-ए ! पारबती-ई-ई-ई !"

उसने देखा, सरमाजी आये हैं, हाथ में लाल-लाल सेव और नारंगी लेकर । फल का रस निकालकर गनपत से कहते हैं—'पी लो, कॉमरेड ! कलेजा ठंडा हो जायेगा ।' गनपत एक घूंट पीता है । उसका गला जलने लगता है । कड़वा जहर !

परबतिया आयी । पैताने में बैठकर पाँव सहलाने लगी । मगर गनपत के बड़े भाई और बाबूजी हाथ मे भाला लेकर आये और आँखें तरेरने लगे ।

रेशम मजदूर यूनियन भागलपुर की हड़ताल ! गनपत खँजड़ी बजाकर जुलूस के आगे गा रहा है—'दुनिया के मजदूरो, एक हो···!'

पुलिस आँसू-गैस छोड़ती है । घुड़सवार सिपाही घोड़े को दौड़ाता, हड़तालियों को चाबुक से पटापट पीटता, रौंदता, धूल उड़ाता हुआ चला जाता है ।

गनपत जेल के एक गंदे सेल में पड़ा हुआ है । सिर पर पट्टी बंधी हुई है । परबतिया—परबतिया—परबतिया—पारो-ओ-ओ···!

सात दिन सताने के बाद 'सतैया बुखार' उतर गया । अस्पताल के डॉक्टर साहब ने जी-जान से इलाज किया । कुमसी कह रही थी, "दो-दो 'जकशैन' एक साथ

देते थे डागडर बाबू ।" और इसी डॉक्टर के खिलाफ गनपत ने, बलराम के कहने पर, पर्चा छपवाकर बँटवाया था—बिसनपुर अस्पताल के जुल्मी डॉक्टर को जल्दी बर्खास्त करो !

सिर्फ सात दिन का बुखार नहीं, गनपत को लगता है, पैंतीस साल से चढ़ा हुआ ज्वर आज उतरा है। इतने दिनों तक एक 'अध सुरंग में वह चल रहा था—बेमतलब, बेकार, अकारथ।

कुसमी गरम दूध में धान का लावा डालकर ले आयी। "डागडर साहब बोले हैं कि पथ्य में माँगुर मछली चाहिए। शोभित को भेज दिया है। साँझ होते-होते एकाध सेर मछली जरूर ले आवेगा।"

फिर कुसमी बोली, "सात दिन में गाँव का बच्चा-बच्चा आकर देख गया, कुसल पूछ गया। मगर कोई 'साथी कामरेट' झाँकी मारकर देखने के लिए भी नहीं आया। कल बलराम बाबू आकर कह गये हैं कि 'गनपत को अपने घर ले जाओ। पार्टी आफिस खाली कर दो। उसको बरखास्त कर दिया गया है।' "

परिवार, जाति, धर्म, समाज, सरकार और अन्याय, अत्याचार से हमेशा लड़नेवाला लड़ाकू गनपत आज अखाड़े में हारे हुए पहलवान की तरह पड़ा हुआ है। सभी उसकी पीठ पर एक लात लगाकर, गाली देकर चले आते हैं।··· पैंतीस साल तक साधु-संन्यासियों की तरह लंगोटबंद रहकर, जीभ, मुँह और मन में लगाम लगाकर उसने पब्लिक का काम किया। किसी का एक तिनका न चुराया, न पार्टी का एक पैसा गोलमाल किया। माँ-बाप, भाई-बहन, गाँव-समाज और परबतिया से भी बढ़कर पार्टी और पार्टी के झंडे को प्यार किया। बे-का-र···!

गनपत को लगता है कि चाँद-सूरज में भी दरार पड़ गयी है। दुनिया की हर चीज आज दो भागों में बँटी हुई-सी लगती है। हर आदमी के दो टुकड़े, दो मुखड़े और दरका हुआ दिल।

जिन बातों को आज तक पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों और जंगबाजों की बात समझकर अनसुनी कर देता था, आज वे ही बातें बार-बार याद आती हैं—

गनपत, तुम्हारे लीडर लोग, यानी तुम्हारी पार्टी, जाति और धर्म को अफीम कहती है। मगर तुम्हारे लीडर लोग अपने बच्चे-बच्चियों की शादी किसी दूसरी जाति में क्यों नहीं करते ? लड़के की शादी में कॉमरेड रामलगन सरमा ने पचीस हजार रुपये तिलक में गिनवा लिया। तुम्हारे लीडरों के बच्चे दार्जिलिंग और देहरादून में पढ़ते हैं। तुम्हारे सेक्रेटरी की बीवी कांग्रेसी-मिनिस्टर होने के लिए जाति की गुटबंदी करती है। तुम्हारे तूफानजी ने मिल-मालिक से मिलकर मजदूरों की गरदन पर छुरी···!

गनपत के सामने एक-से-एक बड़े कॉमरेड की तसवीर उभरती है—

चोरघड़ेजी, जादवजी, गोपालजी, मिनहा साहेब, ठाकुरजी, तूफानजी। सभी तसवीरों के मुंह से बस एक ही बात निकली है, 'हम गलत रास्ते पर थे···।'

एक अंध-सुरंग से बाहर निकलकर गनपत बेदम पड़ा हुआ है। उसके पीले मुखड़े पर उसकी खिचड़ी मूंछ लटकी हुई हैं।···पैंतीस साल तक वह गलत रास्ते पर गलत दिशा की ओर चलता रहा। न जाने उसने कितनी गलतियां कीं! न जाने कितने लोगों को गुमराह किया!

यदि परबतिया का पेट गिराया न जाता तो उसकी संतान पैंतीस साल की होती। यदि बेटा होता तो बलराम की उम्र का होता अब।

परबतिया को उसने धोखा दिया। पहली गलती, जिसका फल वह आज तक भोग रहा है।

कुसमी पिछले पांच साल से गनपत से प्रेम-भाव का बरताव करती है। गनपत सब-कुछ समझकर भी कुछ नहीं समझने का भाव दिखलाता है। मगर बेवा कुसमी मती नारी की तरह टुकुर-टुकुर उसका मुंह देखती रहती है। तिस पर अकालू महतो का पियक्कड़ बेटा ताना मार गया—बेवा मुसम्मात के साथ इश्कबाजी···!

कुसमी भरथा नाई को बुला लायी। हजामत बनाते समय कुसमी ने कहा, "मूंछ भी छांट दो। दूध-बार्ली पीते समय 'लस्टम-पस्टम' हो जाती है···।"

आलू का भुर्ता और गरम भात खाकर मुंह का कसैलापन दूर हुआ। सौंफ की बुकनी मुंह में डालकर, उसने आईने में अपना मुखड़ा देखा।···आश्चर्य! उसका मुंह ठीक उस मरियल घोड़े की तरह लंबा हो गया है, जिसके (पैंतीस साल पहले) अगले दोनों पैरों को 'छान' कर कमाई मालिक ने छोड़ दिया था। जमीन पर लेटा हुआ, 'हुकुर-हुकुर' करके सांस लेता हुआ, टांगों को झटकारता! कौओं ने जिसकी देह में न जाने कितने घाव कर दिये थे। पर परबतिया हंसिया लेकर दौड़ी गयी थी। पैरों के बंधन कट जाने के बाद, 'मरतुहार' घोड़ा बैठ गया था, सिर झुकाकर। फिर धीरे-धीरे धरती को सूंघने लगा था···।

गनपत ने धीरे-धीरे अपने पैर फैलाये।

बाहर कॉमरेड चंद्रिका की आवाज सुनायी पड़ी। एक लाल पगड़ीवाले सिपाही ने झांककर अँगनाई की ओर देखा और बोला, "चपरासी साहेब त ऽ होने चटाई पर पैर पसार के पसरल बाड़न।"

थाने के दारोगा और सिपाही को देखकर गनपत की खाली, खोखली काया में कुछ भरने लगा। उसकी शिराओं में झनझनाहट शुरू हो गयी। उसने एक बार कॉमरेड चंद्रिका की ओर देखा। दारोगा साहेब ने कहा, "देखो जी गनपत, तुम आश्रम के चपरासी हो न?"

"तुम-ताम मत बोलिए। मैं चपरासी नहीं किसी का।"

दारोगा ने चंद्रिका की ओर देखा।

चंद्रिकाजी बोले, "देखो गनपत, दारोगा साहब आश्रम पर दफा 144 लगाने आये हैं। तुम···!"

गनपत अब अच्छी तरह संभल चुका था। उसने स्वस्थ और निडर स्वर में जवाब दिया, "यहाँ आश्रम कहाँ है? यह मेरा घर है। मेरी जमीन है। यह सार्वजनिक संपत्ति नहीं, किसी की पार्टी-बंदी का अखाड़ा नहीं।"

पुलिस का सिपाही अँगनाई की ओर झांककर कुछ देख रहा था। गनपत ने कड़ककर कहा, "ए सिपाहीजी, उधर 'जनाना हवेली' में क्या ताक-झांक कर रहे हैं? नौकरी भारी हुई है क्या?"

दारोगा ने पूछा, "तुम···तुम्हारे···आपके पास कोई सबूत है?"

"सबूत? कैसा सबूत? कागजी या जुबानी? गवाही?···शोभित की माँ, मेरी झोली इधर दे जाना।"

शोभित की माँ, यानी कुसमी घूँघट काढ़कर बाहर आयी। गनपत झोली से अपना 'पोथी-पत्तर' निकालने लगा—'मार्क्सवाद की मोटी बातें', 'किसानों और मजदूरों के गीत', 'जालिम जमींदरवा···' गीत बेजवाड़ा का मशहूर प्रस्ताव, तेलंगाना की लाल भवानी, शहीद फिल्म के गाने, 'देश के दुश्मन', गनतंत्र···"यह लीजिए कागजी सबूत। और जुबानी गवाही? गाँव के बच्चे-बच्चे से पूछ लीजिये।"

दारोगा साहब ने दस्तावेज के मुड़े हुए पन्नों को सीधा करके शुरू से अंत तक पढ़ा, फिर मुस्कराकर चंद्रिकाजी की ओर देखने लगे, "यह तो ठीक ही कहता···कहते हैं। जमीन-जायदाद सब इन्हीं के नाम से रजिस्टरी हुआ है।"

चंद्रिकाजी अब चिल्लाने लगे, "बेईमान कहीं का! 'पब्लिक प्रापर्टी' को हड़पना चाहता है? देखना है कि तुम···!"

गनपत उठकर खड़ा हो गया। "पब्लिक का नाम मत लो चंद्रिका, पब्लिक अंधी नहीं, सब-कुछ देखती है, समझती है। अपने 'स्वारथ' के लिए पार्टी के टुकड़े-टुकड़े करनेवाले···!"

कुसमी अंदर से ही बोली, "इन लोगों के मुंह लगने की क्या जरूरत? डगडर साहब ने मना किया है न!···'लड़ि मरे बरदा, और बैठा खाय तुरंग।'"

किंतु गनपत ने तब तक नारा बुलंद कर दिया था, "इनकिलाब, जिंदाबाद!···फूटपरस्तो, मुर्दाबाद!···पार्टी के दुश्मन, सफेदपोश!"

एकत्रित भीड़ में तुरत उत्तेजना की लहर दौड़ गयी। लोगों ने गनपत के साथ नारा लगाना शुरू किया तो दारोगा साहब जल्दी से बाहर चले गये। उन्होंने चंद्रिका से अंग्रेजी में कुछ कहा।

सिपाही ने घबराकर कहा, "हुजूर, यह पार्टीवालों का घरेलू झगड़ा है। अब यहाँ ठहरियेगा तो मामला बिगड़ जायेगा।"

दारोगा और चंद्रिका के जाने के बाद एकत्रित लोगों ने जय-जयकार किया, "बोलिए एक बार प्रेम से—गनपतजी की जै ! किसानों के नेता—गनपतजी ! मजदूरों के नेता—गनपतजी ! गनपतजी जिंदाबाद ! जो हमसे टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा !'

पैंतीस साल में पहली बार अपनी 'जय' और 'जिंदाबाद' के नारे सुनकर गनपत का दिल उमड आया ।

कोलाहल और कलरव के बीच किसी ने भाषण देना शुरू कर दिया—"भाइयो, इस बार ग्राम-पंचायत के चुनाव में मुखिया के चुनाव में, इन लंबे कुरते और पजामे वाले फोकटिया बाबुओं के छक्के छुड़ा दो ।···आज रात यहाँ खूब धूम से 'किसान कीर्तन' होना चाहिए ।"

जब सभी चले गये, और एकांत हुआ, तो गनपत ने झोपड़ी के अंदर से आवाज दी, "शोभित की माँ !···जरा इधर आना ।"

कुसमी अंदर गयी । गनपत का चेहरा देखकर वह डरी—फिर बुखार आ गया क्या ? उसने गनपत के कपाल पर हाथ धरा । गनपत ने कुसमी की कलाई पकड़ ली । उसके ओठ थरथराये । उसने कुसमी के चेहरे को अपने मुंह के पास खींच लिया । काँपती हुई आवाज में बोला, "कुसुम,···लेकिन यह पाप है, अन्याय है । पब्लिक की संपत्ति, पार्टी की जमीन···आश्रम में···यह पाप···यह घोर पाप है···!"

कुसमी को भुने हुए सौंफ की गंध बहुत भली लगी । वह मान-भरे स्वर में बोली, "कैसा पाप ? चंद्रिका बाबू ने पार्टी के चंदे से पुरैनियाँ में पुख्ता घर बनवा लिया । रामलखन बाबू ने जमींदारों से घूस लेकर गरीब रैयतों के मुकदमों को खराब कर दिया । सो···।"

"कुसुम, लोग कुछ भी करें । मुझसे यह पाप-कर्म नहीं होगा । तुम मुझे···तुम मुझे जिलाना चाहती हो तो अपनी झोपड़ी में ले चलो ।"

कुसमी ने कुछ क्षण गनपत की डबडबायी हुई आँखों और तमतमाये हुए चेहरे को देखा । फिर बोली, "और···यह आश्रम ?"

"मैं जमीन वापस दे दूँगा लोगों को । दस जन की दी हुई चीज 'धर्मदा' होती है । इसे अकेला भोगनेवाला कभी सुख-चैन से नहीं रह सकता ।···और अब मुझसे पब्लिक का काम नहीं हो सकेगा । जब पार्टी ही टूट गयी···!"

वह बच्चों की तरह हिचकियाँ लेकर रोने लगा ।

कुसमी अपने गंदे आँचल से गनपत के आँसू पोंछती हुई बोली, "रोइये मत ।"

गनपत ने कुसमी को छाती से चिपका लिया ।···आह ! पैंतीस साल के बाद औरत की छाती की गरमी उसकी देह में पहली बार आँधी की तरह समा गयी ।

उसने कुसमी के काले-काले ओठों को चूमने के लिए मुंह बढ़ाया, किंतु रुक गया।

"नहीं कुसुम, यहां नहीं···। यहां नहीं···चलो अपने घर। यहां एक क्षण भी रहने का मुझे अधिकार नहीं।"

कुसमी उठ खड़ी हुई। गनपत का हाथ पकड़कर उठाते हुए बोली, "चलो।"

"मां! भैया! देख, कितनी मछली ले आया हूं!"

शोभित ने बांस की टोकरी सामने रख दी। काली-काली मांगुर मछलियां छलमलाने लगीं।

कुसमी बोली, "मछली का सगुन सुभ होता है।"

गनपत हंसा।

कुसमी ने अपने इकलौते जवान बेटे से कहा, "बबुआ, तुम काका को सहारा देकर ले चलो। मैं बिछावन समेटकर ले आती हूं।"

शोभित ने अपनी मां का मुंह देखते हुए कहा, "कहां?"

गनपत बोला, "जहां तुम्हारा जी चाहे, बेटा!"

गनपत ने एक बार उलटकर देखा। पार्टी का झंडा बदरंग होकर भी फड़-फड़ा रहा है, हवा में। उसे लगा कि वह खुद पार्टी का झंडा है, जिसे शोभित कंधे पर ढोकर ले जा रहा है···।

आजाद परिंदे

जब बग्गी-गाड़ी के कोचवान को मालूम हुआ कि पीछे पाँवदान पर कोई शैतान लौंडा लटका हुआ है तो उसने चाबुक फटकारकर एक गाली दी पीछे की ओर, "उतर ! हरामी का पिल्ला !"

हरबोलवा हँसकर उतर गया और पास वाली गली में घुसने से पहले उसने एक हवाई गाली फेंकी, "साले ! खनगिन का खसम !"

हरबोलवा ने यह गाली दो ही दिन पहले सीखी है। ठेलावाले भुजंगी और भाजी वाले हलमान में कजिया शुरू हुआ। भुजंगी ने हलमान को बहन की गाली दी। हलमान उसकी छाती पर चढ़ बैठा, "बोल साले, खनगिन का खसम···!"

इस गली में बहुत दिन के बाद आया है हरबोलवा। इस गली में एक स्कूल है। छोटी-छोटी लड़कियाँ पढ़ती हैं।···नहीं। स्कूल के चपरासी ने उसी दिन अच्छी तरह पहचान लिया था हरबोलवा को, "साले, तुमको पहचानते हैं। तू ही न, उस दिन मेरी बकरी को पकड़कर दूह रहा था ? सब्जी बाग की कसाई गली में रहता है न साले ! यहाँ क्या करने आया है···?"

हरबोलवा ने हिम्मत बाँधकर जवाब दिया, "ए ! गाली काहे देते हैं ? हम यहाँ गली में खड़े हैं, किसी का कुछ लेते हैं ?"

"साले ! मुँह लगता है फिर ? नाक की हड्डी तोड़ दूँगा, मारे झापड़ के। साला, यहाँ नाली में 'बेबी' लोग, 'तीन मिनट' करती हैं और तू देखता है ? भागो, साले !"

उस दिन, हरबोलवा ने अपने यार फरजन से कहा था, "ए ? 'तीन मिनट' का माने जानता है, फरजनवाँ ?"

···फरजन के मामू ने उस दिन फरजन को सजा दी थी—सुबह का नाश्ता बंद कर दिया था। हरबोलवा उसके लटके हुए मुँह को देखकर समझ गया था। यार को दिलासा देने के लिए उसने कहा था, "अरे, तेरा एक ही दिन नाश्ता बंद हुआ और इसी में तू हिम्मत हार गया ? मेरा तो कभी-कभी दिन-भर का खाना

'गोल' कर दिया जाता है। ऊपर से मार और गाली अलग।...लो, सुनो! मैं तुमको 'तीन मिनट' का माने बतलाता हूँ।"

फरजनवाँ को दिखलाकर सामने चिपकी हुई एक विज्ञापन की तसवीर पर 'तुर्री' मारकर वह पेशाब करने लगा, "समझे 'तीन मिनट' का माने?...हे हे हे हे!"

हरबोलवा ने देखा, स्कूल का फाटक बंद है। छुट्टी है। उसने इधर-उधर देखा और पास की नाली में—जहाँ उस दिन छौंड़िया सब...। नहीं, दरबान के डर से उसका 'तीन मिनट' नहीं उतरा।...आज जब इधर आ ही गया है तो एक चक्कर मौसी के घर का लगा लेना ठीक होगा। उसने धीरे-धीरे अपनी नयी गाली पर सुर चढ़ाया—एक फिल्मी धुन—खनगिन का खसम, खनगिन का खसम, खनगिन...!

गली से बाहर निकलकर उसने देखा, उसी की उम्र के कुछ लड़के एक गधे की पूँछ में फूटा कनस्तर बाँधने की कोशिश में लगे हुए हैं। मगर गधा है चालाक! पूँछ को इस तरह समेट लिया है कि...।

हरबोलवा ने अपने पॉकेट को टटोलकर देखा—हाँ, तार का 'हुक' है। उसने बिन माँगे ही मदद दी, "अजी, वैसे नहीं होगा। लो यह 'हुक', इसको रस्सी में बाँधकर दुम में लपेट दो। फिर हुक खोंस दो।"

और, यही सुदरसन से उसकी दोस्ती हो गयी। गधे के पीछे तालियाँ बजा-बजाकर, कुछ दूर दौड़कर बहुत खुश हो गया हरबोलवा का मिजाज। गधा भागा जा रहा है और कनस्तर ढनढना रहा है। सुदरसन ने कहा, "ऐन मौके पर तुम आ गये भला।...कहाँ रहते हो? बाप क्या करता है? माँ है? भाई-बहन?"

सुदरसन ने बतलाया, उसकी सौतेली माँ है, लेकिन बहुत दुलार करती है। मगर बाप कसाई है। असल में उसका बाप ही है सौतेला! "माने, नहीं समझे? मेरा असल बाप जब मर गया, तो इस बाप ने मेरी माँ को फुसलाकर एक दिन अपने घर बुलाया और दरवाजा बंद करके सिंदूर दे दिया माँग में—जबरदस्ती। माँ रोने लगी। मगर रोने से क्या है? सिंदूर दे दिया एक बार तो...। आखिर, मेरी माँ इसी शर्त पर राजी हुई कि सुदरसन को अपने बेटे की तरह रखोगे तो मैं तेरी बीवी, नहीं तो...।"

"ए! सुदरसनवाँ! तेरा बाप आ रहा है, इधर ही।"

"आने दे।"

हरबोलवा बोला, "मैं जाता हूँ। मुझे मौसी के घर जाना है।"

सुदरसन ने कहा, "ठहरो यार!"

"क्यों बे सूअर? बारह बजे गये और तू सड़क पर 'खचड़ई' करता है?"

सुदरसन ने कहा, "आज छुट्टी है दुकान में।"

सुदरसन के 'कठबाप' ने कड़ककर कहा, "छुट्टी है तो घर क्यों नहीं गया अभी तक ?···साले, एक दिन तेरी पीठ की चमड़ी फिर सेकनी होगी। जा, घर जा !"

सुदरसन का कठबाप जब मोड़ के पार चला गया तो सुदरसन ने अपने चेहरे पर हाथ फेरकर मुंह बनाया, मानो चेहरे पर लगी हुई गालियों को पोंछकर फेंक दिया। फिर बोला, "तू कहां जा रहा है ?"

"मौसी के घर।"

"कहां रहती है तेरी मौसी ?"

"पगलखनवा के पास।"

हरबोलवा ने पूछा, "और तुम्हारा घर किधर है ? किस दुकान में काम करते हो ?"

सुदरसन ने हाथ से एक ओर दिखलाते हुए कहा, "यही, गली में। पीर साहेब का मजार देखा है ? उसी के पास। चलो यार ! देखें तुम्हारी मौसी का घर। चलो।"

"तुम ? तुम मेरी मौसी के घर क्यों जाओगे ?"

हरबोलवा नहीं चाहता था कि सुदरसन, जिससे उसकी जान-पहचान नहीं कभी की, ऐसे लड़के को अपनी मौसी के घर ले चले। मगर, सुदरसन तो जोंक की तरह चिपक गया है।

कारपोरेशन के सामने, पानी का बंबा बिगड़ा हुआ देखकर दोनों प्रसन्न हुए। पानी का फव्वारा !

"नहायेगा ?"

"और तुम ?"

सुदरसन ने पैंट खोलकर बंबे के फव्वारे से अपनी देह को ढंक लिया मानो। हरबोलवा किंतु आगे-पीछे की बात सोचने लगा। फिर अपने पॉकेट से साबुन का एक टुकड़ा निकालकर जमीन पर फेंकते हुए बोला, "जरा पाजामा साफ कर लें।"

दोनों बहुत देर तक फव्वारे में नंगे नहाते रहे। बीच-बीच में टोंटी में उंगली डालकर पिचकारी छोड़ते।

लेकिन मुहल्ले के लड़कों को तब तक सूचना मिल गयी थी। वे एक-दूसरे को नाम लेकर पुकारते हुए दौड़े—धर-धर-धर सालों को···!

हरबोलवा डरा। मगर सुदरसनवा लापरवाही से कुल्ला करता रहा।

मुहल्ले के लड़कों का 'मेट', एक भालू जैसा लड़का, आगे बढ़कर बोला, "कहां रहता है बे ? यहां लंगटा होकर नहाने आया है, सचड़े ?"

हरबोलवा ने अपने अधसूखे पाजामे को ही जल्दी-जल्दी पहन लिया। सुदरसन

हँसा। और सुदरसन की हँसी ठीक जगह पर जाकर लगी। मेट ने अपनी टोली को सावधान किया, "यह साला बड़ा चालू मालूम होता है। होशियार रहना!"

सुदरसन ने कहा, "तुम्हारा नाम डफाली है न?"

आश्चर्य! सुदरसन के मुँह से अपना नाम सुनकर डफाली के सिर के 'कदम-कुट्टा बाल' खड़े हो गये। उसकी आँखें गोल हो गयीं। बोला, "तुम···तुम कहाँ रहते हो? तुम कौन···तुमने मेरा नाम कैसे जाना?"

सुदरसन बोला, "तुम्हारी माँ तुमको साथ लेकर एक दिन हकीम साहेब के दवाखाने में गयी थी न?"

डफाली का मुँह खुल गया। वह बोला, "हाँ!"

सुदरसन हँसता रहा, पूर्ववत्। डफाली ने अपनी टोली के सदस्यों से कहा, "अरे, यह जान-पहचान का है रे!"

डफाली अपनी टोली के साथ गली में गायब हो गया। तब सुदरसन बोला, "जानते हो, इतना बड़ा हो गया है और बिछावन में पेशाब करता है!"

हरबोलवा भी हँसने लगा, "इसीलिए भागा ससुर।"

किंतु आज हरबोलवा की मौसी उसको देखकर जरा भी खुश नहीं हुई। सुदरसन को देख बोली, "और ई कौन है?···दिदिया तुमको पीटती है, सो ठीक ही करती है। दुनिया-भर के लुच्चे-लफंगों के साथ इधर-उधर मटरगस्ती करता फिरेगा तो एक दिन जेल जायेगा। जा, घर जा!"

हरबोलवा की समझ में नहीं आया कुछ। आज मौसी इस तरह अचानक बिगड़ क्यों गयी?

सुदरसनवा ने रास्ते में पूछा, "यार, वह झोंपड़ी के अंदर कौन बैठा था? वही तुम्हारा मौसा है?"

"मौसा? नहीं तो। मौसा तो बरौनी में रहते हैं।"

"तब वह लाल कमीजवाला कौन था?"

"किधर?"

"अरे, मैंने झाँककर देखा था। इसीलिए तुम्हारी मौसी धड़फड़ाकर झोंपड़ी से बाहर आयी थी और तुमको डाँटने लगी थी।"

"ओ!"

हरबोलवा चुप रहा। सुदरसनवा बोला, "एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानेगा?···तेरी मौसी छिनाल है।"

"धेत्त!"

"धेत्त क्या?···मैंने झाँककर देखा तो···।"

सुदरसनवा की हँसी पर हरबोलवा का चेहरा ठीक डफाली की तरह हो गया मानो वह भी बिछावन में पेशाब करता हो! और यह बात सुदरसन को मालूम

हो गयी।

लौटती बार कारपोरेशन के सामनेवाले बंबे के पास वे कुछ देर तक रुके रहे।

हरबोलवा ने पूछा, "तुम किस चीज की दुकान में काम करते हो?"

"दफतरी की दुकान में।···साला, सँड़ी हुई बासी लेई की गंध के मारे तुम्हारा दिमाग फट जायेगा !···करेगा काम?"

"कितना मिलता है?"

"मोट पंद्रह रुपये।"

"बस?"

"तो कागज पर लेई लगाने का और कितना मिलेगा—एक सौ? बोल, काम करेगा?"

मखनियाँ कुआँ के नुक्कड़ पर कुछ हो गया है। दोनों ने दुलकी चाल पकड़ी। लेकिन जब वे पहुँचे, खेला खत्म हो चुका था। स्कूटर-रिक्शा एक्सीडेंट में दो आदमी घायल हुए थे और दोनों अस्पताल जा चुके थे। दोनों को पछतावा हुआ।

हरबोलवा ने उलटकर देखा, सुदरसन एक बीड़ी की दुकान पर रुक गया है। बीड़ी सुलगाकर वह तेजी से हरबोलवा के पास आया, "बीड़ी पीयेगा?"

"बीड़ी नहीं पीता।"

हरबोलवा जब अपने मुहल्ले की ओर आने लगा तो सुदरसन का दिल अचानक बुझ गया। उसने हरबोलवा को पुकारा, "ए ! सुनो !"

हरबोलवा रुका, "क्या है?"

सुदरसन बोला, "तुम्हारे घर चलूँ तुम्हारे साथ?"

"नहीं। बेकार, मेरी माँ तुमको भी गाली देगी।"

"तू काम करेगा?"

"बाबू से पूछूंगा।···मुझे देरी हो रही है, चलता हूँ।"

"ठहरो जरा, यार !···सच ! लगता है तुमसे बहुत दिनों की जान-पहचान है।"

हरबोलवा हँसा।···शायद, उसकी हँसी ने सुदरसन को मोह लिया है। उसने पूछा, "तुम लकड़ी के कोयले से मंजन करते हो?"

"हाँ।"

"मै भी करूँगा।"

हरबोलवा चलने लगा तो सुदरसन ने उसके दोनों हाथों को पकड़कर हंसते हुए कहा, "कहा-सुना माफ करना, भाई !"

सुदरसन की आँखों में न जाने क्या देखा कि हठात् हरबोलवा का दिल उमड़

आया। वह रुक गया। उसने उदास सुदरसन से पूछा, "क्या हुआ ?"

"साला आज बहुत मार पड़ेगी।"

"मुझे ?"

"साला, जब तक मूँछ नहीं जमेगी, तब तक बालिग नहीं हो सकते और जब तक नाबालिग रहोगे, इसी तरह रोज लत्तम-जुत्तम ! साला घर जाने का जी नहीं करता।...कहीं भाग चलने का मन करता है।"

बाकरगंज मसजिद के पास दोनों बहुत देर तक उदास खड़े रहे—नीम की छाया में।

"जब तक बालिग नहीं हो जाते, रोज लत्तम-जुत्तम सहना होगा। साला !... सुनो, एक काम करेगा ? सलीमा में 'टनटन बाजा' देखेगा ?"

"सलीमा में टनटन बाजा ?"

सुदरसन ने बतलाया—'लौन-सलीमा' के पास एक टनटन बाजा कंपनी है। उसमें उसके कई दोस्त काम करते हैं। खूब मौज का काम है, यार! मगर जमानतदार ही नहीं मिलता कोई। और, बाप साला काहे चाहेगा कि उसका बेटा टनटन बाजा बजाकर पैसा जमा करे ?

सुदरसन ने बतलाया, "बीस रुपये महीना ! एकदम आजादी का काम और फोकट में सलीमा देखो सो ऊपर से।"

सुदरसन ने अपने बाप से कहा था। मगर सुदरसन के बाप ने कहा, 'टनटन बाजा कंपनी का मालिक एक सौ रुपया पेशगी देगा ? दफ्तरी ने दो सौ रुपया पेशगी दिया है।'

सुदरसन ने हरबोलवा के कंधे पर हाथ रखकर प्यार-भरे सुर में पूछा, "बोल ना यार, टनटन बाजा कंपनी में काम करेगा ?"

"मगर जमानतदार ?"

"उसका इन्तजाम हो जायेगा।"

"कैसे ?"

"हमारे मुहल्ले में एक अमजद मिस्तरी है। मगर भारी खचड़ा है।"

सुदरसन ने थूक फेंकते हुए कहा, "यार, एक बार कोई जमानत हो जाये। एक बार टनटन बाजा कंपनी की नौकरी मिल जाये, फिर कौन बाप के जाता है पलटकर घर और कौन साला मारता है ?...मगर अमजद मिस्तरी साला भारी खचड़ा है।"

"खचड़ा है तो जमानत कैसे...?"

सुदरसन हँसा—"खचड़ा है इसीलिए तो जमानतदार होगा।"

बाकरगंज मुहल्ले के पास ही कहीं शादी के ढोल बजने लगे। दोनों ने एक लंबी साँस ली।

हरबोलवा ने कहा, "इस साल खूब लगन हैं। तुम्हारे मुहल्ले में कोई शादी नही? हमारी गली में एक ही रात में पाँच···।"

सुदरसन हँसा, "मारो यार गोली! शादी! जब तक मूँछ-दाढ़ी नही उगता साला, नाबालिग ही रहेंगे हम लोग।···चलो, अमजद मिस्तरी के घर चलें।"

हरबोलवा को हठात् लगा, सुदरसन ही उसका सब-कुछ है। सुदरसन के सिवा इस दुनिया मे अपना कोई नही। उसका दुःख समझने वाला यह सुदरसन···।

सुदरसन के हाथो को हरबोलवा ने पकड़ लिया, "मुझे डर लगता है लेकिन···।"

"काहे का डर?"

"बाप···।"

"अरे, एक बार कंपनी मे घुसने तो द, तब देखना है बापों को।···ए देख, इधर···इसमें तेल लगावेगा आकर तुम्हारा और हमारा बाप-माँ, मौसा-मौसी—सब। समझे?"

हरबोलवा ने हँसकर सुदरसन के गले में हाथ डाल दिया, "तो मिल जायेगी न नौकरी?"

"अमजद मिस्तरी को तेल लगाना होगा।"

"लगायेंगे! कंपनी की नौकरी के लिए जो करना होगा, करेंगे। अब लौटकर घर नहीं जाना है।···थूक है घर को!"

"पक्का?"

"पक्का···!"

विकट संकट

दिग्विजय बाबू को जो लोग अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं, वे यह कभी नहीं विश्वास करेंगे कि दिग्विजय उर्फ दिग्गो बाबू कभी क्रोध से पागल होकर सड़क पर, खाली देह और ऊँची आवाज में किसी को अश्लील गालियाँ दे सकते हैं। लोग उनको अजातशत्रु मानते हैं। और भूल-चूक से एकाध शत्रु कहीं पैदा भी हुआ हो तो उन्होंने दिग्गो बाबू को कभी ऊँचे स्वर में बोलते नहीं सुना होगा। अपनी क्रोधहीनता के कारण ही उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है।

किंतु लोगों ने देखा और पहचाना कि अपने अतिपुरातन भृत्य को बीच सड़क पर बेंत से पीटने और गालियाँ देनेवाले सचमुच दिग्गो बाबू ही हैं। उनके इस अभूतपूर्व कोप का कारण पूछनेवाले भी दिग्गो बाबू के मुंह से होनेवाली 'प्रथम वर्षा' में भीग गये। आसपास एकत्रित सभी लोगों को 'सालो' कहकर संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें सब-कुछ मालूम है और वे सभी को ठीक करके दम लेंगे। तमाशा देखनेवालों को अच्छी तरह दिखला देंगे। लोग सब्र करें।

इतना कहकर वे अपनी कोठी के अहाते में गये, फिर बंगले के बरामदे पर रखे हुए कई गमलों को लात मार-मारकर नीचे गिरा देने के बाद अंदर चले गये। निःशब्द खुलने और बंद होनेवाला दरवाजा आज पहली बार चूं-चूं कर उठा। ताड़ित भृत्य रामटहल अँगोछे से अपनी पीठ झाड़ता हुआ उनके पीछे-पीछे चला गया। बस !···लोग सब्र करें? पता नहीं फिर कितनी देर के बाद वे अच्छी तरह तमाशा दिखाने को बाहर निकलें ?···उन्हें लोगों के बारे में सब-कुछ पता है और लोगों को यह नहीं मालूम कि उन्होंने दिग्गो बाबू का क्या बिगाड़ा है। उनके घर में जिनका 'आना-जाना' है, वे भी आज उनकी 'शांति-कुटी' में पैर देने का साहस नहीं करते। फिर कारण कैसे मालूम हो···?

कामवाले अपने-अपने काम पर गये और बेकाम के लोग कई घंटों तक बेकार न बैठकर सामने पार्क में ताश खेलते रहे। किंतु किसी खिड़की या दरवाजे से फिर कोई बाहर नहीं आया, न किसी प्राणी या वस्तु की आवाज ही बाहर आयी।

जैसी नाटकीयता से गमलों पर पदाघात करके और जिस वेग से वे अंदर गये थे, उस हिसाब से अंदर पहुँचने के एक मिनट बाद ही 'ठाँय-ठाँय' विस्फोट अथवा काँच के बर्तनों की टूटती आवाज अथवा किसी के अचानक फूट-फूटकर रोने का स्वर गूंज जाना चाहिए। परंतु दो घंटे बाद भी कुछ नहीं हुआ और धीरे-धीरे रहस्य गंभीर होता गया।

रात के दस बजे इस रहस्य को भेदन करके एक उड़ती-सी खबर फैली कि दिगो बाबू के घर में मुकम्मल हड़ताल है। दिगो बाबू के अतिरिक्त कोठी में रहनेवाले अन्य सभी प्राणी दिगो बाबू के विरुद्ध असहयोग-आंदोलन कर रहे हैं। अर्धांगिनी अपने पूरे अंग को समेटकर अँगनाई की एक छोटी कोठरी में चली गयी है; प्रजा अर्थात् पुत्र अराजक हो गया है; भृत्य किसी वचन का पालन नहीं करता; महाराज मनपसंद भोजन बनाने लगा है। यहाँ तक कि घर की बिल्ली भी गुर्राती है देखकर।...हाय रे, दिगो बाबू का सुख का संसार ! हाय री उनकी 'शांति-कुटी', अर्थात् न्यू पटलपुरी में नवनिर्मित दिगो बाबू की कोठी !!

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही तमाशा शुरू हो गया।

दिगो बाबू के लाड़ले बेटे श्रीहर्ष ने अपनी कोमल मधुर आवाज को कर्कशतम् कर, भोले-भाले चेहरे को कठोर क्रूर बनाकर अखबार देनेवाले लड़के से कहा, "अभी अखबार पहले 'छोटी कोठी' में देगा अब से—समझा ?"

'छोटी कोठी' अर्थात् कोठी की अतिथिशाला, जिसमें श्रीहर्ष रहता है। सभी पत्र-पत्रिकाओं को बगल में दबाकर खुलेआम माचिस जलाकर, सिगरेट सुलगाकर धुएं का गुब्बारा छोड़कर श्रीहर्ष अपनी छोटी कोठी की ओर चला गया।

थोड़ी देर बाद, श्रीहर्ष की माताजी यानी श्रीमती धर्मशीला अपने पति को, न जाने किस बात पर धिक्कारती हुई बाहर बरामदे पर आयी। जिस महिला को लोगों ने हर एकादशी की साँझ को अपने पति का चरणोदक पीते देखा है, वह कह रही थी, "भोर-ही-भोर जो इनका नाम ले ले, उसका सारे दिन का सगुन चौपट !"

कल जिसपर मार पड़ी थी वही चाकर आज निडर होकर लॉन में, आराम-कुर्सी पर लेटकर बीड़ी खींच रहा है। और, महाराज अपने दीर्घ दाँतों को दँतुअन से रगड़ता हुआ यत्र-तत्र थूकता जाता है—मैं किसी का नौकर नहीं। जिसको 'चाह' पीना है '[illegible]न' से मँगवा ले। मैं अभी गंगाजी में नहाकर, बिड़ला मंदिर जाऊँगा ! आकयो

आश्चर्य ! लगता है, दिगो बाबू को जीवन में सिर्फ कल ही—पहली और अंतिम बार—क्रोध हुआ। आज वे पुनः धीर-गंभीर और सौम्य-शांत हैं—सब-कुछ देख-सुनकर भी।

कंधे पर धोती-तौलिया डालकर बाहरवाले खुले नल पर जाते देखकर किसी

को विश्वास नहीं हुआ कि दिगो बाबू बाहर ही नहायेंगे, जहाँ नौकरानी बर्तन माँजती है।

दिगो बाबू ने सड़क पर हाँक लगानेवाले पूरी-भाजेवाले को पुकारा। राह चलते पतौरे-पकौड़े-कचालू-छोले खानेवाले लड़कों को सुबह-शाम निःशुल्क स्वास्थ्यपूर्ण सीख देनेवाले दिगो बाबू को इस तरह बासी पूरी-भाजी खाते देखकर एक सहृदय पड़ोसी का हृदय हिल गया और उसने "अरे-रे, यह क्या, यह क्या···" कहकर सहानुभूति-विगलित स्वर में कुछ कहने की चेष्टा की। किंतु दिगो बाबू ने एक अंग्रेजी वाक्य का ठेठ भारतीय अनुवाद करके कपट-नम्र उत्तर दिया, "जनाब ! आप अपने चरखे में जाकर तेल डालें।"

दोपहर को उनके पूर्वी पड़ोसी एक 'अर्थपूर्ण बात' अर्थात् रुपये-पैसे से संबंधित बात सुनाने गये, "श्रीहर्ष बाबू ने रोड नंबर पाँच के फ्लैट के किरायेदारों को आज नोटिस दिया है कि मकान का किराया श्रीहर्ष बाबू के हाथ में ही···।"

दिगो बाबू ने बीच में ही काट दिया, "हाँ, प्लॉट और फ्लैट श्रीहर्ष के नाम है, इसलिए मकान का किराया उसी को मिलना चाहिए।"

श्रीहर्ष ने किरायेदारों को ही नहीं, दिगो बाबू को भी नोटिस दिया है—जीवन-बीमा के पैसे का 'नामिनी' वह नहीं रहना चाहता। उसे पैसे नहीं चाहिए। ···वह किसी का आश्रित नहीं।

श्रीमती धर्मशीला ने भी कुछ ऐसा कहा, जिसका आशय यही होता है कि वह भी दिगो बाबू के आश्रय को श्राप समझती है।

दिग्विजय बाबू एकदम चुप रहे। उनकी लंबी और गंभीर चुप्पी से माँ-बेटा, नौकर-चाकर सभी उत्तेजित हो गये, "इनको क्या है ? चुप रहें या बोलें—मौज में ही रहेंगे। संकट तो हम लोगों के सिर है।

"आप भला तो जग भला। इनके सुख-चैन में कोई कमी न हो कभी। कोई मरे, इनकी बला से।"

दिग्विजय बाबू ने अपनी उँगली में दाँत काटकर देखा; नहीं, वह सपना नहीं देख रहे !

आखिर, बात तरह-तरह की बातें लेकर उड़ी। सारे शहर के हर 'नगर' और 'पुरी' में फैलती गयी। तब, दिग्विजय बाबू के हर वर्ग और समाज के मित्रों का आगमन शुरू हुआ।

'शांति-कुटी' में प्रवेश करनेवाले की दृष्टि दूर से ही रामटहल के गंदे-चिकट लंगोट पर पड़ती, जिसे उसने बतौर बगावत के झंडे के दिगो बाबू की खिड़की पर पसार दिया है।

दिगो बाबू के एक वकील मित्र ने जिरह करके मामले के मूल सूत्र को पकड़ने की चेष्टा की।···नौकर को पीटने के बाद ही पत्नी और पुत्र ने विद्रोह किया या

पहले ? और नौकर यानी रामटहल तो बहुत पुराना चाकर है। दिगो बाबू जब कॉलेज में पढ़ने आये थे, रामटहल को साथ ले आये थे। दिगो बाबू की पढ़ाई खत्म हुई, नौकरी शुरू हुई—खत्म हुई—रामटहल सदा साथ रहा। शादी और गौने में भी वह दिगो बाबू से सटकर खड़ा था···।

दिगो बाबू के दूसरे मित्र खुफिया विभाग में काम करते हैं और उनका यह विश्वास है कि संसार में जितने भी अपराध या अघटन होते हैं उनके पीछे कहीं-न-कहीं किसी स्त्री का कोमल हाथ जरूर होता है।···इस मामले में औरत तो सीधे सामने है। लेकिन इसके अलावा कोई और औरत तो कहीं नहीं ?

श्रीमती धर्मशीला से बहुत देर तक बेमतलब की बातें करके वे अपने मतलब की बात नहीं निकाल सके। किसी औरत या लड़की का पता नहीं चला। पति से इस 'विराग' और असहयोग का कारण पूछने पर श्रीमती धर्मशीला रामटहल की ओर देखकर चुप हो जाती।

तब, दिग्विजय बाबू के खुफिया विभागीय मित्र ने दूसरे सिरे से शुरू किया··· कहीं श्रीमती धर्मशीला ही तो वह 'औरत' नहीं ? अतः उन्होंने रामटहल की देह में नुकीले सवाल गड़ाकर 'थाहना' शुरू किया।···एक बार इसी तरह कटहल में लोहे की कमानी गड़ाकर चोरी का सोना बरामद किया था।

लेकिन रामटहल शुरू से अंत तक हर सवाल का एक ही जवाब देता रहा, "मालकिन असल सती नारी हैं !"

उन्होंने तब उन गमलों की परीक्षा की जिन्हें दिगो बाबू ने लात मारकर गिराया था, पर कुछ हाथ नहीं लगा।

तीसरे दिन किसी अज्ञात हितचिंतक ने दिगो बाबू के बड़े बेटे को तार लगा दिया— 'बाप लबेजान है, जल्दी आइए।'

दिगो बाबू के निर्जला मौन-व्रत ने लोगों को भी हैरत में डाल दिया है। जिन अपराधों के लिए कोई भी अपनी स्त्री, बेटे, नौकर सभी को बाहर निकाल सकता है, उन्हें चुपचाप सहने का क्या अर्थ हो सकता है भला ? दिमाग सही है या वह भी दीवार-घड़ी की तरह बंद हो गया है ?

दुर्गापुर से दिगो बाबू का बड़ा बेटा श्रीपार्थ अपनी स्त्री श्रीमती भवानी के साथ दौड़ा आया। उनकी अगुवानी के लिए श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष एक ही साथ दौड़े। श्रीहर्ष ने कहा, "भैया डॉण्ट···!!"

"बाबूजी कैसे हैं ?"

"अरे, उनको क्या है बेटा ! संकट तो हम लोगों के सिर है। वे तो मौज में हैं और मौज में रहेंगे।"

श्रीपार्थ तथा उसकी पत्नी को स्टेशन पर ही मालूम हो गया था कि बाबूजी लबेजान नहीं, 'सनक' गये हैं।···सनक गये हैं माने पागल ? सुनते ही श्रीमती

भवानी की देह में कँपकँपी, कलेजे में धड़कन, गले में घिग्घी और सिर में चक्कर—सब एक साथ ! श्रीपार्थ ने समझा-बुझाकर अपनी पत्नी का दिल मजबूत किया—"पागल हो गये हैं तो क्या—हैं तो हमारे बाप ही !"

किंतु परिवार के सभी प्राणियों को कोठी के फाटक की ओर झपटते देखकर भवानीदेवी फिर भय से पीली पड़ गयी।···श्रीहर्ष का रह-रहकर 'भैया, डॉक्ट', श्रीमती धर्मशीला की आतंकपूर्ण आँखें, खिड़की पर प्रसारित रामटहल का गंदा-चिकट लँगोट, फिसफिसाहट और इशारों में बातें देख-सुनकर श्रीपार्थ की अवस्था भी शोचनीय हो गयी।

वे सभी दल बाँधकर, दबे पाँव चुपचाप बरामदे में आये। श्रीमती भवानी सबसे पीछे थीं। रामटहल दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा खोलकर इस तरह खड़ा हुआ मानो पिंजड़े में बंद किसी हिंस्र प्राणी की झाँकी दिखला रहा हो। दिगो बाबू ने 'गीता रहस्य' में गड़ी हुई आँखों को ऊपर उठाने की चेष्टा नहीं की। श्रीपार्थ ने दूर से ही मूक प्रणाम किया। श्रीमती भवानी साहस बटोरकर आगे बढ़ रही थी कि रामटहल ने दरवाजा बंद कर दिया।

सभी ने एक साथ लंबी साँस ली।

श्रीमती धर्मशीला बोली, "बेटा ! तुम तो इनके 'आश्रित' नहीं। तुम लोगों को क्या डर ? संकट तो हमारे सिर है !"

तब तक रसोईघर में महाराज ने हनुमान चालीसा का स-स्वर दैनिक पाठ शुरू कर दिया था, "संकट मोचन नाम तिहारो···।"

पाँच मिनट में ही हर व्यक्ति के मुँह से पच्चीस बार 'संकट' सुनकर श्रीपार्थ के मन में एक काँटा-सा गड़ने लगा—संकट···कंटक···सं···कट ! उसने पूछा, "संकट क्या है ?"

रामटहल ने कुछ कहना चाहा तो श्रीहर्ष ने उसे चुप कर दिया। श्रीहर्ष संकटकालीन समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश डालने को उत्सुक हुआ। किंतु श्रीपार्थ ने उसको अंग्रेजी में समझा दिया कि वह सभी से अलग-अलग (इनडिविजुअली) बातें करना चाहता है। अतः माँ को छोड़कर बाकी सभी इस कमरे से बाहर निकल जायें। जिसको पुकारा जाये, वही आये। कोई किसी को कुछ सिखाये-पढ़ाये नहीं।

श्रीमती भवानी उधर से तनिक खुश, ज्यादा परेशान होकर आयी और अपने स्वामी से पूछने लगी, "बाबूजी मुझे बुला रहे हैं !···हाँ, बहुत प्यार से बुला रहे हैं। मैं खिड़की से बाहर झाँककर देखने गयी तो पुकारा—बेटी !"

श्रीपार्थ ने अपनी माता की ओर देखा। श्रीमती धर्मशीला चुपचाप अपना बयान देने लगी और श्रीमती भवानी 'क्या करे नहीं करे' का सवाल अपने मुखड़े पर जड़कर वहीं खड़ी रही।

श्रीमती धर्मशीला, श्रीहर्ष, रामटहल और महाराज से अलग-अलग साक्षात्कार संपन्न करके श्रीपार्थ ने संकट का सूत्र पकड़ा। और, तब उसको अचानक ज्ञात हुआ कि उसके पिता दिग्विजय बाबू सचमुच अभूतपूर्व पुरुष हैं। लगातार तीन-चार दिन तक ऐसे विकट संकट में रहकर भी जिनका दिमाग सही-सलामत है, वे निश्चय ही देवता हैं।

श्रीपार्थ अपने उत्पीड़ित पिता की चरणधूलि लेने के लिए दौड़ा। उसने श्रीमती भवानी को निकट बुलाकर कुछ कहा। श्रीमती भवानी ने घबराकर श्रीहर्ष, रामटहल और अंत में श्रीमती धर्मशीला की ओर देखा···इतने पागलों के बीच···हे भगवान् !

श्रीमती भवानी अपने पति के पास भागकर चली गयी।

संकट की मूल कहानी इस तरह शुरू होती है :

···अष्टग्रह की भयावह अफवाहों के बीच एक दिन इस नगर की 'बूढ़ी-सेठानी-धर्मशाला' में एक त्रिकालदर्शी ज्योतिषी ने अपना डेरा डालकर ऐलान करवा दिया कि वह एक पखवारे से एक दिन भी ज्यादा इस शहर में नहीं रहेगा। जिन्हें अपने भूत, भविष्य और वर्तमान का दर्शन करना अथवा बिगड़ी तकदीर को सुधारना हो, जल्दी करें।

अखंड संकीर्तनों के असंख्य ध्वनि-विस्तारक यंत्रों के आतंकपूर्ण हाहाकार और महायज्ञ के कटु-पवित्र धुएँ से ढके हुए इस नगर में त्रिकालदर्शीजी आशा की किरण नहीं, उम्मीद का सूरज लेकर आये। लोगों की जान-में-जान आयी।

तब एक दिन उपयुक्त अवसर देखकर श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति से निवेदन किया कि क्यों न एक दिन त्रिकालदर्शन···

श्रीमती धर्मशीला अपने पति की मुद्रा देखकर घबरायी। किंतु दिग्विजय बाबू ने झिड़की नहीं दी। प्रेम-लपेटे शब्दों में ही उन्होंने पूछा कि अक्ल से बड़ी भैंस कैसे हो सकती है ?

श्रीमती धर्मशीला मुस्कराकर रह गयी। वह जानती थी कि उसके 'कर्मयोगी' पति यही कहेंगे। दिगो बाबू ने उस दिन के समाचार-पत्र में प्रकाशित पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य पढ़कर सुना दिया।

किंतु लगातार तीन बार बी० ए० की परीक्षा में असफल होने के बाद श्रीहर्ष को 'तकदीर के लेख' पर अटूट विश्वास जम गया था। वह दूसरे ही दिन काशी से प्रकाशित एक प्रतिष्ठित पत्र की कतरन ले आया, "माँ, देखो यह श्री संपूर्णानंद की चेतावनी, नेहरूजी के नाम। जरा बाबूजी को दिखला दो—माने—पढ़ने को कहो।"

दिगो बाबू ने कलरन पर सरसरी निगाह डालकर देखा। फिर, सस्वर गुन-गुनाने लगे, 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा···!'

श्रीमती धर्मशीला को बल मिला। किन्तु रामटहल, राम एवं चुनमुन झा यानी महाराज सुबह-शाम ताजा और भयानक अफवाह लेकर घर लौटने लगे, रोज। श्रीहर्ष को रात में नींद नहीं आती। आँख लगते ही बुरे सपने देखना और चीख पड़ता।

श्रीमती धर्मशीला चिंतित हुई, फिर। भय से सूखे हुए श्रीहर्ष ने सूचना दी कि मुंसिफ साहब तथा दूसरे छोटे-बड़े हाकिमों ने ज्योतिषी से अपनी कुंडली दिखवायी है।···सिविल सर्जन साहब दिन-रात ज्योतिषीजी के साथ ही रहते हैं···कलकत्ता का एक बड़ा भारी सेठ स्पेशल हवाई जहाज से उड़कर आया है—परिवार सहित।

जीवन-भर पेशकारी का पेशा करके दिग्विजय बाबू का 'कर्म' में दृढ़ विश्वास जम गया है। इसलिए बुद्धि भी बलवती हो गयी है। पर हाकिम-हुक्काम का नाम सुनते ही वे तुरंत प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अदालत और फौजदारी के हाकिमों के बारे में सुना तो सोच में पड़ गये। फिर बोले, "मेरी तो कुंडली ही नहीं।" पत्नी बोली, "तो क्या हुआ? किसी फूल का नाम लेते ही कुंडली बना देते हैं, सुना है।" "लेकिन मैं धर्मशाला में जाकर अपना भविष्य नहीं देखना चाहता।" दिगो बाबू ने एतराज किया।

"डबल फीस लेकर घर पर भी जाते है ज्योतिषीजी।"

अंततः तय हुआ कि श्रीहर्ष डबल फीस लेकर जायेगा और फिटन पर ज्योतिषीजी को सादर लिवा लायेगा।

सभी को अपार हर्ष हुआ···घर के 'कर्ता' के भविष्य के साथ ही सभी की किस्मत 'नत्थी' है।···मालिक राजी हो गये, यही बड़ी बात है।

ज्योतिषीजी को फिटन लेकर श्रीहर्ष बुलाने गया। श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति को सलाह दी, "जब डबल फीस दिया गया है तो बातें भी 'डबल' करके पूछ लीजियेगा।"

"डबल करके माने?"

"मतलब, अपने अलावा घर के और लोगों के बारे में खुलासा पूछ लीजियेगा।'

ज्योतिषीजी आये। जटा-दाढ़ी और त्रिपुंड-भभूतवाले ज्योतिषियों को लोगों ने देखा है। सूट-बूटवाले इस ज्योतिषी को देखते ही लोगों को अपने-अपने भविष्य की हल्की झलक मिल गयी, मानो···। यह आदमी जरूर जादू जानता है।

डॉक्टरों की तरह एक हाथ में बैग और कंट्राक्टर की तरह दूसरे हाथ में एक बड़ा पोर्टफोलियो बैग लटकाकर फिटन से ज्योतिषीजी उतरे। दिगो बाबू को

देखते ही उन्होंने अपनी पहली ही बाणी से विस्मित और अप्रतिभ कर दिया। बोले, "मैं विशुद्ध-वैज्ञानिक ढंग से गणना करता हूँ। इसलिए मेग्निफाइंग ग्लास के अलावा स्टेथस्कोप, ब्लडप्रेशर-ऑपरेट्स और थर्मामीटर भी रखता हूँ। ज्यॉमितिक-कोष्टक-अंकन और अंशादि के सही माप के लिए इंस्ट्रूमेंट-बॉक्स, विभिन्न राज्य एवं जिलों के नक्शे रखना आवश्यक हो जाता है।"

दिगो बाबू की 'शांति-कुटी' के निवासियों ने मन-ही-मन जय-जयकार किया। किंतु तब तक दिगो बाबू ने एक नयी शर्त लगा दी। वे एकदम एकांत में अपने भविष्य की गणना करवायेंगे।

दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा बंद हुआ। सभी ने एक साथ अपने-अपने ललाटों पर एक अद्भुत गुदगुदी का अनुभव किया। सभी की हथेली एक साथ 'कपाल' पर पहुँची।···जै भगवान् !

पूरे तीन घंटे के बाद ज्योतिषीजी हँसते हुए कमरे से बाहर निकले। दिगो बाबू के उत्फुल्ल मुखमंडल में सभी को अपना-अपना भविष्य उज्ज्वल दिखायी पड़ा। अतः श्रीहर्ष दूने उत्साह से ज्योतिषीजी के साथ फिटन पर जा बैठा।

सबसे पहले श्रीमती धर्मशीला ने पूछा, "भगवान् की दया से सब-कुछ सही ही बताया होगा ! है या नहीं ?" "अरे मारो गोली। ठग हैं सब।" "क्यों ? कुछ 'ऐसी-वैसी' बातें हाँक गया ?"

"अरे, हाँकेगा क्या ? नक्शा और थर्मामीटर से भविष्य देखनेवाला इतना चतुर तो होगा ही कि न्यू पटेलपुरी में इतनी बड़ी कोठी बनवानेवाला, पेंशनयाफ्ता आदमी—जिसका बड़ा बेटा हाकिम हो और छोटा स्वस्थ, सुंदर और बेवकूफ, जिसकी पत्नी का नाम धर्मशीला · ।"

श्रीमती धर्मशीला अपने प्रौढ़ पति की इस बचकानी मुद्रा को देखकर बहुत दिनों बाद पुलकित हुई।···सचमुच त्रिकालदर्शी हैं न ?

श्रीहर्ष ने लौटकर अपनी माता से अपने पिता के भविष्य के बारे में पूछा।

"अरे, वे तो कहते है कि मुफ्त में पैंतीस रुपये···।"

"मुफ्त में ? कुछ बतलाया नहीं ?"

"कहते है, ठग है सब।"

"हूँ !···तुम एक बार मौका देखकर फिर पूछोगी ? क्योंकि ज्योतिषीजी की बात से ऐसा लगा कि कहीं कुछ 'गड़बड़' है भविष्य में—।"

"गड़बड़ है ?" श्रीमती धर्मशीला के निर्मल चेहरे पर आतंक की छाया फैल गयी, "क्या कहा उन्होंने ?"

"माँ, पाँच रुपये घूँस, या प्रणामी जो भी कहो, लेकर भी कुछ खुलासा नहीं बतलाया। बोले कि मनुष्य का भविष्य अंधकार और प्रकाश से मिलकर बनता है। सो, अंधकार और प्रकाश के कुप्रभाव से बचने के उपाय भी है···।"

श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष ने ज्योतिषीजी के इस 'पंचटकिया वचन गूढ़ार्थ को समझकर एक ही निष्कर्ष निकाला—निश्चय ही कहीं कुछ गड़बड़ी है भविष्य में, जिसको सुधारने का उपाय भी उन्होंने बतलाया होगा। और संभवतः वह उपाय महँगा है, इसलिए 'गृहकर्ता' की ऐसी प्रतिक्रिया···।"

माता और पुत्र को समान रूप से भयभीत और उदास देखकर रामटहल ने भी मुँह लटका लिया। उसने बारी-बारी से 'माता और पुत्र' की ओर आँख में एक ही सवाल डालकर देखा। फिर धीमे स्वर में पूछा, "अच्छा, छोटे भैया! 'आसरित' का क्या मतलब होता है? आसरित?"

"आसरित या आसरहित?"

रामटहल ने सही शब्द को जीभ पर चढ़ाने की यथासाध्य चेष्टा करके कहा, "आसरीत!" रामटहल ने इधर-उधर देखकर कहा कि वह ज्योतिषीजी को चाय और पान देने के लिए कमरे में गया था तो ज्योतिषी मालिक से कह रहे थे कि उनको अष्टग्रह का कोई डर नहीं। सुख-चैन ही मिलेगा। लेकिन संकट है आसरीत लोगों के सिर!

"ओ! आश्रित?"

श्रीहर्ष ने विशाल शब्दकोश निकालकर धूल झाड़ते हुए शब्दार्थ ढूँढ़ना शुरू किया। श्रीमती धर्मशीला ईष्ट नाम का जाप करने लगी और रामटहल की आँखें गोल होती गयीं।

पाँच मिनट के अथक तथा निःशब्द परिश्रम के बाद श्रीहर्ष को सफलता मिली, "हाँ। आश्रित?···आश्रित···सं०—ब्रेकेट में, किसी के सहारे···फिर··· ठहरा, टिका हुआ···पुं०—वह जो भरण-पोषण के लिए किसी पर अवलंबित हो, स्त्री०—बच्चे, नौकर-चाकर, मन और ज्ञानेंद्रिय···।"

ऐसा लगा, तीनों के बीच एक हथगोला आकर गिर पड़ा और जोरों का धड़ाका हुआ। जब तीनों को होश हुआ तो देखा कि हथगोला नहीं, श्रीहर्ष के हाथ से विशाल शब्दकोश छूटकर गिरा था···अब क्या हो? आश्रित का अर्थ—स्त्री-बच्चे-नौकर?···इस लपेट से न रामटहल बचकर निकल सकता है और न महाराज?···दुहाय बाबा नरसिंह!

भयातुर आश्रितों ने अंतिम चेष्टा करके यह पता लगा लेना आवश्यक समझा कि आश्रितों के भीषण संकट के प्रतिकार के लिए गृहस्वामी ने कुछ किया है अथवा नहीं?

दोपहर को, भोजन के समय श्रीमती धर्मशीला आज प्रेमपूर्वक पंखा लेकर बैठी। पति के मुँह में प्रथम ग्रास पहुँचा तो श्रीमती धर्मशीला ने अपने मुँह की बात निकाली, "यदि भविष्यफल में कोई गड़बड़ी हो तो उसका उपाय भी बतलाया होगा? अपने अलावा अपने आ-आ-आ-स-र···।"

दिगो बाबू तिलमिला उठे, "महाराज ने आज यह···किस चीज की मज्जी है···यह तो जहर है···इतनी मिर्च···दिन-रात भविष्यफल जानने के लिए पागल रहती हो, मगर एक बार रसोईघर में झांककर नहीं देखतीं कि आज क्या··· ओहो···मार डाला···।"

दिगो बाबू न भोजन कर सके, न क्रोध। चुपचाप सिसकारी लेते हुए कुल्ली-आचमन करने लगे।

चाय के समय भी 'चेष्टा' करने की चेष्टा विफल हुई, हालांकि चाय में मिर्च या नमक नहीं, चीनी पड़ी थी।

श्रीहर्ष ने रात्रि के भोजन के पहले इस संकट से उबरने का एक 'साइंटिफिक उपाय' ढूंढ़ निकाला। और कोई चारा नहीं। शांति-कुटी के आश्रितों के समक्ष अपनी गुप्त योजना रखते हुए उसने खासतौर से अपनी मां को समझाया, "यह तय है कि बाबूजी हम लोगों को संकट से उबारने के लिए कुछ नहीं करेंगे। हम उन्हें स्वार्थी नहीं कहते। किंतु वे निर्दय अवश्य हैं। उपाय क्या करना होगा, यह भी नहीं बतलाते। ऐसी अवस्था में अपनी बुद्धि से निकले हुए उपाय के द्वारा ही प्रतिकार कर सकते हैं हम। बाबूजी हर हालत में सुख-चैन से ही रहेंगे। उन पर कोई खतरा नहीं। संकट उनके आश्रितों के सिर है। हम हर हालत में उनके आश्रित ही रहेंगे। रहना पड़ेगा हमें—हमारी मजबूरी है। ऐसी अवस्था में 'सांप भी मरे और लाठी न टूटे'—जैसा कोई वैज्ञानिक तरीका अख्तियार करना होगा। यदि सभी सहमत हों···।"

सर्वसम्मति से संत्रस्त आश्रितों ने तय किया कि वे आत्मरक्षार्थ गृहस्वामी का 'अहिंसा विरोध' करेंगे, अर्थात् बचाव के लिए विरोध। वे आश्रित रहते हुए भी आश्रित न रहने का भाव दिखलायेंगे। चूंकि गृहस्वामी हर हालत मे चैन से ही रहेंगे, उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।···

इसके बाद श्रीहर्ष ने विस्तारपूर्वक अपने 'लाइन ऑफ एक्शन' का 'डायरेक्ट एक्शन' बतलाया।

तय हुआ कि कल सुबह पहले रामटहल को ही बगावत का झंडा फहराना होगा, क्योंकि वही पहला आश्रित है, जिसका नाम लेकर गृहस्वामी सुबह मे पहले पुकारते हैं। श्रीमती धर्मशीला की शंकाओं का समाधान और निवारण करते हुए श्रीहर्ष ने कहा, "चाय उन्हें जरूर मिलेगी लेकिन देर से मिलेगी। उन्हें कष्ट देने के लिए नही, अपने को कष्टमुक्त करने के लिए हम विरोध करेंगे।···विरोध शुरू करने के पहले सभी अपने-अपने कलेजे को टटोल लें।"

रामटहल को कलेजा नहीं टटोलना पड़ा।

सुबह को पहली पुकार पर उसके मुंह से पहला जवाब निकल ही रहा था कि उसने कसकर दांतों का ब्रेक लगा दिया जीभ पर।···पच्चीस साल की

आदत !

तीन बार पुकारने पर भी रामटहल ने कोई जवाब नहीं दिया। दिगो बाबू को तनिक अचरज हुआ। उन्होंने करवट लेकर देखा, रामटहल सामने बरामदे पर लेटा हुआ है, अपनी जगह पर। इस बार उन्होंने गला खोलकर पुकारा, "रामटहल !"

"भोर-हि-भोर रामटहल-रामटहल काहे चिल्ला रहे है ! बोलिए न, क्या कहना है ?"

दिगो बाबू को विश्वास हो गया कि वे खुद नींद में है, इसलिए चुप हो गये। लेकिन रामटहल चुप नहीं रहा। उसने कहा, "चाय के लिए महाराज को पुकारिए। बूझते हैं ?"

दिगो बाबू स्वप्नलोक से फिर 'शांति-कुटी' के कमरे में उतरे। उधर रामटहल [illegible] खैनी-तंबाकू [illegible] के एक [illegible] हुए 'सुर-जी-गीनं' की [illegible] मजबूत बनाये रखने के लिए उसने गीत शुरू किया, जोर से—'कि बंदर [illegible] 'चिड़िया' को नचा देंगे, बंदर की तरह [illegible] !'

दिग्विजय बाबू को तनिक भी संदेह नहीं रहा कि रामटहल ने अब गाँजा पीना शुरू कर दिया [illegible] क्रोध, दुःख, ग्लानि के सम्मिलित और अकस्मात् आक्रमण [illegible] वे उठे और लाठी [illegible] झपटे। रामटहल [illegible] भागा, लेकिन गड़बड़ नहीं कर सका। [illegible] दिगो बाबू ने उसे पीटना शुरू किया। गालियाँ [illegible] अपनी आँखों से देखा और [illegible]।

[illegible] तमाशा दिखाने की धमकी देकर, [illegible] उनको यह समझने में देरी नहीं लगी कि पड़ोसियों [illegible] पुराने नौकर को बहकाया है। न इसका [illegible] में 'आश्रितों का [illegible] हो चुका था।

दिगो बाबू ने पढ़ा [illegible] "आप [illegible] एक विश्वासी, वफादार एवं असहाय [illegible] घोर विरोध करते हैं। हम खेद है कि हम सभी आपके इस दुर्व्यवहार से दुःखी होने को बाध्य है। अतः आपकी घोर निंदा करते है। भविष्य में···।"

दिगो बाबू आगे नहीं पढ़ सके, क्योंकि तब तक 'छोटी कोठी' में एक पुराने किंतु काफी गरम गीत का रिकार्ड बजने लगा था—हो पापी, जोबना का देखो बहार···हो पापी—हो पापी···!

श्रीहर्ष ने विरोध के लिए, ऐसे ही गीतों के रेकार्ड, नंगी तस्वीरोंवाली तथा-कथित स्वास्थ्यपूर्ण किताबें, खुलेआम धूम्रपान और चंद आवारा दोस्तों के साथ ताश खेलने का कार्यक्रम बनाया। उसने सभी आश्रितों के लिए अलग-अलग 'एक्शन' तय करके समझा दिया था।

श्रीहर्ष ने माँ को याद दिलाकर कहा था, "गलती से पैर छूकर प्रणाम मत कर बैठना। भक्ति और पूजा, बाबूजी की तस्वीर की करो। हर्ज नहीं। लेकिन बाबूजी के साथ बुरा बर्ताव करके ही संकट को टाल सकोगी।"

तीन दिन तक, दिन-रात सभी आश्रितों ने ईमानदारी और दृढ़ता से अपना विरोध जारी रखा। गृहस्वामी को चिढ़ाने के लिए नित नये उपाय सोचे गये, प्रयुक्त हुए। मगर दिग्गो बाबू ने मौनव्रत धारण करके 'मौन: रहस्य' में अपने को इस तरह डाल दिया कि 'मन-स्विच' ऑफ कर देने और जोर से रेडियो खोलने पर भी उससे बाहर नहीं निकले।···रामटहल ने गदा लँगोट पसारकर उनकी क्रोधाग्नि को पुनः-पुनः भड़काने की चेष्टा की, किंतु व्यर्थ।

श्रीमती भवानी को अपने देवता-तुल्य ससुर की सेवा करने का सुअवसर अब तक नहीं मिला था। श्रीमती धर्मशीला किसी कारणवश अपनी पुत्रवधू पर मन-ही-मन अप्रसन्न रहती थी। इसलिए पति के सामने यदा-कदा तथा कभी-कभी सबंद: उसकी बुराई ही करती थी।

इस बार श्रीमती भवानी ने अपने गुणों से दिग्विजय बाबू को दो दिन में ही मुग्ध कर लिया। उनके मन से 'पुत्रहीन' होने का एकमात्र दुःख हमेशा के लिए दूर हो गया।

उस दिन श्रीपार्थ ने फैसला सुनाने के लहजे में अपने पिता के सभी विद्रोही आश्रितों को सुना दिया—"अब तुम लोग पिताजी के आश्रित नहीं रहे। अब किसी संकट की आशंका नहीं। पिताजी अब मेरे आश्रित होकर दुर्गापुर में रहेंगे, क्योंकि ज्योतिषी ने यह भी बतलाया है कि अब उन्हें किसी के आश्रय में रहना चाहिए।"

श्रीपार्थ ने अपनी माता को 'सोशल वर्क' करने, श्रीहर्ष को 'घरेलू नौकरों की यूनियन' बनाने, रामटहल को मूँगफली बेचने तथा महाराज को गंगाजी के घाट पर भिक्षाटन करने की उचित और लाभदायक सलाह देकर, श्रीमती भवानी को दुर्गापुर लौटने की तैयारी तुरंत करने का आदेश दिया।

दिग्विजय बाबू बालकों की तरह प्रसन्न और उत्साहित होकर अपना सामान सहेज रहे थे कि आँगन में कोलाहल सुनायी पड़ा। श्रीमती धर्मशीला क्रोध से काँपती हुई महाराज से पूछ रही थी, "बोलो! तुम जानबूझकर यह सब कर रहे

थे ? आखिर क्यों ? हम लोगों का सुख तुमसे देखा नहीं जाता था ? ···ऐसे में सारे परिवार के लोग पागल नहीं होंगे भला ?"

श्रीपार्थ ने यात्रा के समय इस कलह का कारण जानना चाहा। श्रीमती धर्मशीला बोली, "बेटा, तुम हाकिम हो। तुम्हीं इस बात का इंसाफ करो। इस बार तुम्हारे बाबूजी ने गांव से 'पाट-साग' का बीज मंगवाया था। महाराज ने बोते समय चुटकी-भर भंग का बीज मिला दिया था। पिछले पांच-सात दिनों से नौकरानी भंग के पौधों सहित साग ले आती थी और महाराज आंख मूंदकर कड़ाही में डाल देता।···ऐसे में घर-भर के लोग पागल क्यों नहीं होंगे ?"

रामटहल ने कहा, "अब समझा कि मेरा माथा हमेशा क्यों उस तरह चकराता था।"

श्रीहर्ष बोला "रामटहल, अभी तुरंत आबकारी पुलिस को बुला लाओ।"

महाराज हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा, "मालिक—बड़े भैया—छोटे भैया—मालकिन—इस बार माफ कर दीजिए। 'भविष्य' में कभी ऐसी गलती नहीं होगी। दुहाई···।"

'संकट' का सही कारण ढूंढ़ निकालने के बाद श्रीमती धर्मशीला एक गिलास ठंडा पानी लेकर अपने पति के कमरे में चली गयी।

अभिनय

छंदा ने जिस दिन घर-भर के लोगों के छप्पर-फोड़ ठहाके के बीच मुझे 'दादू' कहकर संबोधित किया, मैं थोड़ा अप्रतिभ हुआ था। मेरे (अकाल) परिपक्व केश के कारण ही छंदा (जिसकी माँ मुझे देवर मानती है और जिसकी दादी मेरा नाम लेकर पुकारती है) ने मुझे 'दादू' यानी 'बाबा' कहा था। मुझे 'केशव-केशन' की याद आयी थी और मैं मंद-मंद सुर में दोहा पढ़ने लगा था।

इससे पहले छंदा की दादी (जिसे मैं जेठी माँ अर्थात् बड़ी चाची कहता हूँ) ने 'दोहा' का अर्थ पूछा था। और मतलब समझाकर छंदा की छोटी चाची (जो असाधारण सुंदरी है) ने मुझे फ़ौरन सँभाला था, "किंतु'' बांग्ला भाषे हम लोगों का दादू लोग खूब मौज में रहता है। जानते हैं न?"

छंदा की सदा बीमार माँ के पीले मुखड़े पर भी हँसी की रेखा फूटी थी, "दादू और दोनों में मुड़कर दिलचस्पी बढ़ती है। नव फ़ट्टीनस्टी'' ।"

छंदा की छोटी चाची ने आँखों को नचाते हुए कहा था, "अब आप भी छंदा को 'मिष्टि' बोल के डाकिए! मिष्टी का मान बूझते हैं? सुनिए।"

और, इस बात पर फिर एक बार सामूहिक ठहाका लगा था।

छंदा की छोटी चाची (जो राजकपूर का नाम सुनते ही आइसक्रीम की तरह गल जाती है।) बात करने का ढंग जानती है। (मेरे एक निकट पड़ोसी मित्र हर समय लोगों से कहते हैं कि छंदा की छोटी चाची से बातें करने के लिए ही मैं कैजुअल लीव ले लिया करता हूँ।) वह सामनेवाली कुर्सी पर आकर बैठ गयी और दुनिया-भर के दादुओं की कीर्ति-कथा सुनाने लगी, "कलकत्ता में हमारा भी एक ऐसा ही दादू था'''।"

"ऐसा ही माफिक माने?"

"आपका ही माफिक। पातानो दादू।"

"पातानो दादू?"

"मुँहबोला दादू।"

छंदा का छोटा भाई संतू, जो अब तक चुप था, बोल उठा, "तब ठाकमी (दादी) से काका बाबू का···कौन···संबंध···"

बेचारा अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि हँसी का हुल्लड़ शुरू हुआ। और सबसे ऊपर छंदा की मयूरकंठी हँसी। हँसी नहीं, पिहकारी। सारे गोल मार्केट में उसकी हँसी कुछ देर तक मँडराती रहती है। पास-पड़ोस के लोगों ने छंदा के फ्लैट को, इसी उन्मुक्त हँसी के कारण 'नाइट क्लब' का नाम दे दिया है।

उस रात को (छंदा का दादू बनकर) लौटते समय बत्तीस नंबर के (सीधा-सादा दीखनेवाला नंबर एक शैतान) सज्जन ने कपट-नम्रता से पूछा था, "क्यों अरुण बाबू! पच्चीस नंबर में किसी ड्रामा-उरामा का रिहर्सल-उहर्सल चल रहा है क्या?"

मैंने कहा था, "जी हाँ।"

बत्तीस नंबर मुंह बा कर मुझे थोड़ी देर तक देखता रहा था। फिर पूछा था, "कौन नाटक?"

"दादू चरित।"

छंदा रेलवे-कंट्राक्टर बी० घोष की बड़ी बेटी है। साँवरी-सुंदरी और चंचल लड़की है। नाचती है, गाती है, अभिनय करती है। सौभाग्यवश, अब तक कुमारी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि किसी कंट्राक्टर की संतान विवाह के मामले में और प्रेम के व्यापार में धोखा नहीं खा सकती। दुधमुंही बच्ची जैसी भोली-भाली छंदा 'लोलिता' पढ़ चुकी है। मेरे जैसे अनेक मूढ़ लोगों को नचा चुकी है। फिर भी, सब-कुछ जानते हुए भी लोग उसकी मीठी बोली सुनकर भ्रम में पड़ जाते हैं।

मैं सोचने लगा, इतने दिनों के बाद आखिर छंदा ने मुझसे यह नया रिश्ता क्यों जोड़ा? दादू और पोती में खुल्लमखुली दिल्लगी चलती है।···मेरे मुंह से 'गिन्नी' संबोधन सुनने के लिए अथवा···अथवा···?

यों मुंहबोले काका की हैसियत से भी मैं छंदा से हल्की-फुल्की दिल्लगी किया करता था। छंदा के राही-प्रेमी (रिक्शे के पीछे साइकिल भगाकर 'होगा कि नहीं' पूछनेवाले) के बारे में पूछता था। जिस लड़के के बाप ने छंदा की तस्वीर मँगवायी है, उसकी मूँछों की ऐंठन देखकर डरेगी तो नहीं छंदा?···यह गीत और नाच किस काम आयेगा···सुहाग की रात में घुंघरू बाँधकर नाचेगी छंदा? आदि-आदि।

फिर, इस नये रिश्ते की क्या जरूरत थी? छंदा के (बाप के) बैठक में जिस सोफा पर मैं पहली बार बैठा था, उसी पर आज तक बैठता आया हूं। कल भी उसी सोफे पर बैठूंगा। लेकिन छंदा मुझे दादू कहेगी।

दूसरे दिन फ्लैट में पैर रखते ही छंदा ने स्वागत किया, "कि बूड़ो ?…क्यों बुड्ढे, दाँत में दर्द-वर्द तो नहीं? आज चने की घुंघनी बनी है।"

मैं हठात् अधेड़ हो गया। मुझे लगा, मेरे चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी है और दमे से परेशान हूँ, कि गठिया के मारे मेरे घुटनों में रात-भर दर्द था, मगर किसी ने गरम पानी का थैला नहीं दिया। मैंने कराहते हुए जवाब दिया, "दर्द की क्या पूछती हो गिन्नी। कहाँ नहीं दर्द है?"

छंदा की छोटी चाची देर से आयी, मगर दुरुस्त होकर आयी। बोली, "किंतु दादू होने में खतरा भी है।"

"कैसा खतरा?"

"लड़कियों के नाबालिग प्रेमी लोग दादुओं से बहुत नाराज रहते है। हाथ मे छड़ी लेकर सुबह-शाम पोती-नतनी की रखवाली करनेवाली दादुओं को वे फूटी नजर भी नहीं देखना चाहते। अतएव, हमेशा होशियार रहियेगा।"

उधर छंदा के छोटे भाई ने गाना शुरू कर दिया था—"मैं का करूँ लाम मुझे बुड्ढा मिल गया…।"

तीसरे दिन मालूम हुआ कि धनबाद से एक कोयला खदान के मालिक का बड़ा बेटा छंदा को देखने आ रहा है। मैंने कहा, "गिन्नी? आखिर इस काला हीरा को ही गले में डालेगी?"

छंदा लजानेवाली लड़की नहीं। बोली, "सुनती है काकी! मारे डाह के जल-भुनकर भुर्ता हुआ जा रहा है बुड्ढा!"

मैं एक लंबी साँस लेकर उदास हो गया।

छंदा की छोटी चाची चाय लेकर आयी (आज तक चाय लाने का काम किसी और ने नहीं किया) और बोली "छंदा ने आपके लिए…।"

तब तक छंदा हाथ में एक साप्ताहिक पत्रिका लेकर मेरे पास आ गयी। बोली, "आज ही कार्ड लिखकर वी० पी० मंगा लो दादू। पढ़कर देखो, लिखा है, केश काले न हो तो दाम वापस।"

मैंने तत्परता से कहा, "दया करके इसकी कटिंग मुझे दे दो।…हाय! दुनिया में हमदर्दों की कमी नहीं।…क्या लिखा है? जवानी में बुढ़ापा क्यों भोग रहे हैं? …वाह! आज ही लिख देता हूँ। काला हीरा से मुकाबला है, खेल नहीं।"

लगातार चार महीने तक दादू की भूमिका अदा करने के बावजूद, मुझसे गलती हो ही जाती। तब, छंदा की छोटी चाची अथवा माँ या दादी मुझे टोककर सुधारती—"ऐसा नहीं, इस तरह…।"

किंतु, छंदा कभी कोई गलती नहीं करती। आधा दर्जन नाती-पोतोंवाली बूढ़ी की तरह वह बोलती-बतियाती। मेरी गलतियों (बेवकूफियों) पर ताने देती

हुई कहती, "तुम्हारे मन में भी भारी-जवान चोर है बुड्ढे !"

एक दिन छंदा ने मुझसे धीमे स्वर में कहा, "दादू, तुमने कुछ मार्क किया है ? तुम्हारे आते ही दादी सिर पर कपड़ा सरका लेती है।"

"सचमुच ?"

छंदा की छोटी चाची दाँतों-तले जीभ दबाकर हँसी। फिर, फिसफिसाकर बोली, "हाँ, कल कह रही थी कि बेचारे अरुण को छंदा बहुत दिक करती है। और छंदा ने तुरत उलटा जवाब दिया—तो, तुम अपने बूढ़े को सँभालती क्यों नहीं।···इस पर माँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयीं।"

मैंने छंदा से पूछा, "क्यों बूढ़ी ! मुझे धकेल रही हो ?"

छदा हँसती रही। बोली, "और, इधर दादी आपसे बहुत कम बातें करती है, यह आपने लक्ष्य किया है ? आते ही अचानक गंभीर हो जाती है।"

छंदा की दादी ने पूजा-घर से ही कहा, "छदा, पूछो तो, आश्रम में इस बार पूजा होगी या नही ?"

"तू लाज से गड़ी क्यों जा रही है ?"

"अब मार खायेगी तू, हाँ···।"

"···चिढ़ी है।···बात लगी है ?" छदा टेबुल पीटकर हँसने लगी।

तो, छदा ने मेरे मुँह से 'गिन्नी' सुनने के लिए नही, मुझसे एक 'मधुर संबंध' के लिए नही, अपनी दादी को चिढ़ाने के लिए ही मुझे दादू कहना शुरू किया है ? अब तो स्पष्ट शब्दों में वह अपनी दादी की भारी-भरकम देह और मेरी दुबली-पतली काया की जोड़ी लगा देती है। उस दिन एक व्यंग्य-चित्र दिखलाकर बोली, "आप लोगों की युगल-जोड़ी···।"

छदा की दादी विधवा है। मांस-मछली नही खाती। पान का नशा है—मगर मुँह मे दाँत नही। इसलिए पान के बीड़े को कूटकर खाती है। छंदा ने मुझसे एक दिन यह कर्म भी करवाया और उसकी दादी हँसती रही।

उठते समय, उस दिन फिर हो-हुल्ला शुरू हुआ। छंदा की माँ से उसकी दादी ने चुपके से कहा कि अरुण को कल रात यहीं खाने को कहो···। छंदा ने सुना और ले उड़ी, "सिर्फ खाने का निमंत्रण ?"

छदा की दादी के हाथ मे जादू है, सुन रखा था। अचानक निमंत्रण पाकर मैंने पूछा, "लेकिन मांस-मछली तो···।"

छदा बोली, "आपके लिए सब नियम-कानून तोड़ सकती है—मांस-मछली छूने की क्या बात ?"

दूसरे दिन, सुबह ही संतू एक लिखित निमंत्रण-पत्र दे गया—'एक बार

आकर देख जाइए कि आपकी 'मोटकी' दिगंबरी रसोईघर में किस तरह पसीने से नहा गयी है।···इसी को कहते हैं प-रे-म।'

मैं नहीं गया। शाम को भी अपने समय पर नहीं गया। तय किया, ठीक भोजन के समय जाऊँगा।

शाम को मैदान का एक चक्कर लगाकर लौट रहा था। हथुआ मार्केट के सामने आते ही पान खाने को मन ललच पड़ा।

जाफरानी पत्ती मुंह में घुलाते हुए मैंने पूछा, "यह कैसी पत्ती है ?"

"बाबूजी, वाराणसी पत्ती है। आपने तो पान छोड़ ही दिया।" बिश्वनाथ ने कहा।

"क्या कीमत है ?"

"ढाई रुपये।"

पॉकिट टटोलकर देखा, पचास पैसे कम पड़ेंगे। बिश्वनाथ ने कहा, "कोई बात नहीं।"

मैं जानबूझकर ही देर से छंदा के फ्लैट गया। सुना, दादी निराश होकर सो गयी हैं। निराश ही नहीं, नाराज होकर भी।

छंदा बोली, "बाबा ! अब मैं कुछ नहीं बोलूंगी। दादी का कहना है कि मेरे ही कारण, आप···।"

मेरी बोली सुनकर छंदा की दादी कपड़े सँभालती हुई आयी। मैंने देरी के लिए एक झूठी सफाई दी। वह बोली, "सभी चीजें ठंडी हो गयी होंगी।"

छंदा कुछ कहना चाहती थी। किंतु. हाथों से मुंह ढंककर अंदर चली गयी। छंदा की छोटी चाची रसोईघर की ओर गयी। छंदा की दादी बैठी, "मुंह-हाथ धो चुके हो ?"

मैंने पॉकेट से जर्दा की डिबिया निकालकर बूढ़ी की ओर बढ़ायी।

वह मद्धिम आवाज में बोली, "की जिनिस ?"

"वाराणसी जाफरानी जर्दा।"

बूढ़ी ने डिबिया को खोलकर सूंघा। मुस्कराकर चुपचाप आँचल में बाँधने लगी, "क्या जरूरत थी ? कितना दाम लिया ?"

"अच्छी चीज है।" मैंने कहा।

"गंध तो बहुत अच्छी है।" बूढ़ी ने आँचल को एक बार सूंघकर छिपा लिया।

कि अचानक छंदा, संतू और छंदा की चाची ने एक साथ कमरे में प्रवेश किया। छंदा ने पूछा, "क्यों ? क्या घुसुर-फुसुर हो रहा है ?"

संतू बोला, "की मिष्ठी गंधो?"

"यह खुशबू कैसी है बुड्ढे ?" छंदा ने मुझसे पूछा।

मैंने छंदा की दादी की ओर देखा। लाज के मारे बूढ़ी का चेहरा लाल हो गया था।

"क्यों दादी ? आंचल में क्या छिपाया···देखूं···यह···क्या···?"

"कुछ नहीं···जर्दा···।"

"किसने दिया ?"

अब मेरी देह कांपने लगी। कान गर्म हो गये। लाज से मेरी आंखें झुक गयीं और पच्चीस नंबर फ्लैट में एक बार फिर छप्पर-फोड़ ठहाका गूंजा।

छंदा की छोटी चाची ने कहा, "ठाकुरपो (देवरजी) आज एकदम सही···ओके···। जरा भी गलती नहीं की आपने।···ठीक, दादू। हू-ब-हू!"

छंदा डांट रही थी दादी को, "ऐं ? तुम डूब-डूबकर पानी पीती थी बूढ़ी ?"

संटू बोला, "सिंकिंग-सिंकिंग-ड्रिंकिंग वाटर···?"

विघटन के क्षण

रानीडिह् की ऊंची जमीन पर—लाल माटीवाले खेत में—अक्षत-सिंदूर बिखरे हुए हैं—हजारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच में 'कचर-पचर' कर रही हैं। बीती हुई रात के तीसरे पहरे तक, जहाँ सारे रानीडिह् गाँव की कुमारी-कन्याएँ कचर-पचर नृत्य-गीत-अभिनय कर चुकी हैं।

रात में शामा-चकेवा 'भँसाया' गया है···प्रतिमा-विसर्जन !

श्यामा, चकवा, खजन, बटेर, चाहा, पनकौआ, हाँस, बनहाँस, अदंगा, लालसर, पनकौड़ी, जलपरेवा से लेकर कीट-पतंगों में भुनगा, भेम्हा, अँखफोड़वा, गंधी, गोबरैला तक की मिट्टी की छोटी-छोटी नन्ही-नन्ही मूर्तियाँ गढ़ी गयी थीं, रँगी गयी थीं। दो रात तक उन्हें ढेलेवाले खेतों में चराया गया अर्थात् उनकी पूजा की गयी। रात को विसर्जन !

बिरनाबन (वृंदावन ?) जले हैं—सैकड़ों। हजारों चुगलों के पुतले ! पुतलों की शिखाएँ जली हैं—घर-घर में तू झगड़ा लगावे, बाप-बेटा से रगड़ा करावे; सब दिन पानी में आगि लगावे, बिनु कारन सब दिन छुछुवावे—तोर 'टिकी' में आगि लगायब रे चुगला···छुछुंदरमुंहे···मुंहझौंसे···चुगले···हाहाहाहा !

सैंकड़ों लड़कियों की खिलखिलाहट ! तालियाँ !

तारे झरे, पायल झनके। हुस्नहिना के गुच्छों ने लंबी साँस ली। रात भीग गयी···।

धरती पर बिखरे अक्षत-सिंदूर। दूबों पर बिखरे मोती के दाने।···छोटे-छोटे इंद्रधनुषों के टुकड़े !

···अचानक, एक चील ने डैना फड़फड़ाया। सभी चिरैयाँ एक साथ भड़ककर उड़ीं। गौरैयों की विशाल टोली सरसों के खेत में जा बैठी।

बहुत दिनों के बाद—कोई पाँच बरस के बाद—धूमधाम से 'शामा-चकेवा' पर्व मनाया है रानीडिह् की कुमारियों ने।

एक चदरी-भर सरदी पड़ गयी। अगहनी धान के खेतों में अब हलकी लाली

दौड़ गयी है अर्थात् अब दानों में दूध सूख रहा है। आलू के पौधों में पत्तियाँ लग गयी हैं। सुबह-सुबह गोभी की सिंचाई कर रहे हैं, सभी।

"बिजैयादि! तू इतना सबेरे 'कोबी' जो पटाती हो, सो बेकार ही ना? तू तो अब पटना में रहेगी···।"

"चुप हरजाई!" गंगापुरवाली दादी ने चिढ़कर चुरमुनियाँ को झिड़की दी, "दिन-भर बेबात की बात बकबक करती रहती है यह रत्ती-भर की छौंड़ी।"

चुरमुनियाँ, रत्ती-भर की छोकरी चुप नहीं रही। आँखें नचाकर, ओठों को बिदकाकर बोली, "हुँह! तोरे तो मजा है। कोबी रोपकर पटा रही है बिजैयादि और टोकरी भर-भरके फूल बेचेगी तू। और जब हिसाब पूछेगी पटना से आकर मलकिन-काकी तो···तो···ई ऊँगली तोड़ना, ऊ ऊँगली मोड़ना, मगर भूलल हिसाब कभी न जोड़ना···हिहिहिहि···!"

दादी ने इस बार एक गंदी गाली दी। गाली सुनकर चुरमुनियाँ ने विजया की ओर देखा। विजया शुरू से ही मुस्करा रही थी। इस काली-कलूटी लड़की की मीठी शैतानी को वह खूब समझती है। जहर,है यह छोकरी! लछमन की पोती!

गंगापुरवाली दादी को चुरमुनियाँ की बात लगी नहीं, किंतु वह नकियाकर कुछ बोली। चुरमुनियाँ ने समझ लिया। बोली, "क्यों दादी, मैं झूठ कहती हूँ? बेचारी गंगापुरवाली दादी, जो गंडा से आगे गिनती न जाने, उससे मलकिन-काकी पूछेगी, 'पाँच टके सैकड़ा के दर से डेढ़ सौ बीजू आम का दाम?' हे-हे-ए—हा-हा-हा बम; दादी को तो 'आकाशी' लग गयी—ही-ही-ही-ही!"

विजया बोली, "जल्दी-जल्दी हौज भर दे।"

आठ-नौ साल की इस लड़की से पार पाना खेल नहीं। विजया को छोड़कर उससे और कोई काम नहीं ले सकता, उसकी माँ भी नहीं। बाप को तो वह बोलने ही नहीं देती कुछ।

जब से विजया रानीडिह आयी है, चुरमुनियाँ दिन-रात 'बड़घरिया' हवेली में ही रहती है।

कल चुरमुनियाँ कह रही थी, "बिजैयादि, तू आयी है तो लगता है रानीडिह गाँव में कोई 'परब-त्योहार'···माने···ठीक देवी-दुर्गा के मेला के समय जैसा लगता है वैसा ही लगता है। अब तो तुम भी ठीक 'खरगेंट' (खंजन) चिरैया की तरह साल में एक बार आओगी, जैसे मलकिन-काकी आती है।···अब तुम भी शहर में जाकर 'चोंचवाली अँगिया' पहनोगी।"

"लात खायेगी अब तू।" दादी ने साग खोंटते चेतावनी दी, "है तनिक भी बड़े-छोटे का लिहाज इस छिनाल को?"

दादी बीच-बीच में बाल पकड़कर घसीटती-पीटती भी है, और उस दिन सारे

गाँव में कुहराम मच जाता है; चुरमुनियाँ किसी राख के घूरे में लोट-लोटकर एकदम 'भूतनी' हो जाती है और उसके मुँह से छंदबद्ध पंक्तियाँ—'रुदनगीत' की—अनायास ही निकलती रहती हैं, "री-ई-ई बुढ़िया गंगपरनी, बड़घरिया की घरनी, हमरो सौतिनी-ई-ई-बिना रे करनवा हमरा मारलि गे-ए-बुढ़िया गंगपरनी-ई-ई।" लड़की तो नहीं, एक 'अवतार' है, समझो।

गंगापारवाली दादी की मुस्कराहट पोपले मुँह पर देखने योग्य होती है। हँसती हुई कहती है, "जानती है बिजै, भागलपुरवाली को इस निगोड़ी ने कैसा 'बेपानी' किया था ?"

गंगापुरवाली दादी ने मद्धिम आवाज में कहा, "भागलपुरवाली उस बार आयी भादों में। एक दिन 'बक्कस' से कपड़ा निकालकर धूप में सुखाने को दिया। कपड़ों को पसारते समय यह 'लौंगी-मिर्च-छौंड़ी' अचानक चिल्लाने लगी—ले ले लाला···जर्मनवाला···रबड़वाला ··गेंदवाला···चोंचवाला··· । मैंने झाँककर देखा, बाँस की एक कमानी में भागलपुरवाली की 'अँगिया' लटकाये चुरमुनियाँ नचा-नचाकर चिल्ला रही है। उधर, दरवाजे पर, दरवाजा-भर पंचायत के लोग। ···भागलपुरवाली जलती 'उकाठी' लेकर दौड़ी थी।"

गंगापुरवाली दादी के साथ विजया भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।

चुरमुनियाँ खोजकर बड़ी बाल्टी ले आयी।

आठ बजे वाली गाड़ी आने से पहले ही गोभी की सिंचाई हो गयी। बाल्टी-लोटा-डोरी लेकर चुरमुनियाँ के साथ विजया भाजी कि बगिया से बाहर आयी। इस बार चुरमुनियाँ अपने झबरे बालों में उँगली चलाते हुए बोली, "बिजैयादि, सचमुच कल ही चली जाओगी ? धेत्त···मत जाओ बिजैयादि !"

इस बार विजया ने एक लंबी साँस ली।

बड़घरिया हवेली। पहले यही अकेली हवेली थी।

पहले सिर्फ 'बड़घरिया' कहने से ही लोग समझ लेते थे—रानीडिह का चौधरी-परिवार। अब 'हवेली' जोड़ना पड़ता है, क्योंकि रानीडिह में अब एक नहीं, कई 'बड़घरिया' हैं।

बड़घरिया हवेली के एकमात्र वंशधर श्री रामेश्वर चौधरी एम० एल० ए० पिछले कई वर्ष से पटना में ही रहते हैं, सपरिवार। दूर रिश्ते की एक मौसी यानी गंगापारवाली दादी बड़घरिया हवेली का पहरा करती है। हलवाहा सीप्रसाद खेती-बारी देखता है। लोग उसे 'मनीजर' कहते हैं। मखौल में रखा हुआ नाम ही अब 'चालू' हो गया है, सीप्रसाद का—'मनीजर'।

'छिटपुट जमीन' यानी आधीदारी पर लगी हुई जमीनों की हर साल बिक्री

करके रामेश्वर बाबू अब 'निझंझट' हो गये हैं; खुदकाश्त में थोड़ी-सी जमीन है, पोखर और बाग-बगीचे हैं। जिस दिन कोई बड़ा गाहक लग जाये, बेचकर छुट्टी। छुट्टी? माने, इस रानीडिह गाँव से, अपनी 'जन्मभूमि' से कोई लगाव—किसी तरह का संबंध नहीं रखना चाहते रामेश्वर बाबू।'' मजबूरी है!

पिछले पंद्रह साल से रामेश्वर बाबू पटना में रहते हैं—पटना के एम० एल० ए० क्वार्टर में। अब राजेन्द्रनगर में घर बनवा रहे हैं। इस बार संभव है, 'पार्टी-टिकट' नहीं मिले। किंतु, अब गाँव रानीडिह लौटकर नहीं आ सकते। किसी गाँव में अब नहीं रह सकते···!

स्वर्गीय बड़े भाई सिद्धेश्वर चौधरी की विधवा की हाल ही में मृत्यु हो गयी। बड़े भाई की एकमात्र संतान विजया, जो अपनी माँ के साथ पिछले सात-आठ साल से मामा के घर थी, सोलहवाँ साल पार कर रही है। विजया के बड़े मामा ने कड़ी चिट्ठी लिखी विजया के काका को इस बार—'जिनके त्याग और बलिदान का मीठा फल आप खा रहे हैं उनकी स्त्री को तो झाड़ू मारकर ऐसा निकाला कि···। खैर, वह मरी और दुःख से उबरी। लेकिन, आपका 'सिरदर्द' दूर नहीं हुआ है। अभी आपको थोड़ा और कष्ट भोगना बाकी है। विजया अब ब्याहने के योग्य हो गयी।···यदि आप मेरे इस पत्र पर ध्यान नहीं देंगे तो मुझे मजबूर होकर आपकी पार्टी के प्रधान को लिखना पड़ेगा!'

इस बार दुर्गापूजा की छुट्टी में रामेश्वर बाबू अपनी स्त्री (भागलपुरवाली) के साथ रानीडिह आये। नारायणगंज आदमी भेजकर विजया को बुलवा लिया। काली-पूजा के बाद जब पटना वापस आने लगे तो गंगापुरवाली ने कहा, "बिजै यहाँ दस दिन और रहकर 'साग-भाजी' लगा जाती। फिर भागलपुरवाली बहू तो धान कटाने के लिए एक महीना के बाद आवेगी ही। उसी के साथ जायेगी!"

रामेश्वर बाबू को बात पसंद आयी। कहा, "ठीक है। 'नवान्न' के बाद ही बिजया जायगी, पटना।"

लेकिन परसों चिट्ठी आयी है—धान कटाने के लिए इस बार नहीं आ सकती। मकान बन रहा है। दिन-रात मजदूरों के सिर पर सवार रहना पड़ता है। अगले सप्ताह 'ढलैया' शुरू होगी। इसलिए 'शामा-चकेवा' के बाद विजया अपने छोटे मामा के साथ चली आवे पटना···जरूर-से-जरूर···।

आज शाम तक विजया के छोटे मामा नारायणगंज से आ जायेंगे। कल गाड़ी से विजया पटना चली जायेगी।

चुरमुनियाँ अपने घर का बस एक काम करती है। साँझ को पूरब-टोले के साहू की दूकान से सौदा ला देती है—मकई, चना, नून, तेल, बीड़ी। हिसाब जोड़ने में कभी एक पाई भी गलती नहीं करती।। अपने दादा-दादी से ज्यादा हिसाब जानती है वह। साहू की दुकान पर होनेवाली 'गप' में चुरमुनियाँ 'रस'

डाल देती है, "अब बिजैयादि भी चली जयगी। कल ही जायगी।"

"और गंगापुरवाली ?"

"ऊ चली जायगी तो यहाँ कलमी आम का 'बगान' कौन 'जोगेगी' रात-भर जगकर ?"

चुरमुनियाँ की बात सुनकर सभी हँसे। रामफल की घरवाली ने पूछा, "और तुझे नहीं ले जा रही बिजैया ?"

"धेत्त ! मैं क्यों जाऊँ ?"

सच्चिदा पाँच पैसे का कपूर लेने आया था। विजया के कल ही जाने की खबर सुनकर स्तब्ध रह गया।

उजड़े हुए हिंगना-मठ पर खंजड़ी बजाकर सतगुरु का नाम लेनेवाला एक-मात्र बाबाजी सूरतदास बैरागी कहता है, "सभी जायेंगे। एक-एक कर सभी जायेंगे···।"

गाँव की मशहूर झगड़ालू औरत बंठा की माँ बोली, "ई बाबाजी के मुँह में 'कुलच्छन' छोड़कर और कोई बानी नहीं। जब सुनो तब—सभी जायेंगे ! जब से यह बानी बोलने लगा है बूढ़ा बाबाजी, गाँव के 'जवान-जहान' लड़के गाँव छोड़कर भाग रहे हैं। पता नहीं, शहर के पानी में क्या है कि जो एक बार एक घूँट भी पी लेता है, फिर गाँव का पानी हजम नहीं होता। गोबिन गया, अपने साथ पंचकौड़िया और मुगवा को लेकर। उसके बाद, बाभन-टोले के दो बूढ़े अरजुन मिसर और गेंदा झा···।"

रामफल की बीवी ने बीच में ही बंठा की माँ को काट दिया, "अरजुन मिसर और गेंदा झा की बात कहती हो, मौसी ? तो पूछती हूँ कि गाँव में वे दोनों करते ही क्या थे ? 'बिलल्ला' होकर इसके दरवाजे से उसके दरवाजे पर खैनी 'चुनियाते' और दाँत निपोड़कर भीख माँगते दिन काटते थे। अब शहर में जाकर 'होटिल' में भात राँधते हैं दोनों। पिछले महीने अरजुन मिसर आया था। अब बटुआ में पनडब्बा और सुर्ती रखता है। तोंद निकल गया है।"

"तो तू भी रामफल को क्यों नहीं भेज देती ? तोंद निकल जायगा।"

किसी ने कहा, "एह ! सभी जाकर शहर में 'रिक्शागाड़ी' खींचते हैं। हे भगवान् ! अँधेर है।"

जवाब मिला, "क्यों ? रिक्शा खींचना बहुत बुरा काम है क्या ? पाँच रुपये रोज की कमाई यहाँ किस काम में होगी, भला ?"

सभी ने देखा, कैवर्तटोली का सच्चिदा, जो पाँच पैसे का कपूर लेने आया था, पूछ रहा है, "बताइये ?"

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

सच्चिदा चला गया तो चुरमुनियाँ ने ओठ बिदकाकर कहा, "इसके भी पंख

फड़फड़ा रहे हैं।···ई भी किसी दिन उड़ेगा। फुर्र-र।"

हेंहेंहेंहें ! बहुत देर से रुकी हँसी छलक पड़ी। लोग बहुत देर तक उसकी बात पर हँसते रहे। चुरमुनियाँ की दादी पुकारने लगी, "अरी ओ चुरमुनियाँ !"

रात में चुरमुनियाँ बड़घरिया हवेली में ही सोती है, गंगापुरवाली दादी के साथ। दादी सुबह-शाम चाय पीती है और चुरमुनियाँ को चाय की आदत पड़ गयी है। आज रविवार है। आज रात में दो बार चाय पियेगी, गंगापुरवाली दादी।

लेकिन आज चाय पीने का जी नहीं होता। चुरमुनियाँ चुपचाप अपनी कथरी में सिमट-सिकुड़कर अँगीठी पर चढ़ी केतली में पानी की 'गनगनाहट' सुन रही है। दादी ने दिल्लगी के सुर में पूछा, "आज तुमको किसका 'बिरह-बिजोग' सता रहा है जो इस तरह···?"

चुरमुनियाँ चिढ़ गयी, "मुझे अच्छी नहीं लगती तुम्हारी यह बानी।"

"ऐ हे ! अच्छी बानी की नानी रे ! आखिर तुझको हुआ क्या है?"

क्या जवाब दे चुरमुनियाँ !

सभी, एक-एक कर गाँव छोड़कर जा रहे हैं। सच्चिदा भी चला जायेगा तो गाँव की 'कबड्डी' में अकेले पाँच जन को मारकर दाँव अब कौन जीतेगा? आकाश छूनेवाले भुतहा-जामुन के पेड़ पर चढ़कर शहद का 'छत्ता' अब कौन काट सकेगा? होली में जोगीड़ा और भड़ौआ गानेवाला—अखाड़े में ताल ठोकने-वाला···सच्चिदा भैया !

···पिछले साल से होली का रंग फीका पड़ रहा है। आठ-नौ साल की चुरमुनियाँ की नन्ही-सी-जान, न जाने किस संकट की छाया देखकर डर गयी है।—क्या रह जायेगा?

चुरमुनियाँ गा-गाकर रोना चाहती है करुण सुर में—एक-एक पंक्ति को जोड़कर गाकर रोना जानती है, वह। धीमे सुर में उसने शुरू किया—'आ गे मइयो-यो-यो···।'

गंगापुरवाली दादी ने झिड़की दी, "ऐ-हे ! ढंग देखो इस रत्ती-भर छिनाल का। नाक से रोने बैठी है भरी साँझ की बेला में। उठ, जाके देख बिजे काहे पुकार रही है।"

"गोलपारक क्या, भैया ?"

गाँव के नौजवानों के तन-मन में 'फुरहरी' लग रही है, फुलकन की शहरी गप सुनकर। मजेदार गप ! इस गप में एक खास किस्म की गंध है—फुलकनी के 'बाबड़ी केश' से जैसी गंध आती है, ठीक वैसी ही।

फुलकन फुलझड़ी उड़ा रहा है, "रजिन्नरनगर ? अब उसके बारे में कुछ मत पूछो, भैयो ! साला, ऐसा सहर कि लगता है कि धरती फोड़कर 'गोबर छत्ते' की तरह रोज मकान उगते जा रहे हैं । होगा नहीं भला ? वहां कोई भी काम हाथ से थोड़ो होता है ? सुर्खी कुटाई से लेकर सिमटी-सटाई और चुना-पुताई—सब-कुछ 'मिशिन' से । बाल कटाने जाओ तो नाई एक ऐसा 'मिशिन' लगा देगा कि चटपट हजामत खतम ।···दस कदम पर एक-एक गोलपारक···।"

"गोलपारक क्या, भैया ?"

"अब क्या बतावें कि गोलपारक क्या है और कैसा होता है ? वह देखने पर ही समझोगे । मुंह की बोली में उतने किस्म का रंग कहां से लावेंगे ? समझो कि 'सीकी' की एक बहुत बड़ी सतरंगी 'डलिया' धरती पर रखी हुई है ।···जब सांझ को लंबे-लंबे 'मरकली' के डंडे छटाक-छटाक कर जल उठते हैं और सांझ के झुट-पुटे में ठंडी-ठंडी हवा खाती हुई अधनंगी लड़कियां···लड़की तो नहीं, समझो कि 'फिलिइस्टार'···।"

"फिलि···क्या···?"

"धेतेरे की ! फिलिइस्टार भी नहीं समझते ? अरे, पिक्चर की लड़की रे पिक्चर की !"

"पिक्चर—?"

"अब तुम लोगों को क्या समझावें !···माने, सिनेमा की छापी की लड़की । समझे ?"

"···पिक्चर की लडकी, छापी की लड़की ?" क्या-क्या बोलता है, फुलकन ? क्या था और क्या से क्या होकर लौटा है ! गांव के नौजवानों की देह कसमसाने लगती है । फुलकन पटना में, 'रिक्शा गाड़ी' खींचता है ।·· खींचता नहीं है, 'डलेवरी' करता है । फुलकन रिक्शा-डलेवर है ।

"अच्छा ! रिक्शा-डलेवरी कितने दिनों में सीखा जा सकता है ?"

"सिखानेवाला उस्ताद हो और सीखनेवाला 'जेहन' का तेज हो तो तीन ही दिन में 'हैंडिल' थिर हो जा सकता है ।—असल 'चीजवा' है 'हैंडिल' !"

···गांव के लड़कों ने लक्ष्य किया, फुलकन खास-खास बात में 'वा' लगाकर बोलता है—टिकटिवा, कगजवा, बतवा, चीजवा ।

फुलकन ने अब पॉकेट मे 'छापियों' का लिफाफा निकाला, "और देखो देखन-वालो···!"

"ऐ हे ! बाप···!!"

"फिलि की छापी की तसवीर की लड़की ?"

"अंय ! राह-घाट में इसी तरह 'कच्छा-लँगोटा' पहनकर चलती है ? कोई कुछ कहता नहीं ?"

सभी 'लहेंगड़े-लौंडों' के सिर पर छापियाँ नाचने लगीं। नाचती रही।··· रात में, सपने में भी छापी की लड़कियाँ नाचती रहीं और एकाध को 'भरमा' भी गयीं।

विजया को अचरज होता है ! गाँव खाली होने का, गाँव टूटने का जितना दु:ख-दर्द इस छोटी-सी चुरमुनियाँ को है, उतना और किसी को नहीं। विजया इस गाँव में सात-आठ साल के बाद आयी है तो क्या ? है तो इसी गाँव की बेटी।

जब से पटना जाने की बात तय हुई है, अंदर-ही-अंदर वह फूट रही है··· रजनीगंधा के डंठलों की तरह। वह पटना नहीं जाना चाहती। वह इसी गाँव में रहना चाहती है।···बाबूजी की याद आती है, माँ की याद आती है। मिल-जुल-कर आती है। कलेजा टूक-टूक होने लगता है तो इमली का बूढ़ा पेड़, बाग-बगीचे, पशु-पंछी—सभी उसे ढाढ़स बँधाते है। एक अदृश्य आँचल सिर पर हमेशा छाया रहता है। यहाँ आते ही लगता है, बाबूजी बाग में बैठे है, माँ रसोईघर में भोजन बना रही है। इसीलिए, मामा का गाँव-घर कभी नहीं भाया उसे। अपने बाप के 'डिह' पर वह टूटी मड़ैया में भी सुख से रहेगी। लेकिन···।

"बिजैयादि !"

···चुरमुनियाँ ने आज चोरी पकड़ ली, शायद ! विजया जब से आयी है, रोज रात मे चुपचाप रोती है। रोज सुबह उठकर तकिये का गिलाफ बदल देती है।

"बिजैयादि !" चुरमुनियाँ अब उठकर बैठ गयी।

गंगापुरवाली दादी करवट लेती हुई बड़बड़ायी, "क्यों गुल मचाकर जगा रही है, नाहक ?"

विजया ने कनखी-नजर से देखा, चुरमुनियाँ सोयी हुई गंगापुरवाली दादी का मुँह चिढ़ाती है, ओठों को बिदकाकर। इसका अर्थ होता है, 'तुमको क्या ? दो बार 'चाह' पी चुकी है। यहाँ बिजैयादि कल से ही अन्न-पानी छोड़कर पड़ी हुई है।'

विजया ने देखा, चुरमुनियाँ उठकर बाहर गयी। आकाश के तारों को देखा। फिर बड़बड़ाती अंदर आयी, "इह, अभी बहुत रात बाकी है।"

चुरमुनियाँ आकर विजया के पैताने मे बैठ गयी और धीरे-धीरे उसके पैरों को सहलाने लगी।

···इस लड़की ने तो और भी जकड़ लिया है, माया की डोर से। उसने पैर समेटकर कहा, "यह क्या कर रही है ?"

चुरमुनियाँ हँसी, "थी तो जगी हुई ही। फिर जवाब क्यों नहीं दिया ?"

"तुझे नींद नहीं आती ?"

चुरमुनियाँ ने गंगापुरवाली दादी की ओर दिखलाकर इशारे से कहा, "दादी की नाक इस तरह बोलती है मानो 'अरकसिया' आरा चला रहा हो !"

विजया को हँसी आयी। उसने डाँट बतायी, "क्यों झूठ बोलती है ? दादी की नाक आज एक बार भी नहीं बोली है।"

"तुम जगी नहीं थीं तो तुमने जाना कैसे ?" चुरमुनियाँ जीत गयी। "जानती है बिजैयादि ? लगता है, सच्चिदा भी अब सहर का रास्ता पकड़ेगा।···जाओ भाई, सभी जाओ। यहाँ गाँव में क्या है ? सहर में बायस्कोप है, सरकस है, सलीमा है···।"

"सोने भी देगी ?" विजया का जी हलका हुआ थोड़ा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"कल रात से तो और तुमको नहीं पाऊँगी। आज रात-भर सताऊँगी।"

कुछ देर तक चुप्पी छायी रही। दोनों ने लंबी साँस ली।

"बिजैयादि !" चुरमुनियाँ सटकर सो गयी।

"क्या है रे ?"

"सहर के दुल्हे से सादी मत करना।"

विजया ठठाकर हँसना चाहती थी। उसने बहुत मुश्किल से अपनी हँसी को जब्त करके पूछा, "सो क्यों ? शहर के लोगों ने तेरा क्या बिगाड़ा है ?"

"मेरा क्या बिगाड़ेगा कोई !"

"तो, किसका बिगाड़ेगा ?"

"तुम्हारा···बिजैयादि ! तू सादी ही मत करना। वे लोग तुमको कभी फिर इस गाँव में नहीं आने देंगे।"

"क्यों ?"

"जब गाँव का आदमी ही गाँव छोड़कर सहर भाग रहा है तो सहर का आदमी अपनी 'जनाना' को गाँव आने देगा भला ?"

"मुझे बाँध रखेंगे क्या ?"

"हाँ, बाँधकर रखेंगे। कमरे में बंद करके।"

गंगापुरवाली दादी उठकर बैठ गयी और 'जाप' करने लगी। दोनों चुप हो गयीं।

गंगापुरवाली दादी बाहर गयी। विजया ने देखा, चुरमुनियाँ सो गयी है। वह धीरे-धीरे उसके झबरे बालों पर हाथ फेरने लगी।

सुबह उठकर बाहर निकलते ही चुरमुनियाँ चिल्लायी, "देख-देख बिजैयादि, 'नीलकंठ' देख लो !"

गोढ़ी-टोले से एक जिंदा मछली ले आयी चुरमुनियाँ और मिट्टी के बर्तन में पानी डालकर सामने रख दिया। फिर गाँव से उत्तर, बाबा जीन-पीर के थान की मिट्टी लाने गयी। सुबह से ही वह काम में मगन है, चुपचाप। विजया के मामा ने कई बार छेड़कर चिढ़ाने की चेष्टा की। विजया ने भी कई बार चुटकी ली। मगर वह चुप रही। आज वह गंगापुरवाली दादी की गालियों का न जवाब देती है और न ओठों को बिदकाकर मुँह चिढ़ाती है।···कल कह रही थी, "जानती है बिजैयादि, तुम चली जाओगी तो कल से दादी गाली भी नहीं देगी। दिन-रात मुंह फुलाकर बैठी रहेगी या आँख मूंदकर जाप करेगी।"

दोपहर को जब विजया के मामा भोजन करने बैठे तो चुरमुनियाँ ने मुंह खोला, "मामा, बिजैयादि को भी अपने सामने बैठकर खाने को कहिए। कल से ही मुंह में···कुछ···नहीं।"

लगा, बालू का बांध अरराकर टूट गया। फफककर फूटकर रो पड़ी चुरमुनियाँ, "बिजैयादि यहाँ से···भूखी-प्यासी···जायगीई-ई-ई···!"

चुरमुनियाँ की बरसती हुई, लाल-लाल आँखों में विजया ने कुछ देखा और वह सिहर पड़ी।···रोते-रोते मर जायेगी यह लड़की! उसने रुँधे हुए गले से चुरमुनियाँ को समझाना शुरू किया, "चल! पहले उठकर नहा ले! मैं तुम्हारे साथ ही बैठकर खाऊँगी। उठ!"

विजया के मामा को अचरज हुआ। आज तक विजया ने किसी बच्चे-बच्ची को इस तरह दुलार-भरे सुर में नही पुचकारा। वे जल्दी-जल्दी भोजन करके बाहर दालान पर चले गये।

विजया ने चुरमुनियाँ को नहलाया-धुलाया। गंगापुरवाली दादी ने बाहर निकलकर कई भद्दी गालियाँ दीं। किंतु आज उसकी गाली सुनकर भी चुरमुनियाँ रोती है।···कल से दादी गाली देना भी बंद कर देगी।

खाने के समय विजया ने टोका, "पेट भरकर खा।"

चुरमुनियाँ बोली, "मैं भी वही कह रही थी तुमसे।"

फिर दोनों हँस पड़ी। हँसते-हँसते रोने लगी।

बाहर मामा ने सूचना देने के लहजे में कहा, "तीन बज रहे हैं।" अर्थात्, अब दो घंटे और। साढ़े छह बजे की गाड़ी पकड़ने के लिए पाँच बजे ही घर से निकल पड़ना होगा।

चुरमुनियाँ बोली, "जमराज!"

विजया हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।···मन की बात कही है चुरमुनियाँ ने।

देखते-ही-देखते सूरज ढल गया। अब, एक घंटा और!

सामान वगैरह बाहर दालान में भेजकर विजया ने चुरमुनियाँ को 'पूजा-घर'

में पुकारा। गंगापुरवाली दादी रसोईघर में पकवान छान रही थी। चुरमुनियाँ अंदर गयी।

"देख चुरमुन, इधर आ। इस घर में रोज झाड़ू-लेपन, साँझ धूप-बत्ती देना मत भूलना।"

"तुमको कहना नहीं होगा। मैं घर के 'देवता-पित्तर' से लेकर गाँव के देवता-बाबा जीन-पीर के थान में रोज झाड़ू-बुहारी दूँगी—यही मनौती मैंने की है कि हे मैया गौरा पारबती !···कि हे बाबा जीन-पीर···हमारी बिजैयादि को कोई सहर में बाँधकर नही रखे।···जिस दिन तू लौटकर आयगी, मैं देवी के 'गहवर' में नाचूँगी···सिर पर फूल की डलिया लेकर। तू लौट आवेगी तो सब कोई लौटकर आवेगे। भूले-भटके, भागे-पराये—सभी आवेंगे। तू नही आयेगी तो इस गाँव में अब धरा ही क्या है ? जो भी है, वह भी एक दिन नही रहेगा। सिर्फ गाँव की निसानी, घरों के डिह···।"

"नहीं चुरमुन, ऐसी बात मत बोल।"

"तो, सत्त करो। मेरी देह छूकर कहो···।"

चुरमुनियाँ अपलक नेत्रों से विजया को देखती रही। विजया भी उसकी आँखों में डूब गयी, "चुरमुन, मैं शहर में नहीं रह सकूँगी। मैं लौट आऊँगी। यही जीऊँगी, यही मरूँगी···।"

"न: न:, जातरा के समय कुलच्छन-भरी बात मत निकालो मुँह मे।··· जानती है बिजैयादि, मुझे कैसा लगता है, कहूँ ?···लगता है, तू मेरी बेटी है और मैं तुम्हारी माँ। तू मुझे···माने···अपनी माँ को हमेसा के लिए छोड़कर जा रही है।"

विजया चौंकी, तनिक। उसने चुरमुनियाँ के चेहरे पर उमड़ने-घुमड़नेवाली घटाओं को देखा। वह बोली, 'हाँ, तू मेरी माँ है।···तू ही मेरी माँ है।"

चुरमुनियाँ आनंद-विभोर हो गयी, "बिजैयादि, जी छोटा मत करो। रोओ मत।···कलेजा मजबूत करो।···'कहल-सुनल' माफ करना।···अच्छा तो, पाँव लागों।"

बैलगाड़ियाँ चल पड़ी। दालान के पास, गंगापुरवाली दादी के साथ चुरमुन टुकुर-टुकुर देखती रही···।

विजया उँगलियों पर जोड़ती है—ग्यारह महीने ! ग्यारह-तीस, तीन सौ तीस···!

चुरमुनियाँ ने ठीक ही कहा था। सच्चिदा भी शहर आ गया है और एक प्रायवेट कंपनी में दरबानी करता है। गाँव से जो भी आता है, विजया सबसे पहले चुरमुनियाँ के बारे मे पूछती है; फिर पूछती है, "गाँव छोड़कर क्यों आये ?" सच्चिदा ने बताया, "चुरमुनियाँ तो पूरी 'भगतिन' बन गयी है। रोज भोर मे

नहाकर सिव मंदिर जाती है।···लोग कहते हैं कि लड़की पर कोई 'देव' ने सवारी की है।"

···जिस दिन विवाह की बात पक्की हुई, विजया का कलेजा धड़का था। उसे चुरमुनियाँ की बात याद आयी थी। शादी के समय भी चुरमुनियाँ की बात मन में गूँज गयी थी।

···उसने ठीक ही कहा था। चुरमुनियाँ पर सचमुच कोई 'देव' की सवारी हुई है। विवाह के बाद, पाँच महीने भी नहीं बीते सुख-चैन से! विजया फिर उँगलियों पर कुछ जोड़ती है।

···अब उसके पति इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित करने पर तुले हुए है कि विजया को गाँव के किसी लड़के से प्रेम था और उसी के विरह में वह विवाह के बाद से ही अर्ध-विक्षिप्त हो गयी है···।

···विजया के काका को वकील का नोटिस देकर पूछा गया है कि इस धोखेबाजी के लिए उस पर मुकदमा क्यों नहीं चलाया जाये?

···विजया के पति पाँच हजार रुपए बतौर हर्जाना के वसूल करना चाहते हैं, उसके काका से।···विजया कुछ भी नहीं जानती। कुछ भी नही समझती। कुछ समझने की चेष्टा भी नही करती। सिर्फ उँगलियों पर कुछ जोड़ती है। जोड़ती ही रहती है।

हिंगना-मठ के सूरतदास बाबाजी से एक पोस्टकार्ड लिखवाकर भेजा है, चुरमुनियाँ ने। कई डाकघरों में घूमती-भटकती हुई चिट्ठी विजया के पति को कल मिली है, "बिजैया दि, कब आओगी? अब नही ही आओगी।" इसके बाद सूरतदास बाबाजी ने अपनी ओर से लिखा है, "चुरमुन एक महीने से बिछावन पर लबेजान है और रात-दिन तुम्हारा नाम···।"

विजया अपने पति को कुछ भी नही समझा सकी कि यह चुरमुन कौन है, जिसकी बीमारी की खबर पाकर वह इस तरह बेचैन हो गयी। विजया की बस एक ही जिद, "मैं आज ही जाऊँगी। अभी···।"

तब, हमेशा की तरह उसे घर मे बंद करके कुंडी चढ़ा दी गयी। किंतु इस बार विजया न रोयी, न चीखी, न चिल्लायी, न दरवाजा पीटा, न बर्तन-बासन तोड़ा। करुण-कंठ से गिड़गिड़ाने लगी, "मै आपके पैर पड़ती हूँ। आप जो भी कहियेगा, मानूँगी।···मुझे एक बार अपने साथ ही गाँव ले चलिये। मैं खड़ी-खड़ी उस निगोड़ी को देख लूँगी। मरे या जीये। मैं उलटे पाँव वापस चली आऊँगी—आप ही के साथ।"

"यह चुरमुनियाँ आखिर है कौन?"

"मेरे गाँव की···एक···पड़ोसी की लड़की।"

"लेकिन, लगता है, तुम्हारी कोख की बेटी हो।"

"हाँ, वह मेरी माँ है। माँ है···।"

"मुझे देहाती उल्लू मत समझना।"

हर दिन की तरह, विजया अचानक चुप हो गयी और आँख मूँदकर अपने गाँव-मैके रानीडिह भाग गयी। अब उसे कोई मारे, पीटे या काटे—घंटों अपने गाँव में पड़ी रहेगी। वह···दूर से ही दिखलायी पड़ता है, गाँव का बूढ़ा इमली का पेड़। वह रहा बाबा जीन-पीर का थान।···वह रही चुरमुनियाँ।·· रानीडिह की ऊँची जमीन पर···लाल माटीवाले खेत में···अक्षत-सिंदूर बिखेरे हुए हैं। हजारों गौरैया-मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच मे कचर-पचर कर रही है। चुरमुनियाँ सचमुच पखेरू हो गयी? ·उड़कर आयी है, खंजन की तरह!·· विजया की तलहथी पर एक नन्ही-सी जानवाली चिड़िया आकर बैठ गयी।···चुरमुन रे! माँ···!

···डॉक्टर ने सूई गड़ायी या किसी ने छुरा भोंक दिया?—कोई मारे या काटे, विजया अपने गाँव से नहीं लौटेगी, अभी!

जलवा

फातिमादि को कभी देखूंगा और इस तरह देखूंगा, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। इसलिए, कुछ देर तक 'पटना-मार्केट' को स्वप्नलोक समझकर खोया-खोया-सा खड़ा रहा—जूते की दूकान पर।···बुरके में सिर से पैर तक ढंकी दो महिलाएँ और साथ मे नौ-दस साल की गुड़िया जैसी खूबसूरत लड़की। लड़की ने दुबारा पूछा—"मौसी पूछ रही है कि पटना कब आये आप ?"

दूकानदार ने रेजगारी गिनते हुए कहा, "वह आप ही से पूछ रही है।"

लड़की हँस पड़ी। बुरके के अंदर भी हँसी खनकी।···परिचित हँसी! लड़की हँसी अपनी मौसी की किसी बात पर। बोली, "मेरी मौसी आपकी फातिमादि हैं।"

अब कत्थई रंग के बुरके के अंदर से फातिमादि की चिर-परिचित बोली स्पष्ट सुनायी पड़ी, "सुना, दिल्ली या बंबई में रहते हो ?"

"मैं पिछले दस साल से पटना मे हूँ।"

"अजब बात! पटना मे हो और कभी देखा नहीं ?"

"और आप···?" इतनी देर के बाद मेरा होश लौटा, मानो।

मेरी बात को बीच मे ही काटकर बुरकापोश फातिमादि बोली, "मेरी छोड़ो। अपनी बताओ। शादी-वादी की ?"

मुझे सकपकाया देखकर वह बोली, "बाकरगंज-गली मे 'दानिश-मंज़िल' देखा है न ? वहीं रहती हूँ। बहू को लेकर किसी दिन आओगे ? कल ही आओ न सुबह आठ बजे।"

लड़की बोली, "कल सुबह आठ बजे तो हमीदा खाला के घर जाना है।

"ओ-ओ!···परसों आओ!"

मेरे मुंह से अनायास ही निकल पड़ा, "प्रणाम!"

"खुश रहो।"

फातिमादि को कभी 'आदाब अर्ज़' नहीं कहा हमने। वह हमारे 'प्रणाम' को

कबूल कर हमेशा 'खुश रहो' कहकर आशीर्वाद देतीं। किंतु फातिमादि को इस तरह सिर से पैर तक ढँका हुआ कभी नहीं देखा। उन दिनों भी नहीं, जब वह परिचितों की निगाहों से बचकर रहती थीं।

रात-भर नींद नहीं आयी। आँखें मूँदते ही कत्थई रंग के बुरके में ढँकी हुई छाया आकर खड़ी हो जाती।...एक जोड़ी जालीदार आँखें! लाख कोशिश करके भी बुरके को हटाकर फातिमादि का चेहरा नहीं देख सकता। और झुंझलाकर आँखें खोल लेता।

अपने घरवाले की लंबी साँसों और छटपटाहट को देख-सुनकर कोई भी गृहिणी सशंक हो सकती है। मगर कथाकार की पत्नी जानती है कि कहानी गढ़ते समय उसका घरवाला इसी तरह बेवजह, बेकार, बेकरार होकर लंबी साँसें लेता करवटें बदलता है। अतः वह सुख से सोयी रहती है।

उस रात जगी हुई थी। पूछा, "तुमसे कभी फातिमादि के बारे में कहा है मैंने ?"

"नहीं तो! कौन फातिमादि ?"

"एक कहानी की फातिमादि।" बात को टालकर मैंने करवट ली।

कहानी की फातिमादि! अचरज हुआ कि फातिमादि के बारे में अब तक अपनी पत्नी को कुछ क्यों नहीं सुनाया!...नहीं, अचरज की कोई बात नहीं। कट्टर सनातनी की बेटी और हिंदू-सभाइस्ट भाई की बहन को जान-बूझकर ही मैंने कभी फातिमादि की कोई बात नहीं बतायी। डर था कि सुनकर मुँह बिदका-कर कुछ कह देगी। कहेगी—एबसर्ड!

एबसर्ड नहीं! असाधारण!

आज से छत्तीस साल पहले भी लोगों ने कहा था—एबनॉर्मल। अधपगली!

मेरा सौभाग्य कि मैंने इस असाधारण महिला को बहुत करीब से देखा है।

...याद आती है 1930 की उस सभा की। स्कूल के पिछवाड़े में भारी भीड़। ठाकुरबाड़ी के चबूतरे पर गांधी-टोपी पहने कई लोग बैठे थे। एक दस-ग्यारह साल की लड़की 'लेक्चर' दे रही थी। लड़की को पाजामा और कुरता पहने देखकर बहुत अचरज हुआ था। सुना, सोनपुर के मौलवी साहब की बेटी है। मौलवी साहब 'खिलाफत' के समय से ही 'मोटिया' पहनते हैं, चर्खा कातते हैं। सफेद पाजामा-कुरता पहने, कंधे पर तिरंगा झंडा लेकर खड़ी लड़की!

...1934 के प्रलयकारी भूकंप के बाद, दूसरी बार देखा था। चार साल में ही काफी बड़ी दीख रही थी। महात्मा गांधी भूकंप-पीड़ित क्षेत्र के दौरे पर आये थे। मंच पर गांधीजी के पास खड़ी लड़की को पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई थी।...प्रार्थना-सभा में कुरानशरीफ की आयतों का सस्वर पाठ करती हुई मौलवी साहब की बेटी! हाल ही दो साल की सजा काटकर जेल से निकली

है। कहते हैं, गिरफ्तारी के समय पुलिस के डंडे से बुरी तरह घायल हो गयी थी।

…1937 में तीसरी बार। निकट से देखने का पहला अवसर मिला। स्कूल के मैदान में जिला राजनैतिक-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। कांग्रेसी-मिनिस्टरी के दिन थे। इसलिए स्कूल में ही प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी और स्कूल के बालचर कांग्रेस-सेवादल के स्वयंसेवकों के साथ मिल-कर काम कर रहे थे। सेवादल की जी० ओ० सी० मौलवी साहब की बेटी को पहली बार 'फातिमादि' कहकर पुकारा था। उस सभा में प्रोफेसर अजीमाबादी की तकरीर के समय, मुस्लिमलीगियों ने गड़बड़ी मचाने की कोशिश की। फातिमादि लपककर मंच पर गयी थीं। और उनकी तेज आवाज पंडाल में गूंज उठी थी, "गद्दारो! शरम करो।"

…और, 1943 में पाँच महीने तक दिन-रात उनके साथ रहना पड़ा। बनारस, लखनऊ, इलाहाबाद और गोरखपुर की गलियों में, 'आजाद दस्ता' के क्रांतिकारी कार्यक्रमों को लेकर अलख जगानेवाली फातिमादि की तसवीरें आँखों के आगे आती है, एक-एक कर। …गिरफ्तारी के समय पुलिस-सार्जेंट की भद्दी गालियों के जवाब देते समय उनके चेहरे पर जो बिजली कौंधी थी; 1947 में हिंदू मुस्लिम दंगे के समय उपद्रवियों से जूझते समय उनके मुखमंडल पर जो आभा छायी रहती थी, सबको इस कत्थई रंग के बुरके ने कैसे ढंक दिया? यह कैसे हुआ?

…मैं उनके चेहरे पर पड़े परदे की चिथ्थी-चिथ्थी उड़ा देना चाहता हूँ। मैं फातिमादि की सूरत देखना चाहता हूँ और वह चीखकर अपनी दोनों हथेलियों से अपना मुंह ढक लेती है, "नहीं-नहीं! ओजू!…अजीत…मेरा चेहरा मत देखो…।"

सपना टूटने के बाद बहुत देर तक मैं चुपचाप पड़ा रहा। ऑल इंडिया रेडियो का 'सिगनेचर-ट्यून' शुरू हुआ। हठात्, मन में एक खयाल आया—आकाशवाणी के 'सिगनेचर-ट्यून' को बदलने के लिए अब तक कोई 'हंगामा' क्यों नहीं हुआ? यह तो शुद्ध 'अजान' का सुर है।…वायलिन पर चढती-उतरती नमाज की पुकार।

'दानिश-मंजिल' की सीढ़ियों पर चढ़ते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत की हर ईंट मुझे ताज्जुब-भरी निगाहों से देख रही है।

"किससे मिलना है?"

"फातिमादि से।"

"किससे?"

"फातिमादि से ।"

सवाल पूछनेवाला अचरज मे बुत बना खड़ा रहता है। फिर बुदबुदाता है, "फातिमादि ?"

गुड़िया जैसी खूबसूरत लडकी हँसती हुई आती है, सलाम करती है और कहती है, "मौसी पूछती है कि बहू को क्यों नहीं ले आये ?"

मैं समझ गया, फातिमादि आज भी मेरे सामने नही आयेंगी। आज भी इसी लड़की को बीच में रखकर बातें चलायेंगी।

उधर कई कमरों के दरवाजे जोर से बंद हुए। मद्धिम आवाज मे बजते हुए रेडियो अचानक चुप हो गये। हवा में फिसफिसाहट और सरगोशियाँ।

"सुना है, अफसाने लिखते हो ?" चिक की आड से सवाल पूछा गया।

फर्श पर बिछी फटी दरी की ओर देखते हुए मैंने जवाब दिया, "जी हाँ, झूठ बोलने की आदत को अब पेशा··· ।"

खिलखिलाहट सुनकर 'दानिश-मंजिल' की कई खिड़कियाँ चरमराकर खुली। भुने हुए प्याज की गध से कमरा भारी हो गया। और इसी गध ने मेरे दिमाग मे हाल की एक घटना की याद जगा दी।···एन० सी० सी० कैंप के बावर्चीखाने मे 'जहर-कातिल' की शीशी के साथ पकडे गये उस मुसलमान नौजवान का नाम क्या था ?

गुडिया जैसी लडकी का नाम नगमा है। वह एक प्याली चाय ले आयी। मैं झूठ बोलना चाहता था, मगर बोल नहीं सका। चाय की प्याली हाथ में लेकर मैंने पूछा, "तो फातिमादि—आप इतने दिन मे···मेरा मतलब···आप न जाने कहाँ खो गयी ?"

जवाब मिला, "बहू को लेकर कब आ रहे हो ?"

मैं आँखें मूंदकर चाय पी गया। मैं समझ गया, फातिमादि मेरे सवाल का जवाब नही देना चाहती। मुझे अब थोडा सदेह भी होने लगा, यह खातून हमारी फातिमादि नही, कोई और है।

मैं कुरसी छोड़कर उठा। नगमा तश्तरी मे पान ले आयी। इस बार साफ-साफ झूठ बोल गया, "मैं पान नही खाता।"

चलते समय मैंने हिम्मत बाँधकर कह दिया, "माफ करें। मुझे लगता है, आप हमारी वह फातिमादि नही ··।"

"तुमने ठीक समझा है, अजीज।"

अजीज ? मैं फिर चौंका। याद आयी, फातिमादि मुझे अजीत नही, अजीज कहा करती थी। मैं खामोश खड़ा रहा और चिलमन के उस पार फिर एक खुली खिलखिलाहट खनक उठी।

'दानिश-मंजिल' की सीढ़ियों से उतरते समय मुझे लगा, इस पुरानी इमारत

की हर ईंट मुझे नफरत-भरी निगाह से देख रही है।···मैं उस नौजवान का नाम याद करने की कोशिश करने लगा, जिसने एक हजार 'कैडेट' के भोजन में जहर। मिला दिया था।

'अमजदिया होटल' के सामने दीवार पर एक उर्दू 'पोस्टर' चिपकाया जा रहा है। मोटे हरूफों में लिखा हुआ है, 'नेशनलिस्ट-मुस्लिम कनवेंशन मुर्दाबाद !··· गद्दारों से होशियार !'

उस नफरत-आमेज पोस्टर को पढ़कर एक मौलाना तैश में बड़बड़ाने लगा, "इन नद्दाफ के बच्चों ने रुई धुनना छोड़कर अब कौम को धुनना शुरू किया है। इन्हें सबक सिखाना होगा। नेशनलिस्ट के बच्चे···!"

मुझे मितली आने लगी। रिक्शा पर बैठकर मैंने अपनी नाड़ी पर उँगली रखी। दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। पसीने से देह तर-ब-तर हो गयी।···चाय के स्वाद में थोड़ी तुर्शी थी न !···दाहिनी ओर जनरल हॉस्पिटल है और बायीं ओर पुलिस चौकी। सोचने लगा, पहले किधर जाना ठीक होगा?

किंतु रिक्शेवाले ने पूछा तो जवाब दिया, "राजेंद्रनगर ले चलो।"

एक कहानी-गोष्ठी में 'नयी कहानी', 'अ-कहानी', 'आज की कहानी', 'आनेवाले कल की कहानी' पर लगातार चार घंटों तक चुपचाप वाद-विवाद सुनने के बाद सीधे घर लौटने की हिम्मत नहीं हुई। ऐसी हालत में गंगा के किनारे अथवा किसी 'बार' में बैठकर ही अपने को ढूंढ़ना पड़ता है। लेकिन रिक्शेवाले ने पूछा तो जवाब दिया, "राजेंद्रनगर चलो।"

'गोल मार्केट' के पास पहुँचकर हमेशा की तरह अपने फ्लैट और कमरे को दूर से ही देखा। अपने कमरे में रोशनी देखकर माथा ठनका— अब कहाँ जायेंगे ?

दिल को कड़ा किया—कोई भी हो, माफी माँग लूंगा। कोई बहाना बनाकर विदा कर दूंगा।

सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते मैंने सारी दुनिया की परेशानी ओढ़ ली। दुनिया से बेजार एक आदमी का मुखौटा चेहरे पर लगाकर दरवाजा खटखटाया। किंतु दरवाजा खुला तो देखा, पत्नी के मुख-मंडल पर खुशी की लाली बिखरी हुई है। मेरी लटकी हुई सूरत पर उसकी नजर ही नहीं पड़ी। हुलसती हुई बोली, "कहो तो कौन आये हैं ?"

मुझे अवाक् होने का मौका ही नहीं मिला। हँसती-मुस्काती नगमा ने आकर सलाम किया। पत्नी बोली, "ओहो ! तीन घंटे से हम हँस रहे हैं।···तुम कहाँ थे ?···और, तुम भी खूब हो ! कभी बताया नहीं।"

"क्या नहीं बतलाया ?" मैंने पूछा।

"यही कि तुम हिंदू नहीं, मुसलमान हो !" मेरे कमरे से आवाज आयी।

देखा, फातिमादि मारे पलंट को रोशन करके बैठी है। बुरका फर्श पर पड़ा हुआ है। बुरका नही, चिन्थी और चीथड़े !

"यह कैसे हुआ ? किसने···?"

पत्नी बोली, "और कौन ! तुम्हारी दुलारी बेटी नौमी···जब तक बुरका नही उतारा, भौंकती रही। और जब बुरका उतारकर रखा तो दाँत से नोच-नोचकर छुट्टी कर दिया।"

"वह है कहाँ ?"

देखा, फातिमादि की गोद में आँचल के नीचे दुबककर बैठी है, शैतान। कोई अपराध करने के बाद वह इसी तरह मुँह बनाकर बैठती है।

"गोदी से उतरती ही नही। गुर्राती है।" नगमा बोली।

उन्नीस-बीस साल के बाद देखा, फातिमादि जैसी की तैसी है। सिर्फ, आँखों के पास कई नयी रेखाएँ उभर आयी है।

पत्नी की हँसी छलक रही थी रह-रहकर। किस्सा सुनाने लगी, "नौमी को बाँधकर मैंने दरवाजा खोला। इन्होंने पूछा, 'अजीज है घर मे ?' मैं बोली, 'कौन अजीज ?···अजीज नही, अजीत।' तो बोलीं—'अरे हाँ-हाँ, सुना है उसने अपने नाम का एक हरूफ बदलकर अपने को हिन्दू बना लिया है और एक बेचारी हिन्दू लड़की से शादी कर ली है।' मैं तो अवाक्···!"

"अच्छा ! तो भाभीजान अब तक गुस्साने में हैं। क्यों अजीज ? इस तरह किसी का धरम बिगाड़ना कुफ्र नही तो और क्या है ? लेकिन मान गयी तुमको। हो उस्ताद ! बुतपरस्त बनने के बाद अपना देवता भी चुना तो एक ऐसे दाढ़ीवाले को जिसने कलमा पढ़कर··।"

उन्हें श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की मूर्ति की ओर इस तरह इशारा करते देखकर हम सभी ठठाकर हँस पड़े।

हँसी की हिलोरें थमी तो मैंने पूछ लिया, "अच्छा, अब बताइये। आप कहाँ थी ? कहाँ हैं ?"

"कब्र में थी, कब्र मे हूँ।"

पत्नी रसोईघर में चली गयी। मुझे लगा, अभी यह सवाल पूछना उचित नहीं हुआ।

फातिमादि ने पूछा, "तुमने क्या सोचा था?···पाकिस्तान चली गयी ! है न ?"

"आपने पॉलिटिक्स क्यों छोड़···?"

"यह मुझसे क्यों पूछते हो ? अपने उन नवाबजादों से कभी क्यों नहीं पूछा, जो रातोंरात 'देश-भगत' बनकर कांग्रेस के खेमे में दाखिल हो गये—बगल मे छुरी दबाकर। अपने नेताओं से क्यों नहीं जवाबतलब करते ? कब तक गांधी-

जवाहर-पटेल को सरेआम गालियाँ देनेवाले, कौमी झंडे को जलानेवाले फिरका-परस्त लीगियों की इज्जत-अफजाई की गयी और मुल्क के लिए मरने-मिटनेवालों को दूध की मक्खियों की तरह निकाल फेंका।···तुम खुद अपने से यह सवाल क्यों नहीं पूछते ?" फातिमादि का चेहरा लाल हो गया। मुझे खुशी हुई।

मैंने टोका, "लेकिन, आपका इस तरह खामोश हो जाना···।"

"खामोश ?" लगा, सिंहनी तड़प उठी, "इन जालिमों ने मुझ पर क्या-क्या कहर ढाये, यह तुम्हें क्या मालूम ?···और, हमने किस दरवाजे की कुंडी नहीं खटखटायी। मगर, दिल्ली से पटना तक के खुदाबंदों ने मुझे अकल की दवा करने की सलाह दी। शादी करके बच्चे पैदा करने की नसीहत दी। और आखिर में धमकियाँ···ओह···अजीज···!"

फातिमादि का गला भर आया। पत्नी न जाने कब आकर खड़ी हो गयी थी। बोली, "तुम भी अजब आदमी हो···।"

नौमी, जो अब तक दुबककर बैठी थी, फातिमादि के चेहरे को सूंघकर 'कुंई-कुंई' करने लगी।

"अब भी लोगों को होश नहीं हुआ है। इन्हें सिर्फ अपनी गद्दी की फिक्र है। देश जहन्नुम में जाये। इन्हें क्या ?" फातिमादि की बोली में गहरी पीड़ा उतर आयी थी, "तुम···तुम···अफसाने लिखते हो न ?···याद है, आजादी के पहले जिन तरक्की-पसंद अदीबों की नज्मों और अफसानों में हिंदू-मुस्लिम इत्तहाद की बातें, 'मानवता' की दुहाई और न जाने क्या-क्या ठुंसी रहती थीं, आजादी के बाद अचानक उनकी बोलियाँ बंद ही नहीं, बदल गयीं···। अव्वाम की कसमें खानेवाले टुकुर-टुकुर देखते रहे और फिरकापरस्त अजदहों ने पूरी कौम को लील लिया।"

पत्नी ने टोका, "फातिमादि, खाना ठंडा हो जायेगा।"

टाउन हॉल में 'नेशनलिस्ट-मुस्लिम-कांफ्रेंस' की तैयारी धूमधाम से हो रही है। देश के कोने-कोने से प्रतिनिधियों के आने की खबरें छप रही हैं। और इन्हीं खबरों के साथ मोटी सुर्खियों में इस कांफ्रेंस की मुखालिफत के समाचार भी छपते हैं। रोज दोनों ओर से, सैकड़ों नामों के साथ बयान शाया होते हैं।··· विरोधियों का कहना है कि कोई 'गैर-नेशनलिस्ट' नहीं, सभी मुसलमान नेशनलिस्ट हैं। और अपने को नेशनलिस्ट कहनेवाले खुलेआम कहते हैं कि पुराने 'मुस्लिमलीगियों' के दिल-दिमाग में फिरकापरस्ती का जहर है। उन पर यकीन नहीं किया जा सकता।···बहुत दिन से किसी राजनैतिक जलसे में शरीक नहीं हुआ था। किंतु इस बार अपना 'कर्त्तव्य' समझकर इस सम्मेलन में सम्मिलित

होने के लिए पहुँचा। किंतु वहाँ का दृश्य देखकर फुटपाथ पर ही ठिठककर खड़ा रहा।

टाउन हॉल के सामने सड़क के दोनों ओर हजारों लोग खड़े नारे लगा रहे थे। गालियाँ, नारे और रह-रहकर रोड़े और पत्थरों की बौछार!

पुलिस के सिपाही चुपचाप कतार बाँधकर खड़े थे, क्योंकि प्रदर्शनकारियों की रहनुमाई 'कुलीन मुस्लिम' नेताओं के साहबजादे और बड़े अफसरों के लड़के कर रहे थे। मुझे लगा, हम फिर सन् 1947 साल में लौट गये हैं। हवा में फिर वही जुनून, वही नारे, वही नजारे, वही चेहरे!!

"लेना! लेना! जा रहा है काफिर का बच्चा!"

'तड़तड़ाक्! तड़तड़ाक्!'

"यह रहा हरामखोर! मारो साले को!"

"सुअर की औलाद!"

'तड़तड़ाक्!'

अब वे हर डेलीगेट को पकड़कर पीटने लगे। उत्तेजना की लहरें तेज होती गयीं। नारे, गालियों और रोड़ों की वर्षा जोर-शोर से होने लगी।

"महात्मा गाँधी की जय!"

एक महीन किंतु तेज आवाज! हठात् सब-कुछ रुक गया। लोगों ने देखा, अंजुमन इस्लामिया हॉल के प्रवेशद्वार—अब्दुल बारी दरवाजा—के सामने एक औरत खड़ी नारे लगा रही है।

फातिमादि? मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। देखा, फातिमादि ही हैं।

"कौन है यह औरत?"

"कोई हिन्दू···?"

"अरे नहीं। पहचानते नहीं! यह वही कुतिया है···।"

"फातिमा?···साली फिर कहाँ से आ गयी?"

"कुत्ती!"

पागलों का एक जत्था नाचता, अश्लील गालियाँ देता हुआ फातिमादि की ओर झपटा। फातिमादि मुस्कराती खड़ी रहीं। देखते-ही-देखते दरिंदों ने उनको जमीन पर पटक दिया और बाल पकड़कर घसीटना शुरू किया। दोनों ओर खड़ी भीड़ ने तालियाँ बजायीं—'शाबाश!' जब तक पुलिस के सिपाहियों की टुकड़ी पहुँचे, उन्होंने फातिमादि के सभी कपड़े उतार लिए थे।···मैं इससे आगे और कुछ नहीं देख सका।

कई दिन के बाद बहुत हिम्मत बाँधकर हम दोनों अस्पताल में फातिमादि को देखने पहुँचे।

केबिन के दरवाजे के पास ही नगमा खड़ी मिली। हमें देखते ही बिलख-बिलखकर रोने लगी।

"जानवरों ने फातिमादि के चेहरे पर एसिड की शीशी उँडेल दी थी। चेहरा झुलसकर काला हो गया है। एक आँख खराब हो गयी है।···हाथ की हड्डी टूट गयी है।"

आहट पाकर उनके होंठ थरथराये। शायद मुस्कराने की कोशिश कर रही हैं। फिर धीमे स्वर में बोलीं, "दुर पगला! यहाँ रोने आया है? जलवा देख।··· भाभी! कल सूजी का 'पायस'···क्या कहते हैं उसको···'परमान्न'···बनाकर ले आना। नोमी को भी साथ लाना।"

फातिमादि को कभी इस तरह देखूंगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी हमने।

अक्ल और भैंस

जब अखबारों में 'हरी क्रांति' की सफलता और चमत्कार की कहानियाँ बार-बार विस्तारपूर्वक प्रकाशित होने लगीं, तो एक दिन श्री अगमलाल 'अगम' ने भी शहर का मोह त्यागकर, खेती करने का फैसला कर लिया। गाँव में उनके चार-पाँच बीघे जमीन थी, जिसे बटाईदारी पर उठाकर, अगमलालजी 'अगम' आज से सात साल पहले ही गाँव छोड़कर जिला के सदर शहर में आ बसे थे। चूँकि, उनके बाप के साथ उनका 'उपनाम' भी लगा हुआ था, इसलिए शहर के लोगों को यह जानने में देरी नहीं लगी कि 'अगमजी' एक साहित्यिक प्राणी हैं। एक मित्र से किसी वकील की मुहर्रिरी करने की पैरवी करवायी, तो वकील साहब ने उनके उपनामयुक्त नाम पर ही एतराज किया—'एक ही साथ दो नाम रहना गैरकानूनी है। और जिसका नाम ही गैरकानूनी हो वह कानूनी कारबार कैसे कर सकता है?'···एक सेठजी के घर बच्चों को पढ़ाने का 'टिप्पस' लगाया, तो सेठजी भी उनके नाम और उपनाम से भड़के। पूछा—'क्यों जी? गाणा-वाणा तो नहीं बजाते हो?···नहीं जी, हमें ऐसा मास्टर नहीं चाहिए।' चारों ओर से हार-कर, आखिर एक दिन 'अगम' जी अपने नाम की कुर्बानी करने को तैयार हो गये। अपने नाम के अतिरिक्त-अंश को कतरकर अलग करना चाहते ही थे कि नौकरी दिलानेवाले देवता अचानक प्रसन्न हो गये, मानो। एक पुराने प्रेस में 'प्रूफ' देखने की नौकरी मिल गयी और तब से अगमलालजी 'अगम' अपने अखंड नाम के साथ ही 'प्रूफ' देखते हुए साहित्य-सेवा में संलग्न थे। किंतु, इस 'हरी क्रांति' की हवा ने 'अगम' जी के हृदय को ऐसा हरा बना दिया कि उन्हें चारों ओर हरी-हरी ही सूझने लगी। और, अंततः एक दिन शहर छोड़कर बोरिया-बिस्तर समेत गाँव वापस आ गये।

गाँव के लोगों ने जब 'अगम' जी के ग्राम-प्रत्यागमन का समाचार कारण सहित सुना, तो उन्हें खुशी नहीं—अचरज हुआ। कई निकट के संबंधियों और शुभचिंतकों ने उन्हें नेक से नेक सलाह देकर शहर वापस भेजना चाहा। किंतु

'अगम' जी की आँखों के आगे सदैव 'उन्नत किस्म' के गेहूँ की बालियाँ झूमती रहतीं, 'शंकर मकई' के भूरे-भूरे बाल लहराते रहते। और जब आँखों में नींद आती, तो अपने साथ नये किस्म के उन्नत सपने ले आती—आलू की ढेरी, ऊख के अंबार और हरे चने और मटर की मखमली खेतीवाले सपने! सो, 'अगम' पर किसी की सलाह का कोई असर नहीं हुआ और वे उत्साहपूर्वक अपने जीवन की 'प्रूफ रीडिंग' यानी भूलों को सुधारने में लग गये।

खेती करने के लिए सबसे पहले हल, बैल और हलवाहे की आवश्यकता होती है। हल और बैल तो खरीद लिए गये। किंतु, हलवाहा की समस्या जटिल प्रतीत हुई। अव्वल तो आजकल गाँव का सबसे निकम्मा आदमी ही हलवाही करता है। निकम्मा अर्थात् जिसे 'घर-घरहट', 'छौनी-छप्पर' और 'कोड़-कमान' का कोई 'लूर' नहीं, जो गाड़ी-बैल भी नहीं हाँक सकता—ऐसे 'फूहड़' आदमी के लिए गाँव में हलवाही के सिवा और कोई धंधा नहीं। ऐसे लोग, किसी भी गाँव में, आजकल बहुत कम ही मिलते हैं। एकाध हुए भी तो ऐसे लोगों को गाँव के बड़े-बड़े किसान बहुत पहले से ही चारा-पानी खिलाकर यानी 'अग्रिम पारिश्रमिक' (कर्ज नहीं) देकर, अनुबंधित कर लेते हैं। सो, बहुत खोज-ढूँढ़ करने के बाद, गाँव का सबसे अपाहिज और काहिल पुरुष बिल्लूदास—'अगम' जी की किस्मत में आकर जुटा। बहुत 'खुशामद-दरामद' और प्रलोभन देने के बाद—नित्य सुबह-शाम एक गिलास गर्म चाय पिलाने की शर्त पर बिल्लू महाराज राजी हुए। 'अगम' जी ने सबसे पहले उसके नाम को 'प्रूफ रीडिंग' करके सुधारा—बिल्लूदास नहीं, बिलोमंगल! बिलोमंगलजी गाँव के सर्वश्रेष्ठ आलसी माने जाते थे। किंतु, 'मुहुरत' के दिन ही 'अगम' जी ने उनको एक गिलास 'ऑरेंज पिकोदार्जिलिंग' चाय पिलाकर उनकी सारी सुस्ती इस तरह दूर कर दी और वे तत्काल ही इतने चुस्त हो गये कि उनके अंग-अंग फिल्मी गीतों पर डोलने लगे। हल जोतते समय जब गाँव के अन्य हलवाहे-मजदूर 'बिरहा-बारहमासा' गाते, तो बिलोमंगलजी के पैर 'मस्तानी महबूबा' के तर्ज पर थिरकते रहते। इसी प्रक्रिया में एक दिन दाहिने बैल के पिछले पैर में 'फाल' लग गया। 'अगम' जी को यह नहीं मालूम था कि हल का फाल भी इतना खतरनाक हो सकता है कि जरा-सा लग जाने पर महीनों तक बैल लँगड़ा होकर बैठा रहे!

खैर, शुभचिंतकों और संबंधियों से बैल और भैंसा मँगनी करके, 'अगम' जी ने किसी तरह खेतों को तैयार करवाया। कस्बे से रासायनिक खाद खरीद लाये और 'बीज-वपन' के लिए शुभ दिन देखकर गेहूँ की 'बोआई' हो गयी। 'बोआई' के बाद दोनों—अगम और बिलोमंगल—इतने प्रसन्न हुए कि रात-भर मिल-जुलकर—डुएट-भाव से—'मिट्टी में सोना' उपजानेवाले गीत गाते रहे। उसी दिन 'अगम' जी ने अपने शहरी साहित्यिक मित्रों को कई लंबी-लंबी चिट्ठियाँ

लिखीं, जिनमें 'नई खेती' के नये अनुभवों के आधार पर उन्होंने घोषित किया कि खेती करने में, कविता और चित्रकारी करने का आनंद, एक ही साथ प्राप्त होता है।

कई दिनों तक स्वामी-सेवक 'बोआई' के आनंद में मग्न रहे। कि, एक दिन सूर्योदय के एक घंटा पहले ही एक शुभचिंतक ने आकर दरवाजा पीटना शुरू कर दिया। सुबह के सुनहले सपने को खोकर 'अगम' जी अत्यंत अप्रसन्न हुए। शुभ-चिंतकजी को भला-बुरा कहना चाहते थे, किंतु इसके पहले ही शुभचिंतकजी ने सूचना दी, "तुम सोए हो! जाकर देखो, तुम्हारे खेतों मे गेहूं का एक भी दाना बचा भी है या नही।"

अगमजी समझ गये, सुबह-सुबह दिल्लगी करके चाय पीने आया है। वे बोले, "क्यों? गेहूं के दाने कहां चले जायेंगे?"

शुभचिंतक बोले, "अरे, जाकर देखो ना—हजारों-हजार कौआ, मैना और दुनिया-भर की चिड़ियों का झुंड तुम्हारे ही खेतों में पड़े है। गेहूं के दाने चुग रहे हैं।"

"क्या सुबह-सुबह दिल्लगी करने आ गये?"—अगमजी ने कहा।

"मैं दिल्लगी करने नहीं आया, तुमको 'चेताने' आया हूं।"

अगमजी ने तकिया के नीचे से 'गेहूं की सफल खेती' नामक पुस्तिका निकाल-कर शुभचिंतक के सामने फेंकते हुए कहा, "मुझे इतना उल्लू मत समझना। मैंने गेहूं की सफल खेती के बारे में एक-एक शब्द पढ़ लिया है और जहां-जहां 'प्रूफ' की गलतियां थीं, उन्हें शुद्ध भी कर दिया है। समझे? इस किताब को खोलकर कहीं भी किसी अध्याय की किसी भी पंक्ति में खोजकर निकाल दो कि गेहूं की 'बोआई' के बाद 'चिड़ियां-उड़ाई' भी आवश्यक···।"

शुभचिंतकजी ने अप्रसन्न होकर जवाब दिया, "तुम्हारी इस किताब में क्या लिखा है और क्या नहीं लिखा है—यह मैं नही जानता। सामने तुम्हारे खेत हैं। जाकर खुद देखते क्यों नही कि खेतों में चिड़ियो के कितने अध्याय और कितनी पंक्तियां हैं···।"

'बोआई' के बाद सभी किसानों के हलवाहे-रखवाले सूर्योदय के बहुत पहले ही खेतों पर चले जाते है। दुनिया-भर की चिड़ियों की टोलियां कचर-पचर करती हुई खेतों में उतरना चाहती हैं। किंतु, वे पटाखे छोडकर तथा फटे कनस्तरो को पीट-पीटकर उन्हें उड़ाते रहते है—'हा, हा-ए!'

अगमलालजी 'अगम' ने गांव से बाहर जाकर देखा—सचमुच अद्भुत व्यापार! जो बात किताब के किसी पृष्ठ पर नही, वह खेत पर लिखी हुई है—आधुनिक कविता की पंक्तियों की तरह। और, जिस तेजी से उन पखेरुओं के चोंच चल रहे थे, उतनी तेजी से किसी प्रेस में 'ऑटोमैटिक कंपोजिंग' भी नही

होती होगी। एक ही घटा में सब गेहूँ चुगकर खत्म कर देंगे !···'अगम' जी के अंतर से, पूरी शक्ति के साथ बस एक ही शब्द अनायास निकल पड़ा, "हा—हाय !"

किंतु उनके 'हाय' का कोई खास असर नहीं हुआ और हाथ की तालियों से जब पंछियों के एक पंख भी नहीं फड़के, तो उन्होंने एक ढेला उठाकर फेंका। ढेला खेत में गिरा, तो इधर चरती हुई चिड़ियाँ उड़कर उधर जा बैठीं और चुगने लगीं। अगमजी दौड़कर उस मेंड़ पर गये, तो पंछियों के दल उड़कर दूसरी तरफ बैठ गये। तब तक बिलोमंगलजी भी सहायता के लिए पहुँच गये थे। अगमजी को राहत मिली। पटाखे या कनस्तर तो थे नहीं, इसलिए दोनों बहुत देर तक इस मेंड़ से उस मेंड़ पर दौड़-दौड़कर 'ढेलेबाजी' करते रहे। सूरज बाँस भर चढ़ आया और पूस की सुबह का कुहासा तनिक छँटा और चिड़ियों के पेट भर गये तो वे स्वयं ही उड़कर बाँसों तथा पेड़ों की फुनगियों पर जा बैठीं।

उस दिन लौटकर 'अगम' जी ने 'गेहूँ की सफल खेती' नामक पुस्तिका के अंतिम पृष्ठ पर नोट लिखा, "बीज की 'बोआई' के बाद ही, 'चिड़िया-उड़ाई' पर विस्तारपूर्वक एक अध्याय लिखकर पुस्तिका के अगले संस्करण में जोड़ दिया जाये।"

'नोट' लिखने के बाद अगमजी ने बिलोमंगल से कहा, "कल सूरज उगने से दो घड़ी पहले ही खेत पर एक फूटा कनस्तर लेकर पहुँच जाना।"

"फूटा कनस्तर कहाँ से लावेंगे ?"—बिलोमंगल का सवाल था।

"कनस्तर ?···तुमको कहीं फूटा हुआ कनस्तर भी नहीं मिलेगा ?"

जवाब मिला, "जी, हमारी नजर में तो कहीं कोई फूटा कनस्तर नहीं पड़ा। आपने कहीं देखा हो तो कहिए, ले आता हूँ।···हाँ, सहुआइन की दुकान में साबुत कनस्तर जरूर मिल सकता है।"

बिलोमंगल लौटकर एक रुपया में एक कनस्तर उधार ले आये। कनस्तर को अगमजी के कान के पास पीटकर परीक्षा देते हुए कहा, "देखिए ! एकदम साबुत है।"

कनस्तर की समस्या हल करने के बाद ही बिलोमंगल ने दूसरा सवाल पैदा कर दिया, "लेकिन, हमसे यह काम नहीं होगा।"

"क्यों ?"

बिलोमंगल ने सर्वप्रथम कारण बतलाया, "बात यह है बाबू साहेब कि हम ठहरे बैस्नव आदमी। भोरे-भोरे इतने 'प्राणी' के मुंह का आहार छीनने का काम हमसे मत करवाइए।"

अगमलालजी को अचरज हुआ—क्या कहता है यह आदमी ! झुंझलाए, "तो क्या चिड़िया उड़ाने के लिए दूसरा आदमी रखना होगा ?"

बिलोमंगल ने भी झुंझलाकर जवाब दिया, "एक तो जाड़े का मौसम ! तिस पर सूरज उगने के दो घड़ी पहले ही उठना। इसके बाद, खेत पर पाँव-पैदल जाना। आजकल सुबह-सुबह ऐसी कनकनीवाली पछिया हवा चलती है कि देह क्या, जीभ भी सुन्न हो जाती है···"

अंततः सम्मानपूर्ण शर्तिया समझौता हुआ—कल से सूरज उगने के दो घंटा पहले नहीं, एक घंटा पहले बिलोमंगल अगमजी का ऊनी ओवरकोट और 'कन-झप्पाटोपी' पहनकर, पैरों में काबुली चप्पल डालकर एक गिलास गरम चाय पीने के बाद—एक बीड़ी सुलगाकर दूसरी जेब में रखते हुए—कनस्तर लेकर खेत पर पहुँचेगा। वह चिड़ियों को उड़ावेगा नहीं। सिर्फ, 'चल उड़ जा रे पंछी' गीत गाता हुआ, ताल पर कनस्तर बजाया करेगा।

'चिड़िया-उड़ाई' के बाद जब खेत में गेहूँ की पीके फूटे और धीरे-धीरे बढ़े, तब अगमजी को मालूम हुआ कि बिलोमंगल की दाहिनी आँख जन्म से ही दृष्टि-हीन है। जिस स्थान पर बैठकर वह नित्य कनस्तर पर ठेका बजाया करता था, उससे दाहिनी ओर के खेतों में बहुत कम पौधे उगे।

अस्तु, पौधे बढ़ने लगे। हरियाली गहरी होती गयी और अगमजी दूर होते गये और बिलोमंगलजी 'हरियाली और रास्ता' के गीत गाते रहे। किंतु सिंचाई करने का समय आया तो बिलोमंगलजी फिर अकड़ गये, "हम हलवाही करने के लिए बहाल हुए हैं, पानी पटाने के लिए नहीं।"

इस बार भी सम्मानपूर्ण समझौता हुआ—बिलोमंगल जलपान करके खेत में जल सींचने के लिए खाली हाथ जायेगा। किंतु, गाँव के किसी किसान से 'झगड़ा-कनिया' नहीं करेगा। कोई जोर-जबर्दस्ती करे, तब भी नहीं।

पहली सिंचाई के अंतिम दिनों में भी जब अगमजी ने अपने खेतों में धूल उड़ते देखा, तो उनका माथा ठनका। खेतों में जाकर देखा—एक चुल्लू पानी भी किसी दिन नहीं पड़ा है। कारण पूछने पर बिलोमंगलजी के सम्मान को चोट लगी। उन्होंने समझौते की शर्तों का स्मरण दिलाते हुए कहा, "बाबू साहेब ! यहाँ तो कहावत चालू हो गया है कि 'जो दिखावे मर्दानी—वह पावे पानी।' हम ठहरे हलवाहा आदमी। उधर, गाँव के बड़े-बड़े बाबू किसान खुद पानी के लिए आते हैं। उनसे 'बतकुटी' करके मार खाने कौन जाये ? आप खुद क्यों नहीं जाते ?"

अगत्योगत्वा, अगमजी स्वयं ही सिंचाई के लिए पानी लाने के लिए खेत पर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—हर नहर, आहर, छहर और पैन पर गाँव के बड़े-बड़े किसान लाठी और लठैतों के साथ जमे हुए हैं। अगमजी ने जब देखा कि बगैर लाठी और लठैती के पानी पाना असंभव है, तो उन्हें 'सत्याग्रह' की याद आयी। उन्होंने ऐलान करके कहा, "सभी लोग सुन लें। कल से अगर मुझे पानी

नहीं लेने दिया गया तो मैं यहीं इसी 'साइफन' पर बैठकर 'आमरण-अनशन' शुरू कर दूंगा।"

लेकिन, नहर-विभाग में 'पार्ट-टाइम' करनेवाले, गाँव के एक किसान नौजवान ने उनकी, आमरण-अनशन-घोषणा को एक ही बात से निस्तेज कर दिया—"आपने तो पानी के लिए 'सट्टा' ही नहीं करवाया है तो पानी, कैसे मिलेगा?"

"सट्टा? यह 'सट्टा-पट्टा' क्या होता है?" अगमजी ने पूछा।

"जी, 'सट्टा' माने 'एग्रिमेंट'। जिन्होंने सट्टा करवाया है, पानी उन्हें ही मिलेगा। 'अनअथॉराइज्ड' पानी लेने पर तुरत मुकदमा दायर हो जाता है।"

अगमजी की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। वे चुपचाप मुंह बाये अपने सहायक बिलोमंगलजी की ओर देखते रहे। बिलोमंगल ने उनको फिसफिसाकर बताया, "बाबू साहेब! यहाँ हर बात में 'पाटीपोलटिस' होता है।"

"पाटीपोलटिस?"—अगमजी मुँह बाये ही रहे।

"जी! गाँव 'दोपाटी' है। 'पुआरी-टोल' पाटी और 'पछियारी-टोल' पाटी। आपका घर दोनों टोले के बीच 'सीवान' पर पड़ता है। आपको लोग न इस टोल की पाटी में समझते हैं, न उस टोल की पाटी में···।"

अगमजी गम खाकर गुमसुम लौट आये। रात-भर उनको अपनी निर्बलता पर, उनके अपने ही हृदय में ग्लानि और क्षोभ के बादल घुमड़ते रहे। और अंत में निर्बल के बल रामजी को उन पर ऐसी दया आयी कि आसमान में घने काले बादल उमड़ आये और घनघोर वृष्टि शुरू हुई। अपने सहायक की 'बरसात' का गीत गाने के लिए उन्होंने पुरस्कार दिया प्रसन्न होकर। सुबह जाकर देखा कि बगैर 'सट्टा-पट्टा' के ही उनके खेत में भरपूर पानी छलमला रहा है।·· पानी रह गया उनका!

पौधे एक बालिश्त-भर और बढ़े तो अगम का हौसला भी डेढ़ हाथ बढ़ा। बढ़ता ही जा रहा था कि एक सुबह को बिलोमंगलजी आकर कोई आवश्यक सूचना देते हुए तुतलाने लगे। बार-बार 'भैंम-भैंम' सुनकर अगमजी ने समझा कि आज दूधवाले ने दूध नहीं दिया। किंतु, बात दूसरी ही थी और थी भीषण मारात्मक! रात में गाँव के भैंसवारों ने उनके तीनों खेतों की फसल को चराकर साफ कर दिया।

अगमजी दौड़कर खेत पर गए। वे रोना चाहते थे किंतु रो भी नहीं सके। गाँववालों को कोई अचरज नहीं हुआ। और न किसी ने इस अन्याय के लिए किसी से कुछ कहा। बल्कि, ठहरानेवालों ने अगमजी को इसके लिए 'दोषी' ठहराया।···खेत में फसल लगाकर—बेसुध होकर घर में सोने से खेती चरेगी ही।

अगमजी ने अपने सहायक की ओर देखा। बिलोमंगल ने कहा, "बाबू साहेब ! असल में बात यह है कि 'जिसका काम उसी को साजे, और करे तो डंडा बाजे।' आप ठहरे 'कागत-कलम' वाले आदमी। अगर खेती करना हो तो यहाँ के लोग जैसा करते हैं, जो करते हैं, वह आपको भी करना होगा।···यहाँ 'अकल' से बढ़कर 'भैंस' है। और, क्यों न हो ? भैंस का दूध मीठा है। बहुत ताकतवर होता है। और, जब ताकत होगा, तो लाठी भी मजबूत होगी। जब लाठी मजबूत होगी, तब दूसरे की भैंस भी आप हाँककर अपने बथान पर ला सकते हैं।···और, भैंस तो 'जीप' गाड़ी से भी बढ़कर होती है। रात-बेरात जब जी में आवे, इस पर सवार होकर आप 'बिजूबन-बिजूखंड' में भी जा सकते हैं। न साँप-बिच्छू का डर, न भूत-पिशाच का कोई भय और न बाघ-भालू। कीचड़, पानी, कादो ओस, पल्ली—सबसे बचाकर, खेत की हर मेंड़ पर ले जाएगी और कोई सवारी ? सोचिए, जरा।"

अगमलालजी ने सोचकर देखा—और बिलोमंगल को मान गये। इसलिए, गाँव के कई तथाकथित शुभचिंतकों ने एकांत में आकर जब अमुक-अमुक व्यक्तियों के चरवाहों पर मुकदमा दायर कर देने की गुप्त सलाह दी, तो उन्होंने इंकार कर दिया—कौन देगा उसकी गवाही ? चश्मदीद गवाह कहाँ मिलेंगे ? नहीं-नहीं ! उन्होंने जो करना है, उसका फैसला कर लिया है।

अगमलालजी ने विचार कर देखा—अभी 'मेला-तमाशा' शुरू होनेवाला है। तीन महीने तक 'प्रेस' मे खूब 'ओवरटाइम काम रहना है। उसके बाद ही शुरू हो जायेगा—एलेक्शन का काम। वोटर-लिस्ट छपाई के दिनों दस-पंद्रह रुपये रोज 'ऊपरी आमदनी' हो जाती है···फिर, खेती के नये अनुभवो के आधार पर वह 'गेहूँ की सफल खेती' मे भी अच्छी पुस्तिका लिख ले सकता है।···इन पैसो को जमा करके अगमजी सबसे पहले एक गुजराती भैंस खरीदेंगे—धर्मगंज के मेले मे। इसके बाद, गंगाजी के मेले मे बनबाँस की मजबूत लाठी खरीद लावेंगे। तब, कलम को छोड़कर हाथ मे लाठी गहेंगे और भैंस चरावेंगे, दूध पीयेंगे, डंड पेलेंगे—लाठी को तेल नहीं—घी पिलाकर लाल बना लेंगे और तब खेती करने के लिए खेत पर उतरेंगे !···अभी शहर लौट जाना ही श्रेयस्कर है।

गाँव छोड़कर पुन: शहर की ओर आने के दिन बिलोमंगलजी ने उनकी यात्रा को 'शुभ' करने के लिए कहा, "बाबू साहेब ! आपने हमको साल-भर के लिए बहाल किया था। अब आप बीच में ही हमको छोड़कर जा रहे है ! क्या यही 'निसाफ' है ?···खैर, आपकी जो मर्जी। मगर, मेरी एक अरजी है कि आप हमको भी अपने साथ ले चलिए। वहाँ जब आपको मिल गया है, तो मेरा भी कहीं-न-कहीं 'डोल' लग जाएगा।···और, कुछ नहीं तो आपके दुश्मनों की 'यात्रा'

तो रोज खराब कर ही सकता हूँ। कहावत है कि काना आदमी सेवक रहे तो मालिक की यात्रा को शुभ और मालिक के दुश्मनों की यात्रा को अशुभ करता है। वैसे आपकी मर्जी!"

अगमजी बिलोमंगलजी के साथ आज ही सुबह की गाड़ी से शहर वापस चले गये।

रेखाएँ । वृत्तचक्र

अस्पताल के सर्जिकल वार्ड से मैं सदा दूर-दूर ही रहा करता था। कभी किसी घायल आत्मीय अथवा बीमार दोस्त को देखने के लिए गया, तो वार्ड के बरामदे पर ही पसीने से लथपथ और सिर में चकराहट। चारों ओर मिट्टी के बरतन-बासन की तरह टूटे-फूटे लोग। सफेद पट्टियों और प्लास्टर से बँधे उनके भग अंग। कटे-छटे हाथ या पाँव। चीरे हुए पेट से लगी हुई रबर की नली। पलंग के पास स्टैंड से लटकती हुई खून, अथवा प्लाज्मा, या सलाइन की बोतल। हवा में ईथर की उत्कट गंध और चीख-कराह-पुकार···इस बार बीमार होकर जब से सर्जिकल वार्ड में भरती हुआ हूँ, सब-कुछ सामान्य और श्लील लगता है। घबराहट नहीं। सिर में चक्कर नहीं। कहीं कोई दुर्गंध नहीं। जब से होश में आया हूँ अपनी हालत पर खुद हँसकर प्राणांतक कष्ट सह लेता हूँ। आज हठात् अपनी इस बेबस अवस्था पर मुझे भीष्म पितामह की याद आयी। महाभारत की वह तसवीर आँखों के सामने स्पष्ट हो गयी···ब्लड की बोतल, बेड रेस्ट, राइस-ट्यूब, सलाइन की बोतल से लगी रबर की नली मेरे पाँव की नस में बिंधी हुई··· उमा से मैंने कहा—मैं शरशय्या पर सोये हुए भीष्म पितामह की तरह नहीं लग रहा क्या ?

उमा के होंठो पर हलकी-सी मुस्कराहट दौड़ गयी। वह बोली—कल नाई को बुला लाऊँगी···दाढ़ी कितनी बढ़ गयी है···!

मैंने पहले एतराज जाहिर किया, फिर कुछ सोचकर कहा—आज ही क्यों न बुला लाती···?

सोचा, आज अगर हजामत नहीं बनी और आज ही कुछ हो गया···कुछ हो गया क्या, साफ-साफ क्यों नहीं कि यदि मर गया, तो आखिरी तसवीर कितनी बदसूरत उतरेगी ! बढ़ी हुई दाढ़ी, खुला हुआ विकृत मुँह, चेहरे पर आतंक··· नहीं-नहीं, आखिरी तसवीर में मेरे होंठों पर मुस्कराहट अंकित रहे, मरते-मरते चेष्टा करूँगा···स्माइल प्लीज···!

जलधरजी की याद आती है। जलधरजी की शव-यात्रा की तसवीरें 'माधुरी', 'फिल्मफेयर', 'चित्रपट' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं···चेहरे पर कैसी शांति छाई थी ! होंठों पर एक अपूर्व मुस्कान, ललाट पर चंदन। फूलमालाओं से ढका प्रसिद्ध सिने गीतकार जलधर···आँखें मूंदकर किसी मधुर गीत का मुखड़ा सोच रहा हो, मानो ! किंतु, पुष्पलाल ? अत्याधुनिक विद्रोही कवि, कथाकार पुष्पलाल के एक दर्जन से भी अधिक कैमरावाले मित्र थे। जब वह जीवित था तो मित्रों ने उसकी कई नंगी तसवीरें उतारी थीं। किंतु उसकी आखिरी तसवीर किसी के पास नहीं, किसी ने उतारी नहीं, अथवा उसने मौका ही नहीं दिया। पुष्पलाल के पेट में जब एकाध पैग 'माल' पहुँच जाता यानी जब वह मौज में आता, तो हर बात के पहले मैथिली की एक भद्दी गाली उगलता···धीचो-ओ-ओ···! सुना है मरने के पहले उसके मुंह से यही गाली निकली थी। उसके एक मित्र का कहना है कि उसने भगवान् को गाली दी थी। वह जिसे भी गाली दे, मैं उसके मरते हुए चेहरे की कल्पना करता हूं। दोनों होंठों को संकुचित करके गोल बनाते हुए वह गोली दागता था—धीचो-ओ-ओ···! सामनेवाले वार्ड में पिछले साल पुष्पलाल ने चोला छोड़ा था। मैं जानता हूँ, मेरी बीमारी का समाचार सुनकर लोगों ने जलधर और पुष्पलाल को याद किया होगा। किसने क्या कहा होगा, अनुमान से ही मैं सही-सही बता सकता हूं।

उमा इस तरह चिंतित होकर क्यों आ रही है उधर से ? कहती है—ब्लड बैंक में 'ओ' ग्रुप का ब्लड नहीं है। कल कोई रक्तदाता 'ओ' ग्रुपवाला नहीं आया, तो क्या होगा ?···उमा चिंतित हो फिर उधर चली गयी।

साला ! न जाने कैसे-कैसे और किस-किस पेशे के लोगों के खून ! एक दिन बाद देकर 300 सी० सी० रक्त शिराओं के द्वारा बूंद-बूंद कर डेढ़ घंटे तक मेरे शरीर के अंदर पहुँचाया जाता है। और डेढ़ घंटे तक निश्चल चित लेटा हुआ मैं स्टैंड में लटकती उलटी बोतल की ओर देखता रहा हूं। रबर की नली के बीच लगे कांच के बल्ब में टपकते हुए गाढ़े खून की बूंदों को गिनता हूं। फिर बूंदों के टपकने के ताल पर मन में मुखरित होनेवाली बात स्वयं ही पद्यबद्ध-सी होती जाती है :

दौड़ाया जा रहा है रोज, मेरी शिराओं में 300 सी० सी० रक्त !
किसी आततायी, आक्रामक, बूचड़ ब्रह्मचारी, कृपालु ईश्वर का···!
और तब कोई मेरे अंदर ही मुझे गाली देता हुआ कहता है—साले ! अब तू कविता करने लगा···?

इस बार अस्पताल में होश संभालने के बाद ही से ऐसा होता है। मन-ही-मन किसी पंक्ति की आवृत्ति, तुकबंदी और अश्लील मुहावरे गढ़ने का खिलवाड़! अथवा यह भी मेरे मूल रोग का कोई उपसर्ग है ? कई बड़ी बीमारियों के बाद

ऐसे ही लक्षण प्रकट होते हैं···दाँत से नाखून कुरेदना, बार-बार नाक पोंछना, हाथ की उँगलियों को नचाना, जीभ से होंठ चाटना···

उमा ब्लड का प्रॉब्लेम सॉल्व कर आयी है। उसके साथ मुस्कराती आयी है एक मोटी अधेड़ बंग महिला।

उमा कहती है—इनका भी 'ओ' ग्रुप है। कई साल से बराबर ब्लड बैंक में ब्लड डोनेट कर रही हैं।

महिला अपने बैग से एक लाल कार्ड निकालकर उमा की ओर बढ़ाती हुई कहती है—एमरजेंसी में ही हमेशा हमारा ब्लड लगता है।

उमा उससे बातें करने लगी। वह कल सुबह आठ बजे आकर ब्लड बैंक में अपना खून दे जाएगी। और बारह बजे से मेरी नसों में इस स्कूल-मास्टरनी का रक्त टपकने लगेगा। वह नमस्कार करके चली गयी, तो मेरा मुंह खुला—औरत का ब्लड ? तिस पर इस औरत का···? हरगिज नहीं ! कभी नहीं ! मैं लूंगा ही नहीं !

उमा चुप रही, तो मैं लगातार दुहराने लगा—मैं लूंगा ही नहीं। नहीं लेना है···नहीं लेना है···!

—क्या लड़कपन कर रहे हो !—उमा किंचित् हँसती हुई मुझे डाँटती है।

—मैं हरगिज नहीं लूंगा !

—मत लेना ! अभी चुप तो रहो !

—मैं चुप भी नहीं रहूँगा ! मैं अभी दूध भी नहीं पीऊँगा। दवा भी नहीं।

उमा फीडिंग कप में दूध डालकर चम्मच से दवा मिलाती रहती है और मैं कटे हुए रेकार्ड की तरह बजता रहता हूँ—दवा भी नहीं ! दूध भी नहीं ! दवा भी नहीं ! दूध भी नहीं···!

यदि नाइट नर्स मिस नीलम्मा नहीं आ जाती तो लगातार दस-पंद्रह मिनट तक आँखें मूंदकर इसी तरह बोलता रहता और उमा हाथ के फीडिंग कप में चम्मच चलाती मुझे डाँटती, पुचकारती रहती। इस लड़की को मैं मन-ही-मन रजनीगंधा की खिली हुई कली कहता हूँ। रात-भर इसी तरह तरोताजा यह मंद-मंद मुस्कराती और मह-मह महकती रहेगी।

—यह कौन-सा गाना चल रहा था ?—नीलम्मा अपनी 'केरालाइ हिंदी' में पूछती है।

मेरे मुंह में फीडिंग कप की टोंटी डालती उमा मुस्कराकर जवाब देती है—दूध भी नहीं ! दवा भी नहीं···!

—वाह ! कित्ता अच्छा गाना है ! कल से फीडिंग कप नहीं, फीडिंग बॉटल ले आइए !—नीलम्मा थर्मामीटर झाड़ती आगे बढ़ जाती है। मुझे आज्ञाकारी बालक की तरह दूध पीते देखकर कहती है—दूध पी के खूब गाना गा !

उमा और नीलम्मा एक ही साथ हँस पड़ती हैं।

नीलम्मा बुखार मापकर चली गयी, तो उमा उसकी नकल करती हुई बोली—'दूध पी के खूब गाना गा'''!

किंतु मैं हँस नहीं सकता हूँ। गाना, गीत, सांग, म्यूजिक, लै, टेक, रेकार्डिंग, प्लेबैक वगैरह शब्द सुनते ही मुझे हिचकी आने लगती है। हिचकी अर्थात् हिक्कप, जिसे सात दिन तक, दिन-रात दवा अदल-बदलकर डॉक्टरों ने मुश्किल से दूर किया है। हिचकी के बाद मतली, यानी नॉसिया। फिर अंतड़ियों में सोया दर्द धीमे-धीमे शूल बनकर चुभने लगता है। तब शुरू होता है वमन। सब दवा, पथ्य, टेब्लेट्स, ग्रेन्युल्स, पिल्स, कैप्सूल, ड्रॉप्स एक साथ बाहर! वमन के बाद ही कॉमा, संज्ञाहीनता!

हिचकी शुरू हुई और उमा ड्यूटी रूम की ओर भागी। उमा के साथ खुट-खुट करती नीलम्मा तेजी से आती है। मेरी नाड़ी पर उँगली रखती है और फिर तेजी से ड्यूटी रूम में चली जाती है। निश्चय ही बड़े डॉक्टर को कॉल देने'''

'शि-ब्रू-ऊ-ऊ!' लगा, गंगा के उस पार से कोई मुझे पुकार रही है। मैं जवाब देना चाहता हूँ, आवाज नहीं निकलती। आँखें खुलती हैं। मेरे नासाछिद्र में लगी राइल ट्यूब में मोटी सीरिंज लगाकर नीलम्मा मेरी अंतड़ियों में जमे हुए दूषित-कुपित पित्तज तरल पदार्थ को खींच-खींचकर बाहर निकालती जा रही है। पास खड़े बड़े सर्जन डॉक्टर अजय चुपचाप मेरी ओर देख रहे हैं।

पेट का शूल धीरे-धीरे कम हो रहा है। शायद हिचकी रोकनेवाली सूई लगाई गयी है। इस सूई के बाद एक पेग स्कॉच का नशा-सा हो जाता है'''तो आज कॉमा में नहीं गया! कॉमा! हास्यरस के उन बनारसी कविजी का नाम भूल रहा हूँ, जिनकी एक कविता की पंक्ति है: जिंदगी का सेंटेंस है'''कॉमा'''फुल स्टॉप?

लेकिन मैं कॉमा को समाधि कहता हूँ। मूर्च्छा को सन्यास रोग भी कहा जाता है न! आश्चर्य! बेहोशी में देखे हुए सपनों के दृश्य मुझे विस्तारपूर्वक याद हैं।

देखा, सभी लोग पेट पकड़कर झुके हुए हैं, झुक गये हैं अचानक, जो जहाँ है, वह अपने दोनों हाथ कमर पर रखकर झुका हुआ है। खेत-खलिहान में काम करते हुए लोग, नहर के किनारे खड़े लोग, चने के खेत में साग खोटती हुई औरतें, सभी दर्द से छटपटा रहे हैं। हवा में एक विचित्र प्रकार की खटास है। सब-कुछ खट्टा-खट्टा। हवा का एक झोंका आता है और सभी एक साथ चीखकर और भी झुक जाते हैं। सभी व्यक्तियों के शरीर मुड़कर विकृत स्वस्तिक चिह्न जैसे'''

मैंने सुना, कोई रेडियो पर किसी स्टेशन से ऐलान कर रहा है—भाइयो! भाइयो! यह कोई एटॉमिक गड़बड़ी हुई है। जमीन पर पेट के बल लेट जाइए। वैक्यम आ

रहा है। वैक्वम ! ओ-य-क ! ओ-य-क। हजारों लोग एक साथ वमन कर रहे हैं। सभी के मुँह से एक ही शब्द—वैक्वम ! वैक्वम ! वैक्वम !···किंतु उमा स्वस्थ है। दौड़ी आ रही है—भय नेई, भय नेई। आर वैक्वम एदिके आमबे ना। डरने की बात नहीं, गलती से ऐसा हो गया है। किसने की ऐसी गलती ? यह जानलेवा गलती किसकी है ? अमरीकी वैज्ञानिकों की या रूसी व चीनी या पाकिस्तानी, अथवा भारतीय···जुडिशियल इंक्वायरी हो। गलती करनेवाले को सजा दो। नहीं तो गद्दी छोड़ दो।

समाधि भंग होने पर अपने चारों ओर डॉक्टरों को खड़ा देखकर मैं पूछना चाहता था—आखिर किसकी गलती थी ? लेकिन कुछ पूछ नहीं सका।

ऑक्सीजन सिलिंडर लगी हुई नली मे मुझे नाथ दिया गया था।···

दूसरा दृश्य : अशोक राजपथ पर एक बड़ा-सा जुलूस आ रहा है। कोई नारा नहीं। शोर-गुल नहीं। जुलूस करीब आता गया। सड़क के दोनों किनारे असंख्य लोग पंक्तियों में खड़े इस जुलूस की प्रतीक्षा कर रहे हैं। किंतु यह जुलूस आदमियों का नहीं, सफेद बत्तकों का है। मुड़ी हुई गर्दन, दूध की तरह सफेद डैने, गुलाबी चोंच···हजारों-हजार बत्तकें पैंक-पैंक-पैंक···पैंक-पैंक-पैंक करती हुई अस्पताल की ओर मुड़ गयीं। फिर गंगा-किनारे सभी बत्तकें पंक्तिबद्ध पानी में उतर गयीं। गंगा के इस पार से उस पार तक बत्तकों का एक पुल बन गया। नीले जल पर सफेद पुल···जीवंत पुल···पैंक-पैंक-पैंक-पैंक···उमा मुझे हाथ पकड़कर उठाती है—शिबू। ताड़ाताड़ी ओ पारे चलो···शिग्गिर···नइले पुल भेंगे जावे। पैंक-पैंक-पैंक···मैं टटोलकर उमा का हाथ पकड़ता हूँ। बत्तक के डैने मेरे हाथ से फड़-फड़ाकर निकल जाते हैं, सशब्द···पैंक-पैंक-पैंक—मैं पुकारता हूँ, किंतु उमा जवाब नहीं देती। मैं उमा का नाम लेकर पुकारता हूँ, किंतु मेरे कंठ से भी सिर्फ बत्तकों की बोली निकलती है···पैंक-पैंक-पैंक।···

संज्ञा लौटने पर देखा : मेरे सिरहाने से केहुनी टिकाकर स्टूल पर झुकी बैठी उमा सो गयी है। मैंने उमा को पुकारा, पर मेरे मुंह से निकला—माँ ! माँ !

माँ होती तो, इसी तरह झुकी सिर के बालों में हाथ फेरती हुई कहती—शिबू रे ! अपना गाँव छोड़कर तू यहाँ क्यों आया, बेटे ? कितना अच्छा था तू ! क्या से क्या हो गया यहाँ आकर ! लौट चल, बेटा ! हम नून-भात खाकर रहेंगे, पेड़ के तले सोएँगे, मगर···

लगता है, आधी रात गुजर गयी। बेड नंबर दस के पास इतनी भीड़ क्यों है ? वार्ड कुली मेरे पलंग के पास से ऑक्सीजन सिलिंडर घसीटकर ले जा रहा है। लगा, क्राइसिस मेरे पलंग के पास से बेड नंबर दस के पास जा रहा है। फर्श पर भारी लोहे के घसीटने की आवाज से सारा वार्ड आतंकित है। बेड नंबर पाँच पर छुरेबाजी से घायल बिहारशरीफ का टैक्सी ड्राइवर अचानक चिल्लाना शुरू कर

देना है—कहाँ रे, छोटना? कहाँ है चोट्टीवाले? सामने आ! अब निकाल छुरा!···

बेड नंबर दस के पास अचानक कुहराम। किडनी का मरीज, अस्सी साल का बूढ़ा चल बसा। बेटी, पतोहू, ननतियों और पोतियों की भीड़ ने रोना शुरू किया। और मैं उनका रोना सुनकर समझ जाता हूँ, वे उत्तर बिहार के किसी गाँव के हैं।

पुष्पलाल अक्सर कहता (पता नहीं, अपनी बात कहता था या कहीं पढ़ी हुई) कविता लिखने का एकमात्र विषय है: मृत्यु!

पुष्पलाल की कविता या कहानी कभी मेरी समझ में नहीं आयी। पुष्पलाल से मेरी पहली मुलाकात कलकत्ता में एक खाँटी-बंगाली बार में हुई थी, जहाँ स्पेशल आँर्डर देने पर तेल में तली कचरी और माँ काली मार्का देशी 'माल' की बोतल मिल जाती है। करीब एक दर्जन बंगाली छोकरों के बीच कचरी कचरता और गटागट ठर्रा पीता पुष्पलाल अपनी अंग्रेजी कविता जोर-जोर से सुना रहा था। कविता मेरी समझ में नहीं आयी; मेरे पल्ले दो-तीन शब्द ही पड़े—'ओ लुमुंबा लुमुंबा लुमुंबा' तथा 'क्राँस ऐंड शिवलिंग'···

आज दोपहर को हमारे एक परिचित व्यक्ति ने उमा को 'आर्ट ऐंड आर्टिस्ट्स', अंग्रेजी त्रैमासिक का ताजा अंक भेज दिया है। हमारे किसी शुभचिंतक ने उसमें अपना एक लेख प्रकाशित कराया है। उस लेख में हमारी चर्चा भी की गयी है। मैंने उमा से कई बार पढ़ने को कहा, किंतु वह टालती गयी। बोली—क्या होगा सुनकर? क्या फायदा? कोई गलत थोड़ी लिखा है! तुम लोगों की कीर्तिकथा··· सही-सही···!

उमा की यही आदत मुझे अच्छी नहीं लगती। वह कुछ देर के लिए बाहर गयी, तो मैंने अपने पड़ोसी के नौजवान एटेंडेंट को बुलाकर लेख पढ़ने को कहा। कुछ तो उसके मगहिया उच्चारण के कारण, कुछ अपनी अल्पज्ञता के चलते, मैं लेख का पूरा आनंद नहीं ले सका। हाँ, मूल वक्तव्य समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। लिखने की शैली निश्चय ही प्रशंसनीय थी···तीन साल पहले बंबई में फिल्म के प्रसिद्ध गीतकार जलधर के घर पर साल-भर तक सांध्यगोष्ठी में नित्य चार नामी-गरामी कलाकार एकत्र होते। वे सभी एक्सपेरिमेंटल फिल्म बनाने के सिलसिले में पटकथा, संवाद तथा गीतों के बोल पर बहस करने के लिए वहाँ जमा होते। किंतु बात खुलने से पहले बोतल खुल जाती और बात जहाँ की तहाँ रह जाती। बात कभी शुरू होती भी, तो आपस में झगड़ बैठते। वे अर्थात् जलधर, लोकगीत गायक शिवनाथ, बंगाल का मूर्तिकार रामरंजन और बर्मा को अपनी जन्मभूमि माननेवाला हिंदी का मैथिली कवि पुष्पलाल। इन पंक्तियों के लेखक के अलावा आर्ट फिल्म' तथा 'न्यू सिनेमा मूवमेंट' के सभी प्रेमियों को इस चतुरंग

गोष्ठी मे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। किंतु अब यह प्रमाणित हो रहा है कि यह आत्महंताओं का गिरोह-मात्र था और वे मरने के लिए ही हर शाम को मिलकर बैठते थे। पिछले साल जलधर की मृत्यु लिवर के घाव मे हुई और तीन महीने के बाद पुष्पलाल पेट के कैंसर मे मरा। इस बार पेट के दर्द से संज्ञाहीन होकर शिवनाथ पटना के अस्पताल में पड़ा हुआ है। और अभी-अभी समाचार मिला है कि रामरंजन को कलकत्ता की एक नगरवधू के कोठे की सीढ़ियों पर नशे में चूर और घायल पाया गया। दोनों की हालत गंभीर बताई जाती है।···

इसके बाद ही लेख का मूल वक्तव्य एक प्रश्न से प्रारंभ हुआ है—ऐसा क्यों? फिर, विद्वान् लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक विश्लेषण करते हुए स्वयं ही इसका उत्तर दिया है। संभव हुआ, तो कभी खुद पढ़कर समझ लूँगा। अभी मेरे दिमाग में इस लेख के कई शब्द तथा पंक्तियाँ ही रह-रहकर मुखरित होते हैं—पर्सनालिटि डिसऑर्डर···ईडिपस कांप्लेक्स···डेथ विश···सेल्फ डिस्ट्रक्टिव···शापेनहावर सुसाइड जास्टिफाइड, बट नेवर कमिटेड इट···ए मैन इज द प्रोडक्ट ऑफ हिज कल्चर ऐंड हिज इनविरोनमेंट !···

मैं साहित्य का साधारण पाठक ! मुझे इन बहसों से क्या लेना-देना ! उमा कभी-कभी एक बंगला मुहावरा दुहराकर मुझे समझाती, 'अदरक के व्यापारी को जहाज की खबर लेने की क्या जरूरत ?' किंतु वह मुझे जितना समझाती, मैं उतने ही उत्साह से साहित्य तथा कला की चर्चा में लीन हो जाता। पुष्पलाल कहता—शिबू दा ! यह 'हैया हो हाय-हाय', यानी लोक-फोकगीत गाना छोड़कर लिखना शुरू कीजिए।···

मैंने लिखना तो नहीं शुरू किया, मगर दाढ़ी रख ली। रामरंजन दा ने अपने हाथ से एक दिन मेरी दाढ़ी को तराशकर अल्ट्रामॉडर्न बना दिया और उसी दिन पुष्पलाल और रामरंजन दा में मॉडर्न और कांटेंपरेरी शब्दों को लेकर मारपीट तक हो गयी। पुष्पलाल जब कभी अपनी गलत बात को सही करने के लिए बतंगड़ खड़ा करता, रामरंजन दा ऐसा ही करते। हममें सबसे बड़े रामरंजन दा और सबसे कनिष्ठ पुष्पलाल ! दोनों की यह लड़ाई उपभोग करने की चीज।···

सो, सब ठीक है, मगर साले, तुम मॉडर्न होने क्यों गये ?

सचमुच, मैं क्यों इस चपेट में पड़ गया ? कैसे पड़ गया ? किंतु मेरा क्या दोष ?···

राजनीति करता था, सभाओं में मुख्य वक्ताओं तथा नेताओं के भाषण से पहले, भीड़ को शांत रखने के लिए, गीत से भुलाए रखने के लिए मेरी जरूरत होती और हाथ में घुंघरूवाली खंजनी लेकर मैं मंच पर अलापता हुआ प्रकट होता—भैया किसनवाँ हो, दुश्मन तोहार बड़का ज-मीं-दा-आ-आ-र !···

अगर मेरे गले मे एक खास किस्म की मिठास नहीं होती और यदि लोकगीत

आधुनिक रुचि-संपन्न शहरी लोगों के लिए फैशन नहीं बन जाता, तो आज मेरी जगह कहाँ होती ? तब शायद राजनीति नहीं छूटती और दल बदलते-बदलते पता नहीं आज किस दल में होता ! अगर पटना में रेडियो स्टेशन नहीं खुलता, तो मैं जो था, वही रहता।···

याद आती है, पहली बार रेडियो से मैंने जब 'सारंगा सदावृज' गीत-कथा प्रसारित की थी, भाव-विभोर होकर स्टूडियो से बाहर आते ही सबसे पहले अहिंदीभाषिणी पेक्स (प्रोग्राम एक्जिक्यूटिव) मिस नैनी कुट्टी ने गद्गद होकर मुझे बधाई दी थी, 'मैंने गीत का एक शब्द भी नहीं समझा, किंतु लगा कि मेरे अंदर कोई घटना घट रही है !'

इसके बाद से ही हर सप्ताह एक दिन सुबह-शाम मेरे गीत प्रसारित होने लगे, कुछ ही दिनों में लोगों की जबान पर मेरे गीत थे; मेरा नाम हर सांस्कृतिक समारोह के पर्चों में मोटे अक्षरों में, विशेषण सहित, छपने लगा : 'जिसके गीत माटी की सोंधी सुगंध बिखेर देते हैं···', 'जिसके कंठ में मिथिला की विरहिणी आकर बैठ जाती है···', 'जो जीवन का गीत गाता है···' आदि-आदि। उधर फिल्म जगत् में पंजाबी भाँगड़ा की लहरें धूम मचाकर लौट गयी थी। नये दौर में लोकगीत की बारी आयी और इसके साथ ही मेरी जिंदगी में एक नया तूफान चलने लगा···बंबई, मद्रास, कलकत्ता···शराब, औरत, जुआ···दुश्चरित्र जीवन-विलास···काम से जी चुराने के साथ धोखाधड़ी, जालसाजी। मिट्टी में गड़े हुए ग्रामीण शब्द उखाड़कर, अनगढ़ ढंग से दर्जनों कहानियाँ गढ़कर, गीतकथा बनाकर, पुरातन तथा ट्रेडिशनल लोकगीत के नाम पर मैंने चतुराई से चला दिए : महुआ घटवारिन, नैका सुन्नरि, नैना जोगिन, मैनावंती, ढोलन सरदार, दुखा माँझी। एक फिल्म के लिए तो 'डायनों का सामूहिक नृत्यगीत' तक रचकर मैंने एक प्रोड्यूसर-डायरेक्टर की आँखों में धूल झोंक दी—जनाब, नेपाल की मोरंग तराई में बसनेवाली कोच जाति के 'ओझागुणी' तथा थारू जाति के 'भगता', 'किरात', 'धामियों' के चरणों की सेवा करके ही इसे प्राप्त किया है।···वह सामूहिक नृत्य-गीत बाद में सेंसरवालों ने कटवा दिया। हाल में बच्चे ही नहीं, बूढ़े और जवान भी डरकर बेहोश हो गये थे !

उमा नहीं होती, तो मैं जलधर और पुष्पलाल से पहले ही हवा हो जाता। किंतु पिछले साल उमा ने एक दिन हारकर कह दिया—तुम्हारी जो मरजी हो, करो। मैं अब कुछ नहीं बोलूँगी। मेरे बूते के बाहर की बात है···मैं नहीं कह सकती···आमि आर पारी ना···!

तब मुझे अचानक गायब होने का बहाना मिल गया और करीब दस महीने तक काठमांडू, कामरूप, कामाख्या और सिंहभूम के जंगलों-पहाड़ों में एक नई सभ्यता, एक नये जीवन-दर्शन का मसीहा बनकर आधा दर्जन देशी-विदेशी लड़के-

लड़कियों के साथ अलख जगाता फिरा।···यौनाचार···चीनाचार···वामाचार!

साले! यह अस्पताल है, चर्च नहीं!

नहीं, नहीं, मैं कोई कसूर कबूल नहीं कर रहा। मेरा मतलब है, मैंने कोई कसूर किया ही नहीं। इस दुनिया, अर्थात् इस विराट वेश्यालय में मैं ही सबसे बड़ा पुण्यात्मा हूँ, क्योंकि मैं ही इसे समाप्त करना चाहता हूँ। ध्वंस!···

उमा जग गयी है।

मेरी ओर देखकर कहती है—नाक से ट्यूब निकाल दिया?···आमि आर पारी ना!

—नाक के अंदर घाव हो गया है।

—किसने कहा?

—कहेगा कौन!···

उमा शायद नीलम्मा को बुलाने गयी। भोर होने को है, किंतु नीलम्मा उसी तरह खिली हुई है, कहती है—नाम में 'नाथ' रखता है और नाक में 'पसन्न' नहीं! लीजिए, निगलिए···और थोड़ा···ठीक है···वोमिट करेगा तो हम देखेगा···ठीक···वाह! लोक्खी छेयले!

नीलम्मा ने न जाने कहाँ से 'लक्खी छेले' कहना सीख लिया है। उपयुक्त अवसर पर इसका प्रयोग करती है—अबी नली खोलेगा, तो अबी इधर आके पलँग में दोनो हाथ बाँध देगा।

मैं क्या नीलम्मा को प्यार करने लगा हूँ? क्या उमा समझती है कि मैं नीलम्मा को प्यार करने लगा हूँ? देखता हूँ, प्रेम में पड़ जाने का एकमात्र ख्याल आज भी अस्पताल ही है।

हरामजादे! नीलम्मा या किसी को प्यार करके अब क्या करेगा तू? जब तक सांस चलना बंद नहीं हो, काम की आग शायद नहीं बुझती! नीलम्मा को देखते ही मेरे शरीर का रोम-रोम बज उठता है। ठीक पंद्रह वर्ष पहले उमा को देखकर ऐसा ही होता था।

नीलम्मा मेरी ऑक्सीजन सिलिंडर! प्रेम को पुनः पनपानेवाली मिथुन राशि की कन्या···अनन्या!···

साले! फिर कविता?

पुष्पलाल ने अपने लेटर पैड के एक कोने पर मिथुन राशि का प्रतीक चित्र छपवाया था···यौनलीला के लिए प्रस्तुत बैठी अर्धनग्न स्त्री-पुरुष की जोड़ी! पिछले पाँच वर्षों से उमा मेरे साथ नहीं सोती। नहीं सोती, यानी यौन-संपर्क से दूर रहती है। वह मेरे अंग-प्रत्यंग को अपवित्र और घिनौना समझने लगी है। तब से मैं उमा से लजाने लगा हूँ।···एक बार किशोरावस्था पार करने के बाद, यानी गुप्त प्रदेशों में नन्हे-नन्हे काले-काले घुँघराले बालों की पहली फसल के

दिनों, एक सुबह आठ बजे तक मुझे सोता देखकर माँ ने गुस्से से मसहरी हटाकर देह से चादर छीन ली थी और चादर के नीचे मैं एकदम नंगा था···लाज के मारे मैं सात-आठ दिनों तक माँ से आँखें नहीं मिला सका था···वैसी ही लाज ! यही मुझ पर अपने परिवेश, परिवार और प्रेम के संबंधों को कलुषित करने का दोषा-रोपण किया जाता है।

वह सब-कुछ नहीं, असल में मैं हर माने में दिवालिया हो चुका हूँ। शराब? साली साँप के जहर से बनी हुई शराब भी मैंने पी है। शराब, गाँजा, चरस और सिगरेट के अतिरिक्त सेवन से मेरी आवाज विकृत हो गयी है। यह अब बाजार में नहीं चल सकेगी। जिस कंठ से मैं चंपाकली की तुनुक पंखुड़ियों के टूटने के शब्द को कुशलता से प्रस्तुत कर दिया करता था, उससे फटे झाँझ की-सी आवाज निकलती है। और जब गा ही नही सकूँगा, तो जीकर क्या होगा? फ्लैट में मेरी अलमारी में अब भी डिंपल की भरी-पूरी बोतल पड़ी होगी। मैं नहीं रहूँगा, तो वह किसके काम आयेगी? उमा उसे अलमारी से निकालकर खिड़की से बाहर फेंक देगी। नहीं, नहीं, फेंक नहीं सकेगी, फेंकना चाहकर भी रख लेगी; जब तक जियेगी, उसे यत्नपूर्वक रखेगी; संभवत: अपने पूजाघर के कोने में महाकाली के पेट के पास रखेगी···गंगाजल की बोतल के पास ही···गंगा···गंगा !···

पटना की गंगा को मगह की गंगा अर्थात् पुण्यहरा कहते हैं लोग। इसलिए पटना की गंगा का कोई पक्का घाट नहीं; एक-दो हैं भी, तो इतने गंदे कि उधर कोई मुँह भी नहीं फेर सके। पटना की गंगा के किनारे जलनेवाले मुर्दों को न शांति मिलती है, न मुक्ति। इसलिए पुष्पलाल जैसे विद्रोही की लाश भी उस पार सेमरिया घाट पर ले जाकर जलायी गयी···किंतु इसी गंगा के किनारे 'पटना क्लब' के रमणीय लॉन में बैठकर मौज से दारू पीते समय और पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल के किसी बेड पर बेबस पड़े दवा पीते वक्त आदमी के मन में पटना की गंगा की जय-जय ध्वनि अपने-आप गूँज उठती है। मेरा विश्वास पक्का है कि इस अस्पताल के सत्तर प्रतिशत रोगी सर्वरोगविनाशिनी गंगा की हवा के प्रताप से ही स्वस्थ होते हैं, मरते-मरते जी जाते हैं। अपने देश में किसी दरिया के किनारे और कहीं कोई अस्पताल है, मुझे नहीं मालूम।

घाट से कोई स्टीमर खुलने की तैयारी कर रहा है शायद। आजकल नये किस्म का साइरन बजता है···अथाह जल के अंदर से आती हुई, घुटती हुई-सी आवाज···इस साईरन का सही नाम क्या है, पूछना होगा।

नहीं, स्टीमर नहीं ! यह क्राइसिस ! अर्थात् ऑक्सीजन सिलिंडर लाया जा रहा है। फर्श पर भारी लोहे के घसीटने की आवाज क्रमश: नजदीक आती जा रही है। क्यों? मेरे पास फिर क्यो? मैं होश में हूँ। जगा हुआ हूँ। पलंग से स्टूल सटाकर, मेरे बायें कंधे के पास सिर पर रखकर उमा सो गयी है। धीरे से

पुकारता हूं—उमा! मुंह मे आवाज निकलने से पहले ही सिलिंडर घसीटकर लानेवाला आदमी उछलकर मेरा मुंह दबा देता है। सिलिंडर घसीटकर लानेवाला व्यक्ति वार्ड कुली नही, पुलिस का दरोगा है। उसके साथ पुलिस के कई सिपाही है, जो मेरे पलंग के चारों ओर आकर मुझे घेर लेते है···वे मेरी तलाशी लेंगे। मैंने रजाई के नीचे अश्लील पुस्तकें, अवैध गांजा और नर्स नीलम्मा की लाश छिपा रखी है। उमा! देखो तो, ये क्या कह रहे हैं? दरोगा चिल्लाता है—चुप रह साले! एक सिपाही मेरी रजाई हटाना चाहता है। मैं विरोध करता हूं—रजाई के नीचे मैं नंगा हूं···एकदम नंगा हूं···सालो···हरामजादो···मादर-चोओ···बेटीचो···कुत्ती का बच्चा!···दनादन दोनों लातें चलाना शुरू किया मैंने ···और उसी ताल पर लड़ाई का नगाड़ा बजने लगा···किसी के मुंह पर, किसी के अंडकोष और चूतड़ पर मेरी लातें लगती है और वे एक-एक कर, नगाड़े के ताल पर भागते जाते है। हद है! उमा उसी तरह झुकी हुई है। यहां इतना शोर-गुल हो गया, कान के पास लड़ाई का नगाड़ा बज गया, किंतु उसकी नींद में कोई बाधा नही पडी। तब रजाई के नीचे से गरदन निकालकर नीलम्मा मुझसे पूछती है—पुलिस का लोग सब चला गया? अब तुम चुपचाप मुझे मार डालो। आओ! रजनीगंधा की सुगंध मेरी नाक मे समाती जा रही है और नीलम्मा अब अनुनय-भरे स्वर मे कह रही है—प्लीज, किल मी···किल मी! मै उमा को झकझोरकर जगाता हूं। उमा लुढ़ककर फर्श पर गिर पड़ती है और उसके गिरने की आवाज जलतरग की तरह···या नीलम्मा खिलखिलाकर हंस पड़ी है। मैं भी उसके साथ हंसना चाहता हूं, किंतु हंसने के बदले मैं 'मां, मां' पुकारकर रोने लगता हूं। मैं रोता जाता हूं और नीलम्मा उसी तर्ज पर बंगला का 'रामप्रसादी' अलापती है—मां-आं-आं-आं! असल में रोने के बदले गा ही रहा हूं, मै!

समाधि नही, सपना? पता नही क्या सच है और क्या सपना! जो भी हो, मैंने नीलम्मा की हत्या नही की है। वह डॉक्टर की मदद कर रही है। डॉक्टर कहते है, मै सपने मे हाथ-पांव मार रहा था। नीलम्मा हंसकर कहती है—हमारा इधर मे ऐसा किक मारा कि हमको नोवलजिन लेना पड़ा।···

मुझे कोई सूई दी जा रही है, शायद!

उमा इस तरह घबराकर मुझे क्यो देख रही है? ऐसी घबराहट उसके चेहरे पर जीवन मे कभी नही देखी। रुंधे गले मे पूछ रही है मुझसे—की होये छे? ऐसा क्यो कर रह हो? कैसा लग रहा है? बोलो ना·· बोलते क्यों नहीं···बाबू··· शिबू बाबू रे···!

उमा हठात् चीख पड़ती है। लगा, आकाश चरचराकर फट गया। तारे झड़ रहे है झहर-झहर—मां गो-ओ-ओ! आमार सर्वनाश कोरो नां···आमार केउ नई···डॉक्टर बाबू! मेरा कोई नहीं इसके सिवा···हाहाहाहा···डॉक्टर बाबू!···

मैं सब-कुछ देख रहा हूँ। सब-कुछ सुन रहा हूँ। पर कुछ कह नही पा रहा। नीलम्मा उमा को दोनों हाथों से पकड़कर उठाती हुई समझा रही है—एक नया ड्रग दिया गया था, उसी का रिएक्शन हुआ है। अभी ठीक हो जायेगा। सूई पड़ा है···

सर्जन अजय की झिड़की सुनायी पड़ती है—उमा ! यह क्या हो रहा है ?

—मेरा शिबू बोलता क्यों नही, डॉक्टर ?

—बोलेगा···अभी बोलेगा···तुम चुप रहो।

—अच्छा, मै चुप रहूँगी ! मैं चुप हूँ।

हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर श्रीवास आये है। उनकी सफेद लबी दाढ़ी को देखकर मुझे कविराज चक्रवर्ती की याद आती है। कविराज चक्रवर्ती सूंघ करके ही रोग का निदान करते थे। डॉक्टर श्रीवास भी दूर से ही मुझे देखकर कहते है—हार्ट नॉर्मल है।···

मेडिसिन के डॉक्टर दास आये। वे भी मुझे दूर से देखते हैं। कोई मुझे छूता तक नहीं। वे मुझसे बोलने को कह रहे है। मै हाथ के इशारे मे कहता हूँ··· आवाज नहीं निकल रही ! डॉक्टर दास कहते है—हाँ, रिएक्शन ही हुआ है।

मै जानता हूँ, मैने देखा है, कंठ के कैंसर मे ऐसा ही होता है। बोली अचानक बद हो जाती है। यदि बोली नही लौटी, तो ! वोकल कार्ड डैमेज तो नहीं हो गया ? मैं डॉक्टर से पूछना चाहता हूं—डॉक्टर ?···

सभी के मुंह से एकसाथ एक स्वर से निकल पड़ा—आ गयी !

बिजली गुल होने के बाद जब लौटती है, तो लोगो के मुंह से इसी तरह एक स्वर से निकल पड़ता है—आ गयी !

किंतु उमा को विश्वास नहीं हो रहा है। वह मेरे पास आकर पूछती है—बोलो तो, मैं कौन हूँ ?

मुझे हँसी आ गयी। मैंने पूछा—यह सब सपना तो नही ?

—तोमार की मने हय ?—उमा पूछती है।

मैं करवट लेने की चेष्टा करता हूँ। उमा मना करती है···पेट के बीचोबीच भीषण यंत्रणा···यह क्या···मेरे पेट पर भारी क्या लदा है ? जरा भी हिल-डुल नही सकता। या नीलम्मा ने सचमुच मुझे पलँग से बाँध दिया है ?

पटना टाइम्स का स्टाफ रिपोर्टर मित्तल आया है। उमा से वह कुछ पूछता है। उमा कहती है—ऑपरेशन के ठीक दस घटा बाद, अभी कुछ देर पहले होश मे आये है। अब ठीक हैं।

—आपरेशन ? किसका ऑपरेशन ? कब हुआ मेरा ऑपरेशन ?

उमा चुपचाप मुस्कराती है—डॉक्टर अजय दस घंटे के बाद अभी डेरे पर गये हैं।

—और डॉक्टर श्रीवास, डॉक्टर दास ? वे कब गये ?

उमा अचरज से पूछती है—डॉक्टर श्रीवास और डॉक्टर दास ? वे यहाँ कब आये ?

मैं पूछता हूँ—मेरी आवाज फटे झाँझ की तरह सुनाई पड़ती है ?

—नहीं तो !

—मुझे ड्रग रिएक्शन हुआ था न ? मेरी बोली अचानक बंद हो गयी थी न ?

—तुम तो दस घंटे से अज्ञान थे।

—और, नीलम्मा ? बुलाओ न उसे एक बार !

—कौन नीलम्मा ?—उमा को फिर अचरज होता है।

मैं अपनी देह में चिकोटी काटकर देखता हूँ, मैं हूँ, या मैं भी नहीं हूँ। नहीं, मैं हूँ। सपना नहीं यह अब···मैं सपना नहीं। किंतु, फिर शंका होती है। फिर पूछता हूँ, डरते-डरते—अच्छा, उमा, पुष्पलाल उस सामनेवाले वार्ड मे ही मरा था न ?

इस बार उमा तनिक झुंझलायी—कौन पुष्पलाल ? पता नहीं, क्या-क्या बोल रहे हो ! बोलो मत। डॉक्टर ने मना किया है।

मुझे अब विश्वास हो रहा है, यह सपना ही है और इस सपने से अब निस्तार नहीं, छुटकारा नहीं ! क्या होगा छुटकारा पाकर ? अच्छा हो, गंगा के किनारे चलकर, पानी में अपनी काया को एक बार जी भर निहारते हुए, इस सुंदर आवरण की स्तुति करूँ। जीवन-भर दुनिया की हर चीज और हर व्यक्ति में अपना प्रतिबिंब खोजता रहा, देखता रहा, मुग्ध होता रहा···नारसिसस ? नॉनसेंस ! सपने में एक बार गाकर देखना चाहता हूँ, मेरी आवाज कहाँ तक पहुँचती है। गंगा के उस पार···सफेद बालुचरों के पार, हरे-भरे खेतों के ऊपर उड़ती हुई··· अथवा अतल जल में बजनेवाले साइरन की तरह, अगाध जल के नीचे की ओर घुटती हुई !···

जैव

निर्मल ने—मंद-मंद मुस्कराती, कमरे में प्रवेश करती हुई—विभावती से पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

विभावती हँसती हुई बोली, "बात क्या होगी? बात जो होनी थी सो हो गयी।"

विभा ने स्वामी के हाथ में आज की डाक में आयी हुई चिट्ठी दी। निर्मल ने पढ़ना शुरू किया—"पूजनीया भाभी,...आगे समाचार यह कि पिछले सप्ताह में ही सुबह उठकर उलटी-मतली...लेकिन, मेरे सासजी बहुत खुश हैं...।"

पत्र में ननद ने 'भौजाई' को विस्तारपूर्वक यानी खोलकर सब-कुछ लिखा है। किंतु निर्मल इससे आगे कुछ नहीं पढ़ सका।

"जो बात होनी थी सो हो गयी न? मैं जानती थी। चाहे पचास रुपये की किताब दीजिए 'प्रेमोपहार' या सौ रुपये की—जो बात होनी थी सो हो गयी।" —विभा हँसकर बोली।

निर्मल चिढ़ गया, "बेमौके की ऐसी हँसी सुनकर मेरी देह जल जाती है।"

विभावती समझ जाती है, पति अभी बहुत चिढ़े हुए हैं। वह कमरे से बाहर चली गयी, हँसती-मुस्कराती।

निर्मल के सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा है। उसका माथा चकरा रहा है। कान के पास झींगुर बोलने लगे हैं।...शारदा गर्भवती माने प्रेगनेंट हो गयी? उसकी एकमात्र छोटी बहन, सोलह साल की शारदा—बिना माँ-बाप की—'कोर-पच्छू' लड़की। निर्मल से ग्यारह साल छोटी शारदा! निर्मल की माँ ने आँख मूँदने के पहले—विभावती से कहा था—बहू! अब तू ही इसकी माँ...पिता ने मरते समय निर्मल से कहा था—बेटा! बस, एक दायित्व तुम्हारे सिर पर दे जाता हूँ। शारदा को 'सुपात्र' के हाथ में देना।...इतना खर्च-वर्च सब बेकार? यह तो पूरा 'कुपात्र' निकला। और, इसी 'कुपात्र' के फेर में पड़कर उसने अपनी दुलारी बहन की शादी कच्ची उम्र में ही कर दी...अंग्रेजी तथा हिंदी में उपलब्ध

—दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनानेवाली प्रसिद्ध किताबों का एक सेट उसने विशेष रूप से भेंट किया था, शारदा के पति प्रोफेसर सुकुमार राय को।···

निर्मल ने हिसाब लगाकर देखा···तो, इसका अर्थ हुआ कि सुहागरात में ही···? शारदा की शादी हुए तीन ही महीने हुए है। अभी 'प्रिंस होटल' का बिल भुगतान देना बाकी ही है। और···और···?

पड़ोस के फ्लैट की बूढ़ी मौसी आयी है। शारदा को बहुत प्यार करती थी, बूढ़ी मौसी। विभावती ने मौसी को भी शुभ संवाद सुना दिया, "हाँ, तीन महीने···"

"विभा!"—निर्मल ने उच्च स्वर में ही पुकारा। प्रसन्नता से बूढ़ी मौसी के चेहरे की झुर्रियाँ खिल पड़ी।

"कर दिया न ब्राडकास्ट? तुम लोगों के पेट में कोई बात जो पचे···।"

इस बार विभा ने जवाब दिया, "तुम तो चिढ़कर बेकार भुर्ता हुए जा रहे हो।"

"बेकार माने?···शर्म की बात है। इस कच्ची उम्र में···मुश्किल है··· शारदा मर गयी समझ लो।"

"क्यों 'कुलच्छन' की बोली बोलते हो? माथा गर्म करने से कुछ नहीं होगा। आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे दो।"

विभा रसोईघर में चली गयी।

निर्मल सोचने लगा—सच ही तो! माथा गर्म करने से क्या होगा! आज ही अस्पताल में 'साइड-रूम' के लिए दर्खास्त दे देना ठीक होगा। प्रोफेसर सुकुमार राय! फर्स्ट क्लास फर्स्ट···गोल्ड मेडलिस्ट है। कुपात्र कहीं का!···आजकल के नौजवानों में यही ऐब—डिग्री से लदे हुए गधे!···लेकिन, हिसाब से तो···? सुहागरात में ही 'कसीव' किया होगा, शारदा ने। क्योंकि, उसके बाद 'मेहमान' भागलपुर चला गया था। दो महीने के बाद आकर शारदा को ले गया है। और एक महीने के बाद यह पत्र···?

दोपहर को भोजन 'रुचा' नहीं, तो विभा ने मुंह फुला दिया, "इस तरह खाना-पीना छोड़ने से क्या होगा?"

"विभा, मैं प्रार्थना करता हूं···मुझे शांतिपूर्वक इस समस्या पर कुछ सोचने भी दोगी?"

"पूछती हूँ, यह भी कोई समस्या है?"

"तुम भी बूढ़ी मौसी के सुर में सुर मिलाकर ऐसी बातें करोगी, इसकी मुझे उम्मीद नहीं थी।"

"तो क्या करूं? सिर पकड़कर रोऊं?"

"विभा"—निर्मल की आँखें डबडबा आईं, "शारदा मर जाएगी। जरूर मर

जाएगी।"

"तुम्हारे कहने से मरेगी? कुछ नहीं होगा। तुम्हारी दुलारी बहन शारदा को एक गोलमटोल सुंदर मुन्ना के सिवा और कुछ नहीं होगा।"

"वह इतनी दुबली है सो···।"

"सो जानेगी डॉक्टर मिस जोजेफ और जानेंगे स्त्रीरोग के पुरुष विशेषज्ञ डॉक्टर शर्मा···।"

डॉक्टर शर्मा का नाम सुनते ही निर्मल को काम की बात सूझी—क्यों न डॉक्टर शर्मा को फोन करके सलाह ले? उसने डिरेक्टरी में डॉक्टर शर्मा का नंबर खोजकर निकाला और डिरेक्टरी के मुखपृष्ठ पर लिखने के बाद उसने डायल पर नंबर मिलाया। चोंगा रखकर, फिर डायल किया। बहुत देर तक उधर घंटी बजती रही। फिर, किसी आदमी ने चिढ़ी आवाज में पूछा, "हैलो?"

"एँ? डॉक्टर शर्मा है? नहीं हैं? अस्पताल में? देखिए साहब, इस तरह झल्लाइए मत। आप कौन है?···तुम डॉक्टर साहब के ड्राइवर होकर ऐसी बाते करोगे···हैलो!"

उस छोर पर चोंगा रख दिया गया। इसके बाद जब अस्पताल का नंबर लगाया, तो 'टूं-ऊं-ग, टूं-ऊं-ग···।'

निर्मल के कमरे से बहुत देर तक टेलीफोन डायल करने की आवाज आती रही—क्रिर, क्रिर, क्रिर!!

फिर मन कड़वा हो गया निर्मल का।

विभा आयी और पास बैठकर गंभीरतापूर्वक बाते करने लगी, "देखो! तुम क्या सलाह लेना चाहते हो डॉक्टर से? यही न कि कम उम्र की कमजोर लड़की···।"

"विभा! तुम फिर छेड़ने आयीं···।" निर्मल कहते-कहते रुक गया। उसने अपनी पत्नी के चेहरे पर सहानुभूति की रेखाएं देखी। उसे विभा का इस तरह गंभीर हो जाना अच्छा लगा।

दोपहर के भोजन के बाद विभा रोज एक बीड़ा पानी खाती है। पान मुंह मे रखकर जब वह बोलने लगती है, तो निर्मल उसके क्रमश. लाल होते हुए ओठो को देखता रहता है। विभा बोली, "तुम सुकुमार को एक चिट्ठी लिख दो और अगले महीने ही जाकर शारदा को लिवा लाओ।"

"तुम ठीक कहती हो। मैं भी यही सोच रहा था।"

विभा अब मुस्कराई। निर्मल बोला, "जानवर है। क्या कहा जाए इस सुकुमार को?···"

विभा ने बात पूरी की, "किसको कहा जाए? न बहन शारदा को धैर्य और न बहनोई सुकुमार साहब को संतोष···।"

"अब मार खायेगी, विभा।"

विभा हँसती हुई लेट गयी पति के बगल में और अपनी उँगलियों पर जोड़ने और जोड़कर हिसाब निकालने लगी शारदा का 'एसपेक्टिंग डेट' यानी 'संभावित तिथि' अर्थात् फरवरी में 'होकर' बंद हुआ है तो नवंबर के दूसरे सप्ताह में ? वह पति को गुदगुदाती बोली, "होनेवाले मामू साहब ! एक 'टोकरी' ऊन चाहिए··· जाड़े में जन्म लेनेवाले शिशु को गर्म रखने के लिए पशमीना ऊन···।"

भाई और भाभी ने मिलकर शारदा को बचा लिया। चौथे महीने में ही निर्मल भागलपुर जाकर, लड़-झगड़कर शारदा को पटना लिवा लाया। पहले हर महीने, बाद मे प्रत्येक पखवारे में 'हेल्थ विजिटर' और 'मिडवाइफ' से जाँच करवाकर—वे सलाह लेते और तदनुसार परिश्रम, भोजन और दवा की व्यवस्था। इसके बावजूद शारदा की जान संकट मे पड़ गयी। नवंबर के दूसरे सप्ताह में शारदा बारह घंटे तक अस्पताल में सिर कटी हुई चिड़िया की तरह दर्द से तड़पती-छटपटाती रही। अंत में सी० एस० (सिजेरियन सेक्शन अर्थात् पेट चीरकर) करके बच्चा निकाला गया। बच्चा स्वस्थ है···छः पौंड का बेबी !

अस्पताल से पंद्रह दिन के बाद जब डेरे पर आयी शारदा, तो एक दिन चोर की तरह मुंह छिपाता हुआ आकर खड़ा हुआ प्रोफेसर सुकुमार। विभा हँसकर बोली, "आ गए, आ गए ! जुलियस सीजर के पिता सुकुमार साहब···प्रोफेसर ऑफ बोटानी।"

शाम को निर्मल और विभा तस्वीर देखने गए—बहुत दिनों के बाद। पिछले दो महीने से दोनों परेशान होकर दौड़ने-भागते रहे हैं।

राह में विभा बोली, "मेहमान शायद शारदा को लेने आया है।"

निर्मल बोला, "बोले तो मेरे सामने। जूता खाएगा।"

लौटते समय विभा बोली, "कल एक बार डॉक्टर जोजेफ की क्लिनिक में चलोगे ?"

"क्यों ? अब क्या है ?"—निर्मल ने चौंककर पूछा :

विभा बोली, "शारदा कहती थी कि एक बार डॉक्टर जोजेफ ने बुलाया है।"

विभा और निर्मल ! विवाह के पाँच वर्ष बाद भी जब विभा को 'कुछ नहीं' हुआ, तो निर्मल ने डॉक्टरों को दिखलाकर सलाह ली थी। एक छोटा-सा ऑपरेशन भी हुआ था। किंतु, अंततः दोनों ने मन-ही-मन मान लिया था—कुछ नहीं होगा। विधि के विधान को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। वे प्रसन्न थे, सुखी थे। कहीं कोई रिक्तता नहीं। कोई कमी नहीं महसूस करते थे। किंतु, उसकी बहन शारदा के आने के बाद से···

दूसरे दिन डॉक्टर जोजेफ की क्लिनिक से लौटकर शारदा अपने पति और

भाभी के साथ खिलखिलाकर हँस रही थी, "देखा भाभी ! मैंने कहा था न ? ठीक हुआ न ? मेरी छूत लग गयी न ? हा-हा ! मैं जानती थी। तुम्हारे लक्षण सभी···"

निर्मल ने पूछा, "क्या बात है शारदा ?"

वे सभी चुप हो गए। उस कमरे से विभा की गिड़गिड़ाती आवाज और शारदा की मद्धिम खिलखिलाहट के साथ शारदा के शिशु के किलकने की सम्मिलित आवाज आयी। निर्मल ने फिर पूछा, "शारदा ! क्या है ?"

शारदा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह उठकर पूजाघर में गयी और शंख फूंकने लगी, 'घू-ऊ-ऊ ! तू-ऊ-ऊ !!'

प्रोफेसर सुकुमार लजाते और मुस्कराते हुए निर्मल को समझा रहे थे, "भाई जी !! वनस्पति-जगत् में भी ऐसा होता है। इस प्राकृतिक प्रक्रिया को हमारे शास्त्र में पोलिनेशन कहते हैं—पी० ओ० एल० एल० आई० एन० ए० टी० ई० अर्थात् फर्टिलाईजिंग ए फ्लावर बाई कनवेइंग···नारियल या पपीता अथवा सुपारी का कोई पेड़ नहीं फलता है तो पास में एक दूसरा पेड़ लगाया जाता है और जब दूसरा पेड़ फूलने-फलने लगता है, तो पहला निष्फला पेड़ भी···।"

निर्मल ने झुंझलाकर कहा, "क्या बक रहे हो, मैं कुछ नहीं समझ रहा।··· देखो सुकुमार, मैं कोई बहस, कोई बात नहीं करना चाहता—नहीं सुनना चाहता। शारदा सालभर यहीं रहेगी। इस बीच कोई···।"

सुकुमार तुतलाकर कह रहा था, "भाई साहब···मतलब···आप तो बेकार···।"

हँसती हुई शारदा ने खिड़की के उस पार से ही अपने भाई और पति और दुनिया-जहान को सुनाने के लहजे में कहा, "मैं जाऊँगी ही नहीं। कोई जबर्दस्ती ले जायेगा क्या ?···भाभी को डॉक्टर ने···।"

लगा, शारदा का मुंह किसी ने दबा दिया। उसकी बोली मुंह मे ही रह गई।

सुकुमार ने झांककर देखा—भाभी अपनी ननद का मुंह हथेली से बंद करके हँस रही है।

सुकुमार ने कहा, "अच्छी बात है भाभी ! यह 'शुभ संवाद' मुझे ही सुनाने का अवसर आपने दे दिया। बहुत धन्यवाद ! भाई जी, बात यह है कि भाभी··· भाभी को डॉक्टर जोजेफ ने जाँच कर 'पक्की' रिपोर्ट दे दी है—मतलब, भाभी ने 'कंसीव'···अर्थात्—वही जो मैं कह रहा था न—पोलिनेशन···"

(अक्तूबर, 1971)

मन का रंग

मैं समझ गया, वह जो आदमी दो बार इस बेंच के आसपास चक्कर लगाकर, मेरे चेहरे को गौर से देखकर गया है न—वह मेरे पास ही आकर बैठेगा। बैठने के पहले, मद्धिम आवाज में 'कपट-विनय'-भरे शब्दों से मुझे जरा-सा खिसक जाने को यानी 'तनि डोल' जाने को कहेगा। और, यदि मैं उसके गाल के गलमुच्छों और गले के गुलुबंद से ढकी आवाज को नहीं सुनने का बहाना बनाऊँ, तो तनिक ऊँची आवाज में बेरुखाई से कहेगा—'सुनते हैं? आप ही से कहा जा रहा है···।'

···हाँ-हाँ, मुझे नहीं तो और किससे कहेंगे?···पता नहीं, मेरे चेहरे पर क्या लिखा हुआ पढ़ लेते हैं लोग कि ट्रेन या बस में अथवा प्लेटफार्म या पार्क के बेंच पर ही नहीं—इस विशाल संसार के किसी कोने में भी बैठा रहूँ, तो ये मुझे ही तनिक-सा सरककर बैठने को कहेंगे। पास में जगह नहीं हो, तो मेरी ही गठरी पर बैठते हुए मुझसे ही पूछेंगे—'इसमें टूटनेवाला कोई सामान तो नहीं?'···मैं कितना ही अखबार पढ़ने में तल्लीन होने की मुद्रा बनाऊँ, चेहरे पर ही नहीं, सारे शरीर पर गुरु-गंभीरता का लबादा ओढ़कर भारी बनना चाहूँ—मगर उनकी आँखों ने मुझे पहले ही पासंग-सहित तौल लिया है। इतने लोगों के बीच—प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक—उनकी निगाह में मैं ही एकमात्र ऐसा हलका आदमी हूँ, जिसे मद्धिम आवाज से ही तनिक-सा सरकाया जा सकता है। बगल में बैठनेवाले इन अनचाहे बगलगीरों के अलावा खड़ा होकर तमाशा देखनेवाले तमाशबीनों में भी ऐसे लोग रहते हैं, जो मुझे ही खोजते रहते हैं। लॉन में कोई बड़ी सभा हो या फुटपाथ पर होनेवाला मदारी का खेला—ये मुझे वहाँ भी पा लेते हैं और ठीक मेरे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। मेरे दृष्टिपथ को उनका 'मुंड' पूरी तरह छेंक लेता है। तब, यदि मैं दाहिनी ओर सिर झुकाऊँगा तो वह 'मुंड' भी दाहिने झुकेगा और बायें मोड़ूँ तो वह भी तत्काल उधर मुड़ जाएगा। इसके बाद सभा के सारे लोग नेताजी का भाषण, उनके हाथ-पाँव भाँजने के साथ देखेंगे-सुनेंगे; मदारी के मजमे के लोग कबूतर गायब होने का तमाशा

देखेंगे और मैं देखा करूँगा सिर्फ इनका मुंड। इस मुंड को पकड़कर—आसपास के अन्य मुंडों से टकरा देने का जी बार-बार करने के बावजूद—वैसा नहीं कर पाता। और, वैसा नहीं कर पाने का दुःख···? आत्मग्लानि की उन अनुभूतियों के दंश से मन दिस चिढ़ा रहता है। अपनी कायरता के लिए अपने-आपको धिक्कारता रहता हूँ। जीभ पर अपने लिए कोई हल्की-फुल्की गाली भी कढ़ आती है, जिसे मैं चुपचाप निगल जाता हूँ।···सुना है, जापान के लोग गाली नहीं बकते और न कसमें ही खाते हैं। शायद इसीलिए वहाँ 'हाराकिरी' यानी आत्महत्या करने का प्रचलन पनपा है। गाली तो···(क्या कहते हैं उसको, जो प्रेशर कूकर में लगा रहता है?)···हाँ, सेफ्टी वल्व है।···लीजिए, वे आ गये। वे मुझसे ही कह रहे हैं—'तनि डोलिएगा?'

सरकने या खिसकने के बदले 'डोलना' शब्द का प्रयोग, तिस पर इस तेवर के साथ कि अगर मैं नहीं डोलना चाहूँ अथवा डोलने में मुझे कोई कष्ट हो, तो वे स्वयं मुझे डुला देंगे!

मुझे डोलना नहीं पड़ा। आप बैठ गये हैं। और, अब मुझसे कुछ पूछना चाह रहे हैं।···पता नहीं, मेरे चेहरे पर क्या है कि लोग मुझसे ही दुनिया-भर के सवाल करते हैं। मेरी विरक्त मुद्रा ने काम किया। उन्होंने कुछ पूछना चाहकर भी कुछ नहीं पूछा। मुझे संतोष हुआ, अपनी विरक्त मुद्रा को कारगर होते देखा। किंतु, एक ही क्षण के बाद फिर दपदपाकर जी जल उठा। सामने बड़े बोर्ड पर एक रेलवे कर्मचारी खूब बड़े-बड़े अक्षरों में लिख गया—'फोर्टी डाउन ट्रेन तीन घंटा लेट!'

एक हल्की-सी चीख मेरे मुंह से निकल पड़ी, शायद। बगलगीर जी बैठते ही ऊँघने लगे थे। मेरी अस्फुट चीख पर चिहुँककर जगते हुए बोले—का हुआ?

देखता हूँ, सुनता हूँ—मेरे मुंह से ही नहीं—गाड़ी के लेट आने की सूचना पाकर सारे प्लेटफार्म के लोगों के मुंह से कुछ-न-कुछ भला-बुरा निकल रहा है। बहुत देर से रुकी हुई भुनभुनाहट अचानक फिर शुरू हो गयी है!

·· तीन घंटे लेट? अर्थात् दस तीन तेरह—एक बजे रात में आएगी गाड़ी। ऐसा ही होता है। पता नहीं ऐसा क्यों होता है कि जब कभी मैं कहीं की यात्रा पर निकलता हूँ अथवा किसी को 'रिसीव' और 'सी ऑफ' करने के लिए स्टेशन आता हूँ, तो गाड़ी लेट हो जाती है। मैं जानता था, आज भी वही होगा। सो, हुआ।···इस चायवाले को अबकी डाँटूंगा, अगर उसने मेरी ओर मुंह टेढ़ा कर उस तरह 'च्ये-हे-य!' कहकर पुकारा तो।

गाड़ी के तीन घंटा लेट आने की सूचना के साथ ही प्लेटफार्म के उस छोर से उसकी आवाज बुलंद हुई है, जो क्रमशः निकटतर होती जा रही है—'च्ये-हे-य!'

"ऐ ! इधर सुनो जी। पहले भी तुम मुझसे पाँच बार पूछ चुके हो। इस बार सुन लो, मैं चाय नहीं पीता। समझे ?"

चायवाला कुछ अप्रतिभ हुआ। नहीं, अप्रतिभ हो ही रहा था कि मेरे पड़ोसी की नींद खुली और उन्होंने चायवाले को पुकारा, "देना एक कुलफी।"

चायवाले का चेहरा बदल गया। उसने टेढ़ी निगाह से मेरी ओर देखकर फिर हाँक लगायी—'च्ये-हे-य !' और, मुझे जो जवाब मिलना चाहिए, मिल गया। पुनः आत्मग्लानि हुई। इस चायवाले की चिढ़ानेवाली आवाज को नहीं बंद कर पा सकने की ग्लानि ! कई लोगों ने एक ही साथ चाय की माँग की, तो उसने फिर मेरी ओर एक बार देखा। इस बार उसकी आँखों में मेरे प्रति दया का भाव था। मेरे बगलगीर जी ने तश्तरी में चाय ढालकर फूँकते हुए कहा, "मेरा बोहनी कैसी सगुनियाँ है। देखा, पाँच कुलफी एक साथ।" फिर मेरी ओर देखकर मुखरित हुए, "पीजिए न आप भी एक कुलफी। गाड़ी तो तीन घंटा लेट है !"

क्या जवाब दूँ इस भले आदमी को; गाड़ी तीन घंटे लेट है, इसलिए मैं भी एक कुलफी चाय पीऊँ उनके आग्रह पर ! इसमें क्या तुक है भला ?

मेरी ओर से निरुत्साहित होकर उन्होंने चायवाले से ही फिर बातचीत जारी रखी, "का जी ! रोज कितना कमा लेते हो ?"

मैं जानता था, चायवाला यही जवाब देगा—'जी, कोई ठीक नहीं। किसी दिन सात—किसी दिन दस—जब जैसा···।'

हठात् मेरे मन में भी हुआ कि चायवाले से पूछूँ कि अगर तुमको सात रुपये रोज अथवा दो-ढाई सौ रुपये महीने पर कोई नौकर रखे, तो क्या इसी तरह दिन-रात प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक घूम-घूमकर चाय बेचा करोगे ? किंतु, मैंने पूछा नहीं। क्योंकि मैंने उसकी चाय नहीं खरीदी थी और फोकट के ऐसे सवालों के जवाब वह इस तरह नकद देगा—'ढाई सौ क्या, पाँच सौ भी दे कोई, नौकरी नहीं करेंगे साहेब !'

लाउडस्पीकर पर खुसफुसाहट हुई, तो उत्कर्ण हुआ। गाड़ियों के आने-जाने की सूचना देनेवाले इस यंत्र से आती हुई आवाज में—ग्यारह बजे रात के बाद से नींद घुल जाती है। यानी ग्यारह बजे के बाद से इसकी आवाज में धीरे-धीरे विहाग का स्पर्श लगता जाता है और तब इसका भी वही प्रभाव पड़ता है, जो फिल्मी लोरियों के सुन पर पड़ता है—'यात्रीगण···कृपया ध्यान दें···थ्ट्रिन अप गाड़ी···!!'

इस घोषणा के बाद मेरे पास बैठे सज्जन ने मुझसे पूछा, "आपको किधर जाना है ?"

अब मैं अपने को समझाने लगता हूँ कि इस तरह दिन-रात दुनिया से बेवजह नाराज रहना अच्छा नहीं, उचित नहीं।···इस आदमी ने मुझसे कुछ पूछकर

अन्याय नहीं किया है। बल्कि, इसका उचित उत्तर नहीं देना असंगत और अनुचित होगा। और, अंततः मैं अपने-आप पर नाराज हो जाता हूँ। फिर, अपने-आपकी प्रतिरक्षा करने लगता हूँ—'क्या मैं बेवजह ही सुबह से शाम तक नाराज रहा करता हूँ? अपना गाँव-घर छोड़कर पराये नगर में आकर रहने को मजबूर आदमी भी कभी खुश रह सकता है!'

ठीक वही हुआ, जो ऐसे मौकों पर संयोग से हुआ करता है। ऐसे तर्क-वितर्क के क्षणों में ही कोई मेरी आँखों में उँगली डालकर—इसी तरह जवाब दिखला देता है···सामने सोई हुई भिखारिन का छोटा-सा शिशु बहुत देर से उठकर बैठा है और चुपचाप स्वयं ही किलकारियाँ लेकर प्रसन्न हो रहा है। भिखारिन हठात् हड़बड़ाकर उठ बैठती है। फिर, अपने प्रसन्न शिशु को मस्त होकर खेलते देखकर आह्लादित होती बच्चे को दुलारने लगती है, "बबुआ, जाग गइल हो? आज बहुत सबेरे जगलन है हमार बबुआ!···" फिर, उसका हुलसकर बच्चे को छाती से लगाना···? मेरा भी मन अजाने प्रसन्न होने लगा। और अचानक ही एक योजना मन में कौंध गयी। योजना नहीं, एक विचार। जिस नगर में मैं रहता हूँ, वह एक नया बसा हुआ नगर है। सड़क के दोनों ओर बनते हुए मकानों को देखकर नाराज होने के बदले इस नगर में आकर बस जानेवाले परिवारों का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना उचित नहीं क्या? मेरे नगर में सैकड़े निन्नानवे बाशिन्दे गाँव से आकर बसे है। सिर्फ एक प्रतिशत परिवार ही पैदाइशी शहरी है। मगर बाकी आबादी उसी एक प्रतिशत की नकल में दिन-रात व्यस्त है।···कल ही तो, गाँव मे जन्मे, पले और बड़े होकर बूढ़े होनेवाले राम-निहोरा बाबू (डॉक्टर रामस्वारथ बाबू के पिताजी) कह रहे थे, "जानते है?—आधुनिक डॉक्टरो का आधुनिक मत है कि शुद्ध दूध और घी स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक है।"··· और, मेरी अपनी ही अधेड़ मौसी उस दिन जिस वेश में मेरे फ्लैट मे आयी थी—वह किसी सचित्र साप्ताहिक पत्रिका के किसी रंगीन विज्ञापन के मॉडल से क्या कम लगती थी?···अचानक मेरे मन मे दूसरा खयाल आया—क्यो न अपने नगर मे भी एक 'ब्यूटी कंटेस्ट' का आयोजन किया जाए? ··फिर, अचरज हुआ यह सोचकर कि कलर फोटोग्राफी के डेवलप होते ही सारा समाज एक ही साथ किस तरह रंगीन हो उठा है! चारों ओर घोर गाढ़े नीले-पीले-बैंगनी-गुलाबी और तोतापंखी रंगों के धब्बे! मैं अब तक इन रंगों से चिढ़ता रहा हूँ। लेकिन, अब सोचता हूँ कि रंग से चिढ़ना क्यों? रंग तो हमारी सभ्यता के मूल में ही है। मोरमुकुट और पीतांबर, रंगभरी एकादशी···। मेरे अंदर का कुढ़ता हुआ आदमी भिखारिन के बच्चे को निकलते देखकर ही हार मान चुका था। अब वह मुझ पर व्यंग्य करने लगा—क्यों? दुनिया रंगीन मालूम होने लगी?···मैं उसको जवाब देता हूँ·—क्यों नहीं मालूम होगी रंगीन दुनिया—जब यह सचमुच रंगीन

है? तीन सौ रुपये के वाउचर पर दस्तखत करके डेढ़ सौ रुपये माहवार, तीन महीने के बाद पाता हूं, तो क्या मुझे खुश रहने का अधिकार नहीं ?...

मेरे बगलगीर की गर्दन नींद में झुकती हुई मेरे कंधे पर आ गयी है। मेरे अंदर का नाराज व्यक्ति होता तो तुरंत कंधा खींच लेता और उसका मुंह बेंच से 'खट' आवाज के साथ टकरा जाता। किंतु, मैं अब पूर्ण स्वस्थ हो गया हूं। गाड़ी आने में अब बस आधा घंटा रह गया है। मैं अपने बगलगीर का सिर पकड़कर धीरे से जगा देता हूं। फिर चायवाले को पुकारता हूं और बगलगीर के हाथ में एक कुलफी चाय थमाकर आग्रह करता हूं—पीजिए! एक कप मैं भी पी लूंगा आज।

लफडा

उस बार 'यूनिट' के 'प्रोडक्शन मैनेजर' ने मेरे ठहरने की व्यवस्था 'दि डायना गेस्ट हाउस' में की थी। इसके पहले मुझे खार स्टेशन के पास 'होटल सदाबहार' में टिकाया जाता था। इसलिए, नयी जगह के बारे में तरह-तरह के सवाल मुंह से अनायास निकलते गये और 'ऑफिस-ब्वाय' गर्दन हिलाकर सभी सवालों के जवाब में 'हां जी-हां जी' कहता गया। बोला, "साब ! डायना गेस्ट हाउस में भी इंडस्ट्री' का लोग सब रहता है। एक गोआनीज लेडी का···है।"

गोआनीज लेडी ? याद आयी, होटल सदाबहार में रहते समय इस गेस्ट हाउस के किस्से सुना करता था। जब-जब हमारे होटल सदाबहार में कोई 'लफड़ा' होता, उस दिन कोई-न-कोई व्यक्ति 'डायना' की कोई नई कहानी जरूर सुनाता।

होटल सदाबहार में भी 'इंडस्ट्री' अर्थात् 'फिल्म इंडस्ट्री' के लोग ही रहते हैं। इसके प्रोप्रायटर बूढ़े सरदारजी और उनके लड़के, हर नये व्यक्ति को हर कमरे की विशेषता बतलाते समय, फिल्मी दुनिया की किसी बड़ी हस्ती का नाम लेते हैं, "म्युजिक डिरेक्टर रबिनदेव मजुमदार का नाम सुना है ? जब पहली बार बंबई आया था, तो इसी कमरे में डेढ़ साल तक था और समंतकुमार जब आया था···।"

यों, लफड़े तो सदाबहार होटल के भी एक से एक दिलचस्प हैं। लेकिन, डायना गेस्ट हाउस के किस्से दिलचस्प होने के साथ 'हॉट' भी हैं।···गोआनीज लेडी का नाम लेते ही मेरी आंखों के सामने गर्मागर्म 'स्पाइस्ड-पोर्क' का एक प्लेट आ जाता है !

गेस्ट हाउस के सामने टैक्सी लगी। तीन-चार परिचित चेहरे एक साथ दिखलाई पड़े और सभी एक साथ किलक पड़े, "अरे ! दादा ! आप ?···कब आये ?"

मुझे राहत मिली। सुना, रघुवीर भी इसी गेस्ट हाउस में रहता है। उसके दोस्त रामपाल ने कहा, "दादा ! आपको क्या बताएं ? बगैर एक बार आपकी

चर्चा किये यदुवीर कभी 'बेड-टी' तक नहीं लेता। और, इस बार आपको यहाँ ठहराने का इंतजाम उसी हरामजादे ने करवाया होगा। वह बोलता था—दादा को एक बार इस गेस्ट हाउस में जरूर टिकाना होगा···।"

इन परिचितों की कृपा से मुझे इस नई जगह में आकर कोई प्रारंभिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। सचमुच गेस्ट की तरह बैठा रहा। रामपाल दौड़कर गया और दो-तीन 'मूरत' को साथ ले आया। कमरे की सफाई से लेकर बाथरूम की धुलाई तुरत हो गयी। रामपाल ने हर 'मूरत' का परिचय दिया, "दादा! यह है गफूर। यह रामदास और यह दासगुप्ता। हाँ, बंगाली दासगुप्ता। ये सभी आपके 'बंदे' हैं। सभी साले 'चाइल्ड-हीरो' बनने के लिए घर से भागे थे और अब···दादा! अब आप आ गये है। कसम खुदा की—आपको रोज एक नया प्लॉट मिलेगा यहाँ।···अभी तो आप हमारी 'मैडम' से मिले ही नहीं।"

बाहर एक तीखी और पतली आवाज गूंज उठी। रामपाल ने दाँतों से जीभ का काटते हुए कहा, "आ गयी! आ गयी चुड़ैल!"

नीले रंग के स्कर्ट में एक नाटी, काली और मोटी महिला दरवाजे पर प्रकट हुई और अचरज से मुझे देखने लगी। फिर, रामपाल पर बरस पड़ी, "तुम? तुम इदर में कहाँ? नया गेस्ट के पास हमारा चुगली खाने आया है? इडियट! ठहरो, आज तुमको निकालेंगा। अब्बी निकालेंगा···।"

रामपाल ने आज्ञाकारी पुत्र की तरह मुखमुद्रा बनाकर कहा, "मैडम! क्या बोलता है आप? हम अभी पेट भर बंदे की भुर्जी और बटाटा-फाय खाया है, तुम्हारा चुगली किस पेट में खाएगा? पूछ लो, दादा को इस 'गेस्ट हाउस' मे लाया कौन? मैडम, हम तुम्हारा भला छोड़कर कभी बुरा नही किया। और, तुम···।"

मैडम तुरत खुश हो गयी। बोली, "अरे नहीं बेटा। तुमको हम खूब पहचानता है।···बोलो ना, तुम्हारा यह नया गेस्ट···यह दादा किदर से आया?"

रामपाल ने जवाब दिया, "आप है हमार दादा। स्टोरी और डायलॉग लिखते हैं। खुदा कसम, ए फर्स्ट क्लास जेंटलमैन···।"

"रखो तुम्हारा खुदा कसम। अरे, जब आता है, तो सभी फर्स्ट क्लास जेंटलमैन होता है।"—मैडम बोली, "मगर, तुम लोग सबको बिगाड़कर छुट्टी कर देता है। एकदम 'थर्ड क्लास' कर देता है।"

इस बार रामपाल के तेवर बदल गये, "मैडम, प्लीज बी सीरियस! दादा तुम्हारे इस 'रेचेड गेस्ट हाउस' में आ गये हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि···।"

"अरे बेटे! गाली काहे कूं बकता है? हम तो 'लव' में बोला और तुम बोम मारने लगा।"—मैडम अब खुशामद के सुर में बोलने लगी, "दादा! आपका यह रामपाल···हि इज ए चाइल्ड···लड़का है एकदम।"

बाहर, फटी हुई आवाज मे किसी ने पुकारा, "मैडम !"

मैडम ने सिर पकड़कर कहा, "यह कुत्ता का बच्चा इदर में किदर से काहेकू आ गया ? जरूर ड्रंक है।"

मैडम बाहर चली गयी। मुझे मुस्कराते देखकर रामपाल उत्साहित हुआ, "दादा, आप आ गये है। कसम खुदा की, आप खुश होकर लौटिएगा इस बार बंबई से।···ठहरिए, मैं यदुवीर को फोन करता हूं। साला आजकल 'वेरी बिजी हीरो' के साथ लगा हुआ है।"

मैंने पूछा, "और तुम ?"

"अपन तो वही 'हैपी बैंग्ली' साहब का साथ है। 'दर्द का दरिया' मे फर्स्ट असिस्टेंट लगा हुआ हूं।···अभी आया दादा। आप तब तक नहा-धो लीजिए। बाथरूम में जाइएगा, तो कमरा अंदर से बंद कर लीजिएगा।"

रामपाल चला गया। मैं नहाने की तैयारी मे लग गया। कंधे पर लुंगी-तौलिया और हाथ मे साबुनदानी लेकर दरवाजा बंद करने जा रहा था कि मैडम आयी, "दादा, एक्सक्यूज मी, डिस्टर्ब किया आपको। लेकिन···।"

वह इधर-उधर देखकर मेरे करीब चली आयी। फिर धीरे से बोली, "यह रामपाल को तुम कित्ते दिन से जानता है?···बस ? दो साल से ? यो लड़का अच्छा है। मगर, मैं कहती हूं—थोड़ा 'केयरफुल' रहना। यहां किसी का भरोसा नहीं। डोंट बिलीव एनीबडी। तुमको फुर्सत मे सब बतलाएंगा···दे आर वेरी डर्टी ! अच्छा दादा, तुम ड्रिंक तो नहीं करता ? हां, खबरदार···।"

बाहर फिर किसी ने पुकारा, "मै-ड-म !"

मैडम ने मुंह बनाकर कहा, "इदर सभी शैतान है मगर मैं भी शैतान का खाला है। मेरे पास कोई लफड़ा नही। अब्बी गड़बड़ किया कि अब्बी गेट आउट किया। तुम इनकी बात मे नही आना। सब डेंजरस है ! फुर्सत मे तुमको सब बतलाएंगा···"

बाहर यदुवीर का ठहाका सुनायी पड़ा। मैडम बोली, "यह आया दूसरा शैतान का बच्चा। वो रामपाल है न, फिर भी अच्छा है। या जदबीर···तुम जानता है उसको ? कब से ? ··ओह, बहुत गंदा, बहुत···।"

"क्यो मदर ? दादा से पुराना रिश्ता है क्या ?"—यदुवीर के ठहाके से कमरा हिलने लगा।

मैडम बोली, "देख जदबीर ! हमेशा 'मसकरी' ठीक नही। तुम इस तरह पागल का माफिक हंसता क्यो है ?"

"मदर···!"

"फिर मदर बोलता है ?"

"मदर नही तो क्या बोलेगा ? ग्रैंड मदर ?"

"अब्बी निकालेंगा···।"

"किसको ?"

"तुमको।"

"देखता हूँ कौन निकालता है किसको !"

"हम निकालेंगा—हम। पाँच महीने का रेंट बाकी पड़ा है। ऊपर से वीकली दस-पंद्रा कर्जा खाता है रेगुलरली···लाज नहीं ?"

"काहे की लाज ?"

"तुम दिन में भी ड्रिंक करने लगा ?"

"ड्रिंक किया तो किसी के मरे हुए खसम का क्या ?"

"अब्बी निकल जाओ !"

"नहीं निकलेंगा !"

"नहीं ?"

"नहीं निकलता।"

"नहीं ?"

"नहीं ! नहीं ! नहीं !"

"माई गॉड···!"

मैडम सिर पीट-पीटकर रोने लगी। पैर पटक-पटककर नाचती न जाने किस भाषा में क्या-क्या बोलने लगी।

मैंने अवाक् और अप्रसन्न होकर यदुवीर की ओर देखा। यदुवीर अप्रतिभ नहीं हुआ। उसने आँखें मटकाकर मुझे संकेत किया, "मजा देखिये ना।"

मैडम कमरे से बाहर चली गयी, तो यदुवीर फिर ठठाकर हँस पड़ा। मैंने कहा, "यह कहाँ आ गया मैं ?"

"दादा, आपको यहाँ ठहराने की व्यवस्था मैंने ही करवायी है। एक सप्ताह ही रहकर देख लीजिए···।"

रामपाल हँसता हुआ आया, "सुनिय ! देखना, मैडम आज तुमको निकालकर ही पानी पीएगी। कह रही है, नया गेस्ट के सामने हमारा इनसल्ट किया, हमारे मरे हुए खसम का नाम लिया।···रो रही है, ऑफिस का दरवाजा बंद करके।"

"मारो साली कुतिया को !"—यदुवीर ने बिछावन पर लुढ़कते हुए कहा, "और बतलाइए दादा···।"

बांद्रा के 'दि डायना गेस्ट हाउस' की मालकिन, अधपगली गोआनीज मोटी मेम को बांद्रा से खार तक का बच्चा-बच्चा जानता है। राह चलते बड़बड़ाती रहती है। 'तंदूरी चिकन' कहने से बेहद चिढ़ती है। छोटे-छोटे बच्चे 'तंदूरी चिकन' कहकर गली में भाग जाते हैं और मैडम मोड़ पर खड़ी होकर गालियाँ

सुनाती रहती है, "तेरी मदर तंदूरी चिकन, तेरा बाप तंदूरी चिकन···।"

उसी शाम को यदुवीर ने नया तमाशा दिखाया। दिन-भर की रूठी और नाराज मैडम को चुटकी बजाकर खुश कर दिया। यदुवीर ने बड़े प्यार से 'हैलो मैडम' कहा और वह रोने लगी, "नहीं, नहीं, हम तुमसे नहीं बोलेंगा। नहीं···।"

"मैडम ! डियर···डार्लिंग···मेरी सुनो···।"

"कुच्छ नहीं सुनेंगा।···हम तुमसे 'लव' में बात किया और तुम नया गेस्ट के सामने हमको गाली बोला। नही-नहीं···।"

चौबीस घंटे में ही मेरा सिर बार-बार चकराने लगा।—मैं कहाँ आ गया ? पागल हो जाऊँगा यहाँ···।

डायना गेस्ट हाउस बाहर से जितना नया और साफ-सुथरा दिखाई पड़ता है, अंदर से उतना ही पुराना और गंदा है। लकड़ी की खिड़कियाँ और रंगीन टाइल के इस मकान की उम्र एक सौ साल से कम नहीं होगी। सब मिलाकर बीस बड़े और पाँच छोटे कमरे हैं। बड़े में चार और छोटे में दो गेस्ट रहते हैं। हर कमरे के बीच मे लकड़ी का एक पार्टीशन और दरवाजा है जो दोनों ओर से बंद रहता है। हर कमरे के बाथरूम का फ्लश बिगड़ा हुआ है और झरना हमेशा चूता-टपकता रहता है। तिलचट्टों की टोलियाँ दिन-रात टहलती रहती हैं। दीवारों के पलस्तर छूते ही भरभराकर झड़ने लगते हैं। पलंग पर खटमलों का और कमरों में मच्छरों का राज। किचन तो 'हेल' ही है। फिर भी, यहाँ रहनेवाले गेस्ट को हमेशा एहसास होता है कि मैडम की विशेष कृपा यानी एहसान से ही उन्हें यह जगह मिली है।

मैडम फिल्मी लोगों से घृणा करती है। कहती है, "एक आदमी होता है शराबी, कोई होता है छोकरीबाज, कोई जुआड़ी। अलग-अलग आदमी में अलग-अलग ऐब। मगर यह फिललम का आदमी एक ऐसा जानवर होता है जिसको सिंग भी होता है, जहरीले दाँत भी, तेज नाखून और हाथी के जैसा सूँड भी··· आई हेट···आई हेट···।"

लेकिन, उसकी घृणा के बावजूद उसके गेस्ट हाउस के हर कमरे में हमेशा फिल्मी लोग ही रहते है और रहेंगे। मैडम रोज शराब के खिलाफ हर गेस्ट के कमरे में जाकर भाषण और चेतावनी देती है, "नो वाइन एंड नो वीमन···दारू भी नहीं, छोकरी भी नहीं !" और रोज शराब भी आती है और लड़कियाँ भी। खुद मैडम शराब पीती है और उसके लिए एक अधेड़ आदमी हर शनिवार को आता है जिसको ऑफिसवाले कमरे में बंद करके मैडम खुद छोकरी हो जाती है। सभी जानते है···!

उस रात रामपाल और यदुवीर दोनों रेस में हारकर लौटे थे। इसलिए टैक्सी

मे उतरकर सीधे मैडम के पास हाजिर हुए। रामपाल ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "मैडम ! हमारी जान आज तुम्हारे हाथ। बाहर टैक्सी में 'छोकरी' का मवाली बैठा हुआ है। प्लीज मैडम···।"

"क्या-आ-आ ! छोकरी लेकर आया है ?"

"नही मैडम।"—कान पकड़ते हुए रामपाल ने कहा, "ऐसा काम हम कभी नहीं करेंगे।"

"तब ?"

"उधर ही 'सलाम' करके आया। मैं समझा कि यदुवीर साले के पास पैसा है और यदुवीर साला समझा कि रामपाल साले के पास पैसा होगा···।"

"एक ही छोकरी था या दो ?"—मैडम ने दिलचस्पी के साथ पूछा।

"नही मैडम ! एक ही···।"

"गेट आउट···।"

"मैडम ! मवाली टैक्सी मे बैठा है। हमारी जान ले लेगा। खुदा की कसम···"

"और तुम ?"—मैडम ने यदुवीर की ओर मुड़कर कहा, "तुम चुप काहे कू है ? अब बोलता क्यो नही ? एं ? उदर मे छोकड़ी के साथ ऐश करके आया है। इदर में अब बाहर जाकर मवाली के जूते खाओ ना।···ठीक है। अच्छा है !"

यदुवीर बोला, "तुम यहाँ लाने ही नही देती मैडम !"

"हम तुमको कब मना किया ? बोलो ? मना किया कबी ? कसम खाकर बोल—तुमको कबी बोला···?"

बाहर टैक्सी का कर्कश हॉर्न बजा।

रामपाल हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया, "मैडम, प्लीज !"

"कितना मांगता है ?"

"दो सौ।"

मैडम चीख पड़ी, "ऊ-य-ह ! टू हड्रेड ? एक कुतिया के वास्ते—हड्रेड रुपी पर हेड ? माइ गॉड···बेटे रामपाल, बेटे जदबीर ! तुम दोनों का जवाब नही। जवाब नही।···कैसी थी छोकरी ?"

"मैडम, पहले मेहरबानी करके रुपये दो। फिर सब-कुछ बताऊँगा। सब कुछ···।"

मैडम ने यदुवीर की ओर देखकर नाक सिकोड़ते हुए कहा, "तुम लोगों को नरक में भी जगह नहीं मिलेगी। समझे ?"

सौ-सौ के दो नोट रामपाल के हाथ मे थमाकर मैडम बोली, "आई हेट यू बोथ···तुम दोनों को कल ही यहाँ से निकालेगा। देख लेना। गेट आउट !"

सुना, रामपाल और यदुवीर ने ऐसा नाटक बहुत बार किया है। और हर बार मैडम ने इसी तरह की धमकियों के साथ कर्ज दिये है।

एक दिन यदुवीर ने कहा, "आज आपको यहाँ का 'सिनेमास्कोप' दिखलाऊँगा। आज शनिवार है न ?"

'सिनेमास्कोप ?"

वे दोनों एक ही साथ हँसे। रामपाल ने फिसफिसाकर यदुवीर से कुछ पूछा। यदुवीर ने बताया, "तीन-तीन पेयर का प्रोग्राम है आज। दस नंबर—फ्लूट बनानेवाले बंगाली फटिक की पंजाबन भी आज आयेगी। चार नंबर—जवान सरदार की बुढ़िया···और आठ नंबर में तो आज 'कोरस'···।"

यदुवीर बोला, "और साली मदर का साला फादर भी तो आज ही आयेगा !"

एक बोतल काजू की शराब और कई बोतल कोला लेकर छोकरा दासगुप्ता आया।

रामपाल ने कहा, "दादा, कसम खुदा की—इसके सामने स्कॉच भी कुछ नही। साली पहला 'किक' ही ऐसा जमकर लगाती है कि आदमी सीधे 'आउटर-स्पेस' म पहुँच जाता है।"

दासगुप्ता छोकरा आँखों मे कोई संकेत लेकर आया। यदुवीर ने गटगटाकर गिलास खाली किया और उठकर दरवाजा बंद कर आया। फिर, बीचवाले लकड़ी के दरवाजे के पास जाकर बैठ गया।

रामपाल ने धीमे स्वर मे पूछा, "क्यो ? चालू है ? साला, इतना 'अर्ली' ही शुरू कर दिया इस भूखे बंगाली ने ?"

रामपाल गिलास हाथ मे लिए ही यदुवीर के पास गया। यदुवीर को ठेलकर, खुद छेद में आँखें सटाकर देखने लगा। फिर, दोनो ने इशारे से मुझे बुलाया। मैंने सिर हिलाकर कहा, "नही।" दोनो ने ऐसी मुद्रा बनायी जिसका मतलब था, 'एक बार आकर देखिए तो ! ऐसा 'शो' फिर कभी देखने को नही मिलेगा।'

अचानक कमरे का दरवाजा कचमचाकर खुला। कमरे मे मैडम दाखिल हुई। दोनो पार्टीशनवाले दरवाजे के पास उठ खड़े हुए। मैडम ने पहले अचरज मे हमें बारी-बारी से देखा। फिर बगैर कुछ बोले—पार्टीशनवाले दरवाजे के पास घुटने के बल बैठ गयी और छेद से देखने लगी। अचानक वह छिटककर फर्श पर लुढ़क गयी। ऐसा लगा, बिजली मार गयी। रामपाल और यदुवीर ने दौड़कर मैडम को सँभाला। मैडम दोनो की बाँह मे अधलेटी-सी थर-थर काँप रही थी और बोलने की चेष्टा कर रही थी, "माई गॉड··यह बीमार बंगाली जरूर मरेगा। देखा नहीं, छोकरी ने 'फ्लटपोज' लगाया है। यह जरूर मरेगा। देख लेना। अब्बी

निकालेंगा उसको···।"

यदुवीर और रामपाल, दोनों एक साथ मैडम से प्यार-भरी खुशामद किए जा रहे थे, "मैडम ! प्लीज···डोंट डिस्टर्ब···'शो' बर्बाद मत करो···मरने दो साले को···तुम्हारा क्या···हमारा क्या···डार्लिंग···तुम कितनी अच्छी हो···"

अग्निसंचारक

लगता है, फिर कहीं किसी पर्वत शिखर पर हिमपात हुआ है। सुबह की हवा में पर्याप्त 'कनकनी' व्याप्त है,। फिर शीतलहरी चलेगी। मैं बाघ से उतना नहीं डरता हूं, जितना माघ की इस कनकनी से। इसी के डर से कभी दार्जिलिंग नहीं गया—जो हमारे घर से ज्यादा दूर नहीं। जाने की बात दूर—कभी कल्पना भी नहीं की आज तक। यों, उम्र के हिसाब से अथवा अन्य किसी हिसाब से मैं वृद्ध नहीं। किंतु, हर साल अगहन से माघ तक अपने को 'थुरथुर बूढ़े' से भी हीन अनुभव करता हूं।···सब-कुछ ठंडा-ठंडा! चाय, कॉफी तथा अन्य उष्ण एवं उत्तेजक द्रव्य के अहर्निश और अनर्गल सेवन का कठोर दंड पेट की अंतड़ी को भोगना पड़ता है। इसलिए हर साल फागुन महीना के तीसों दिन, प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार में···समझिए कि यों ही यानी 'अलोने' बीत जाते है।

'शीतलहरी' शब्द के उच्चारण और श्रवण मात्र से मुझे लगता है कि कोटि-कोटि नन्ही सुइयां मेरे अंग-प्रत्यंग मे बिद्ध होने के लिए पंक्तिबद्ध उड़ती हुई आ रही है। सो, ऐसी ही एक कनकन-ठंडी दुर्दिन की रात में एक बार हजारीबाग रोड स्टेशन पर 'उनमे' मेरी पहली और अंतिम मुलाकात! माघ महीने की शीत-लहरी की हर लहर पर कांपती-सिहरती छोटा नागपुर की पहाड़ी धरती। हजारीबाग रोड स्टेशन के प्रतीक्षालय मे गाड़ी की प्रतीक्षा में जमकर बरफ होता जा रहा था कि अचानक 'उनका' आविर्भाव!

प्रतीक्षालय मे प्रवेश करके उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और फिर सीधे मेरे पास आकर मुस्कराने लगे। मैं उनकी असामयिक मुस्कराहट का अर्थ नहीं समझ सका तो वे बोले, "लगता है, आप भी पटना जानेवाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे है।"

मेरे मुंह से कोई शब्द नही निकल सका। स्वीकारात्मक मुद्रा बनाकर गर्दन हिला दी और उनकी ओर जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देखता रहा।

उन्होंने अपना परिचय दिया—"मै हूं अग्निबोध। हे-हें···पत्र-पत्रिकाओं में

मेरी रचनाओं से कदाचित् परिचय हुआ हो। और मेरी आगामी कृति 'अग्निरथ' का विज्ञापन तो आपने अवश्य देखा होगा।"

मैंने पूछा, "अग्निबोध तो आपका 'घराऊ' नाम हुआ। 'घराऊ' नाम क्या है?"

इस प्रश्न से उनकी मुखमुद्रा तनिक विकृत हुई। बोले, "मान लीजिए कि मेरा घराऊ नाम अजबलालदास हो तो इससे क्या? वह लेकर आप क्या कीजिएगा? मैंने अपना शुभ और साहित्यिक नाम बतलाया है।···और आप अपना परिचय दें अथवा नहीं दें—मैंने आपको पहचान लिया है···।"

मैंने कंबल के नीचे समेटे हुए अपने मुखड़े को जरा बाहर किया और अचरज में पड़कर सोचने लगा कि इस अजनबी अजबलालदास उर्फ अग्निबोध ने मुझे कैसे पहचान लिया और क्या पहचान लिया है। मुझे अचरज में पड़ा देखकर वे प्रफुल्लित ही हुए। मैंने कुनमुनाकर कहा, "आपने मुझे कैसे पहचान लिया अग्निबोधजी! मेरा नाम तो आपने सुना भी नहीं होगा कभी।"

"अर्थात् ?"—अग्निबोधजी ने पासवाली कुर्सी पर दखल जमाते हुए पूछा।

"अर्थात् मेरा नाम है हिमकूट हुस्सा !···क्यों, विश्वास नहीं हो रहा है न?"

उनके आश्चर्यमिश्रित अप्रतिभ मुखमंडल को देखकर समझ गया कि मेरे कथन का उन्हें रत्तीभर विश्वास नहीं रहा तो मैंने कहा, "जाने दीजिए! नाम में क्या है? नाम में क्या रखा है?"

इस पर वे तमककर बोले, "सो क्यों? नाम में सब-कुछ रखा हुआ है। आपका नाम यदि वास्तव में हिमकूट हुस्सा है तो आपके संपूर्ण व्यक्तित्व और अस्तित्व से हिमकूट हुस्सा का बिंब, प्रतिबिंब और संत्रास···।"

मैंने बीच में ही टोक दिया, "देख नहीं रहे हैं कि जाड़े और ठंड से दंत-पंक्तियाँ कटकटा रही है और ऊपर से खादी ग्रामोद्योग का 'घुस्सा' ओढ़े हुए हूँ। इससे बढ़कर और क्या प्रतिबिंब आप खोज रहे है?"

इस पर वे चिल्ला-चिल्लाकर हँसने लगे। आदमी ऐसी विकट और उत्कट हँसी भी हँसता है, मुझे ज्ञात नहीं था। वेटिंग रूम मे सोए और ऊँघते हुए सभी लोग आतंकित होकर उठ बैठे। अगर एक हँसी को फुलझड़ी कहते है तो इस हँसी को क्या कहेंगे? पटाखा हँसी?

वातावरण में तनिक उष्णता का आभास आ गया। उनकी हँसी के विस्फोट से समस्त प्रतीक्षालय सरगर्म हो उठा।

अब अग्निबोध बोले, "जाड़े से दाँत कटकटा रहा है तो सुनिए···।"

इतना कहकर वे चालू हो गए अर्थात् अपनी कविता का पाठ शुरू किया,

"कविता का शीर्षक है—अग्नि-निमंत्रण···।"

उनकी कविता अंगारे की तरह उनके मुंह से विगलित होने लगी। रामायण की एक चौपाई भी मुझे याद नहीं, यद्यपि बचपन से ही पारायण करता आ रहा हूँ। किंतु, अग्निबोध की कविता तो हृदय को दग्ध कर गई है न। इसलिए, आज तक प्रत्येक पंक्ति मेरे मानस में मिडियम-डायल वाली घड़ी की तरह जगमगा रही है।

शीर्षक की घोषणा के बाद मूल कविता शुरू हुई :

"आओ सभी बंधुगण
सादर निमंत्रण है,
नहीं कोई बाधा, न कोई नियंत्रण है
शीताकुल जितने जीव, प्राणी शीतल
कांप रहे हैं जीर्ण-शीर्ण दुलाई और
तार-तार उघरे कंबल के नीचे
सभी सुन लें— निमत्रण है, निमंत्रण है !!
युग के जमे हुए गोयठे और भूसे राशि राशि
टूटी-फूटी और दरकी असंख्य आशाओ और
आकांक्षाओं के स्तूप, पुरानी-धुरानी संस्कृति
सभी को जमाकर लगा दो एक 'घूर'
मैं इस घूर अर्थात् अलाव मे
तुम्हारी पुंजीभूत क्रोधाग्नि की दियासलाई
लहका दूंगा···आओ तापो तापो
नवयुग की पहली आग···।"

मेरी देह उतप्त हो गई। लगा, प्रतीक्षालय में हठात् इलेक्ट्रिक हीटर अथवा शीत-ताप-नियंत्रक मशीन चालू हो गई। सभी लोग अपनी रजाई, दुलाई, चादर आदि फेंककर अग्निबोध के पास पतंगे की तरह आकर एकत्र होने लगे। उनकी पहली कविता से ही चतुर्दिक् अग्निसंचार हो गया था।

कविता समाप्त करके अग्निबोधजी ने सभी को एक बार देख लिया। मुझे लगा कि वे अब दूसरी कविता सुनाने की तैयारी कर रहे हैं तो डर गया। एक ही कविता के प्रभाव से यह हाल है, तो दूसरी कविता से तो लाक्षागृह की तरह धधक उठेगा यह प्रतीक्षालय। मैंने हड़बड़ाकर रोकने की चेष्टा की, "अग्नि-

बोधजी ! जरा घाम सूखने-सुखाने दीजिए'''।"

किंतु, अग्निबोधजी ने छान्ह-पगहा तुड़ाकर भागनेवाले 'बन्हौटा घोड़ा' की तरह दुलकी छोड़कर 'दुटप्पा' उठाया, "इस कविता का कोई शीर्षक नहीं :

अजी ओ ! ओ जी ओ !!
तुम्हीं से कह रहा हूँ कि
रोमांटिक लोर से भीगी और भुआई
अपनी दियासलाई की डिबिया
फेंको, फेंको, उसमें अब आग नहीं
एक बूंद चिनगारी तक नहीं
प्रतिगामी बारूद वाली तिलियाँ
किसी काम की नहीं। अतः
लाया हूँ तुम्हारे ही लिए खासकर
कितनी बाधा-विपत्तियों को 'पास' कर'
सीमा के उस पार से—
स्टेनलेस स्टील के विदेशी लाइटर
जिस पर किसी देश का 'मेक' दर्ज नहीं
(यही इसकी विशेषता है !)
झड़ी हो—बतास हो
वर्षा हो, बुन्नी हो अथवा हो तूफान !
जब जी चाहे बटन दबाइए
आग उपजाइए,
नवयुग की नयी आग !!"

इस कविता के बाद सुननेवालों की समस्त सत्ता जमे हुए घी की तरह पिघल चुकी थी। मुझे ऐसा लगा कि एक सौ पाँच डिग्री ज्वर से मेरी देह तप रही है। अब यदि किसी कविता की एक या आधी पंक्ति भी पढ़ी गई तो हम राख हो जाएँगे। अतः गिड़गिड़ाने के पहले कोई शीतल शब्द ढूँढ़ने लगा। तब तक अग्निबोध ने अपने चमड़े के बैग से एक सेल्युलाइड का डिब्बा निकालकर बाहर किया और शुरू किया, "यही है ! नये साल का नया स्टॉक। दाम भी ज्यादा नहीं। फकत तीन रुपये ! लीजिए, बटन दबाइए और आग जन्माइए ! नये युग की नयी आग, नयी आग !!"

देखते ही देखते अग्निबोध ने आधा दर्जन 'लाइटर' बेच लिया !···वे मेरी ओर एक उड़ती और हलकी निगाह डालकर देखते रहे। मैं तो हैरत के मारे गूंगा हो गया था। अतः वे अब 'नयी आग-नयी आग' हांक लगाते हुए प्लेटफार्म की ओर चले गए।

जब अग्निबोधजी प्रतीक्षालय से बाहर चले गए, तो प्रतीक्षालय के एक कोने में शुरू से अंत तक सोए हुए एक भोजपुरी भाई ने न जाने किससे पूछा, "ई सरवा अगिनबोट चल गैल का ?"

मैं हर साल की शीतलहरी अब अग्निबोधजी की तथा उनकी कविताओं की याद करके कुशलतापूर्वक काट लेता हूँ।

अगिनखोर

सूर्यनाथ बाहर जाने के लिए तैयार हो रहा था। पत्नी ने टोक दिया, "कहाँ जा रहे हो? अभी दस बजे आभा का बेटा आयेगा।"

सूर्यनाथ कुर्ते का बटन लगा रहा था। उसका हाथ रुक गया। याद आयी। कल रात को घर लौटने पर पत्नी ने कहा था, 'जानते हो, आज आभा का बेटा अचानक बाजार में मिला···अरे! आभा की याद नहीं?···तुम्हारी दुलारी आभारानी राय। और, उसका बेटा माने, वही बेटा?'

सूर्यनाथ ने पूछा था, 'देखने में कैसा है?···मेरा मतलब है कि चेहरा किससे मिलता-जुलता है? एंबुलेंस ड्राइवर से या उस कपड़े की दूकान के बूढ़े मालिक से···?'

पत्नी बोली थी, 'मैंने उतना खयाल करके नहीं देखा। कल सुबह दस बजे वह आयेगा। देखकर मिल लेना, किससे मिलता है, किससे नहीं।'

"लेकिन तुम तो बाहर निकल रही हो।" कुर्ता उतारते हुए सूर्यनाथ बोला।

"वह तुमसे मिलने आ रहा है। कह रहा था, उनको एक 'इनफॉर्मेशन' देना है।" वह मुस्कराती हुई बोली, "अरे! उस लड़के ने तो मुझे कल अजीब हैरत में डाल दिया, कुछ देर के लिए। अचानक, न जाने किधर से आकर बीच राह में खड़ा हो गया—'आप अन्नपूर्णा मौसी हैं न? मुझे पहचानिए तो, मैं कौन हूँ···' फिर खुद ही बोला, 'पहचानिएगा कैसे? कभी देखा तो नहीं। मैं आपकी आभारानी का बेटा हूँ···' मैं तो अवाक्!"

"आपकी दुलारी आभारानी नहीं कहा?" सूर्यनाथ ने व्यंग्य किया।

अन्नपूर्णा वर्किंग वीमेंस एसोसिएशन की गश्ती चिट्ठी अपने बैग में डालती हुई बोली, "मेरी या तुम्हारी दुलारी?"

"तुम्हारी।"

"बेकार की बातें मत करो।" अन्नपूर्णा अर्थपूर्ण हँसी हँसकर बाहर चली

गयी। जाते-जाते कह गयी, "लड़का पहली बार आ रहा है। बिस्कुट हैं, मिठाई है···जलपान करा देना।"

पत्नी चली गयी। सूर्यनाथ के मन के पर्दे पर, सत्रह-अठारह साल पहले की कई स्मरणीय घटनाओं, मुहूर्त और क्षणों की तस्वीरें फ्लैश बैक के रूप में उभरने लगीं···

···उस बार अन्नपूर्णा मेटरनिटी सेंटर की ऑनरेरी सेक्रेटरी चुनी गयी थी। सो, घर में अक्सर लेडी हेल्थ विजिटर, नर्स, मिडवाइफ और ट्रेनिंग के सिलसिले में लड़कियाँ आती रहतीं। बाद में अन्नपूर्णा ने उन्हें मना कर दिया था।

···किंतु आभारानी राय जब सेंटर में ट्रेनिंग लेने के लिए दाखिल हुई, तो अन्नपूर्णा स्वयं उसे अपने साथ डेरे पर ले आयी थी, एक दिन, 'लो, अब कितना सुनोगे बंगला कीर्तन···यह आभारानी राय है। हमारे सेंटर में ट्रेनिंग लेने आयी है। रिफ्यूजी नहीं, बेचारी विडो है। कीर्तन बहुत सुंदर गाती है।'

'श्यामा संकीर्तन या···' सूर्यनाथ ने पूछा, तो आभारानी ने धीमे स्वर में जवाब दिया था, 'कृष्ण कीर्तन !'

सूर्यनाथ ने आँखें उठाकर गौर से आभा के ललाट को देखा। भरी जवानी में विधवा होनेवाली उसकी कई परिचित लड़कियों के ललाट भी ठीक ऐसे ही···लेकिन चेहरे पर प्रचुर लावण्य देखकर उसने कहा था, 'यथायोग्य नाम है आपका।'

अन्नपूर्णा से पहले, सूर्यनाथ के वक्तव्य का अर्थ आभा ने ही समझा था। वह तनिक बिहँसकर बोली थी, 'आपनि कोबि मानुष···आप कवि ठहरे।'

'किसने कहा कि मैं कवि हूं ? श्रीमती अन्नपूर्णा ने ?'

अन्नपूर्णा हँसती हुई आयी, 'नहीं, मैंने कवि नही, साहित्यिक कहा था।'

'एकई कथा···एक ही बात है।'

'एकई कथा' कहते समय आभारानी ने अपनी दाहिनी आँख की पपनियों को जिस तरह मूंदा, उसे सिर्फ सूर्यनाथ ने ही देखा और समझा था।

आभा के जाने के बाद अन्नपूर्णा बोली, 'विधवा नही, बेचारी परित्यक्ता है। स्वामी ने छोड़ दिया···'

सूर्यनाथ ने ठीक आभारानी की तरह दाहिनी आँख की पलकों को दबाकर कहा था, 'एकई कथा।'

'कैसे एक ही बात हुई ?'

'अगर स्वामी इसे छोड नहीं देता, तो बेचारा मर ही जाता और यह विधवा हो जाती।' सूर्यनाथ के कहने के ढंग से ऐसा लगा, मानो वह आभा को भली-भाँति पहचानता है। अन्नपूर्णा पूछ बैठी थी, 'तुम पहले से ही जानते हो

इसको ? उधर ही कहीं, माने···। पूर्णियाँ-सहरसा की ओर रहती है किसी कस्बे में···'

'कहीं की भी हो। यह किसी की पत्नी होकर रहने के लिए पैदा ही नहीं हुई। देखा नहीं, कैसा 'सखि-सखि' भाव है स्वभाव में। यह किसी की 'सखि' होकर ही रह सकती है।' कहकर सूर्यनाथ हँसने लगा था।

पति की ऐसी कुटिल हंसी देखकर अन्नपूर्णा को संदेह हुआ था, निश्चय ही किसी 'असभ्य' बात की ओर संकेत किया है, 'क्या मतलब ?'

'श्रीमतीजी, मतलब समझाने के लिए आपको संपूर्ण 'वैष्णव साहित्य' सुनाना पड़ेगा।'

'सखि होकर ही रह सकती है···इसका क्या मतलब ?'

सूर्यनाथ समझ गया था, अन्नपूर्णा को शंका हो रही है कि बात उसकी होस्टल के दिनों की सखि ओलिव डाइसन को 'छुआ' कर कही गयी है। और, ऐसी बात की भनक पाकर ही वह इस तरह नाराज हो जाती है कि सूर्यनाथ घंटों आरजू-मिन्नत करके, किस्म-किस्म की कसमें खाकर भी उसको मना नहीं पाता है। इसलिए उसने सहज ढंग से कहा था, 'सखि का अर्थ मित्र होता है न ? मेरा मतलब है कि इस किस्म की लड़की पुरुष के साथ मित्र की हैसियत से ही रह सकती है।'

अन्नपूर्णा उस रात को तुरंत ही सहज हो गयी थी। लेकिन, उसने दूसरा सवाल किया था, 'तुमने यह क्यों कहा कि अगर स्वामी इसको नहीं छोड़ देता, तो बेचारा मर जाता···'

'कपाल देखकर मैंने कहा।'

'बड़े आये हैं सामुद्रिक बघारनेवाले।'

'त्रिभुजाकार ऊँचा कपाल और चमकती हुई माँग···और ऐसी देह की बनावट जिसकी हो, तनिक अधिक 'एनर्जेटिक' होती है···मत्ता, प्रमत्ता, अति-मत्ता, महामत्ता !'

'ए ! आभा ने जो 'कवि मानुष' कहा था, उसका तात्पर्य तुमने समझा था ?'

'कवि मानुष माने रसिक पुरुष।'

'जी नहीं, उसका तात्पर्य इसके अलावा भी—इससे आगे भी कुछ था··· साहित्यिक लोग जरा चरित्रहीन होते हैं, यह दुनिया-जहान जानती है।'

'जरा नहीं, पूरे।' सूर्यनाथ ने एप्रूवर यानी मुखबिर की मुद्रा बनाकर कबूल किया था।

उस रात को बहुत देर तक दोनों एक-दूसरे को गुदगुदाकर हँसाते-खिझाते जगे रहे थे···

···और हरिसभा की वह शाम !

पहली बार हरिसभा में आभारानी का कीर्तन सुनकर सूर्यनाथ और अन्नपूर्णा सचमुच मंत्रमुग्ध हो गये थे···किंतु जब आभा ने उनके घर पर आकर कीर्तन सुनाने की इच्छा प्रकट की, अन्नपूर्णा राजी नहीं हुई, 'कीर्तन और भजन हरिसभा और ठाकुरबाड़ी में ही सुनना अच्छा लगता है।'

अन्नपूर्णा की चतुराई को चतुर आभा ताड़ गयी थी और मन-ही-मन दाँत पर दाँत रखकर पीसती रही थी।

एक दिन आभा बाजार की झोली में हाथ लटकाकर आयी, 'दीदी···मैं अपनी दीदी और जमाय बाबू को एक विशेष 'मेनू' बनाकर खिलाने आयी हूँ। विद ड्यू रेसपेक्ट आई बेग···'

उस दिन आभा ने बहुत जतन से 'मलाई करी' बनाकर सूर्यनाथ और अन्नपूर्णा को चखायी थी। सूर्यनाथ ने चखकर चटखारे लेते हुए कुछ कहने की मुद्रा बनायी। अन्नपूर्णा ने प्यार-भरी झिड़की दी थी, 'मैं जानती हूँ, आप क्या कहना चाहते हैं। कहेंगे—'चोमोत्कार', यही न ?'

'नहीं, एकदम नहीं। मैं कहना चाहता था, 'भीषोण संदोर' लेकिन अब आपने टोक दिया, तो कहूँगा, 'अपूर्बो'···'

कच्चे नारियल की गरी को पीसकर दूध निकाला गया और उसमें रोहित मत्स्य के कंटकशून्य खंड···सूर्यनाथ ने बंगाली वैष्णव संप्रदाय की भाषा में कहा था, 'अहा ! ऐ तो क्षीरसागरे स्वयं भगवान् मत्स्यावतार···'

'जमाय बाबू ! आप रसिक ही नहीं, सुरसिक हैं।'

'सुरसिक नहीं, चटोर और पेटू। एक बार दिल्ली में इसी तरह आकंठ ठूँसकर···'

सूर्यनाथ ने डकार लेते हुए कहा था, 'अवस्थीजी के घर ? हाँ, ऐसा ही भूरि-भोजन—और, वहाँ भी कई व्यंजन और पकवान अवस्थीजी की साली ने बनाये थे। ठीक इसी तरह परोसकर खिलाया था···उसी बार अवस्थीजी ने बताया था, साली को संस्कृत में 'केलिकुंजिका' भी कहा जाता है।'

अन्नपूर्णा हँसकर बोली थी, 'सावधान, आभा !'

हँसी के हिलोर पर सुपरइंपोज होती है, वर्षा की एक शाम।

···भीगती हुई आभा अकेली आयी थी, 'दीदी ! दीदी नहीं हैं घर में ?'

सूर्यनाथ ने अचरज से पूछा था, 'अरे, आप नहीं गयीं ?···आपको साथ नहीं

ले गयी अन्नपूर्णा ? आज वकिंग बीमेंस के लिए 'चैरिटी शो' है न।'

'मेरी आज 'आफ्टरनून ड्यूटी थी। मैं एकदम भीग गयी हूँ जमाय बाबू···'

बाथरूम से अन्नपूर्णा की साड़ी और अंगिया पहनकर आभा बाहर निकली। सूर्यनाथ हाथ में चाय की प्याली लेकर खड़ा था, 'चाय नहीं। गुलबनफसा का काढ़ा, अदरक और नींबू के रस के साथ···बहुत जोरों का फ्लू हुआ है, चारों ओर। गटगटाकर पी जाइये और निश्चित रहिये···'

आभा ने चखकर देखा था, सचमुच काढ़ा ही है। सूर्यनाथ पूछ बैठा था, 'आपको किस चीज का संदेह हुआ ? बतलाइये न···'

'सुनिये, आप मुझे यह आप-आप क्यों कहते हैं ?' आभा ठुनककर बोली थी।

'आपको संदेह हुआ कि चाय में कोई नशा मिला दिया है, मैंने ?'

'आप लोगों का क्या विश्वास ! आप लोग सब-कुछ कर सकते हैं।' वह हलाल करनेवाली हँसी हँसकर सूर्यनाथ को देखती रही।

'लेकिन आपमें साहस तो कम नहीं।'

'मुझे आप कहिएगा, तो जवाब नहीं दूंगी।'

सूर्यनाथ उसके पास आकर बैठ गया था। वह बालों को पीठ पर बिखेरकर सुखा रही थी। आभा अचानक पूछ बैठी थी, 'सचमुच चाय में और कुछ नहीं मिलाया था आपने ?···तब मेरी देह इस तरह झनझना क्यों रही है ? सिर चकरा रहा है।'

सूर्यनाथ ने रों टी में गुलबनफसा, नींबू और अदरक के रस के सिवा और कुछ नहीं मिलाया है। इसके बावजूद यदि आभा पर नशा सवार हो गया है, तो सूर्यनाथ उसे विश्वास दिलाने की चेष्टा क्यों करे ?

'आभारानी !'

आभा ने सफल अभिनेत्री की तरह सूर्यनाथ के कंधे पर अपना सिर रख दिया था। सूर्यनाथ की देह अचानक तप उठी थी। स्वचालित यंत्र की तरह उसकी भुजाओं ने आभा को जकड़ लिया। बाहर आकाश में बिजली कौंधी थी। मेघ गर्जन हुआ था और सूर्यनाथ का तप्त शरीर तत्काल ठंडा हो गया था। वह छिटककर आभा से अलग हो गया था। आभा अस्फुट स्वर में बोली थी, 'कोई नहीं—हवा से खिड़की का पल्ला खुल गया है। सूर्योदय···जमाय बाबू···आप कहाँ चले गये···?'

इस घटना के बाद आभा ने सूर्यनाथ से बोलना बंद कर दिया। और कई दिनों के बाद अन्नपूर्णा ने उसको अपने घर आने को मना कर दिया था। पड़ोस की बुढ़िया महरी ने फिसफिसाकर अन्नपूर्णा से कहा था, 'ऊ छौंड़िया 'छिनार' है, बहूजी। घर में उसकी आवाजाही बंद कर दो···'

अपमानिता आभा ने अपना तबादला मंगलातालाब सेंटर में करवा लिया। इसके बाद वह जब कभी अन्नपूर्णा के सेंटर में किसी काम से आती, अन्नपूर्णा को नमस्कार तक नही करती थी।

दस-ग्यारह महीने के बाद एक शाम को आभा अचानक आयी। अन्नपूर्णा के पैर छूकर प्रणाम किया। अन्नपूर्णा ने प्रसन्न होकर कहा था, 'पास कर गयी न?'

आभा ने सिर झुकाकर ही जवाब दिया था, 'जी, दीदीजी!'

उसी रात को अन्नपूर्णा ने सूर्यनाथ को बताया था, 'तुमने ठीक ही कहा था। अरे, इस लड़की का साहस तो देखो। छह महीने का पेट लेकर बिना लाज-भय के घूम रही है। छि:-छि, अब गिराना चाहती है। रो रही थी, किसी तरह 'उद्धार' करवा दीजिये···डाँटकर भगाती नही, तो अभी घंटों घुनघुनाकर रोती रहती।'

सूर्यनाथ ने कहा था, 'मैंने एबुलेंस के ड्राइवर के साथ कई बार सिनेमा हॉल में देखा है···'

अन्नपूर्णा बोली, 'वह कहती है कि कपडे की दूकान के बूढ़े मालिक ने फुसलाकर उसका सर्वनाश कर दिया है···'

सूर्यनाथ कुछ कहना चाहता था, किंतु अन्नपूर्णा कहती गयी, 'यह तो भला हुआ कि उसने यहाँ से अपना तबादला करवा लिया, नहीं तो और न जाने किस-किसका नाम बदनाम करती।'

सूर्यनाथ चाहकर भी कुछ नही बोल सका था। अन्नपूर्णा एक उदास-सी हँसी हँसकर बोली थी, 'वह जो गाती थी न—'मरिबो मरिबो सखि निश्चय मरिबो···' अब सचमुच मरेगी निगोड़ी!'

किंतु आभारानी राय मरी नही थी। होली फैमिली हॉस्पिटल मे पुत्र-रत्न को जन्म देकर न जाने कहाँ चली गयी। 'मदर' के नाम एक पुर्जा लिख गयी थी···

···और, आभारानी का वही बेटा आज सूर्यनाथ को एक आवश्यक समाचार देने के लिए आ रहा है।

सूर्यनाथ के मन के पर्दे पर लावण्यमयी आभारानी का मुखड़ा उभरकर स्थिर हो जाता है। और पृष्ठभूमि कीर्तन के आलाप से मुखरित—'आमार··· सकलि···गरल···भेल···'

'गें-ए-क्-गेक्-गेक···गे-ए-क्···!'

बजर अस्वाभाविक सुर मे बज उठा। लगता है, कोई खिलवाड़ कर रहा है। सूर्यनाथ ने विरक्त मुद्रा के साथ दरवाजा खोला। बजर के बटन पूर्ववत् दबा-दबाकर बजाता, वह हँस रहा था, "हाउ फेंटास्टिक!···मैं आभारानी का बेटा···"

"अंदर आ जाइये।"

गेहुआ रंग, दुबली-पतली काया, मँझोला कद और बिखरे हुए भूरे बाल··· मुखश्री ठीक आभारानी की···ठीक आभारानी पर पड़ा है उसका बेटा···

अंदर आकर उसने कहा, "मैं पाँव या घुटना अथवा कोई अन्य अंग छूकर किसी को नमस्कार नहीं करता। दरअसल, मैं किसी को अभिवादन करता ही नहीं। आप बुरा मानें या भला—ठेंगे से। आइक्-स्ला!"

सूर्यनाथ के पीछे-पीछे वह बैठक में गया। कमरे में पहुँचते ही उसने ठहाका लगाया, "साहब···आप तो ऐसी तैयारी करके—सज-धजकर बैठे हैं, मानो कोई आपका सचित्र इंटरव्यू लेने को आ रहा हो—आइक्-स्ला—इधर तो लगातार आपकी कई भेंट-वार्ताएँ प्रकाशित हुई हैं। जी अघाया नहीं, शायद? लेकिन मैं आपसे कोई—आइक्-स्ला—साहित्यिक अथवा अखबारी मुलाकात के लिए नहीं आया। और, आपका और आपकी पीढ़ी का कूड़ा-कचड़ा—आइक्-स्ला—साहित्य मैं नहीं पढ़ता। लेकिन बिना पढ़े ही कह सकता हूँ कि आपकी पूरी पीढ़ी मुर्दा हो चुकी है···कमर्शियल चीजें मैं नहीं पढ़ता। इट्स नॉसिएटिंग—आइक्-स्ला—निराश मत होइएगा। मैं आपको एक सूचना-मात्र देने आया हूँ।"

सूर्यनाथ अप्रतिभ होकर मुस्कराने की चेष्टा करता रहा। उसने पूछा—"आप बीच-बीच में वह कौन-सा शब्द···यह 'आइक्-स्ला' क्या है···?"

"यह मेरे व्यक्तिगत शब्द-भंडार का शब्द है, जिसका अर्थ कुछ भी हो सकता है।" उसने सोफे पर बैठते हुए लापरवाही से कहा।

उसने कमरे की दीवारों पर नजर डाली और एक कुटिल हँसी हँसकर बोल पड़ा, "हाउ डिसगस्टिंग—आइक्-स्ला—आपने तो अपनी छाया-छवियों, अभिनंदन-पत्र, उपाधि और 'सर्टिफिकेट ऑफ मेरिट' की अच्छी-सी प्रदर्शनी लगा रखी है···कमरे में दाखिल होते ही आगंतुक को आपका व्यक्तित्व तेंदुए की तरह उछलकर दबोच डालता होगा। है न? उद्देश्य ही यही होगा। लेकिन एक बात पूछूँ? आपको स्वयं यह सब वलगर नहीं लगता?"

सूर्यनाथ ने संक्षिप्त उत्तर दिया, "एकदम नहीं।"

"आइक्-स्ला—क्यों लगेगा? पेशे का सवाल है न। कमर्शियल लेखकों की मजबूरी···लेकिन, आपके साहित्य के बारे में कुछ नहीं बोलूंगा। और अगर बोलने लगूँ, तो मना कर दीजियेगा।"

सूर्यनाथ के क्रमशः अप्रतिभ होते हुए चेहरे को देखकर उसका उत्साह बढ़ता जा रहा है। कहता है, "मौसी बाहर गयी है न? मैं जानता हूँ, वह आपको अकेला छोड़कर अक्सर बाहर निकल जाती है। मुझे सब पता है···आपका यह फ्लैट, इट्स एन आइडियल प्लेस फॉर आत्मरति·· आइक्-स्ला!"

सूर्यनाथ ने खखारकर गला साफ करते हुए कहा, "तो आप आभारानी राय

के पुत्र हैं ?"

उसने लापरवाही से कहा, "हूँ। फिलहाल, धनबाद में रहता हूँ। मेरे कई नाम है। कोई नाम छद्म नहीं, सभी असली नाम। अभी मैं आपसे अपने सूतपुत्र नाम के अनुसार बातें कर रहा हूँ।"

सूर्यनाथ हँसने की चेष्टा करके भी नहीं हँस सका। सूतपुत्र ने अपना वक्तव्य जारी रखा, "मेरा कवि नाम है—आइक्-स्ला—शिवलिंगा।"

सूतपुत्र शिवलिंगा ने सूर्यनाथ से पूछा, "क्यों, चौंक गये न ?"

"चौकूँगा क्यों ? मेरे पड़ोस में ही निर्जलिंगा साहब रहते है।" सूर्यनाथ ने सप्रतिभ स्वर में कहा, "अब आप अपने आगमन का उद्देश्य बतलाएँ—आइक्-स्ला, यानी, कृपया !"

सूतपुत्र ने कनखी निगाह से सूर्यनाथ को देखा। आभारानी ठीक इसी तरह पलकों को तनिक मूँदकर देखती थी। उसने कहा, "उद्देश्य अति शुभ है। आपको एक समाचार सुनाने आया हूँ। बस···"

"आपकी माताश्री···"

सूर्यनाथ के मुँह से बात छीनते हुए सूतपुत्र ने कहा, "आपकी केलि-कुंजिका आभारानी का कोई समाचार मुझे नहीं मालूम। मेरे पास मेरी जन्मदायिनी की एक मोटी डायरी है—1955-56 की···होली फैमिली हॉस्पिटल की 'मदर' ने सहेजकर रख दी थी···समझे ?"

"समझा—आइक्-स्ला। अब समाचार सुनाइये।" सूर्यनाथ के स्वर में दृढ़ता लौट आयी थी।

"समाचार सुनाने के पहले मैं यह देख लेना चाहता हूँ कि आपका मानसिक धरातल उस समाचार को ग्रहण करने योग्य है अथवा नही। देखिये, मैंने आपका लिटरेचर नहीं पढ़ा। इसलिए नहीं जानता कि आप किस कोटि के प्राणी हैं। किंतु, यह मुझे मालूम है, आपकी पूरी पीढ़ी इल्लिटरेट और हाफलिटरेट है··· सबसे पहले आपका कौतूहल मिटा दूं। है न ? तो होली फैमिली हॉस्पिटल से यतीमखाना, वहाँ से टांटी झरिया, कलकत्ता, जबलपुर, इलाहाबाद आदि जगहों में मेरा बचपन बीता और जवानी आयी। पढ़ाई-लिखाई जो हुई, बुरी नहीं हुई। कवि, कथाकार, नाटककार और चित्रकार हूँ। लेकिन, वे आपकी बुद्धि के बाहर की बातें है। आइक्-स्ला—मैं अभी धनबाद में हूँ और मजे में हूँ और सानंद अपना इस्तेमाल होने दे रहा हूँ···आपका बाथरूम किधर है ?"

सूतपुत्र लेबोरेटरी में बंद हुआ। सूर्यनाथ को सहज और सबल होने का अवसर मिला। उसने लक्ष्य किया है, सूतपुत्र अब 'आइक्-स्ला' का व्यवहार क्रमश: कम करता जा रहा है।

सूर्यनाथ ने समझ लिया—यह लड़का एक 'वस्तु' है, यानी चालू भाषा में

जिसको 'माल' कहते हैं, उसके बाल, पोशाक, स्वास्थ्य सब-कुछ 'बीट' और हिप्पियों से विपरीत हैं। लेकिन तेवर वही हैं। सूर्यनाथ को हँसी आयी—आते ही तड़ातड़ चाबुक लगाये जा रहा है पट्ठा। होना ही चाहिए—नेच्युरली···

स्नानागार से बाहर निकलकर उसने कहा, "बाथरूम में जिन मासिक पत्रिकाओं का पारायण करते हैं, उसके संपादकों को लिख दीजिये, कुछ 'रेचक-साहित्य' भी प्रकाशित करें।···और एक बात! आपने देश-विदेश के इतने बिगब गर्स—आइक्-स्ला—सोकाल्ड वी० आ० पी० न, ज के साथ इतनी सारी तस्वीरें छपवाकर लटका रखी है चारों ओर। लेकिन···व्हाय नॉट ए न्यूड? मैं कहूँ, आप अपनी एक नंगी—एकदम मादरजाद—खिंचवाकर टाँग दें और उसके नीचे लिख दें—'विद माइसेल्फ!' क्यों, ठीक रहेगा न?"

सूर्यनाथ समझ गया था—स्नानागार के बाहर निकलकर, बैठकखाने में पहुँचकर इस तरह असभ्यतापूर्वक पैंट के बटन लगाते हुए—यह ऐसी ही बातें करेगा। अतः वह मंद-मद मुस्कराता रहा।

तब उसने सूर्यनाथ को अप्रतिभ करने के लिए अपना सवाल छेड़ा—

"···अच्छा, अब यह बताइये कि आपका संबंध अपनी स्वीटी सोपटी साली आभारानी से कैसा और कहाँ—आइक्-स्ला···"

"आप जो समाचार देने आये है, पहले वह दे दीजिये। आप मेरा 'इंटरव्यू' तो नहीं लेने आये। फिर कोई सवाल-जवाब कैसा?" सूर्यनाथ अब पालथी मारकर कुर्सी पर बैठ गया।

"आइक्-स्ला—मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं यह जान लेना चाहता हूँ···"

"आइक्-स्ला—मैं पहले—आइक्-स्ला—आपका—आइक्-स्ला—समाचार सब लेना चाहता हूँ— आइक्-स्ला। बस।" सूर्यनाथ ने गभीरतापूर्वक कहा।

सूतपुत्र हँसा। सूर्यनाथ ने लक्ष्य किया, हँसी में तनिक कपड़े की दूकान की छाया झलकती है।

"अच्छा? आपके बाल तो कुदरती काले है! मैंने समझा था कि आप 'डाय' करते है। क्योंकि मेरी माँ की डायरी में आपके बालों की खूब तारीफ लिखी हुई है। अब तक इतने काले है? और आपकी दंत पंक्तियाँ नकली सेट्स की नहीं। तब तो अभी एक दशक और प्रेम-कहानियों का व्यापार चला सकते है आप। पचास की उम्र में ऐसे घने काले बाल और हड्डियों के ज्वायंट्स को कड़कड़ाकर तोड़नेवाली दंत पंक्तियाँ···आइस्···मतलब, इसका योगा से कोई ताल्लुक है क्या? आप कोई हर्ब इस्तेमाल करते हैं?"

सूर्यनाथ के जी में आया कि इस छोकरे का वह नुस्खा दे दे—चपरकनाती। नीला थोथा दही मे घोलकर—किंतु उसने जवाब दिया, "यह ट्रेड सीक्रेट

मेरा।"

ठठाकर हँस पड़ा सूतपुत्र। सूर्यनाथ ने पहचान लिया है, यह अपने को 'फायरईटर'—अगिनखोर समझता है, 'सेल्फ पोज्ड लोनली रिबेल' का एक नकली नमूना। उसे एक और लेखक याद आया जो कहा करता था—'आई एम बॉर्न बिफोर माई टाइम···'

"आप करते क्या हैं? यानी रोटी कौन देता है?" सूर्यनाथ ने साधिकार पूछा।

"जो मेरा इस्तेमाल करता है।"

"ट्रेड यूनियन के सदस्य है आप?"

"मैं आवांगार्द हूँ। आपने अतर्कवाद का नाम सुना है?"

"अतर्कवाद या कुतर्कवाद?"

"आपको समझाने के लिए कुतर्क आवश्यक है। मैं पूछता हूँ कि आप विलियम ब्लैक, ज्याँ कोक्तो, ज्याँ जेने को जानते है? 'मेटामॉरफसिस' का लेखक कौन है, और हेनरी मिलर···"

"मुझे यह सब जानने की जरूरत कभी नहीं हुई। मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि तू करता क्या है?"

"देखिये, यह 'तू-आ-तू' मेरे साथ नही चलेगा। आइक्-स्ला···"

"आइक्-स्ला!"

"मतलब?"

"आपने कहा था न, इसका कोई मतलब हो सकता है। कृपया बताइये कि आप···"

"मैंने कवि-कर्म छोड़कर फिलहाल अपनी रोटी के लिए कॉमेडियन का काम शुरू किया है। धनबाद, झरिया, जमशेदपुर और कलकत्ते के कई गुप्त क्लब और डिसकोथेक्स में अपना शो दे चुका हूँ···"

"सीधे कह न कि भंड़ैती करता हूँ।" सूर्यनाथ ने ठेठ बिहारी बाबू के लहजे में कहा।

"नही, भंड़ैती नहीं। यह एकदम नयी विधा है, जिसका नाम आपके ग्रेट ग्रैंडफादर ने भी नहीं सुना होगा···मैं गालियाँ देता हूँ। फूहड़, भद्दी और अश्लील अश्रव्य गालियाँ।"

"वह जो 'साईं' सजकर साँझ-सवेरे मुरादपुर की गलियों में घूमता-फिरता है—एक पैसा लूंगा, पाँच गालियाँ दूंगा। चुन-चुन के गालियाँ दूंगा, बाप-दादे को गालियाँ दूंगा···"

सूतपुत्र ने कहा, "इस कॉमेडियनवाले कारबार में मेरा ट्रेड नेम है—डोगलास। अर्थात् अब मैं डोगलास की परिभाषा में आपसे बातें करूंगा। फिलहाल, गालियाँ

और अपशब्द भोजपुरी से अंग्रेजी में अनुवाद करके व्यवहार करता हूँ। लेकिन, ऐसे घरेलू माहौल में शुद्ध मगही या मैथिली में भी···"

सूर्यनाथ ने एक बार सोचा, अब इसको बाइज्जत फ्लैट से बाहर कर दिया जाये; किंतु कुछ सोचकर थोड़ी देर और उसे सहन करने का निश्चय किया··· कुछ भी हो, उस 'शोध-छात्र' से तो अच्छा है जो कई दिन पहले, अपने मौलिक विषय 'हिंदी साहित्य में रामघराना'—के माल-मसाले के लिए आया था। छात्रराम ने अनुसंधान नहीं, अनुनय किया था, 'सर! ऐसे साहित्यिक, जिनके नाम के शुरू, मध्य या अंत में 'राम' जुड़ा हो उनके व्यक्तित्व पर 'राम' का प्रभाव प्रमाणित करते हुए···जो, बचपन में आपको किसी ने, कभी-न-कभी, राम सूरजनाथ जरूर कहा होगा। इस आधार पर यदि आपको भी 'रामघराना' में युक्त कर लूं तो आपको कोई आपत्ति ?'

सूर्यनाथ ने शांत चित्त से कहा, "आप अभूतपूर्व काम कर रहे हैं। गालियाँ देकर लोगों को हँसाते हैं। लोग प्रसन्न होकर आपको पैसे देते हैं।"

"ऐसी-वैसी हँसी नहीं। एकदम रेक्टम रप्चरिंग लाफ! समझे?" डोगलास ने कहा।

"हमारे जिले में एक राजा साहब अपने दरबार में एक 'बुड़िराज' अर्थात् 'मूरखराज' रखते थे···"

"आइक्-स्ला—योर राजा साहब! आप सामंती युग की बातें करने लगे, फिर? मैं अकस्मात् आघात करके वस्तुस्थिति से अवगत कराने मे विश्वास करता हूँ।" डोगलास बोला।

"डोगलास्साहब! मैं नहीं जानता कि आप क्या शो देते हैं, लेकिन आज से तीस साल पहले उस बुड़िराज के जो तमाशे मैंने देखे है, मेरा खयाल है कि उसमें से एक का वर्णन सुनकर समझेंगे। आप इसको अपने काम में भी इस्तेमाल कर सकते हैं।"

डोगलास राजी हुआ। सूर्यनाथ ने शुरू किया, "राजा के मेले में बड़े-बड़े नामी पहलवानों की कुश्ती होती थी। एक बार, एक चैंपियन पहलवान सभी को पछाड़कर, गर्व से छाती फुलाकर दुलकी चाल मे अखाड़े में चक्कर लगा रहा था ··यानी—'है कोई माई का लाल जो आ जाए मैदान में!' बुड़िराज ताव खा गया और कूदकर अखाड़े में उतर पड़ा। अपने सारे कपड़े फेंककर 'आ-जा-आ-आ···' कहकर उस चैंपियन पर टूटा, ताल ठोंकता हुआ। जनता एक साथ ठठाकर हँस पड़ी। चैंपियन पहलवान कुछ क्षण तक भौंचक्क होकर देखता रहा। फिर, अचानक भागा। एक विशालकाय आदमी को, एक नंग-धड़ंग पिद्दी जैसे आदमी के डर से उस तरह भागते देखकर सारी जनता हँसते-हँसते बेदम हो गयी।"

डोगलास को यह कहानी अच्छी लगी, "मैं इस पर 'वर्क' करके इसको रिफाइन करके इस्तेमाल करूंगा···मैंने हाल में अपना एक स्किट प्रस्तुत किया है, एक व्यक्ति लघुशंका के लिए दोपहर, रात को होटल के कमरे में, किस तरह वाश बेसिन में···"

सूर्यनाथ ऐसा अवसर हाथ से जाने नहीं देगा। बस, यही है—ब्रेकिंग प्वाइंट। मुस्कराकर उसने डोगलाससाहब को काटा, "अरे ! वह पादरी वाला प्रहसन···यह तो, अमेरिकन कॉमिडियन लेनी ब्रूस की कृति है। आज से दस-ग्यारह साल पहले ही उसने इसका अभिनय करके प्रचुर ख्याति प्राप्त कर ली है। आप कहते हैं कि···"

लेनी ब्रूस का नाम सुनते ही डोगलास का चेहरा अचानक बुझ गया, "आप लेनी ब्रूस को जानते हैं ? आइक्-स्ला—आप लेनी ब्रूस के बारे में कैसे जान गये ?"

"जानता ही नहीं, 1964 में उसकी रिहाई के लिए अपील पर मैंने भी हस्ताक्षर किये थे। आज तक मेरे कई पॉलिटिकल मित्र उन्हीं हस्ताक्षरों के कारण मुझे गालियाँ दे रहे हैं और बदनाम कर रहे हैं कि मैं --आइक्-स्ला—लेकिन अब तो लेनी स्वर्ग में देवताओं और देवियों को गालियाँ देकर प्रसन्न कर रहा है। अतः अब आप अपने को इस 'विधा' का भारतीय आवांगार्द घोषित कर सकते हैं।" सूर्यनाथ ने घड़ी देखी।

डोगलास साहब के भूतपुत्र सिर से उतर गये। भूतपुत्र तुतलाने लगा, "अब मैं काम की बात करूं···मेरे पास मेरी माँ की डायरी है। डायरी के मुताबिक आप ही मेरे जनक हैं और मैं आपकी ही प्रजा···"

"असंभव।"

"असंभव नहीं। यह आपका ही क्रोमोजोम है जो···आप घबराइए मत। मैं आपकी संपत्ति पर दावा नहीं करूंगा।"

"डायरी आपके पास है, यहाँ ?"

भूतपुत्र अपने बैग से डायरी निकालकर पृष्ठ पलटने लगा। बोला, "बंगला तो आप अच्छी तरह लिख-पढ़ लेते हैं। पढ़कर देख लीजिये।"

सूर्यनाथ ने देखा, लिखावट आभारानी की ही है। लिखा है, 'आज के सूर्योदा आमार संगे जा कोरलेन, आमार जीवने आर केउ करे नि···'(आज सूर्यदा ने मेरे साथ जो कुछ किया, जीवन में और किसी ने नहीं किया।)

भूतपुत्र का चेहरा पुन: दमकने लगा। सूर्यनाथ ने पूछा, "[illegible] जानते, यह डायरी [illegible]"

"[illegible]"

"[illegible] हूं।"

"आप ऐसे ज्वलंत प्रमाण को झुठला नहीं सकते, पिताजी महाराज !"

सूर्यनाथ ने उसके सुर में सुर मिलाकर कहा, "सूतपुत्तर सरकार ! आप मानें या न मानें, ठेंगे से। मैं जानता हूँ कि यह सच नहीं। असल में···बावजूद आकर्षण के, आभारानी के साथ मेरा संबंध हुआ ही नहीं। कामातुरा सुंदरी के साथ एकांत के उस क्षण में मैं मदनोन्मत्त अवश्य हुआ था। किंतु···किंतु··· उस लावण्यमयी-लास्यमयी रमणी के मुंह में ऐसी उत्कट दुर्गंध थी कि मैं अचानक विरक्त हो गया···"

"दुर्गंध ?"

"जी। बदबू ! उतना सुंदर सलोना मुखड़ा। वैसी सुरीली आवाज और मधुर कीर्तन—और वैसे मुंह में सड़ी हुई गंध ! ओह ! आज भी याद करके वोमिट हो जाता है।"

सूतपुत्र के मुंह से एक हल्की-सी चीख निकल पड़ी। वह थर-थर कांपने लगा। उसकी आंखें डबडबा आयीं। वह कुछ नहीं बोल सका···

सूर्यनाथ ने अब समझा, इस छोकरे को इतनी देर तक सहन करने का एक कारण यह भी है कि कभी-कभी इसके चेहरे पर आभा के मुखड़े की मासूमियत झलक जाती है। उसने शांत स्वर में कहा, "किंतु आप असंस्कृति और अपरंपरा के इतने कट्टर हिमायती होकर अपने पिता को क्यों खोज रहे हैं ?"

"आइक्-स्ला—खोज नहीं रहा। पिछले आठ-नौ साल से मेरी यह धारणा दृढ़ हो गयी थी कि मेरा पिता एक प्रसिद्ध साहित्यकार है। मेरी रगों में दौड़ने-वाले लहू का संबंध एक महान् कलाकार से है—अपने पिता को अपना दुश्मन मानकर मुझे अपार बल मिलता था, इसी के सहारे मेरा सब-कुछ—मेरी प्रेरणाओं का मूल स्रोत ही अचानक सूख गया···"

वह फूट-फूटकर खोये हुए बालक की तरह रो पड़ा। सूर्यनाथ सोचने लगा—कवच-कुंडलहीन 'कर्ण' भी क्या इसी तरह रोया था ?···उसके जी में आया—आभारानी के रोते हुए बेटे के बालों पर हाथ फेरकर चुप कराये। किंतु सहानुभूति, दया, करुणा और किसी प्रकार की कृपा की गंध लगते ही यह लड़का तुरंत गुस्से में गालियां बकने लगेगा। वायलेंट भी हो सकता है। उसने कहा, "अब आप जाइये अगिनखोरजी ! मुझे अब एकदम एकांत की जरूरत है।"

सूतपुत्र तुरंत उठकर खड़ा हो गया, "हां-हां। आई एम ए फायरईटर··· अगिनखोर ! ठीक है, एक यह नाम भी रहा। आइक्-स्ला—"

भित्तिचित्र की मयूरी

फुलपतिया की माँ हाथी के सूँड़ में काला रंग भरकर सींकी से मयूरी के पंख उकेरने में तन्मय थी। अचानक, बिजली-सी कौंधी। उसने उलटकर देखा तो एक हाकिम जैसा जवान आदमी छोटा पनबट्टा जैसा काला डिब्बा में आँखें सटाकर खड़ा था। वह घबराकर अपने अस्तव्यस्त कपड़े सँभालने लगी। फिर बिजली चमकी। तब वह डर गयी। उसके मुँह से अस्फुट स्वर में निकला, "हजूर !"

लेकिन, उस आदमी ने फुर्ती से झुककर फुलपतिया की माँ के पैर छू लिए, "माताजी, मैं हजूर नहीं, कोई। आपका बेटा हूँ।"

फुलपतिया की माँ की हालत अब और खराब हो गयी। वह थर-थर काँपने लगी। बहुत चेष्टा करने के बाद उसके मुँह से किसी तरह एक पुकार निकली, "फुलपत्ती रे !"

तब तक गाँव के करीब डेढ़ दर्जन बच्चे घटनास्थल पर पहुँच गए थे। फुलपत्ती अपने आँगन में अरवा चावल सिलौटे पर रखकर पीस रही थी। एक आठ-दस साल के लड़के ने दौड़कर उसको सूचना दी, "फुलपतिया दैया···अरी, फुलपतिया दीदी ! तू यहाँ बैठी चावल पीस रही है, वहाँ दरवाजे पर मौसी को 'निसपिट्टर साहेब' ने रैस्ट कर लिया है···।"

"ऐं ? कौन निसपिट्टर रे, नहरवाला ?"

"मालूम नहीं, 'नहर' वाला है या 'करज' वाला। चलकर देख ना ! वही सुनो, मौसी बुला रही है।"

"फुलपत्ती रे-ए-ए-ए !"

माँ की पुकार सुनकर फुलपतिया बिना हाथ धोए ही दरवाजे की ओर दौड़ी। दरवाजे पर पहुँचकर उसने देखा, 'निसपिट्टर' मौसी के पास घुटने मोड़कर बैठा है और कह रहा है, "माताजी, आप अपना काम खत्म कर लीजिए, तब मैं अपने काम की बात करूँ !"

फुलपतिया पर अचानक 'भगवती थान' की कोई देवी सवार हो गयी, मानो।

उसकी माँ के पास एक धूर जमीन नहीं। न अपनी, न बटैयादारी की। लेकिन, नहर के हाकिम ने पानी का खजाना 'लगान' करके चपरासी के मार्फत 'लोटिस' भेज दिया है कि पंद्रह दिनों के अंदर खजाना नहीं चुकाने से माल-मवेशी 'कुरुक' हो जाएगा। इसी को कहते हैं, पानी में आग लगाना। वह बरस पड़ी, "देखिए, हाकिम साहेब, रैस्ट करना है, हमको करिए। जेहल ले चलना है, हमको ले चलिए। अपनी माँ का इस बुढ़ौती में हथकड़ी नहीं लगने दूँगी—इसके चलते चाहे जो हो जाए···।"

तब तक गाँव के 'मर्द-पुरुष' लोग भी खबर पाकर, खेत-खलिहान और बगीचे-बागान से दौड़े आए। 18 वर्ष की लड़की फुलपतिया अपनी माँ को अगोरकर बैठी जोर-जोर से चिल्ला रही थी, "चाहे जान चली जाए, लहाश निकल जाए···"

गाँव का मशहूर 'पुच-पुच' कर हमेशा बेमतलब हँसने वाला 'हँसनाह-मर्द' तोफालाल साह सबसे पहले दौड़ा आया था और हाकिम को सलाम करने के बाद मंद-मंद मुस्कराता कुछ बोलने का मौका खोज रहा था। गाँव के किसी के सिर कोई आफत आयी हो, किसी घर में कोई बुरी घटना घटी हो, बाप-बेटे में झगड़ा होता रहे अथवा कोई अपनी औरत को पीट रहा हो—सबसे पहले तोफालाल ही हँसता हुआ घटनास्थल पर पहुँचता है। लोगों को दुःख में देखकर अद्भुत आनंद आता है उसको। लेकिन, किसी का कोई शुभ समाचार सुनकर वह कभी कहीं नहीं जाता। और, फुलपतिया की माँ की गिरफ्तारी की खबर सुनकर उसको अपने हिसाब से वाजिब और हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। अपनी भतीजी की शादी में उसने कितनी खुशामद की थी, फुलपतिया की माँ की, 'भौजी, तुम चलकर 'मंडवा की भित' पर सिर्फ 'लिखनी' खींच दो—रंग भरने का काम फुलपतिया फुर्सत में जाकर कर देगी।'

मगर वह जरा भी टस-से-मस नहीं हुई थी। बहाना बनाकर बोली थी, 'कमर में बहुत दर्द है।' इस पर फुलपतिया 'कूट' करती हुई बोली थी, 'जाओ न, तोफा काका शहर से 'डागडर' मँगाकर इलाज करा देंगे।' इतने दिनों के बाद तोफालाल को फुलपतिया की माँ और फुलपतिया पर हँसने का अवसर मिला है। उसने हँसते हुए फुलपतिया से कहा, "अरी, इतनी बड़ी 'बारी कुमारी' होकर तुम काहे जेहल जाओगी? अभी माँ को ही जाने दो। जेहल जाएगी तो मुफ्त में ही सरकारी डॉक्टर से इलाज कराने···।"

फुलपतिया ने घुड़की देकर बीच में ही उसकी बोली बंद कर दी, "तुम क्यों आ टपके बीच में? हूँ! 'हँसनाह-मर्द' और 'पदनाह-घोड़ा'। भागो यहाँ से।"

तब तक गाँव के 'सरपंच' ताहा मियाँ भी पहुँच गए थे। आते ही, ताहा मियाँ ने 'सरकारी आदमी' के लहजे में फुलपतिया को डाँटा, "तेरा माथा खराब हो

गया है क्या ? चुप क्यों नहीं रहती !"

फुलपतिया आज किसी को नहीं छोड़ेगी, चाहे मुखिया हो या सरपंच। उसने ताहा मियाँ की बात को काटकर दो टूक करते हुए कहा, "आज हमसे जो भी लगेगा, उसको नहीं छोड़ेंगे, सरपंच हो चाहे खड़पंच···"

बच्चों की टोली इस उक्ति पर ठठाकर हँस पड़ी।

तब खुद 'हाकिम' हाथ जोड़कर फुलपतिया के पास जाकर खड़े हुए, "सुनिए, मैं न नहर-विभाग का हाकिम हूँ और न मैं किसी को गिरफ्तार करने आया हूँ। मैं 'कुटीर शिल्प पटना' की ओर से···बात यह है कि···।"

उनकी बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी जन एक साथ हँस पड़े, "धत्तेरे की ! बेकार में बिना जाने-समझे-बूझे बात लेकर···।"

लेकिन बात हँसी में उड़ नहीं गयी, बल्कि धीरे-धीरे गाँव में फैल गयी, फैलती गयी, "कुछ सुना ? समझो कि जुल्म हो गया। पटना से एक 'जेंटुलमैन बाबू' आया है। फुलपतिया के हाथ की बनाई 'लिखनी-पढ़नी' देखकर कहता है, इसकी 'छापी' खींचकर अमेरिका या रूस या न जाने कहाँ भेजेंगे···।"

"किसको 'मिरकारूस' भेजेगा। फुलपतिया की माँ को ?"

"कहता है, डबल बकसीस मिलेगा।"

"मगर वह आदमी तो देखने में ठीक 'देसवाली' लगता है, 'विलैती आदमी' की तरह 'बिलरमुँहा नहीं।"

"फुलपतिया तभी गरज रही थी न। अभी जाकर देखो, शहरी मेहमान के लिए कोंहड़े के फूल का 'बचका' बना रही है—हँस-हँसकर।"

"वह भात ही खायेगा ? किस 'जात' का है ?"

"फुलपतिया की माँ का भाग फिर गया समझो।"

"अरे भैया, बेचारी जर-जमीन और घरवाले को गँवाने के बाद से कम दुःख झेल रही है ! 'जिनगी' भर शुभ-लाभ और 'परब-पावन' के समय गाँव के लोगों की 'भित' पर 'फूल-पत्ती' के बीच देवी-देवता लोगों की 'मूरती' बनाती रही है। उसी का 'सुफल' है यह। भगवान् एकदम अंधा नहीं है जी !"

"अब फुलपतिया की शादी हो जाएगी। तिलक के लिए 'टका' 'मिरकारूस' से आएगा।"

"तुम लोग भी खूब हो भाई !" 'गुलाब-तकिया' पर गाँजे की पत्ती रखकर 'प्रेमकटारी' से कतरते हुए अनूपलाल ने कहा, "अभी से लगे अटकल लगाने। पहले देखो तो कि आदमी असली है या नकली। लबटोलिया गाँव के मरचू महतो का पचास रुपया ठगकर वह नकली लौट्री का नकली एजेंट ले गया था, सो याद नहीं ? सारे इलाके में खबर फैल गयी थी, मरचू महतो 'खाखपति' से 'लाखपति' हो गया है। सिर्फ पचास रुपये का 'इस्टाम' खरीदकर कागज पर लगाता है, क्योंकि

गांव में दो मरचू महतो हैं। कागज पर इस्टाम लगाकर 'आफीडिफी' करके दाखिल करते ही बैंक से एक लाख टका के 'कड़कड़िया-नोट' सब निकल आएँगे तुरंत। इसके बाद जो हुआ सो मालूम ही है। वह तो धन्न कहो कि मरचू महतो पागल नहीं हो गया।"

सभी हँसते हैं। रामफल बात गढ़कर बोलना जानता है। कहता है, "मरचू को लाख टका नहीं मिला। मगर 'भोटर-लिस्ट' में नाम के साथ महतो के बाद लखपति तो दर्ज हो गया। अरे, एक ही गांव में दो मरचू और दोनों महतो। भोटर-लिस्ट लिखनेवाला बोला—दोनों का पेसर भी एक ही है। बड़ा गड़बड़ है। तब चौकीदार ने कहा—एक मरचू महतो को गांव में लोग दिल्लगी में 'लाखपति' कहते हैं। बस, कागज मे वही दर्ज कर दिया लिखनेवाले मोहरिल ने।"

नागेसरदास गांव में सबसे बड़ा झूठ बोलनेवाला समझा जाता है। लेकिन उसकी बात को लोग चाव से सुनते है। वह बोला, "और मरचू महतो को लौटरी ने एक और 'भितरिया-खेला' लगाया था सो किसी को है मालूम? जोखन चौधरी को जब मालूम हुआ कि मरचू का नाम लौटरी के 'टिकस' मे निकल आया है तो उसने तुरंत जोख-तौलकर एक तरीका निकाला। मरचू से जाकर बोला कि अगर पाँच हजार खर्च करने का वादा करो तो तुम्हारा 'चुमौना' तक 'तड़-तड़-जवान' बेवा से करवा दे सकता हूँ—तुरंत। मरचू महतो तैयार हो गया तो जोखन बोला—सादा कागज बना दो। मरचू को लौटरी तो मिला नही, जोखन ने उसी सादे कागज पर किए अँगूठा के निशान के बल पर उसकी दोनो भैंस···।"

"भैया, हमको तो 'परतीत' नही होता है कि यह आदमी असली है। जरूर कोई 'शीआयडी' है। नहीं तो, शहर में फोटू, छापी और तस्वीर की कोई कमी है? एक से एक देवी-देवता के 'कलैंडर' छोटी से छोटी पान की दूकान पर लटकते रहते हैं। तब, शहर का आदमी गांव मे आकर—देहाती तस्वीर पर 'लट्टू' हो जाए—यह भी परतीत करने काबिल बात है, भवा?" एक सदा बीमार ग्रामीण अधेड़ ने कहा।

गांव के हर टोले और घर में दिनभर फुलपतिया की मां और फुलपतिया की चर्चा होती रही। उधर, इतनी ही देर में वह जेंटुलमैन' फुलपतिया और उसकी मां से इस तरह दूध-मिश्री की तरह घुल-मिल गया मानो सचमुच अपना 'सवांग' हो।

शाम की गाड़ी से लौटने के पहले उसने फुलपतिया की मां से कहा, "अगले सप्ताह ही आप लोगों को चिट्ठी लिखकर सब खबर भेज दूंगा।"

फुलपतिया की मां ने पूछा, "बबुआ, तुमने सब-कुछ तो बतलाया, मगर अपना नाम ही बतलाना भूल गए।"

उसने हँसकर कहा, "मेरा नाम सनातनप्रसाद है, माताजी।"

फुलपतिया लजाती हुई बोली, "अनजाने में, गुस्सा के झोंक मे न जाने क्या-क्या निकल गया। उसको मन में नहीं रखिएगा।"

सनातन ने गंभीर होने की मुद्रा बनायी और शरारत-भरी निगाह से देखते हुए कहा, "उँहूँ, मन में ही रखूँगा। आपने क्या कहा था, याद है—हमको 'रैस्ट' करिए।"

फुलपतिया का चेहरा लाज के मारे 'लाल-टेसू' हो गया। वह भागकर आँगन मे चली गयी।

इसी को कहते है, 'भगवान् छप्पर फाड़कर भी देता है।'

फुलपत्ती की माँ के छप्पर पर आज छाजन के फूस भी नही। अठारह-उन्नीस साल पहले फुलपत्ती के बाबूजी मुकदमाबाजी में जगह-जमीन सब झोंककर आखिर भी झोंक मे आकर चले गए। हार के शोक में, कुछ खाकर सो रहे। तब से फुलपत्ती की माँ गाँव-घर के किसानो के घर मे कूट-पीसकर गोदी की इकलौती संतान को पालती रही। हाथ मे एक गुण था—जिसके कारण थोड़ी पूछ और प्रतिष्ठा होती थी। अब वह भी नही। अब, शादी-ब्याह, पर्व-त्यौहार के अवसरो पर 'भित्त' पर कागज मे छपे देवी-देवताओं की तसवीरो के अलावा बाइस्कोप की तसवीरे लटकायी जाती है। लेकिन, कल जब डाकपियून आकर फुलपत्ती की माँ के नाम ढाई सौ रुपये का मनीऑर्डर दे गया, तब से गाँव के लोगों ने स्वीकार कर लिया—पुराने जमाने की सभी चीजे फालतू नही। गाँव में तुरंत बात फैल गयी—पटना से आया हुआ वह आदमी 'नकली' नही, 'असली' था।

आठ-दस दिनो के बाद सनातनप्रसाद फिर आया। गाँव मे इन दिनो फुलपत्ती की माँ के भाग फिरने की बात को छोडकर और कोई बात नहीं होती। उसके आँगन मे औरतो की भीड जमा रहती है, सदा। दरवाजे पर मुखिया और सरपंच आकर 'कुशल-खेम' पूछ जाते है।

और एक दिन अचानक लोगों ने सुना—'फुलपत्ती' की माँ, अपने को संग मे लेकर—पटना नही 'डिल्ली' गयी है। सनातन ही ले गया है। डिल्ली मे एक ही 'भित्त' पर 'लिखाई' करने की मजदूरी एक हजार।

"मजदूरी नही, बकसीस कहो।"

"और, फुलपत्ती ? वह नही गयी साथ ?"

"नही। उसकी मास्टरनी मामी आयी है। दस-पद्रह दिन रहेगी। छुट्टी लेकर आयी है।"

"अब देखना, मामा-मामी, मौसा-मौसी, फूफा-फूफी के अलावा ममेरे-फुफेरे, अपने-पराये सब जुटेंगे आकर—जो कभी झाँककर भी नही देखने आते थे।"

कई दिन के बाद स्टेशन-बाजार का बदरी भगत हाथ मे एक अखबार लेकर आया, जिस पर फुलपत्ती की माँ की तसवीर छपी है। 'बडे लाट' साहब के हाथ

से बकसीस ले रही है फुलपत्ती की माँ !

बदरी भगत स्टेशन-बाजार पर रहता है। बनिया है मगर आटे-दाल के भाव के अलावा दुनिया-भर की खबर याद रखता है। खूब अखबार पढ़ता है। वह कहता है, "चाची जिस दिन लौटेगी, हम लोग धूम-धड़ाके के साथ स्टेशन पर उसका स्वागत करेंगे। घास-फूस का 'गेट' बनाकर उस पर मिट्टी की लिपाई-पोताई करके—फुलपत्ती के हाथ से लिखाई करवाई जाएगी···। अरी, फूलो दीदी, माँ की 'ईलम' जो मिली है उसको मन लगाकर साधोगी तो एक दिन तुमको भी सरकारी 'प्राइज' मिलेगा।···अपने गाँव का नाम औल इंडिया में क्या, इंडिया से भी बाहर चला गया समझो। अखबार में लिखा है कि श्रीमती पनियाँ उर्फ पन्नादेवी अपनी बनाई हुई तसवीरों पर टेढ़ी-मेढ़ी देवनागरी में अपने नाम के साथ, अपने गाँव और जिला का नाम लिखना नहीं भूलतीं। अब बतलाओ, गाँव का नाम बढ़ाया या नहीं ?"

"ठीक बात !"

गाँव के नौजवानों ने एक स्वर से नारा लगा दिया, "बोलिए, एक बार प्रेम से—पन्नादेवी जी की जै···जै···"

औरतों की बैठकी में बैठी फुलपत्ती की मामी हमेशा 'कचहरी' बोली में बोलती रहती है—'जाती हूँ, खाती हूँ, पीती हूँ' सुनकर गाँव की औरतें घूँघट की ओट में कभी-कभी हँसती भी हैं।

"हाँ, फुलपत्ती के हाथ में रकम आठ आना गुण आ गया है !"

"आएगा नहीं ? इसके चलते दीदी के हाथ की मार क्या कम खाई है फुलपतिया ने ?" फुलपत्ती की मामी कहती है।

फुलपत्ती की मामी अपने गाँव—पोठिया के कन्या पाठशाला में पढ़ाती है। हमेशा पान खाती रहती है और किसी बाहरी 'मरद-पुरुख' से बात करने में जरा भी नहीं 'घबाती' है। बदरी भगत उसकी मजलिस में आया तो उसने कपड़ा सरकाकर सिर भी नहीं ढँका। बोली, "बाकी सब काम तो फुलपत्ती ही करती थी, पिठार के चावल को खूब महीन करके सिलबट्टे पर पीसना। पिठार को दूध में घोलना। थोड़ी देर के बाद, ठीक समय पर जंगली पेड़—'मेदाकाठ' की कोमल पत्तियों को उसमें डालकर मथते रहना, सींकी की काठियों में कपड़े और छोटे-छोटे लत्ते लपेटकर—अलग-अलग रंग के लिए तैयार करना; रंग घोलना—सब काम तो फुलपत्ती बचपन से ही करती आयी है।···और, कहीं जो पिठार जरा-सा मोटा हुआ, काठी के लत्ते ढीले पड़े या रंग गाढ़ा, पतला हुआ थोड़ा भी कि झोंटा पकड़कर दे घुमक्का दे घुमक्का।"

बदरी भगत ने कहा, "मामी, अपने घर पर रखकर फुलपत्ती को 'दो अच्छर' आगे और पढ़ा देती तो···।"

मामी बोली, "भैया, हम क्या करें ? लोअर तक पढ़ाकर रामायण बाँचना सिखाकर, अपर में पढ़ाना चाहती थी। मगर, उसकी माँ की जिद—अब आगे नहीं पढ़ाना है। और, दीदी की वह इकलौती बेटी ठहरी। हम क्या करें ?"

"अब एक बढ़िया घर-वर देखकर हाथ पीले करवा दो मामी। तिलक-दहेज भी थोड़ा देना पड़े तो···"

मामी बदरी भगत का दिया हुआ जर्दा मुंह में डालती हुई बोली, "बढ़िया घर-वर मिलने-मिलाने की बात तो बदरी बाबू, बस भगवान् के हाथ है। तब, यह बात ठीक है कि अब सुगम हो जाएगा। जानते ही हो, इसका तो गाना भी बन गया है सिनेमा में—'पैसा फेंको, तमाशा देखो'···।"

नागेसरदास ने फिर एक किस्सा लोगों को सुनाना शुरू किया है, "जानते हो, जोखन ने यहाँ भी तौल-जोखकर मोल-तोल किया है। फुलपत्ती की माँ अगर पाँच हजार पेशगी दे तो एक दुलहा उसके—समझिए कि पाकिट में है। मगर फुलपत्ती की मामी ने उसकी चालाकी नहीं चलने दी।"

फुलपत्ती की माँ लौट आयी है।

साथ में तीन बैलगाड़ियों पर सिर्फ इनाम में मिले हुए असबाब लद के आये है।

स्टेशन पर खूब धूमधाम और जयजयकार करके स्वागत हुआ। सचमुच, देखने के काबिल गेट बनाया था स्टेशन वालों ने। फुलपत्ती के हाथ में आठ आना ही नहीं, बारह आना गुण आ गया है। सनातन भी साथ में आया है। गाड़ी से उतरकर उसकी नजर सबसे पहले गेट की कारीगरी पर—चौकठ, कलस और फूल-पत्तियों पर पड़ी थी। बहुत देर तक वह गौर से देखता रहा था। फिर घर पहुँचकर फुलपत्ती से पूछा था, "लाल रंग की मछली किस नदी में पाई जाती है ? वहाँ कलस के आसपास, आपकी आँकी हुई दोनों मछलियों के रंग लाल देखने के बाद से ही यह सवाल मेरे मन में छलमला रहा है।"

फुलपत्ती ने कहा, "क्यों ? हमारी इस गँवई नदी चंद्रभागा में जेठ-आसाढ़ में पहली वर्षा के बाद जाकर देखिएगा—कभी-कभी नदी की धारा लाल हो जाती है—हजारों-लाखों मछलियों के जीरे···। वे क्या पटना की ओर किसी नदी में कभी नहीं जातीं ?"

"कैसे जाएंगी ! उधर चंद्रभागा या कोसी की कोई धारा गयी ही नहीं।"

फुलपत्ती के मामा नरोतम बाबू को लोग एक मिनट की भी छुट्टी नहीं देते, "दिल्ली का किस्सा और सुनाइए थोड़ा !"

फुलपत्ती की मामी आकर कहती है, "भैया, भले आदमी को अब थोड़ी

घर-गृहस्थी की भी बात करने दो !"

फुलपत्ती की मामी ने अपने पति को आँगन के एकांत घर में बुलाकर धीरे से कहा, "यह सनातन क्या कहता है ! जानते हो ?"

"जानता हूँ, जो कहता है, ठीक ही कहता है। यहाँ धरा ही क्या है ? चार झोपड़े और एक दादा आदम के जमाने के पुराना चौबारा-चौखड़ा के मोह मे क्यों पड़ी रहेगी दीदी ? जब भगवान् ने आँख खोलकर हेरा है तो शहर में क्यों नहीं रहेगी दीदी ? पाँच सौ से नौ सौ तक माहवारी और रहने के लिए 'लोहिया-नगर' की वैसी कोठी।···ठीक ही कहता है सनातन।" फुलपत्ती के मामा ने कहा।

"सनातन है किस बिरादरी का ?"

"बिरादरी को कौन पूछता है आजकल। पूछा कि आदमी क्या है, हैसियत क्या है। एक बड़े आदमी का बेटा है। बाप अच्छी संपत्ति छोड़कर मरा है। बाप की बनाई कोठी है, मोटरगाड़ी है। साल में दस-बारह हजार रुपये की तसवीरें ही खरीदता है। पटना में लिखने-पढ़ने, नाचने-गाने और आँकनेवालों के बीच खूब 'बोलबाला' है। कला-अकादमी पटना का सेक्रेटरी है। और क्या चाहिए ?"

"दीदी तैयार···माने···दीदी क्या कहती है ?"

"तैयार क्यों नही होगी ? अगर नही तैयार हो तो उनको तैयार कराना हम लोगों का काम है।"

फुलपत्ती की माँ तो गौ है गौ। उसके मन में कोई छल-कपट नही। वह सब-कुछ सुन-समझकर तुरत राजी हो गयी। मगर, यह लड़की फुलपत्ती !

फुलपत्ती एकदम राजी नहीं। जब से इस प्रस्ताव की भनक उसके कान में पड़ी है—नहाना-धोना, खाना-पीना छोड़कर घर में पड़ी हुई है। माँ समझाकर थक गयी। मामा गये और निराश होकर लौटे। तब मामी ने कहा, "एक बार मैं भी देखूँ !"

"फुलपत्ती बेटी !"

"मामी, अब तू आयी है जलाने ? तेरा भी मन डिल्ली और पटना जाने के लिए डोल गया ? मैं कहती हूँ, अपने बाप-दादे की 'डीह' छोड़कर कही नही जा सकती मैं। मेरी लहाश ही निकलेगी इस घर से···हाँ···" वह अब रोने लगी।

"भारी जिद्दी है बचपन से ही···"

सनातन सोच में पड़ा हुआ है। पिछली दो रातों में उसकी आँखों में नींद नही आ रही। आँख मूँदते ही उसको लगता है—उसके अंदर कोई बैठा हुआ है जो उसे आँखें तरेरकर देखता है और पूछता है—यह क्या कर रहा है तू ?

बलात्कार ? कुमारी को अपवित्र करेगा तू ? अपनी कामना पूरी करने के लिए कला का यह व्यापार ? हाहाहाहा···बिगस्केल फोकआर्ट इंडस्ट्री ? हीहीही··· इंडस्ट्री नगर में—तुम्हारी फैक्टरी में—फुलपत्ती और उसकी माँ का जिबह भोथरी छुरी से करेगा न ? मधुबनी शैली का प्रमुख ज्ञाता, वक्ता अधिकारी बनकर तू लोक-कल्याण वातावरण का पर्दा डालकर अपने प्राइवेट चैंबर में बैठा रहेगा और फुलपत्ती, उसकी माँ ही नहीं वरन् सैकड़ों की तादाद में तुम्हारे 'स्लाटर-हाउस' में जिबह होती, चीखती रहेगी···?"

आज वह फुलपत्ती से स्वयं बातें करेगा।

उसने देखा, फुलपत्ती आज थोड़ा प्रसन्न है। वह अपने दरवाजे की 'भित्त' पर माँ की उकेरी हुई अधूरी मयूरी की रेखाओं में रंग भर रही है।

सनातन ने पास जाकर कहा, "मयूर नाचता है या मयूरी ?"

"मयूरी को नाचने-नचानेवाले पंख होते ही कितने हैं, जो वह नाचेगी ?"

"आपने मोर को नाचते देखा है कभी ?"

"इस घोर जंगली देहात के करीब हर प्राणी ने हर वर्षा के समय उसकी बोली सुनी होगी और जंगल में उसे नाचते देखा होगा। आप क्या कहना चाहते हैं—सीधे क्यों नहीं कहते !"

"मैं कह रहा था कि आप एक बार फिर सोचकर···"

"बार-बार सोचकर क्या होगा ! जो सोचना था एक ही बार···। देखिए, सनातन बाबू, आप माँ को ले जाइए यदि वह जाना चाहती है तो ! हमसे कुछ मत कहिए।"

"लेकिन, याद कीजिए—आपने कहा था कि 'रेस्ट' करना हो···।"

"छोड़िए बेकार की बातें। नहीं तो गुस्से में मुंह से कुछ भला-बुरा निकल जायेगा तो ··।"

"सो तो, जिस दिन आया—उसी दिन सुन चुका हूँ।"

"आप क्या हमको—हम लोगों को—तसवीर ही समझते हैं ?"

"क्या मतलब ?"

"आप समझते है कि आप सब-कुछ खरीद सकते है !"

"कहाँ ? मैं तो बिकना चाहता हूँ।"

"सनातन बाबू, आप तो बहुत पढ़े-लिखे आदमी है। फिर भी आप समझते क्यों नहीं ?"

सनातन ने चुप होकर समझने की चेष्टा की। बोला, "ठीक है, लेकिन आप मेरे एक सवाल का जवाब दे दें तो बड़ी कृपा हो। आखिर वह कौन···कौन है वह सौभाग्यवान, जिसके बंधन को आप···देखिए, मुझे बड़ी खुशी होगी अगर आप···।"

फुलपत्ती ने 'भित्ति' पर बने हुए सजे-सँवरे कलंगी ऊँची किये, पंख छत्राकार फैलाये, नाचते हुए मयूर की ओर दिखलाते हुए अँगुली उठाई—"वह, वहाँ··· वही···नाच रहा है जो। समझे ?"

सनातन ने एक लंबी साँस लेकर कहा, "समझकर क्या होगा ! अच्छी बात। अब मेरा एक दूसरा प्रस्ताव···यानी···दूसरी प्रार्थना है···"

सनातन उसको अपना दूसरा प्रस्ताव सुनाता रहा—अति उत्साहपूर्वक और फुलपत्ती भित्तिचित्र की मयूरी के पंखों में रंग भरती रही।

सनातन को लगा—मयूरी हठात् पंख फैलाकर किलक उठी। केका ध्वनि से उसके अंदर का घनघोर 'बिजूबन' मुखरित हो उठा। आम के बाग में झूले पर बारहमासा गाती हुई लड़कियों के कंठ से निकली एक कड़ी—उसके मन के मेघाच्छादित आकाश में बहुत देर तक मँडराती रही, 'बिजूबन कुहुक मयूष···'

गाँव में फिर एक बार जोर से एक नई खबर फैली, नहीं-नहीं ! फुलपत्ती की माँ नहीं जायेगी गाँव छोड़कर। अपने पति की डीह छोड़कर वह कहीं नहीं जायेगी। लेकिन, सनातन ने यहाँ एक 'सेंटर' खोलने का फैसला किया है। पटना और दिल्ली और कलकत्ता से चुनी हुई लड़कियाँ तीन महीने की ट्रेनिंग लेने आयेंगी, यहाँ। फुलपत्ती की माँ को घर बैठे ही समझो—पाँच सौ से हजार रुपये तक मिलेंगे और जिले और गाँव की लड़कियो को भी मुफ्त में सिखाया जायेगा···अखबार में भी यह खबर छप गयी है। बदरी भगत सबको सुना रहा है। इस बार गाँव का पूरा नाम छपा है अखबार में—"मोहनपुर के 'मधुबनी आर्ट सेंटर' के भवन के शिलान्यास के लिए देश के प्रसिद्ध चित्रकार हुसैन से अनुरोध किया गया है···।"

सुननेवालों ने एक स्वर से जय-जयकार कर दिया, "मोहनपुर गाँव की जै···जै···"

(नवंबर, 1972)

●●●